# 

# आचार्य श्रीनुलसी अभिनेत्दन् ग्रन्थ

# आचार्य श्री तुलसी अभिनन्दन ग्रन्थ

### सम्पादक मण्यल

श्री जमपस्य स्थासम्बद्धाः स्थापम्य । श्री स्टब्सिस विद्या साधिसन् । श्री १०० स्टब्स्ट १८०६ । स्टब्स्स्ट १५० स्टब्स्ट

Liver the property of the

क्षरिक्षी स्थापन हाला है स्थ्री स्थिति विद्यास्था स्थाप त्रार १९४० च च च च के १९५० व्यास स्थापन स्थाप स्थापन के अस्तर के स्थाप के

Say The Carlo

श्राचार्य श्री तुलसी धवल समारोह सिमति, दिल्ली

### प्रकाशक:

### ब्राचार्य श्री तुलसी धवल समारोह समिति

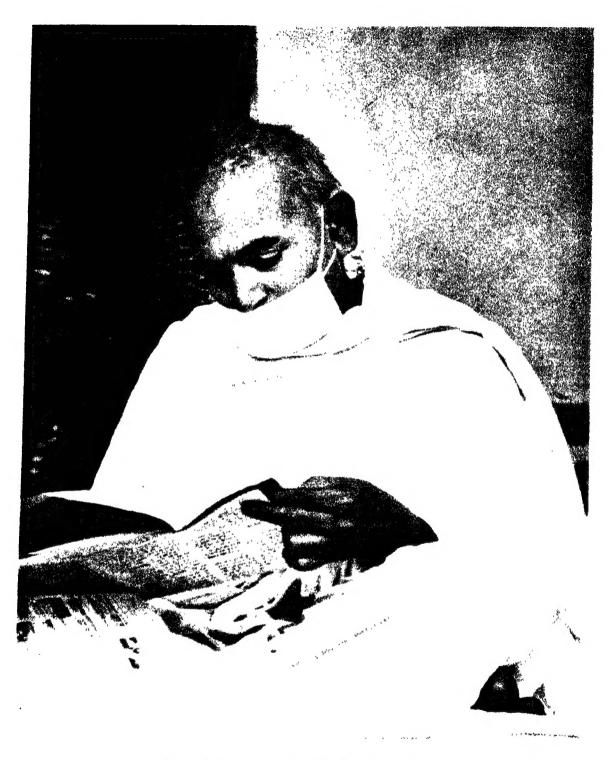
वृद्धिचन्द जैन स्मृति भवन, ४०६३ नयाबाजार, दिल्ली।

### पुष्ठ संख्या

प्रथम ग्रध्याय	२६२
द्वितीय ग्रध्याय	१३२
तृतीय ग्रध्याय	858
चतुर्थं ग्रध्याय	२१२
ग्रन्य	२८
कुल योग	৩নন

मूल्य: चालीस रुपये

मुद्रक व्यामकुमार गर्ग राष्ट्रभाषा प्रिन्टर्स २७ गिवाश्रम, क्वीन्स रोड, दिल्ली



नेरापथ के नवमाधिशास्ता, ग्रमुदत-ग्रान्दोलन-प्रवर्तक — ग्राचार्य श्री तुलसी



# उपराष्ट्रपति डा॰ सर्वपल्लि राधाकृष्णन् हारा

वि० सं० २०१६ फाल्गुन कृष्णा दशमी, गुरुवार ता० १ मार्च, १६६२ के दिन गंगाशहर (बीकानेर) में अणुव्रत-आन्दोलन-प्रवर्तक आचार्यश्री तुलसी को सादर समर्पित

### सम्पादकीय

ग्राचार्यश्री तुलसी ग्रभिनन्दन ग्रन्थ में चार ग्रध्याय हैं। प्रथम ग्रध्याय श्रद्धाञ्जील ग्रीर संस्मरण प्रधान है। देश ग्रौर विदेश के विभिन्न क्षेत्रीय लोगों ने ग्राचार्यश्री तुलसी को ग्रपनी-ग्रपनी श्रद्धाञ्जलि ग्रपित की है ।वे ग्राचार्यश्री के ब्यापक ब्यक्तित्व और लोक-सेवा की परिचायक हैं। दूसरे अध्याय में ब्राचार्यश्री तुलसी की जीवन-गाथा है। जिनका समग्र जीवन ही अहिंसा और अपरिग्रह की पराकाण्ठा पर है, उनकी जीवन-गाथा सर्वसाधारण के लिए उदबोधक होनी ही है। तीसरे ब्रघ्याय की आत्मा ब्रण्वत है। समाज में अनैतिकता क्यों पैदा होती है और उसका निराकरण क्या है श्रादि विषयों पर विभिन्न पहलुक्षों से लिखे गए नाना चिन्तनपूर्ण लेख इस ग्रध्याय में हैं। समाज-शास्त्र, मनोविज्ञान भौर अर्थशास्त्र के श्राधार पर विभिन्न विचारकों द्वारा प्रस्तृत विषय पर महत्वपूर्ण प्रकाश डाला गया है। संक्षेप में इस भ्रष्टयाय को हम एक सर्वांगीण नैतिक दर्शन कह सकते हैं । चौथा भ्रष्टाय दर्शन भ्रौर परम्परा का है । विद्वानों द्वारा भ्रपने-अपने विषय में सम्बन्धित लिखे गए शोधपूर्ण लेख इस अध्याय की ही नहीं, समग्र ग्रन्थ की अनुठी सामग्री बन गए हैं। हालांकि ग्रधिकांश लेख जैन दर्शन ग्रीर जैन-परम्परा से ही सम्बन्धित है; फिर भी वे निग्नान्त शोध-प्रधान दृष्टि से लिखे गए है और साम्प्रदायिकता से सर्वथा अछूते रहे हैं । स्याद्वाद जैन दर्शन का तो हृदय है ही, साथ-साथ वह जीवन-व्यवहार का भ्रभिन्न पहलू भी है । यह सिद्धान्त जिलना दार्शनिक है, उतना वैज्ञानिक भी । डा० ग्राइस्स्टीन ने भी भ्रपने वैज्ञानिक सिद्धान्त को सापेक्षवाद की संज्ञा दी है । इस प्रकार चार अध्यायों का यह भ्रभिनन्दन ग्रन्थ दर्शन ग्रौर जीवन व्यवहार का एक मर्वागीण शास्त्र बन जाता है । श्रभिनन्दन-परम्परा की उपयोगिता भी यही है कि उस प्रमंग विद्येष पर ऐसे ग्रन्थों का निर्माण हो जाता है। अभिनन्दन में व्यक्ति तो केवल प्रतीक होता है। बरतूत: तो वह अभिनन्दन उसकी मत्प्रवृत्तियों का ही होता है।

भारतवर्ष में सदा ही त्याग और संयम का श्रमिनन्दन होता रहा है। श्राचार्यश्री नुलसी स्वयं श्रहिंसा व अपरि-ग्रह की भूमि पर है और समाज को भी वे इन श्रादर्शों की श्रोर मोड़ना चाहते हैं। सामान्यतया लोग सत्ता की पूजा किया करते हैं। इस प्रकार सेवा के क्षेत्र में चनने वाले लोगों का श्रमिनन्दन समाज करती रही, तो सत्ता और श्रर्थ जीवन पर हाबी नहीं होंगे।

ग्रन्थ-सम्पादन की शालीनता का सारा श्रेय गुनिश्री नगराजजी को है। साहित्य भौर दर्शन उनका विषय है। मैं सम्पादक मण्डल में अपना नाम इसीलिए दे पाया कि वह कार्य उनकी देख-रेख में होना है। व्यक्तिशः मैंने इस पुनीत कार्य में अधिक हाथ नहीं बटाया, पर नाम से भी सबके साथ रह कर ग्राचार्यश्री तुलसी के प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त कर सका, इस बात का मुक्ते हर्ष है।

पटना ता॰ २६-१२-६१

سادكية بكيله بالاالملايم

### धवल समारोह : परिकल्पना और परिसमापन

विक्रम संवत् २०१६ का वर्ष मेरे लिए ऐतिहासिक संस्मरण छोड़ गया। वर्ष की ब्रादि में ब्राचार्य भिक्षु स्मृति-ग्रन्थ की रूपरेला और कार्य दिशा के निर्धारण में अपने-ब्रापको लगाकर महामहिम ब्राचार्यथी भिक्षु को एक विनम्न श्रद्धाञ्जलि दे पाया और वर्ष के अन्त में भ्राचार्यश्री तुलसी अभिनन्दन ग्रन्थ के यायोजन में व्यपने-ब्रापको लगाकर कृत-कृत्य हथा।

इस वर्ष आचार्यप्रवर का नानुर्माम कलकत्ता में था। श्री शुभकरणजी दसाणी ने अकस्मान् इस ग्रोर घ्यान आकृष्ट किया कि दो वर्ष बाद आचार्यवर को आचार्य-पद के पच्चीस वर्ष पूर्ण हो जाते हैं। इस उपलक्ष में हमें 'सिलवर-जुबली' मनानी चाहिए। सिलवर जुबली का नाम मुनकर मैं सहमा चौंका। मैंन कहा—यह तो बीसवी सदी में अठारहवी सदी के मुभाव जैसा लगता है। उन्होंने कहा—मिलवर जुबली को भी हमें बीसवी सदी के चिन्तन का पुट देकर ही तो मनाना है। वस यही प्राथमिक वार्नालाप समग्र धवल समारोह की भूमिका बन गया। मृनि महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम' इस वार्तालाप में साथ थे ही और हम तीनों ने आदि से अन्त तक की सारी योजना उन्हों दिनों गढ ली।

योजना के मुख्यतः तीन पहलू थे-

- श्राचार्यप्रवर की कृतियों का सम्यक् सम्पादन हो। उनकी ऐतिहासिक यात्रायों का लेखबद्ध सकलन हो।
   इसी प्रकार उनके भाषणों का प्रामाणिक सकलन व सम्पादन हो।
- २. ग्राचार्यवर की लोकोपकारक प्रवृत्तियाँ सार्वदेशिक रूप से ग्रिभनन्दित हो ।
- ३. धवल समारोह प्रशस्ति परम्परा तक ही मीमित न रहे, वह दर्शन, संस्कृति व तैतिकता का प्रेरक भी हो ।

इसी समग्र परिकल्पना को लेखबद्ध कर आचार्यप्रवर के सम्मुख रखा। उन्होंने तो स्थितप्रज्ञ की तरह इसे मुना भौर चुप रहे। इससे प्रधिक हम उनसे अपेक्षा भी कैसे रखते। सं० २०१७ का वर्ष तेरापथ डिशताब्दी का वर्ष था। आचार्यवर का चानुर्मास राजनगर में हुआ। डिशताब्दी और धवल समारोह की अपेक्षाओं को घ्यान में रखते हुए हमारा चानुर्मास आचार्यवर ने दिल्ली ही करवाया। साहित्य-सम्पादन व साहित्य-लेखन का कार्य कमशः आगे बढ़ने लगा। धवल समारोह की अन्यात्य अपेक्षाएं भी कमशः उभरती गई। अणुश्रत समिति के तत्कालीन अध्यक्ष श्री सुगनचन्दजी आचित्या प्रभृति कुछ लोग सिक्रय रूप से समारोह की प्रवृत्तियों के माथ जुटे रहे। उस वर्ष का मर्यादा महोत्सव आमेट में हुआ। उस अवसर पर समाज के प्रतिनिधियों की एक गोष्ठी हुई और घवल समारोह की रूपरेखा पर मुक्त रूप में चिन्तन चला। मुनिश्री नथमलजी, मुनिश्री बुद्धमल्लजी व मैंने भी इस गोष्ठी में भाग लिया। तेरापंथी महासभा के नव निर्वाचित अध्यक्ष श्री जबरमलजी भण्डारी, पूर्ववर्ती अध्यक्ष श्री नेमचन्दजी गर्धया व जैन भारती के भूतपूर्व सम्पादक श्री जयचन्दलालजी कोठारी आदि के उत्साह और श्रात्म-विश्वाम ने समारोह के कार्यक्रम को तेरापंथी महासभा का स्थायी आधार दे दिया।

दिल्ली घवल समारोह के कार्यक्रम का केन्द्र बन गई। श्री मोहनलालजी कठौतिया प्रभृति स्थानीय लोगों का विशेष सहयोग मिलना ही था। कार्यकर्ताधों का भी अनुकूल योग बैठता ही गया। दिल्ली अणुक्रत समिति व धवल समारोह समिति एकीभूत-सी हो गई। देखते-देखते भाद्रव युक्ला नवमी आ गई। बीदासर में घवल समारोह का प्रथम चरण सम्पन्न हो गया। आत्माराम एण्ड संस के संचालक श्री रामलाल पुरी ने 'श्रीकालू उपदेश वाटिका,' 'श्रीन-परीक्षा' श्रादि पच्चीस पुस्तकें प्रकाशित कर श्राचार्यवर को भेंट कीं। देश के अनेकानेक गणमान्य व्यक्तियों ने अपनी भावभीनी

श्रद्धांजिलियां प्रस्तुत कीं। श्रव धवल समारोह का व्यापक कार्यक्रम फाल्गुन कृष्णा १० से गंगाशहर (बीकानेर) में होने जा रहा है।उपराष्ट्रपति डा० एस० राधाकृष्णन् ग्रमिनन्दन ग्रन्थ भेंट करेंगे, ऐसा निश्चय हुग्रा है। ग्राचार्यवर का श्रमिनन्दन सत्य श्रीर श्रहिसा का श्रमिनन्दन है। प्रस्तुत ग्राचार्यथी तुलसो श्रभिनन्दन ग्रन्थ भारतवासियों की ही नहीं, विदेशी मनीषियों की भी ग्राध्यात्मिक निष्ठा का परिचायक है। सभी ने श्राचार्यथी का श्रमिनन्दन कर सचमुच श्रध्यात्मवाद को ही ग्रमिनन्दित किया है।

चूँकि धवल समारोह की परिकल्पना से लेकर परिसमापन तक मैं इसकी श्रनवद्य प्रवृत्तियों में संलग्न रहा हूँ। मुफ्ते यथासमय इसकी सर्वागीण सम्पन्नता देख कर परम हर्ष है। दिल्ली में अनेको चातुर्माम व्यतीत किये और मधन कार्य व्यस्तता रही, पर ये दो चातुर्मास कार्य-व्यस्तता की दृष्टि से सर्वाधिक रहे। मेरे महयोगी मृनिजनों का श्रमसाध्य महयोग रहा है, वह निश्चित ही अनुल और अमाप्य है।

मुनि महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम' भौर 'द्वितीय' ही ग्रन्थ के वास्तविक सम्पादक हैं। इन्होंने इस दिशा में जो कार्य-क्षमता व बौद्धिक दक्षता का परिचय दिया, वह मेरे लिए भी ग्रप्रत्याशित था। समारोह के सम्बन्ध सं मुनि मानमलजी की सफलनाएं भी उल्लेखनीय रहीं। अन्य सार्वजनिक क्षेत्रों से जो सहयोग ग्रजिन हुन्ना, वह तो समारोह के प्रत्येक ग्रवयव में मूर्त है ही।

'रजत' शब्द भौतिक वैभव का द्योतक है, श्रतः 'धवल' शब्द इसका ही भावबोधक मानकर अपनाया गया है। रजत जयन्ती शब्द की अपेक्षा धवल जयन्ती या धवल समारोह शब्द अधिक सात्त्विक तथा साहित्यिक लगता है। मैं मानता हूं, इस दिशा में यह एक अभिनव परम्परा का श्रीगणेश हुआ है।

१ जनवरी '६२ कठौतिया भवन, सब्जीमण्डी, दिल्ली।

मुनि नगराज

### प्रबन्ध सम्पादक की ओर से

सामान्यतः म्राज का युग व्यक्ति-पूजा का नहीं रहा है, पर ब्रादर्शों की पूजा के लिए भी हमें व्यक्ति को ही खोजना पड़ना है। म्रहिसा, सत्य व संयम की ग्रचों के लिए घणुवत-धान्दोलन-प्रवर्गक म्राचार्यश्री तुलसी यथार्थ प्रतीक हैं। वे म्रणुव्रतों की शिक्षा देते हैं भ्रीर महाव्रतों पर स्वयं चलते हैं।

भारतीय जन-मानस का यह सहज स्वभाव रहा है कि वह तक से भी अधिक श्रद्धा को स्थान देता है। वह श्रद्धा होती है—त्याग और संयम के प्रति। लोक-मानस साधुजनों की बात को, चाहे वे किसी भी धर्म के हों, जितनी श्रद्धा में ग्रहण करता है, उतनी अन्य की नहीं। अणुव्रत-भ्रान्दोलन की यह विशेषता है कि वह साधुजनों द्धारा प्रेरित है। यही कारण है कि वह सामानी से जन-जन के मानस को छ रहा है। श्राचार्यश्री तुलसी समग्र श्रान्दोलन के प्रेरणा-स्रोत हैं।

स्राचार्यश्री का व्यक्तित्व सर्वांगीण है। वे स्वयं परिपूर्ण हैं और उनका दक्ष शिष्य-समुदाय उनकी परिपूर्णता में और चार चाँद लगा देता है। योग्य शिष्य गुरु की अपनी महान् उपलब्धि होते है। प्रस्तृत ग्राभिनन्दन ग्रन्थ व्यक्ति-सर्चा में भी बढ़ कर समुदाय-स्रची का द्योतक है। स्रणुवत-स्रान्दोलन के माध्यम में जो सेवा ग्राचार्यजी व मुनिजनों द्वारा देश को मिल रही है, वह स्राज ही नहीं; युग-युग तक स्राभिनन्दनीय रहेगी।

'श्राचार्यश्री तुलसी श्रभिनन्दन प्रन्थ' केवल प्रशस्ति प्रन्थ ही नहीं, वास्तव में वह जात-वृद्धि श्रीर जीवन-शुद्धि का एक महान् शास्त्र जैसा है। इसमे कथावस्तु के रूप मे श्राचार्यश्री तुलसी का जीवनवृत्त है। महाव्रतों को साधना श्रीर मुित जीवन की ग्राराधना का वह एक सजीव चित्र है। राम तुन्हारा चरित स्वयं ही काध्य है, कोई किव बन जाय सहज सम्भाव्य है की उवित को चरितार्थ करने वाला वह श्रपने श्राप मे है ही। साहित्य मर्मज मुितश्री बुद्धमल्लजी की लेखनी में लिखा जाकर वह इतिहास श्रीर काव्य की युगपन् अनुभूति देने वाला वन गया है। नैतिक प्रेरणा पाने के लिए व नैतिकता के स्वरूप को सर्वागिण रूप से समभने के लिए 'श्रणुवृत्त श्रध्याय' एक स्वतन्त्र पुस्तक जैसा है। दर्शन व परम्परा श्रध्याय में भारतीय दर्शन के श्रंचल में जैन-दर्शन के तात्त्विक श्रीर सात्त्विक स्वरूप को भली-माँति देखा जा सकता है। 'श्रद्धा, संस्मरण व कृतित्व' श्रध्याय में श्राचार्यश्री तुलसी के सार्वजनीन व्यक्तित्व का व उनके कृतित्व का समग्र दर्शन होता है। साधारणतया हरेक व्यक्ति का श्रपना एक क्षेत्र होता है श्रीर उसे उस क्षेत्र से श्रद्धा के सुमन मिलते हैं। नैतिकता के उन्नायक होने के कारण श्राचार्यश्री का व्यक्तित्व सर्वक्षेत्रीय वन गया है श्रीर वह इस श्रध्याय में निरिवाद श्रभिव्यक्त होता है।

केवल छः मास की अवधि में यह प्रत्थ संकलित, सम्पादित और प्रकाशित हो जाएगा, यह प्राधा नहीं थी। किन्तु इस कार्य की पिवित्रता और संगलसयता ने असम्भव को सम्भव बना डाला है। ऐसे प्रत्थ अनेकानेक लोगों के सित्रय योग से ही सम्पन्त हुन्ना करते हैं। मैं उन समस्त लेखकों के प्रति आभार प्रदर्शन करता हूँ, जिन्होंने हमारे अनुरोध पर यवासमय लेख लिख कर दिये। राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद, प्रधानमन्त्री पं० जवाहरलाल नेहक, उपराष्ट्रपति डा० एस० राधाकृष्णन्, मर्वोदयो संत विनोवा व राजींप पुरुषोत्तमदाम टण्डन आदि ने अपनी व्यस्तान में भी यथासमय अपने सन्देश भेज कर हमें बहुत ही अनुगृहीत किया है। तुलसी अभिनन्दन प्रत्थ के व्यवस्थापक थी मोहनलालजी कठौतिया का अपवस्था-कौशल भी अभिनन्दन प्रत्थ की सम्पन्ता का अभिन्त अंग है। दिल्ली अणुव्रत समिति के उपमन्त्री श्री सोहनलालजी बाफणा और श्री लादूलालजी बाच्छा, एस० कॉम० मेरे परम सहयोगी रहे हैं। इनकी कार्यनिष्ठा ग्रन्थ-सम्पन्ता की एक महत्त्वपूर्ण कड़ी है। श्री मुन्दरलाल भवेरी, बी० एस-सी० ने श्राचार्यश्री तुलसी के सम्पर्क में आये हुए

### माचार्यभी तुलसी झभिनन्दन ग्रन्थ

नैतिक जागरण का उन्मुक्त द्वार	डा० लुई रेनु	५६
ढाई हजार वर्ष पूर्व के जैन-संघ में	डा० डबस्यू० नोर्मन ब्राउन	Ęo
महान् कार्य ग्रीर महान् सेवा	श्री बी० बी० गिरि	દ્ શ્
संत भी, नेता भी	श्री गोपीनाथ 'ग्रमन'	` ° ६३
आधुनिक भारत के सुकरात	महर्षि विनोद	ξĘ
सर्व सम्मत समाधान	भारत रत्न महिष डी० के० कर्वे	<b>``</b>
चारित्र भौर चातुर्य	श्री नरहरि विष्णु गाडगित	६्द
सत्य का पवित्र बन्धन	महामहिम श्री रघुवल्लभ तीर्थस्वामी	ęε
समाज-कल्याण के लिए	श्री विद्यारत्न तीर्थ श्रीपादाः	६१
भारत का प्रमुख अंग	श्री गुलजारीलाल नन्दा	90
पुरानन संस्कृति की रक्षा	श्री श्रीप्रकाश	ও ০
राष्ट्रीत्थान में सित्रय सहयोग	थी जगजीवनराम	<u>৬</u> १
विद्व-मैत्री का राज-मार्ग	श्री यशवन्तराव चह्नाण	ত
प्राचार्यश्री का व्यक्तित्व	श्री हरिविनायक पाटस्कर	હર
मणि-कांचन-योग	डा० कैलाशनाथ काटज्	७२
श्राध्यात्मिक स्वतन्त्रता का श्रान्दोलन	श्री सुजानेन्द्र तीर्थ श्रीपादाः	5 छ
पंच महावत भीर सणुद्रत	स्त्रामी नारदानन्दजी सरस्वती	७ ३
भारत को महत्तर राष्ट्र बनाने वाला झान्दो	लन डा० बलभद्रप्रसाद	<b>ভ</b> ৱ
महान् व्यक्तितस्व	डा० वान्थर स्थिग	36
त्रपने ग्रापमें एक सस्था	एच० एच० थी विश्वेश्वरतीर्थ स्वामी	৩५
प्रेरणादायक ग्राचार्यत्व	श्री एन० लक्ष्मीनारायण शास्त्री	७४
श्रीकृष्ण के ग्रास्वासन की पूर्ति	श्री टी० एन० वैकट रमण	ક <del>દ</del>
बीमवों मदी के महापुरुष	ब्राचेबिशप जै० एस० विलियम्स	9 দ
ब्राचार्यश्री तुलसी का एक सूत्र	ग्राचार्य धर्मेन्द्रनाथ	= 0
दो दिन में दो सप्ताह	डा० हबंट टिमी	<b>5</b> 3
देश के महान् आचार्य	श्री जयमुखनान हाथी	53
नैतिक पुनरुत्थान के नये मन्देशवाहक	श्री गोपालचन्द्र नियोगी	<b>5</b> 8
स्वीकृत कर वर! चिर ग्रभिनन्दन	श्री द्योमप्रकाश द्रोण	83
मुधारक तुलसी	डा० विक्वेक्वरप्रसाद	8.8
मेरा सम्पर्क	कामरेड यशपाल	१३
तुम ऐसे एक निरंजन	श्री कन्हैयालाल सेठिया	د ع
<b>ग्राचार्यश्री तुलसी मेरी दृष्टि में</b>	सेवाभावी मुनिश्री चम्पानालजी	= 3
मानवता के पोषक, प्रचारक व उन्नायक	श्री विष्णु प्रभाकर	308
वर्तमान शताब्दी के महापुरुष	प्रो० एन० बी० वैद्य	500
धर्म-संस्थापन का दैवी प्रयास	थी एल० ग्रो० जोशी	१०६
प्रथम दर्शन भीर उसके बाद	श्री सत्यदेव विद्यालंकार	8 8 8
तुभ्यं नमः श्रीतुलसीमुनीय !	ग्राधुकविरत्न पण्डित रघुनन्दन शर्मा	5 5 %
सम्प्रति वासवः	मुनिश्री कानमलजी	११६

निर्द्रेन्द्वो द्वन्द्वमाश्रितः	मुनिश्री चन्दनमलजी	११६
तुलसीं वन्दे	श्री यतीन्द्र विमल चौघरी	११६
चिरं जयतु श्रीतुलसीमुनीन्द्रः	मृनिश्री नवरत्नमलजी	e \$ \$
न मनुजोऽमनुजोऽईति तत्तुलम्	मुनिश्री पुष्पराजजी	११७
निर्मलात्मा यशस्वी	मुनिश्री वत्सराजजी	११७
कोऽपि विलक्षणात्मा	मृनिश्री डूंगरमलजी	११=
निरन्तरायं पदमाप्त्कामः	मुनिश्री शुभकरणजी	9 9 =
बन्द्यों न केषां भवेन् ?	श्री विद्याधर गास्त्री	११=
निष्ठाशील शिक्षक	मुनिश्री दुलीचन्दजी	399
ग्राञ्जनेय तुलसी	श्राचार्य जुगलकिशोर	इ इ ह
तरुण तपस्त्री श्राचार्यश्री तुलसी	श्रीमती दिनेशनन्दिनी डालमिया	१२३
चर्रवेति चरैवेति की साकार प्रतिमा	श्री <b>ग्रानन्द विद्या</b> लंकार	१२४
नवोत्थान के मन्देश-वाहक	श्री ग्रमरनाथ विद्यालंकार	१२६
कुशल विद्यार्थी	मुनिश्री मीठालानजी	१३०
महान् धर्माचार्यौ की परम्परा मे	श्री पी० एस० कुमारस्वामी	१३२
श्रभिनन्दन गीत	श्री मतवाला मंगल	१३३
तुलसी ग्राया ले 'चरैंबेति' का नव सन्देश	श्री कीर्तिनारायण मिश्र	१३४
भगवान् महावीर और बुद्ध की परम्परा में	मृनिश्री सुखलालजी	१३६
जैसा मैंने देखा	श्री कैलासप्रकास	885
शत-शत श्रभिवन्दन	मुनिश्री मोहनलालजी 'बाईल'	१४३
्यणुवन, याचार्यश्री तुनसी श्रौर वि <mark>व्व-शान्ति</mark>	श्री मनन्त मिध	888
सन्तुलित व्यक्तित्व	नाहू शान्तिप्रमाद जैन	8.85
ग्राशा की भलक	श्री त्रिनोकीमिह	१४६
महावीर व बुद्ध के सन्देश प्रतिध्वनित	महाराजा श्री करणसिहजी	१८७
विकास के साथ धार्मिक भावना	श्री दीपनारायण सिह	१४७
श्राध्यात्मिकता के धनी	थी प्रफुल्लचन्द्र सेन	१४८
श्राप्त-जीवन में श्रमृत सीकर	श्री उदयशकर भट्ट	१४=
नंतिकता का वातावरण	श्री मोहनलाल गौतम	388
प्राचीन सभ्यता का पुनरुज्जीवन	महाशय वनारसीदास गुप्ता	388
सर्वोत्कृष्ट उपचार	श्री वृन्दावनलाल वर्मा	१५०
ग्राघ्यात्मिक जागृति	सवाई मानसिंहजी	१५०
उत्कट साधक	श्री मिथीलाल गंगवाल	१५१
महान् श्रात्मा	डा० कामताप्रसाद जैन	१५१
प्रभावशाली चारित्रिक पुनर्निर्माण	डा० <mark>जवा</mark> हरला <b>ल</b> रोहतगो	१५२
तपोधन महर्षि	श्री लालचन्द सेठी	880
धनेक विशेषताधों के धनी	डा० पंजाबराव देशमुख	१५३
वास्तविक उन्नति	श्री गुरुमुख निहालसिह	१४३
सफल बनें	सरसंघचालक मा० स० गोलवलकर	8 X 3

समाज के मूल्यों का पुनरुत्थान	श्री मोहनलाल सुखाड़िया	8 1 8
माचार-प्रधान महापुरुष	श्री ग्रलग्राय शास्त्री	6112
भ्रपना ही परिशोधन	डा० हरिबंश <b>राय 'ब<del>ण्य</del>न'</b>	688
एक अनोखा व्यक्तित्व	मुनिश्री धनराजजी	१४५
मानवता के उन्नायक	श्री यशपाल जैन	१५७
महामानव तुलसी	प्रो॰ मूलचन्द सेठिया	१६२
भारतीय संत-परम्परा के एक संत	डा० युद्धवीरसिंह	१६४
आवार्यश्रीका व्यक्तित्व : एक अध्ययन	मुनिश्री रूपचन्दजी	१६५
दितीय संत तुलसी	श्री रामसेवक श्रीवास्तव	१७०
्र युवा स्राचार्य स्रोर वृद्ध मन्त्री	मुनिश्री विनयवर्धनजी	१७५
संत-फकीरों के अगुआ	वेगम धलीजहीर	१७७
भारतीय दर्शन के भ्रधिकृत व्याख्याता	सरदार ज्ञानसिंह राड़ेवाला	309
परम साधक तुलसीजी	श्री रिषभदास रांका	१८७
जन-जन के प्रिय	मुनिश्री मांगीलालजी 'मधुकर'	<b>?</b> =3
<mark>म्रनुशासक, साहित्यकार व ग्रान्दोलन-सं</mark> चालक	श्री माईदयाल जैन	१८८
श्रवतारी पुरुष	श्री परिपूर्णानन्द वर्मा	કૃદ્હ
श्राचार्यश्री के शिष्म परिवार मे ब्राशुकवि	मुनिश्री मानमलजी	? 8 ?
श्रमा में प्रकाश किरण	महासती श्री लाडांजी	१६३
शत बार नमस्कार	श्री विद्यावनी मिश्र	963
ग्राधुनिक युग के ऋषि	श्री मुगनचन्द	826
वे हैं, पर नहीं हैं	मुनिश्री चम्पालालजी (सरदारशहर)	8€4.
ग्राचायंश्री के जीवन-निर्माता	मुनिश्री श्रीचन्दजी 'कमल'	१६६
निर्माण लिए श्राए हो	मृनिश्री बच्छराजजी	200
मानवता का नया मसीहा	श्री एन० एम० भुनभुनवाना	209
युगधर्म उन्नायक ब्राचार्यथी तुलसी	डा० ज्योतिप्रसाद जैन	२७२
संघीय प्रावारणा की दिशा में	मुनिश्री सुमेरमलजी 'सुदर्शन'	20%
तुम मानव !	मुनिश्री श्रीचन्दजी 'कमल'	२०७
इस युग के प्रथम व्यक्ति	श्री गिल्लूमल बजाज	२०इ
नहीं भक्त भी, किन्तु विभक्त भी	मुनिश्री मानमलजी (बीदासर)	၁११
ब्यक्तित्व-दर्शन	श्री नथमल कठौतिया	२१२
भाचार्यश्री तुलसी के जीवन प्रसंग	मृनिश्री पुष्पराजजी	२१३
ग्रनुपम व्यक्तित्व	श्री फतहचन्द शर्मा 'ग्राराधक'	<b>ગ</b> ક્દ્
भगवान् नया ग्राया	श्री उमाशंकर पाण्डेय 'उमेश'	520
एक रूप में स्रोतक दर्शन	मुनिश्री <b>शुभक</b> रणजी	२२१
त्रमरों का संसार	मुनिश्री गुलाबचन्दजी	হ্হ্ড
यशस्वी परम्परा के यशस्वी ग्राचार्य	मुनिश्री राकेशकुमारजी	221
सभी विरोधों से अजेय है	मुनिश्री मनोहरलासजी	२२६
तो नयों ?	थी घक्षयकुमार जैन	२२७
	•	,

तीर्थंकरों के समय का वर्तन	डा० हीरालाल चौपड़ा	२२८	
इस युग के महान् अशोक	श्री के० एस० धरणेन्द्रैय्या	<b>२</b> २९	
सूभ-बूभ ग्रीर शक्ति के धनी	पण्डित कृष्णचन्द्राचार्य	230	
कर्मण्येवाधिकारस्ते	रायमाहब गिरधारीलाल	२३१	
विद्वान् सर्वत्र पूज्यते	श्री ए० बी० ग्राचार्य	२३२	
शतायु हों	सेठ नेमचन्द गर्धया	२३३	
गुरुता पाकर तुलसी न लसे	श्री गोपालप्रसाद व्यास	२३३	
भ्रचना	थी जबरमल भण्डारी	२३४	
का विध करहु तब रूप बखानी	श्री शुभकरण दसाणी	२३४	
युग प्रवर्तक स्नाचार्यश्री तृलसी	डा० रघुवीरसहाय माथुर	२३४	
विभिष्ट व्यक्तियों मे ग्रग्रणी	श्री कन्हैयालाल दूगड़	२३६	
उञ्ज्वल सन्त	श्री चिरंजीलाल बङ्जाते	२३६	
तुमने क्या नहीं किया ?	थो मोहनलाल कटौतिया	२३७	
श्रहिंसा व प्रेम का व्यवहार	रायसाहब गुरुप्रसाद कपूर	२३७	
भ्रमा के हे चिर गौरव	साध्वीश्री जयश्रीजी	२३८	
लघु महान् की खार्ड	साध्वीश्री कनकप्रभाजी	२३८	
नपःपून	मुनिर्श्वी मणिसालजी	.२३=	
पाप सब हरते रहेगे	मुनिश्री मोहनलालजी	२३६	
शुभ द्यवंना	मुनिश्री वसन्तीलालजी	३६५	
तुम कीन ?	साष्ट्रीश्री मंजुलाजी	२३६	
गीन	साध्वीश्री सुमनश्रीजी	२३६	
श्रसाधारण नेतृत्व	श्री कृष्णदत्त	280	
पुज्य ग्राचायंश्री तलमीजी	श्री तनसुक्तराय जैन	२४०	
श्राचायंश्री तुलसी की जन्म कुण्डली पर एक निर्णाय	क प्रयोग मुनिश्री नगराजजी	298	
श्रीतुलसीजी की जन्म कुण्डली का विहंगावलोकन	पद्मभूषण पं० सूर्यनारायण व्यास	२,४३	
हस्तरेखा-मध्ययन	रेखाशास्त्री श्री प्रतापसिह चौहान	288	
एक सामुद्रिक ग्रध्ययन	श्री जयसिंह मुणीन	२'४८	
ग्राचार्यश्री तुलसी के दो प्रवन्ध काव्य	डा० विजयेन्द्र स्नातक	२४१	
श्रविन-परीक्षाः एक अष्ययन	प्रो० मूलचन्द मेठिया	२५८	
श्रीकाल् यशोविनास	डा० दशर्थ शर्मा	२६८	
भरत-मुक्ति-समीक्षा	डा० विमलकुमार जैन	२७४	
श्रीकालु उप <b>देश वा</b> टिका	श्रीमती विद्याविभा	२८१	
भाषा <b>ढ्</b> भूति : एक भ्रध्ययन	श्री फरजनकुमार जैन	≎ <del>द</del> ६	
जब-जब मनुजता भटकी	मुनिश्री दुलीचन्दजी	788	
गूभ भावना	पं० जुगलिकार	282	
ग्राचार्यप्रवर श्री तुलसी के प्र <u>ति</u>	श्री सियारामशरण	२६२	
द्वितीय ऋध्याय ः जीवन वृत्त			
जीवन वृत्त	मुनिश्री बुद्धमल्लजी	११३२	
	<b>5</b>		

## तृतीय ऋध्यायः ऋणुव्रत

——————————————————————————————————————		
नैतिकता का ग्राधार	मुनिश्री नथमलजी	3
भ्रणुक्रत-ध्रान्दोलन ग्रौर चरित्र-निर्माण	श्री सुरजित लाहिड़ी	Ę
भ्रणुन्नतः विस्व-धर्म	श्री चपलाकान्त भट्टाचार्य	5
नैतिकता श्रीर समाज	डा० ए० के० मजूमदार	१०
नैतिकनाः मानवना	डा० हरिशंकर शर्मा	23
ग्रपराध ग्रौर नैतिकता	श्री गलाबराय	१६
साहित्य भीर धर्म	डा० नगेन्द्र	<b>१</b> ≒
धर्म ग्रौर नैतिक जागरण	श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती	२०
ग्रणुव्रत-त्र्यान्दोलन का रचनात्मक रूप	थी रघुनाय विनायक घुलेकर	२४
श्रणुवत से : सच्चे निःश्रेयस की श्रोर	श्री नरेन्द्र विद्यावाचस्पति	₽¢
अणु युग में अणुवत	प्रो० गैलेन्द्रनाथ श्रीवास्तव	२व
शिक्षा की प्रात्मा	श्री स्वामी कृष्णानन्द	30
दर्शन ग्रौर विज्ञान में श्रहिसा की प्रतिग्ठा	पं० चैनसृलदास न्यायनीर्थ	3 3
प्राचीन व प्रविचीन मूल्य	श्री सादिकग्रली	2 8
एकता की दिञा में	थी हरिभाऊ उपाघ्याय	३्ड
सम्यक् कृति	डा० कन्हैयालाल सहल	४०
नैतिकता ग्रौर देशकाल-परिवर्तन	डा० प्रभाकर माचवे	४३
नैतिकता का मूल्यांकन	थी मुकुटबिहारी वर्मा	४६
त्रनैतिकता : अस्वस्थता का मूल कारण	डा० द्वारिकाप्रसाद	8=
प्रगतिवाद में नैतिकता की परिभाषा और व्याख्या	श्री मन्मथनाथ गुप्त	४१
राष्ट्रीय प्रगति श्रौर नैतिकता	प्रो० हरिवंश कोच्छड़	४७
भारतीय स्वाधीनता श्रौर संत-परम्परा	मृतिश्री कान्तिसागरजी	Ęo
धर्म ग्रौर नैतिकता	श्री शोभालाल गृप्त	६८
भ्रणुद्रत-भ्रान्दोलन . कुछ विचारणीय पहल्	श्री हरिदत्त शर्मा	19 ?
<b>आदर्श समाज में बुद्धि श्रीर हृदय</b>	श्री कन्हैयालाल शर्मा	06
ग्रणु <b>व</b> त ग्रौर नैतिक पुनकृत्थान श्रान्दोलन	श्री रामकृष्ण 'भारती'	ં ક
नैतिकता श्रोर महिलाएं	श्रीमनी उमिला वाष्णेय	3€
व्यापार श्रोर नैतिकता	श्री लल्लनप्रसाद व्यास	<b>E</b> 2
विद्यार्थी वर्ग ग्रौर नैतिकता	श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार	2 6
विद्यार्थी, नैतिकता ग्रौर व्यक्तित्व	मुनिश्री हर्षचन्द्रजी	22
बाल-जीवन का विकास	श्रीमती सावित्रीदेवी वर्मा	83
अणुष्रत : जीवन की न्यूनतम मर्यादा	मुनिश्री सुमेरमलजी 'सुमन'	દ્દપ
ग्रण् <b>व</b> त-ग्रान्दोलन की दार्शनिक पृष्ठभूमि	श्री सत्यदेव शर्मा 'विरूपाक्ष'	<b>e</b> 3
कानून ग्रीर हृदय-परिवर्तन	श्री बी॰ डी० सिंह	800
प्राचीन मिस्र और यणुक्रत	श्री <b>रामचन्द्र जैन</b>	१०३
श्राध्यात्मिक जागृति का ग्रान्दोलन	न्यायमूर्ति श्री सिधरंगन दास	११२

### धनुकम

तिक संबट श्री कुमारस्वामीत्री ११६ समाज का ग्राधार : वैतिकता श्री सुमाज का ग्राधार : वैतिकता श्री स्टाम स्ट्री स्ट्री समाज का ग्राधार : वैतिकता श्री सम्प्राधार : दर्जा स्ट्री स्ट्री समाज का ग्राधार : वितकता श्री समाधिमरण इंग् के समाधिमर के स्थाइ सिंद्धान्त मो मौलिकता और उपयोगिता वा का को का मानतीय स्थाइ सिंद्धान में मौलिकता और उपयोगिता वा का को का मानतीय स्थाइ सिंद्धान में मौलिकता और उपयोगिता वा का को का समाधिमर के स्थाइ सिंद्धान में के मौलिक स्थाइ इंग् के से साम सिंद्धान सिंद्धा	सुधार भौर कान्ति का मूल : विचार	मुनिश्री मनोहरतालजी	११५	
जैन भर्म के कुछ पहल् डा० लाई रेनु के लग्न-साथि धीर समाधिसरण डा० प्रेससागर जैन ६ शार तीय दर्शन में स्याद्वाद प्रीत समाधिसरण डा० प्रेससागर जैन ६ शार तीय दर्शन में स्याद्वाद प्रीत स्याद्वाद प्रीत स्याद्वाद प्रीत स्याद्वाद प्रीत स्याद्वाद प्रीत स्याद्वाद प्रीत स्याद्वाद सिद्धान्त की मीलिकता भ्रीर उपयोगिता डा० कामताप्रसाद जैन ४१ मानवीय व्यवहार भ्रीर घनेकान्तवाद डा० बी० एन० ब्रावेय ५० भेद में भ्राभेद का सर्जक स्याद्वाद मृतिश्री कन्द्रैयालानजी ६३ दिलाण भारत में जैन धर्म श्रीर घर प्रात्वाद मृतिश्री कन्द्रेयालानजी १३ के समेत स्वाद्वाद मृतिश्री कन्द्रेयालानजी १३ के समेत स्वाद्वाद को स्वाद्वाद मृतिश्री नगराजजी १६ के समेत स्वाद्वाद को से काम काम क्रांत वाद्वाद को से काम काम क्रांत वाद्वाद को से काम	नैतिक संकट	श्री कुमारस्वामीजी	388	
जैन धर्म के कुछ पहल् डा० ल्ई रेनु के न-समाधि और समाधिमरण डा० प्रेमसागर जैन प्राव्वाद और समाधिमरण प्राव्वाद और समाधिमरण प्राव्वाद कोर समाधिम प्राव्वाद कोर समाधिम प्राव्वाद का का समाधामा कीर उपयोगिता जा का समाधामा कीर प्राव्वाद का का समाधामा कीर का समाधामा कीर का समाधामा का का समाधामा कीर समाधिम का स्वयं का मुनिश्री का समाधामा कीर समाधिम का समाधामा का समाध	समाज का ग्राधार : नैतिकता	श्रीमती सुघा जैन	१२३	
जैन-समाधि और समाधिमरण भारतीय दर्शन में स्याद्वाद स्याद्वाद और जगन् स्याद्वाद और जगन् स्याद्वाद सिद्धान्त की मौनिकता और उपयोगिता मानवीय व्यवहार और यनेकान्तवाद भेद में अभेद का सर्जेक स्याद्वाद दक्षिण भारत में जेन धर्म निशीय और विनयपिटक : एक समीधारमक अध्ययन बौढ धर्म में धार्थ स्त्य और अपरांग मार्ग जैन दर्शन व बौढ दर्शन में नर्भ-वाद एवं मोश भारतीय और पाचान्य दर्शन जैन दर्शन के मौनिक सिद्धान्य भारतीय और पाचान्य दर्शन जैन दर्शन के मौनिक सिद्धान्य भारतीय और पाचान्य दर्शन जैन दर्शन के मौनिक सिद्धान्य भारतीय और पाचान्य दर्शन जैन दर्शन के मौनिक सिद्धान्य भारतीय और पाचान्य दर्शन जैन दर्शन के मौनिक सिद्धान्य भारतीय और पाचान्य दर्शन जैन दर्शन के मौनिक सिद्धान्य भारतीय और पाचान्य दर्शन जैन दर्शन के मौनिक सिद्धान्य भारतीय और पाचान्य दर्शन जैन दर्शन के मौनिक सिद्धान्य भागवान् महाबीर और उनका सन्य-दर्शन भागवान् महाबीर और उनका सन्य-दर्शन भागवान् महाबीर और उनका सन्य-दर्शन भावान महाबीर और उनका सन्य-दर्शन भावान महाबीर और अपरार्थ हो हिकास जैन दर्शन के प्रमेशितकाय-प्रधमितिकाय मानव-संस्कृति का उद्यम और आदि विकास जैन दर्शन का प्रनेत्व के साधना जैन दर्शन का प्रनेत्व कितावाद भावां एक तास्विकतावाद भावां एक तास्व विवचन भावा : एक तास्व विवचन भावा : एक तास्व विवचन भावां : एक तास्व विवचन भावां : एक तास्व विवचन भावां : एक तास्व की साधना वेद्यां मिलु और उनका विचार-पद्ध नेत्रापंथ में अवधान-विद्या भावां : एक तास्व का विचार-पद्ध नेत्रापंथ में अवधान-विद्या भावां : एक तास्व का विचार-पद्ध नेत्रापंथ में अवधान-विद्या भावां में मोनितान्त्वी (भावन) भावां : एक तास्व का विचार-पद्ध नेत्रापंथ में अवधान-विद्या भावां स्वा मार्गेह समिति : पद्याधिकारी व सदस्य मम्पारेह सम्वति : पद्याधिकारी व सदस्य मम्पारेह सम्वति : पद्याधिकारी व सदस्य मम्पारेह सम्वति : पद्याधिकारी व सदस्य मम्पारेह सम्वत्व : पर्तम्य	चतुर्थ अध्यायः दः	र्शन ऋौर परम्परा		
भारतीय दर्शन में स्याडाद स्याडाद प्रीर जगन् स्याडाद प्रीर प्रनेकान्तवाद मानवीय व्यवहार थ्रीर प्रनेकान्तवाद भेद में प्रभेद का सर्जक स्याडाद दक्षिण भारत में जैन घर्म निशीय और प्रनेकान्तवाद सें के एसन धरणेन्द्रैय्या दिक्षण भारत में जैन घर्म निशीय और विनयपिटक : एक समीक्षात्मक अध्ययन बीड धर्म में प्रार्थ सत्य और प्रपटांग मार्ग जैन दर्शन व बीड दर्शन में कर्म-वाद एवं मोश भारतीय और पाण्चात्य दर्शन जैन दर्शन के प्रीतिक सिद्धान्न अत दर्शन के प्रमाणानुगम भगवान् महाविकान बनाय प्राध्मास्तिक मनोविज्ञान जैन दर्शन के प्रमास्तिक मनोविज्ञान जैन दर्शन के प्रमास्तिक मनोविज्ञान के प्रात्विक स्थापितक मनोविज्ञान अत दर्शन के प्रमास्तिक के प्रात्विक स्थापितक मनोविज्ञान अत दर्शन के प्रमासितक के प्रात्विक स्थापितक मन्याविज्ञान अत दर्शन के प्रमासितक के प्रात्विक स्थापितक मनोविज्ञान अत दर्शन के प्रमासितक के प्रात्विक स्थापितक स्थापितक मनोविज्ञान अत दर्शन के प्रमासितक के प्रात्विक स्थापितक स्थापितक स्थापितक मनोविज्ञान अत दर्शन के प्रमासितक के प्रात्विक स्थापितक स्	जैन धर्म के कुछ पहलू	डा० लुई रेनु	3,	
स्याद्वाद ग्रीर जगन् स्याद्वाद सिद्धान्त की मीलिकता ग्रीर उपयोगिता मानवीय व्यवहार ग्रीर घनेकान्तवाद शेव में ग्रीनेद का सर्जक स्याद्वाद दक्षिण भारत में जैन घर्म निशीय ग्रीर विनयपिटक : एक समीक्षात्मक अध्ययन बीड धर्म में ग्रायं सत्य ग्रीर ग्रण्टांग मार्ग जैन दर्शन व बीढ दर्शन में जर्म-वाद एवं मोक्ष भारतीय ग्रीर पाण्डवात्य दर्शन जैन दर्शन व बीढ दर्शन में जर्म-वाद एवं मोक्ष भारतीय ग्रीर पाण्डवात्य दर्शन जैन दर्शन व बीढ दर्शन में जर्म-वाद एवं मोक्ष भारतीय ग्रीर पाण्डवात्य दर्शन जैन दर्शन व बीढ दर्शन में जर्म-वाद एवं मोक्ष भारतीय ग्रीर पाण्डवात्य दर्शन जैन दर्शन के मीलिक निढात्त पाण्डवात्त मार्ग पाण्डवात जैन दर्शन के मीलिक निढात्त भावात्त मार्ग पाण्डवात्त मार्ग मार्ग पाण्डवात जैन दर्शन मार्ग प्रमाणिक मार्ग प्रमाणिक मार्ग विकास भावत्त मार्ग मार्ग प्रमाणिक मार्ग मार्ग प्रमाणिक मार्ग प्रमाणिक मार्ग प्रमाणिक मार्ग प्रमाणिक मार्ग प्रमाणिक मार्ग प्रमाणिक प्रमाणिक मार्ग प्रमाणक म	जैन-समाधि भ्रौर समाधिमरण	डा० प्रेमसागर जैन	દ્	
स्याद्वाद सिद्धान्त की मौलिकता और उपयोगिता मानवीय व्यवहार और घनेकान्तवाद भित्र में प्रभेद का सर्जक स्याद्वाद दक्षिण भारत में जैन धर्म निशीय और विनयपिटक : एक समीक्षात्मक अध्ययन बौड धर्म में बार्य सत्य और घटांग मार्ग जैन दर्शन व बौड दर्शन में नर्म-वाद एवं मोक्ष भारतीय और पाण्चात्य दर्शन जैन दर्शन व बौड दर्शन में नर्म-वाद एवं मोक्ष भारतीय और पाण्चात्य दर्शन जैन दर्शन के मौलिक सिद्धान्त अी देरवारीलाय जैन कीठिया स्वार्थ, परार्थ और एप्यार्थ इव्य प्रमाणानुगम भगवान् महाबीर और उनका सत्य-दर्शन भीतिक मनोविज्ञान बनाम आध्यात्मिक मनोविज्ञान जैन दर्शन में पर्मार्थितकाय-अधर्मितकाय भातव-संस्कृति का उद्गम और प्राद विकास जैन प्राप्ता-वादा : मनोविज्ञान के ब्रालोक में जैन प्रमान को प्रमान के ब्रालोक में जैन दर्शन का प्रनेकात्तिक यथार्थवाद भावाः एक तास्तिक विवेचन भावाः एक तास्तिक विवेचन वान्तिक स्रोत्य का महत्व प्रमान प्रमान की साधना भावाः एक तास्तिक विवेचन सावार्यश्री भिक्ष और उनका विचार-पश्च नेरापंथ में ब्रवधान-विद्या स्रित्वां प्रमान की स्राप्ता का महत्व प्रमान की साधना भावाः एक तास्तिक विवेचन स्राच्येश्री भिक्ष और उनका विचार-पश्च नेरापंथ में ब्रवधान-विद्या स्रित्वां स्रोत्य का महत्व प्रमान की साधना भावाः एक तास्तिक विवेचन स्राच्येश्री भिक्ष और उनका विचार-पश्च नेरापंथ में ब्रवधान-विद्या स्रित्वां स्रोत्य को महत्व स्राच्येश्री भिक्ष और उनका विचार-पश्च नेरापंथ में ब्रवधान-विद्या स्रित्वां मिति : प्राधिकारी व सदस्य मम्पादक मण्डल : पर्निय	भारतीय दर्शन में स्याद्वाद	प्रो० विमलदास कोंदिया जैन	۵ ه	
मानवीय व्यवहार श्रीर घनेकान्तवाद इा० वी० एल० आत्रेय ५३ भेद में अभेद का सर्जक स्यादाद मृतिश्री कन्हैयालालजी ६३ दक्षिण भारत में जैन धर्म निशीय श्रीर विनयपिटक : एक समीक्षात्मक अध्ययन बौड धर्म में धार्य सत्य और घण्टांग मार्ग श्री केश एस० घरणेख़ैय्या ६६ जैन दशंन व बौद्ध दर्शन में नर्म-वाद एवं मोश्रा डा० वीरमणिप्रमाद उपाच्याय ६६ भारतीय और पात्रवात्य दर्शन श्रीर जाद पांचा श्रीर पात्रवात्य दर्शन श्री० उदयवन्त्र जैन १०३ जैन रास का विकास डा० दर्शन श्री वरवारीलाल जैन कोटिया ११६ स्वार्थ, परार्थ और परमार्थ डा० दरावात्य जोत्य ११६ स्वार्थ, परार्थ और परमार्थ डा० इन्द्रवन्द्र शास्त्री १०० इच्य प्रमाणानुगम श्री जवरमल मण्डारी १०० इच्य प्रमाणानुगम श्री जवरमल मण्डारी १०० इच्य प्रमाणानुगम श्रीर उनका सत्य-दर्शन साध्वीश्री राजिमनीजी १३८ भावन मंत्रविज्ञान बनाम आध्यात्मक मनोविज्ञान कर्नल सत्यवत मिद्धान्तालंकार १४२ जैन दर्शन में पर्णास्तकाय-प्रथमसितकाय मानव-संस्कृति का उद्गम और प्रादि विकास श्री बीरेन्द्रकुमार जी १४८ जैन धर्म का ममें : समत्व की साधना श्री आगरच्यट नाहरा १८० जैन दर्शन का अनेकान्तिक यद्याध्याद श्री जे० एस० भेवरी १६६ प्रादर्शवाद और वास्तविकतावाद मृतिश्री महेन्द्रकुमार जी द्वितीय' १३३ प्रादर्शवाद और वास्तविकतावाद मृतिश्री महेन्द्रकुमार जी द्वितीय' १३३ प्रादर्शवाद और तास्त्रविकतावाद मृतिश्री महेन्द्रकुमार जी द्वितीय' १६६ प्रादर्शवाद और उनका विचार-पश्च मृतिश्री मोहनलाल बोठिया १६६ प्रावार्य मिक्ष और उनका विचार-पश्च मृतिश्री मोहनलाल जी 'मुकुन' २०२ परिवाष्ट	स्याद्वाद भ्रोर जगन्	मुनिथी नथमलजी	३२	
भेद में स्रभेद का सर्जक स्याद्वाद यी किए एस० घरणेन्द्रैय्या ६६ विद्याण भारत में जैन घर्म थी केए एस० घरणेन्द्रैय्या ६६ विद्याण भारत में जैन घर्म थी केए एस० घरणेन्द्रैय्या ६६ विद्याण भारत में जैन घर्म थी केए एस० घरणेन्द्रैय्या ५६ विद्याण भारत में प्रमें में ह्यार्थ सत्य और घटांग मार्ग थी केए एस० घरणाया ६६ विद्याण ने वर्षोन व बौद्ध दर्शन में नर्म-वाद एवं मोक्ष डा० वीरमणिप्रमाद उपाध्याय ६६ प्रात्नीय और पाष्ट्याय्य दर्शन प्रेत वर्षोन व बौद्ध दर्शन में नर्म-वाद एवं मोक्ष डा० वीरमणिप्रमाद उपाध्याय ६६ प्रात्नीय और पाष्ट्याय्य दर्शन प्रात्नीय वर्षोन के मौलिक मिद्धान्त श्री दरवारीलाल जैन कोटिया १९६ व्यय प्रमाणानुगम थी जवस्मल मण्डारी १०० इन्ट चन्ट शास्त्री १०० इन्ट चन्ट शास्त्री १०० मन्यान महावीर और उनका सत्य-दर्शन साधिवात्रात माध्याणी राजिमनीजी १३८ मानव-संस्कृति का उद्याम श्रीर स्रादि विकास हाल मनिश्ची महिन्द्रकृमार जी १४६ जैन प्रमानव-संस्कृति का उद्याम श्रीर स्रादि विकास हाल प्रात्नीय १९६ मानव-संस्कृति का उद्याम श्रीर स्रादि विकास श्री कोरन्द्रकृमार जी १४६ प्राद्यांवाद और वास्तविकतावाद मृतिश्री महेन्द्रकृमार जी १८६ प्राद्यांवाद और वास्तविकतावाद मृतिश्री महेन्द्रकृमार जी (द्वातीय) १६६ प्राद्यांवाद श्रीर कारम विकतावाद मृतिश्री महेन्द्रकृमार जी (द्वातीय) १६६ प्रात्मान स्रात्न विवात विवात मानविकताला विचार मृतिश्री महेन्द्रकृमार जी (व्याच्यां २०० सर्नमान स्रात्न विवात मानविकताला विचार मृतिश्री महेन्द्रकृमार जी (व्याच्यां २०० सर्नमान स्रात्न विवात मानविका मृतिश्री महेन्द्रकृमार जी (व्याच्यां २०० सर्नमान स्रात्न विवार मानविका मृतिश्री महेन्द्रकृमार जी (व्याच्यां २०० सर्नमान स्रात्न विवार मानविका मृतिश्री महेन्द्रकृमार जी (व्याच्यां २०० सर्नमान स्रात्न विवार मृतिश्री महेन्द्रकृमार जी (व्याचां २०० सर्नमान स्रात्न विवार मृतिश्री महेन्द्रकृमार जी (व्याचां २०० सर्नमान स्रात्न विवार मृतिश्री महेन्द्रकृमार जी (व्याचां २०० सर्नमान विवार मृतिश्री मोनविकालाली 'वार्च २०० स्रात्म स्रात्म मुकु मानविका सरस्य मुनिश्यी मोगीलालाजी 'मुकु मानविका सरस्य मुनिश्य मानविका सरस्य मुनिश्यो मुनिश्यो मुनिश्यो मुनिश्यो मुनिश्यो मुनिश्यो मुनिश्यो मुनिश्यो मुनिश्यो	स्याद्वाद सिद्धान्त की मौलिकता श्रौर उपयोगिता	डा० कामतात्रसाद जैन	8.8	
विक्षण भारत में जैन धर्म  निर्शाष श्रीर विनयपिटकः एक समीक्षात्मक श्रध्ययन बौड धर्म में श्रार्थ सत्य और श्रष्टांग मार्ग  जैन दर्शन व बौद्ध दर्शन में नर्म-वाद एवं मोक्ष भारतीय श्रीर पात्रचान्य दर्शन जैन राम का विकास जैन दर्शन के मौलिक सिद्धान्त जैन राम का विकास जैन दर्शन के मौलिक सिद्धान्त श्री दरवारीलाल जैन कोठिया श्रद्ध प्रमाणानुगम श्री दरवारीलाल जैन कोठिया श्रद्ध प्रमाणानुगम श्री जवरमल भण्डारी श्री दरवारीलाल जैन कोठिया श्रद्ध प्रमाणानुगम श्री जवरमल भण्डारी श्री उनका सत्य-दर्शन भगवान् महावीर श्रीर जनका सत्य-दर्शन भगवान् महावीर और जनका के श्रालोक में श्री वीरेन्द्रकुमार जैन श्री विकास जैन दर्शन का धनेकान्तिक यद्यार्थवाद श्री जे० एम० भन्नेरां श्री वीरेन्द्रकुमार जी दितीय श्री मोहनलाल बांठिया भाषा: एक तास्विक विवेचन वर्गमान गुग में तेरापंथ का गहस्व श्रावार्यश्री भिक्षु श्रीर जनका विचार-पक्ष तेरापंथ में श्रवधान-विद्या  परिद्राष्ट धवल समारोह सिनति: पदाधिकारी व सदस्य सम्पादक मण्डल: परिचय	मानवीय व्यवहार भ्रौर भनेकान्तवाद	डा० बी० एत्व० ग्रात्रेय	દ્ર પ્ર	
निर्शाय श्रीर विनयपिटकः एक समीक्षात्मक श्रध्ययन	भेद में स्रभेद का सजंक स्यादाद	मुनिश्री कन्हैयालालजी	६३	
वौद्ध धर्म में स्रार्थ सत्य और प्रष्टांग मार्ग छा वीरमणिप्रमाद उपाध्याय ह मारतीय और पाण्यात्य दर्धन प्रे ने सारतीय और पाण्यात्य दर्धन प्रे ने सारतीय और पाण्यात्य दर्धन प्रे ने सारतीय और पाण्यात्य दर्धन प्रे ने सहात्त होते सारतीय को प्रे ने सहात्त होते सारतीय को प्रे ने सहात्त होते होते होते होते होते होते होते होत	दक्षिण भारत में जैन धर्म	श्री के० एस० घरणेत्द्रैय्या	33	
जैन दर्शन व बौढ दर्शन में नर्भ-वाद एवं मोक्ष प्रारतीय श्रीर पाण्यात्य दर्शन प्रारतीय श्रीर पाण्यात्य दर्शन प्रारतीय श्रीर पाण्यात्य दर्शन प्रार्व के मौलिक सिद्धान्त भी दरवारीलाल जैन कोठिया ११६ स्वार्थ, परार्थ श्रीर परमार्थ हा० इन्द्रचन्द्र शास्त्री १०० मगवान् महावीर श्रीर उनका सत्य-दर्शन मगवान् महावीर श्रीर उनका सत्य-दर्शन माध्वीश्री राजिमतीजी १०० क्षेत्र मनिवान्त वनाम श्राध्यात्मिक मनोविज्ञान के मार्थात्मिक मनोविज्ञान के प्रार्व विकास इन्द्रचन्द्र मार्गिक्षी महेन्द्रकुमार जैन १०० केन प्राराण-कथा : मनोविज्ञान के ग्रालोक में भी वीरेन्द्रकुमार जैन १०० केन प्राराण-कथा : मनोविज्ञान के ग्रालोक में भी त्रीरन्द्रकुमार जैन १०० केन वर्शन का ग्रनेकान्तिक यथार्थवाद श्री जे० एम० भवेरी १६० व्याद्यवाद श्रीर वास्त्रविज्ञाव स्विच्या मृनिश्री महेन्द्रकुमार जी (व्रितीय १८० वर्गमान युग में तेरापंथ का गहरव हा० राधाविनोद पाल १८० वर्गमान युग में तेरापंथ का गहरव हा० राधाविनोद पाल १८० वर्गमान युग में तेरापंथ का गहरव हा० राधाविनोद पाल १८० मृनिश्री मोहनलालजी 'शार्चल' २०० परिद्राष्ट प्राप्त में अवधान-विद्या मृनिश्री मोगोलालजी 'मुकुल' २०० परिद्राष्ट धवल समारोह मिति : पदाधिकारी व सदस्य मुन्यां स्वरं मण्डल : परिचय	निशीथ श्रौर विनयपिटकः एक समीक्षात्मक श्रध्ययन	मुनिश्री नगराजजी	1914	
भारतीय और पाञ्चात्य दर्शन शैं । उदयचन्द्र जैन शुं । इंग् रास का विकास शिं वर्शन के मौलिक सिद्धान्त श्री दरवारीलाल जैन कोठिया ११६ स्वायं, परायं भ्रीर परमायं इंग इन्द्रचन्द्र शास्त्री १०० इंग इन्द्रचन्द्र शास्त्री १०० मगवान् महावीर और जनका सत्य-दर्शन साध्वीधी राजिमतीजी १३० भगवान् महावीर और जनका सत्य-दर्शन साध्वीधी राजिमतीजी १३० भौतिक मनोविज्ञान बनाम श्राध्यात्मिक मनोविज्ञान कर्नाम श्रीर जात्मतीजी १३० भौतिक मनोविज्ञान बनाम श्राध्यात्मिक मनोविज्ञान कर्नाम स्वाय्वत सिद्धान्तालंकार १४० जैन दर्शन में धर्मास्तिकाय मनिव्या मनिव्या महित्वाय श्री वीरेन्द्रकुमार जैन १५० जैन पुराण-कथा : मनोविज्ञान के श्रालोक में श्री वीरेन्द्रकुमार जैन १५० जैन धर्म का भमें : समत्व की साधना श्री ग्रागरचन्द्र नाहरा १६० ग्री जैन एमन भवेगी (हतीय' १६० ग्रादर्शवाद भौर वास्तविकतावाद मृिश्री महेन्द्रकुमार जी (हतीय' १६० ग्रादर्शवाद भौर वास्तविकतावाद मृिश्री महेन्द्रकुमार जी (हतीय' १६० ग्रादर्शवाद भौतित्या १६० ग्रादर्शवाद श्री पेत्रवाद श्री महिनलान बाठिया १६० ग्रादर्शवाद श्री पेत्रवाद मृिश्री महेन्द्रकुमार जी (हतीय' १६० ग्रादर्शवाद श्री पेत्रवाद ग्राव्या भिन्नु में तेरापंथ का गहत्व मृिश्री मोहनलालजी (बाइन्) १६० ग्राव्यायी भिन्नु भौर जनका विचार-पञ्च मृिश्री मोहनलालजी 'मृकुल' २०० परिद्राष्टर प्राव्यायी भिन्नु मौति : पदाधिकारी व सदस्य मुन्थी मोगीलालजी 'मृकुल' २०० परिद्राष्टर धवल समारोह समिति : पदाधिकारी व सदस्य मुन्था स्वयाय	बौड धर्म में द्यार्य सत्य और श्रष्टांग मार्ग	श्री केशवचन्द्र गृप्त	€ ₹	
जैन रास का विकास  जैन दर्शन के मौनिक सिद्धान्त स्वार्थ, परार्थ श्रीर गरमार्थ हा० इन्द्रचन्द्र द्यास्त्री १०० हवार्थ, परार्थ श्रीर गरमार्थ हा० इन्द्रचन्द्र द्यास्त्री १०० हव्य प्रमाणानुगम श्री जवरमन भण्डारी श्री सित्तकाय-श्रवमस्तिकाय हा० लूडो रोचिर १४० हवार्थ स्वार्थ स्वार्थ सित्तकाय हा० लूडो रोचिर १४० हवार्थ स्वार्थ सित्तकाय-श्रवमस्तिकाय हा० लूडो रोचिर १४० हवार्थ स्वार्थ सित्तकाय-श्रवमस्तिकाय हा० लूडो रोचिर १४० हवार्थ स्वार्थ स्वार्य स्वार्थ स्वार्य स्वार्थ स्वार्थ स्वार्थ स्वार्थ स्वार्थ स्वार्थ स्वार्थ स्वार्य स्	जैन दर्शन व बौद्ध दर्शन में कर्म-वाद एवं मोक्ष	डा० वीरमणिप्रसाद उपाध्याय	≈ 3	
जैन दर्शन के मौनिक सिद्धान्त श्री दरवारीलाल जैन कोठिया ११६ स्वार्थ, परार्थ और गरमार्थ टा० इन्टचन्ट शास्त्री १०० प्रकार प्राचानुगम श्री जबरमल मण्डारी १०० भगवान् महावीर और उनका सत्य-दर्शन साध्वीश्री राजिमतीजी १३० भौतिक मनोविज्ञान बनाम प्राध्यात्मिक मनोविज्ञान कर्नल सत्यवत सिद्धान्तालंकार १४० जैन दर्शन में धर्मास्तिकाय-ग्रथमस्तिकाय टा० लूडो रोचेर १८६ मानव-संस्कृति का उद्गम और प्रादि विकास मृनिश्री महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम' १५० जैन पुराण-कथा : मनोविज्ञान के ग्रालोक में श्री वीरेन्द्रकुमार जैन १५० जैन पुराण-कथा : मनोविज्ञान के ग्रालोक में श्री वीरेन्द्रकुमार जैन १५० जैन दर्शन का ग्रनेकान्तिक यथार्थवाट श्री जे० एम० भवेरी १६० ग्रादर्शवाद और वास्तविकतावाद मृनिश्री महेन्द्रकुमारजी 'द्वितीय' १७३ कर्म वर्श्य निवन्धन भूता क्रिया श्री मोहनलाल बाठिया १६० वर्तमान ग्रुग में तेरापंथ का गहत्व टा० राधाविनोद पाल १६० ग्राचार्यश्री भिक्ष और उनका विचार-पक्ष मृनिश्री मोहनलालजी 'शार्द्ल' २०२ मृनिश्री मोगोलालजी 'मुकुल' २०० प्रार्थिक समारोह समिति : पदाधिकारी व सदस्य मुनश्री मौगोलालजी 'मुकुल' २०० प्रार्थिक समारोह समिति : पदाधिकारी व सदस्य मुनश्री क्रिया सण्डल : परिचय	भारतीय श्रौर पाञ्चात्य दर्शन	प्रो० उदयचन्द्र जैन	903	
स्वार्थ, परार्थ और गरमार्थ हा० इन्द्रचन्द्र शास्त्री १०० विद्या प्रमाणानुगम श्री जबरमल मण्डारी १०० भगवान् महाबीर और उनका सल्य-दर्शन साध्वीश्री राजिमतीजी १३० भौतिक मनोविज्ञान बनाम प्राध्यात्मिक मनोविज्ञान कर्नल सत्यवन सिद्धान्तालंकार १४० जैन दर्शन में धर्मास्तिकाय-ग्रथमस्तिकाय हा० लूडो रोचेर १८० मानव-संस्कृति का उद्गम और स्नादि विकास मृतिश्री महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम' १५० जैन पुराण-कथा : मनोविज्ञान के स्नालोक में श्री वीरेन्द्रकुमार जैन १५० जैन धर्म का ममे : समत्व की साधना श्री अगरचन्द्र नाहरा १६० जैन दर्शन का भ्रनेकान्तिक यथार्थवाद श्री जे० एम० भवेरी १६५ स्नाद्यांवाद और वास्तविकताबाद मृतिश्री महेन्द्रकुमारजी 'द्वितीय' १७३ कर्म वर्ध निवन्धन भूता किया श्री मोहनलाल बाठिया १६० वर्तमान सुग में तेरापंथ का महत्व हा० राधाविनोद पाल १६० स्नाचार्यथी भिक्षु और उनका विचार-पक्ष मृतिश्री मोहनलालजी 'पार्बुल' २०० स्वाचार्यथी भिक्षु और उनका विचार-पक्ष मृतिश्री मोगीलानजी 'मुकुल' २०० स्वाचार्यथी मिक्षु और उनका विचार-पक्ष मृतिश्री मौगीलानजी 'मुकुल' २०० स्वाचार्यथी मिक्षु और उनका विचार-पक्ष मृतिश्री मौगीलानजी 'मुकुल' २०० स्वाचार्यथी मिक्षु और उनका विचार-पक्ष मृतिश्री मौगीलानजी 'मुकुल' २०० स्वाचार्यथी मिक्षु और उनका विचार-पक्ष मृतिश्री मौगीलानजी 'मुकुल' २०० स्वाचार्यथी मिक्षु और उनका विचार-पक्ष मृतिश्री मौगीलानजी 'मुकुल' २०० स्वचल समारोह मिनित : पदाधिकारी व सदस्य मुन्थित सम्राच्या स्वचल : परिचय	जैन रास का विकास	डा० दरारथ ग्रोभा	१०८	
प्रश्च प्रमाणानुगम भगवान् महाबीर और उनका सन्य-दर्शन भोतिक मनोविज्ञान बनाम श्राध्यात्मिक मनोविज्ञान जैन दर्शन में धर्मास्तिकाय-श्रध्यमिस्तिकाय जैन दर्शन में धर्मास्तिकाय-श्रध्यमिस्तिकाय जैन पुराण-कथा: मनोविज्ञान के श्रावि विकास जैन पुराण-कथा: मनोविज्ञान के श्रावि विकास जैन प्रमं का मर्भ: समत्व की साधना श्री श्रायच्य नाहरा श्री जे० एस० भन्नेरी श्री श्री श्रायच्य नाहरा श्री जे० एस० भन्नेरी श्री श्री श्री रवास्तिकाय श्री मोहनलाल बाँठिया श्री मोहनलाल बाँठिया श्री मोहनलाल बाँठिया भाषा: एक तास्त्रिक विवेचन मुनिश्री सुमेरमलजी (लाइन्) वर्तमान ग्रुग में तेरापंथ का गहस्व श्राचार्यश्री मिक्षु श्रीर उनका विचार-पक्ष नेरापंथ में श्रवधान-विद्या  परिशिष्ट  धवल समारोह सिति : प्रदाधिकारी व सदस्य सम्पादक सण्डल : प्रिन्य  १ स्म्पादक सण्डल : प्रिन्य	जैन दर्शन के मौलिक मिद्धान्त	श्री दरवारीलाल जैन कोठिया	११६	
भगवान् महाबीर और उनका सत्य-दर्शन भौतिक मनोविज्ञान बनाम श्राध्यात्मिक मनोविज्ञान जैन दर्शन में धर्मास्तिकाय-श्रध्यमस्तिकाय डा० लूडो रोचेर १४० मानव-संस्कृति का उद्गम और श्रादि विकास जैन पुराण-कथा: मनोविज्ञान के श्रालोक में श्री वीरेन्द्रकुमार जैन श्री का प्रमेश ममें समत्व की साधना श्री श्रायण्यक्य स्वाहरा श्री जे० एस० भवेरी श्री वे० एस० भवेरी श्री के० एस० के० एस० श्री के	स्वार्थ, परार्थं श्रीर गरमार्थ	टा० इन्द्रचन्द्र शास्त्री	१२२	
भौतिक मनोविज्ञान बनाम ब्राध्यात्मिक मनोविज्ञान कर्नल सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार १४२ जैन दर्शन में धर्मास्तिकाय डा० लूडो रोचेर १८६ मानव-संस्कृति का उद्गम और ब्रादि विकास मृतिश्री महेन्द्रकुमार जैन १५० जैन पुराण-कथा : मनोविज्ञान के ब्रालोक में श्री वीरेन्द्रकुमार जैन १५० जैन पुराण-कथा : मनोविज्ञान के ब्रालोक में श्री वीरेन्द्रकुमार जैन १५० जैन दर्शन का श्रनेकान्तिक यथार्थवाद श्री जे० एस० भवेरी १६५ ब्रादर्शवाद और वास्तविकताबाद मृतिश्री महेन्द्रकुमारजी 'द्वितीय' १५३ कर्म वन्ध निवन्धन भूता किया श्री मोहनलाल बांठिया १६६ वर्तमान ग्रुग में तेरापंथ का गहत्त्व मृतिश्री सुमेरमलजी (लाडनूं) १६८ वर्तमान ग्रुग में तेरापंथ का गहत्त्व मृतिश्री मोहनलालजी 'ब्राह्मल' २०२ तरापंथ में श्रवधान-विद्या मृतिश्री मोहनलालजी 'ब्राह्मल' २०६ परिद्याष्ट परिद्याष्ट स्वल समारोह मिति : पदाधिकारी व सदस्य स्वस्य सण्डल : परिच्य	द्रव्य प्रमाणानुगम	श्री जबरमल भण्डारी	१२८	
जैन दर्शन में धर्मास्तिकाय-श्रध्मस्तिकाय  मानव-संस्कृति का उद्गम श्रीर श्रादि विकास  जैन पुराण-कथा : मनोविज्ञान के श्रालोक में  श्री वीरेन्द्रकुमार जैन १५०  जैन धर्म का मर्ग : समत्व की साधना  श्री श्रारचन्द नाहरा  श्री श्रारचन्द नाहरा  श्री श्रारचन्द नाहरा  श्री श्रारचन्द नाहरा  श्री ते० एस० भवेरी  श्री श्रारचन्द नाहरा  श्री जे० एस० भवेरी  श्री श्रादर्शनार जी 'दितीय'  श्री को० एस० भवेरी  श्री श्री के० एस० भवेरी  श्री के० एस० के० के० के० के० के० के० के० के० के० के	भगवान् महाबीर श्रौर उनका सत्य-दर्शन	मार्घ्वीश्री राजिमतीजी	१३८	
मानव-संस्कृति का उद्गम और श्रादि विकास जैन पुराण-कथा : मनोविज्ञान के श्रालोक में शी वीरेन्द्रकुमार जैन १५० जैन धर्म का ममें : समत्व की साधना शी अगरचन्द नाहरा १६० शिन दर्शन का श्रनेकान्तिक यथार्थवाद शी जे० एस० अवेरी १६६ श्रादर्शवाद और वास्तविकताबाद मृनिश्री महेन्द्रकुमारजी 'द्वितीय' १६६ भाषा : एक तास्विक विवेचन मृनिश्री सुमेरमलजी (लाइन्) १६८ श्राचार्यश्री भिक्षु श्रीर उनका विचार-पक्ष नेरापथ में श्रवधान-विद्या  परिद्याष्ट  धवल समारोह समिति : पदाधिकारी व सदस्य सम्पादक मण्डल : परिचय	भौतिक मनोविज्ञान बनाम श्राध्यात्मिक मनोविज्ञान	कर्नल सन्यद्रम सिद्धान्तालंकार	१४२	
जैन पुराण-कथा : मनोविज्ञान के आलोक में श्री वीरेन्द्रकुमार जैन ११८ जैन धर्म का मर्म : समत्व की साधना श्री अगरचन्द नाहरा १६० जैन दर्शन का श्रनेकान्तिक यथार्थवाद श्री जे० एस० भवेरी १६६ श्रादर्शवाद और वास्तविकतावाद मृनिश्री महेन्द्रकुमारजी 'द्वितीय' १७३ कर्म वन्ध निवन्धन भूता किया श्री मोहनलाल बाँठिया १८६ भाषा : एक तास्विक विवेचन मृनिश्री सुमेरमलजी (लाडनूँ) १६८ वर्तमान युग में तेरापंथ का गहस्व डा० राधाविनोद पाल १६६ ग्राचार्यश्री भिक्षु श्रीर उनका विचार-पक्ष मृनिश्री मोहनलालजी 'आर्दुल' २०२ तेरापंथ में श्रवधान-विद्या मृनिश्री माँगोलालजी 'मुकुल' २०६ परिद्याष्ट धवल समारोह मिति : पदाधिकारी व सदस्य १ सम्पादक मण्डल : परिचय	जैन दर्शन में धर्मास्तिकाय-श्रधमस्तिकाय	डा० लुडो रोचेर	१४६	
जैन धर्म का मर्म: समत्व की साधना श्री अगरचन्द नाहरा १६१ जैन दर्शन का अनेकान्तिक यथार्थवाद श्री जे० एस० अवेरी १६५ श्रादर्शवाद और वास्तविकतावाद मृनिश्री महेन्द्रकुमारजी 'द्वितीय' १७३ कर्म वस्थ निवन्थन भूता किया श्री मोहनलाल बाँठिया १६६ भाषा: एक तास्विक विवेचन मृतिश्री सुमेरमलजी (लाइन्ं) १६८ वर्तमान युग में तैरापंथ का गहत्त्व डा० राधाविनोद पाल १६६ श्राचार्यश्री भिक्षु और उनका विचार-पक्ष मृनिश्री मोहनलालजी 'शार्दुल' २०२ तेरापंथ में अवधान-विद्या मृनिश्री माँगीलालजी 'मुकुल' २०६ धवल समारोह मिति : पदाधिकारी व सदस्य १ सम्पादक मण्डल : परिचय	मानव-संस्कृति का उद्गम श्रौर श्रादि विकास	मुनिश्री महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम'	240	
जैन दर्शन का श्रनेकान्तिक यथार्थवाद श्री जे० एस० भवेरी १६४ श्रादर्शवाद और वास्तिविकतावाद मृनिश्री महेन्द्रकुमारजी 'द्वितीय' १७३ कर्म वन्ध निवन्धन भूता किया श्री मोहनलाल बांठिया १६६ भाषा : एक तास्विक विवेचन मृतिश्री सुपेरमलजी (लाडन्ं) १६४ वर्तमान युग में तेरापंथ का गहत्व डा० राधाविनोद पाल १६६ श्राचार्यश्री भिक्षु श्रीर उनका विचार-पक्ष मृतिश्री मोहनलालजी 'शार्दुल' २०२ तेरापंथ में श्रवधान-विद्या मृतिश्री मांगीलालजी 'मुकुल' २०६ परिद्याष्ट	जैन पुराण-कथा : मनोविज्ञान के ग्रालोक में	श्री वीरेन्द्रकुमार जैन	१५८	
श्रादर्शवाद और वास्तविकतावाद मृनिश्री महेन्द्रकुमारजी 'हितीय' १७३ कर्म बन्ध निबन्धन भूता किया श्री मोहनलाल बांठिया १६६ भाषा: एक तास्विक विवेचन मृनिर्शा सुमेरमलजी (लाइन्) १६८ वर्तमान युग में तेरापंथ का गहस्व डा० राधाविनोद पाल १६६ श्राचार्यश्री भिक्षु श्रीर जनका विचार-पक्ष मृनिश्री मोहनलालजी 'बार्दुल' २०२ तेरापंथ में श्रवधान-विद्या मृनिश्री मौगोलालजी 'मुकुल' २०६ धवल समारोह मिनित: पदाधिकारी व सदस्य १ सम्पादक मण्डल: परिचय	जैन धर्म का मर्भः समत्व की साधना	श्री अगरचन्द नाहरा	રૂ દ્ર ર	
कर्म बन्ध निबन्धन भूता किया थी मोहनलाल बाँठिया १८६ भाषा: एक तास्विक विवेचन मृतिश्री सुमेरमलजी (लाइन्) १६४ बर्तमान युग में तेरापंथ का गहत्व डा० राधाविनोद पाल १६६ ग्राचार्यथी भिक्षु ग्रीर उनका विचार-पक्ष मृतिश्री मोहनलालजी 'शार्दुल' २०२ तेरापंथ में ग्रवधान-विद्या मृतिश्री माँगीलालजी 'मुकुल' २०६ परिशिष्ट धवल समारोह मिति: पदाधिकारी व सदस्य १	जैन दर्शन का श्रनेकान्तिक यथार्थवाट	श्री जे० एस० भवेरी	શ્ક્પ	
भाषा : एक तास्विक विवेचन मृनिर्धा सुमेरमलजी (लाइन्) १६४ वर्तमान युग में तेरापंथ का गहस्व डा० राधाविनोद पाल १६६ ध्राचार्यश्री भिक्षु श्रीर उनका विचार-पक्ष मृनिश्री मोहनलालजी 'बार्दुल' २०२ तेरापंथ में अवधान-विद्या मृनिश्री माँगीलालजी 'मुकुल' २०६ ध्रवल समारोह मिनित : पदाधिकारी व सदस्य १ सम्पादक मण्डल : परिचय	श्रादर्शवाद भ्रौर वास्तविकतावाद	म्निश्री महेन्द्रकुमारजी 'द्वितीय'	<b>६</b> ८ १	
वर्तमान युग में तेरापंथ का गहस्व डा० राधाविनोद पाल १६६ ग्राचार्यश्री भिक्षु ग्रीर उनका विचार-पक्ष मुनिश्री मोहनलालजी 'बार्डुल' २०२ तेरापंथ में ग्रवधान-विद्या मुनिश्री माँगीलालजी 'मुकुल' २०६ परिवाष्ट धवल समारोह मिति: पदाधिकारी व सदस्य १ सम्पादक मण्डल: परिचय	कर्म बन्ध निबन्धन भूता किया	श्री मोहनलाल बाँठिया	3=5	
श्राचार्यश्री भिक्षु श्रीर उनका विचार-पक्ष मुनिश्री मोहनलालजी 'बार्दुल' २०२ तेरापंथ में श्रवधान-विद्या मुनिश्री माँगीलालजी 'मुकुल' २०६ <b>परिद्याष्ट</b> धवल समारोह समिति : पदाधिकारी व सदस्य १ सम्पादक मण्डल : परिचय	भाषाः एक तास्विक विवेचन	मृनिर्शा सुमेरमलजी (लाइन्)	338	
तेरापंथ में ग्रवधान-विद्या मुनिश्री माँगीलालजी 'मुकुल' २०६ <b>परिद्याष्ट</b> धवल समारोह समिति : पदाधिकारी व सदस्य १ सम्पादक मण्डल : पश्चिय	वर्तमान युग में तेरापंथ का गहत्त्व	डा० राघाविनोद पाल	338	
परिशिष्ट धवल समारोह समिति : पदाधिकारी व सदस्य १ सम्पादक मण्डल : परिचय ४	ग्राचार्यश्री भिक्षु ग्रौर उनका विचार-पक्ष	मुनिश्री मोहनलालजी 'बार्द्ल'	503	
धवल समारोह समिति : पदाधिकारी व सदस्य १ सम्पादक मण्डल : परिचय ४	तेरापंथ में श्रवधान-विद्या	मुनिश्री मौगीलालजी 'मकुल'	२०६	
<b>सम्पादक म</b> ण्डल : पश्चिय ४				
सम्पादक मण्डल : परिचय	धवल समारोह समिति : पदाधिकारी व सदस्य		Ŗ	
धकारादि-श्रतुकम ५	सम्पादक मण्डल : परिचय			
	सकारादि-श्रनुकम		X	





राष्ट्रपति मरम, नई दिश्को। **जनवरी १, १८६**२ पौषा ११, १८८३ शकः

महाकृत जान्दीलन के प्रवर्तक आचार्य श्री तुलसी के ध्वल सपारी है के अवसर पर में उन्हें अभिनन्दन गुन्थ मेंट करने के निर्णाय का स्वागत करता हूं और आचार्य जी के प्रति अपनी अदांजिल अपित करता हूं। महाकृत जान्दीलन का उद्देश्य नैतिक जागरण और जनसाधारण को सन्मान की और प्रेरित करना है। यह प्रयास अपने आप में ही इतना महत्वपूर्ण है कि इसका समी की स्वागत करना चा लिये। जाज के सुन में जबकि मानव अपनी भी तिक उन्निति से ककाचौंध होता दिलाई दे रहा है, और जीवन के नैतिक तथा आध्या त्मिक तत्वाँ की अवहेलना की आशंका है, हैसे आन्दोलनों के द्वारा ही मानव अपने सन्तुलन को बनाये रस सकता है और मौतिक-वाद के विनाशकारी परिणामों से बचने की आशा कर सकता है।

में त्री त्राचार्य तुलसी भवल समारी ह समिति को बधाई देता हूं और इस त्रायोजन की सफलता की कामना करता हूं।

21 77 4 4 619



VICE PRESIDENT INDIA

NEW DELHI November 20,1961.

I am glad to know that you are bringing out an Abhinandan Granth to commemorate the services of Acharya Shri Tulsi. I send my best wishes for the success of your function and hope that the Acharya will have many more years of useful life in the service of the country.

(S. Radhakrishnan)

### शुभकामना

मुक्ते यह जानकर प्रसन्तता हुई है कि स्नाचारंश्री तुलसी की सेवाओं की स्मृति में स्नाप अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट करने जा रहे हैं। समारोह की सफलता के लिए मैं स्नपनी शुभकामनाएं भेजता हूँ स्नीर श्राशा करता हूँ स्नपने कार्य-शील जीवन के द्वारा सनेकों वर्ष तक स्नाचार्यश्री देश की सेवा करते रहेंगे।

एस० राधाकुष्णन्

प्रधान मंत्री भवन PRIME MINISTERS HOUSE NEW DELHI

December 27, 1961

### MESSAGE

I send my good wishes to Acharya Shri Tulsi, the sponsor of the Anuvrat Movement, on his completing twentyfive years of Acharyaship. I have followed with much interest and appreciation his work in the Anuvrat Movement intended to raise the moral standards of our people, especially of the younger generation.

Jamenlee Noham सन्देश

में अणुद्रत-भान्दोलन-प्रवर्तक भाचार्यश्री तुलसी को, उनके भाचार्य-काल के पच्चीस वर्ष पूर्ण होने के उपलक्ष में, श्रपनी शुभकामनाएं भेजता हूँ । मैंने उनके अणुद्रत-म्रान्दोलन के अन्तर्गत होने वाले कार्य का विशेष रुचि व प्रशंतात्मक भाव से अनुशीलन किया है, जिसका उद्देश्य हमारे देशवासियों का और विशेषत: नई पीढ़ी का नैतिक स्तर ऊँचा उठाना है।

> जवाहरलाल नेहरू प्रधानमन्त्री, भारत सरकार

### संयम और सेवा का संगम

धाचार्यश्री तुलसीजी के महान् कार्यों के प्रति श्रद्धाञ्जलि भ्रिपत करने का विचार योग्य ही है। संयम को सेवा-कार्य में जोड़ने का काम भ्रपनी विशिष्ट पद्धति से उन्होंने चलाया, जिसका भ्रसर जीवन के भ्रनेक क्षेत्रों में पड़ा है भौर पड़ेगा। संयम भीर सेवा के संगम से ही नव-समाज बनेगा।

72 nite a.

### अणुवत की कल्पना

यह मेरा सौभाग्य है कि श्राचार्यश्री तुलसी को पास से देखने श्रौर उनसे बात करने तथा उनके भाषण सुनने का भवसर मुभे मिला है। दिल्ली में उनके कई अनुयायी मुनियों से मेरी भेंट हुआ करती थी। उनके चलाये भणुवत-आन्दोलन के पक्ष में कुछ सभाश्रों में भी मैंने अपना मत प्रकट किया था। अणुव्रत की कल्पना बहुत सुन्दर है और उसने बहुतों को वृती बनाकर उनके जीवन की गृति में अच्छी भावना का प्रवेश कराया है।

देश में नैतिकता की गहरी कमी दिखाई पड़ती है। उसमें परिवर्तन करने के लिए अणुवत-आन्दोलन सहायक हो सकता है। आचार्य तुलसी अपनी कल्पना की पूर्ति में अधिकाधिक सफलता पायें यह मेरी अभिलाषा स्वाभाविक है। आचार्यश्री तुलसी अणुवत-आन्दोलन की सफलता के लिए हम सबकी श्रद्धा और सहयोग के अधिकारी हैं।

7201-, 1H 2174 2057

28/21H आनाय भी भी मयाम रामिक मेत्रामी-दलका थाग, उमारी वागीका अग्र-411. लोक के निर्मु स्टान- समान ( समल्य भी सम्बर्मा द्रव्हान HE 744 4(11 2 31011) Gracethold yn-Hyn, दिभो सि(दिन दिवने - सद्त! Hadamor.

### नैतिकता के पुजारी

भी लालबहादुर शास्त्री स्वदेश मन्त्री, भारत सरकार

श्राचार्यश्री तुलसी नैतिकता के पुजारी हैं, श्राहंसा जिसका मूलाधार है। सभा, सम्मेलन श्रीर साहित्य-निर्माण श्रादि के द्वारा उन्होंने एक नये श्रान्दोलन को सम्बल प्रदान किया है। अणुव्रत-श्रान्दोलन ने प्रत्येक वर्ग को श्रपनी श्रोर खींचने का प्रयास किया है श्रीर जैन समुदाय पर स्वभावतः इसका विशेष प्रभाव पड़ा है। नैतिकता उपदेशों से कम, उदाहरण से ही पनपती है। श्राचार्यश्री तुलसी स्वयं उस मार्ग पर श्राचरण कर दूसरों को उस श्रीर प्रेरित करना चाहते हैं। उनका श्रिभनन्दन इसी में है कि लोग उनके इस श्रान्दोलन के स्वरूप को समभें श्रीर श्रपने जीवन को एक नये रूप में ढालने का प्रयास करें।



### मानव-जाति के अग्रदूत

न्यायमूर्ति श्री भुवनेश्वरप्रसाद सिन्हा मुख्य न्यायाधीश, सर्वोच्च न्यायालय भारतवर्ष

यह जानकर स्रत्यन्त प्रसन्तता हुई कि स्नाचार्यश्री तुलसी को तेरापंथ संघ के स्नाचार्य-काल के पच्चीस वर्ष पूर्ण होने के उपलक्ष में स्निभनन्दन ग्रन्थ भेंट किया जा रहा है। स्रणुत्रत-श्रान्दोलन का, जो कि वर्तमान में न केवल भारतवर्ष के लिए स्निप्त समग्र विश्व के लिए एक महत्त्वपूर्ण सनुष्ठान है, प्रारम्भ स्नापके स्नाचार्य-काल की विशिष्ट देन है। इस स्नान्दोलन का उद्देश है—सत्य स्नौर श्रहिंसा जैसे शाश्वत मूल्यों के प्रति मनुष्यों की श्रद्धा को उद्बुद्ध करना तथा इन मूल्यों को पुनः प्रतिष्ठित करना। इस महान् श्राचार्य ने न केवल उपदेश से स्निप्तु स्नपने श्राचरण के द्वारा प्रामाणिकता, सञ्चाई स्नौर व्यापक सर्थ में चारित्रिक दृढ्ता जैसे उच्च सद्गुणों को मूर्त रूप दिया है। इसलिए जहाँ तक भारतीय संस्कृति के विलक्षण तत्त्व सत्य-स्निहंसा जैसे मौलिक सिद्धान्तों के प्रसार का प्रश्न है, ये महान् स्नाचार्य केवल जैन धर्म के सीमित दायरे में ही नहीं, स्निप्तु समग्र मानव-जाति के सग्रद्रत हैं। मानव-जाति के कल्याणार्य साचार्य तुलसी दीर्घायु हों।

### सोभाग्य की बात

### जननेता श्री जयप्रकाशनारायण

हमारे लिए यह सौभाग्य की बात है कि आज आचार्य तुलसी जैसी विभूति हमारा पथ-प्रदर्शन कर रही है! वे मानवता की प्रतिष्ठापना द्वारा समता, सिंहण्युता स्थापित करना चाहते हैं तथा शोषण का ग्रन्त चाहते हैं। भूदान और अणुवत-आन्दोलन की प्रवृत्तियाँ ऐसी हैं जो हृदय के परिवर्तन द्वारा ग्रहिसक समाज नव-रचना में अग्रसर हो रही हैं, जिसे कायम करने के लिए रूस आदि देश प्रायः असफल ही दीख पड़ते हैं। अपने देश की निर्धनता देखने से पता चलता है कि कितना असीम दुःख समाज में ज्याप्त है। निर्धनों के साथ कितना अन्याय हो रहा है। इन्हीं अन्याय एवं शोषणों के कारण ही शासित वर्ग के कुछ नवोदित नेता रक्तरंजित कान्ति की दुन्दुभि बजाने तथा शोषकों को धनविहीन एवं उनकी प्रवृत्तियों को समूल नष्ट कर देने के लिए लोगों का आह्वान कर रहे हैं।

अणुव्रत-मान्दोलन भी सर्वोदय मान्दोलन का एक सहयोगी ही है। इससे भी देश-विदेश के प्रायः सभी विचारक भीर नेता परिचित हो ही गए हैं। हमारे आदर्श की ओर बढ़ने के लिए आचार्य तुलसी ने बहुत सुन्दर आदर्श रखा है। विनोवाजी और तुलसीजी सभी जाति और वर्ग के लिए हैं, दोनों ही सबका भला चाहते हैं। आचार्य तुलसीजी से बम्बई में वार्तालाप करने पर उनके उच्च उद्देश्यों की भलक मिली। उनका कहना है कि जब सारी हिंसक शक्तियाँ एक बित हो सकती है, तब अहिसक शक्तियाँ मी एक हो सकती हैं और सबके सामूहिक प्रयास और प्रयत्न से भवश्य ही अहिसक समाज की कल्पना पूरी हो सकेगी। सबको मिल कर काम करने में शीध सफलता मिलेगी।

### सर्वप्रथम व्यक्ति-सुधार

हमारे सामने यह प्रक्न अवश्य हो सकता है कि किस पद्धित के द्वारा सबका हित हो सकता है. शोषण मिट सकता है? क्या सरकार शोषण को मिटा सकती है? नहीं, बिल्कुल असम्भव है। यह जनता कर सकती है। मनुष्य की आन्तिरिक शिक्त के द्वारा यह कार्य पूरा हो सकता है। संविधान द्वारा सर्वोदय असम्भव है। जैसा कि आचार्य नुलसी कहा करते हैं कि व्यक्ति-व्यक्ति से समाज-परिवर्तन होगा और जब तक व्यक्ति नहीं सुधरेगा, तब तक कुछ नहीं होगा। ध्यान से देखा जाये तो उनकी इस बाणी में कितना तत्त्व भरा पड़ा है। समाज का मूल व्यक्ति ही है, व्यक्ति से समुदाय, समुदाय से समाज का रूप सामने ग्राता है। समाज तो प्रतिबिम्ब है, जैसा मनुष्य रहेगा वैसा समाज बनेगा और फिर जैसा समाज बनता रहेगा वैसा-वैसा परिवर्तन मनुष्यों में भी आता रहेगा। अस्तु, सर्वप्रथम व्यक्ति-सुधार पर जोर देना चाहिए। आचार्य नुलसी यह भी कहते है कि सब अपनी-अपनी ग्रात्म-शुद्धि करें। यह और अच्छा है। ग्रगर सब स्वतः ग्रात्म-शुद्धि कर लें तो क्रान्ति की क्या आवश्यकता है? महात्मा गांधी भी समाज-मुधार के पहले व्यक्ति-सुधार पर जोर देते रहे हैं। साम्यवादी आदि क्रान्तियाँ बाह्य सुधार की द्योतक हैं। किन्तु जब तक आन्तिरिक सुधार नहीं हुआ, तब तक कुछ नहीं हुआ; बाह्य सुधार तो क्षणिक और सामयिक कहलायेगा, उसमें आन्तिरिक सुधार के समान शादवतता कहाँ। भगर हम आन्तिरिक सुधार शौर व्यक्ति-सुधार को प्राथमिकता नहीं देंगे तो हमारा कार्य अध्रा ही रह जायेगा। रूस, अमेरिका, फ्रांस आदि देशों में ग्राज भी असमानता, परसम्त्रता, असहिष्णुता, आतृत्वहीनता, पूँजीवादिता बादि किसी-निकसी रूप में प्रवश्य विद्यमान हैं। विचार-स्वातन्त्र की आज भी मुविधा नहीं, एक तरह से अधिनायकवाद का बोल-बाला ही है। वैतितक श्रममानता शस्सी गुणा है। अस्तु, कहने का तात्पर्य यह है कि शक्ति और हिसा पर आधारित

कान्ति से उद्देश्य-पूर्ति नहीं, यह तो एकमात्र हृदय-परिवर्तन पर आधारित है। इसलिए हम लोगों को चाहिए कि उक्त देशों के समान दुदिन झाने से बजाने तथा समाज में उथल-पुथल न झाने देने के लिए उचित मात्रा में त्याग और निःस्वार्थ भावना को जीवन में उतारें। महात्माजी ने भी व्यक्ति को केन्द्र मान कर उसके सुधार पर जोर दिया है और राजतन्त्र के स्थान पर लोकसंत्र को स्थापित करने की अपनी नेक सुक्ष हमें दी है।

### हृदय भौर विचारों में परिवर्तन भावश्यक

राजनीति और कानून की चर्चा विशेष हुआ करती है। आचार्यश्री तुलसी तो राजनीति और कानून की खुले शब्दों में आलोचना करते हैं। वे कहते हैं कि क्या कानून किसी स्वार्थी को निःस्वार्थी या पर-स्वार्थी बना सकता है? कानून तो एक दिशा मात्र है। इसलिए राजनीति और कानून के परे आचार्य विनोबा और आचार्य तुलसी के मार्ग का अनुसरण करना चाहिए। जिस कान्ति से हृदंय और विचारों में परिवर्तन नहीं आया, वह कान्ति नहीं। हिसा पर आधा-रित कान्ति से हृदय-परिवर्तन भी सम्भव नहीं। उसके लिए तो प्रेम और सद्भावना का सहारा लेना होगा।

कान्ति कोई नहीं। जब-जब समाज में शिथिलाचार हुन्ना, तब-तब झवतारों व महापुरुषों द्वारा विचारों में कान्ति लाई गई। धर्म भौर नीति में से अधर्म भौर भनीति को निकाल फेंका गया। समाज का सुधार किया गया। घर्म भौर नीति समाज के अनुकूल बनाये गये। समाज में एक नया विपयंय हुन्ना। धार्मिक, सामाजिक भौर सांसारिक जीवन के बीच की दीवारें तोड़ी गई। महात्मा गांधी, विनोबा भावे भौर माचार्य तुलसी भी ऐसी ही अध्यात्मनिष्ठ कान्ति की उद्घोषणा लिए हैं। अनावश्यक एवं समाज-हित के लिए घातक रूढ़ियों का अन्त करना इन्होंने भी आवश्यक समका। भगवान् बुद्ध का 'धर्मचक' प्रवर्तन या धार्मिक कान्ति भी सर्वोदय या समाज-सुधार का दिशा-संकेत था। अणुव्रत-धान्दोलन भी नैतिक कान्ति का एक चिर-प्रतीक्षित चरण है।

### एक ही भावना

सम्पत्तिदान और अणुक्रत-मान्दोलन की भावना भी एक ही है। एक समाज के हक को उसे दे देने के लिए बाध्य करता है, प्रेरित करता है या उसे सीख देता है। दूसरा संग्रह को ही त्याज्य बताता है और जो कुछ है उसे दानस्वरूप देने को नहीं बल्कि त्यागस्वरूप समाज के लिए छोड़ देने की भावना प्रदक्षित करता है। भणुव्रत-मान्दोलन परिग्रह मात्र को पाप का मूल मानता है। इसके अनुसार संग्रह ही हिसा की जड़ है। जहाँ संग्रह है वहाँ शोषण और हिसा भाप-से-माप मौजूद हैं।

श्रणुद्रत-झान्दोलन ससाम्प्रदायिक भीर सार्वभीम है। यह चाहे जिस नाम से चले, हमें काम से मतलब है भीर इसका नामकरण चाहे जो भी कर दिया जाये, लाभ वहीं होगा। इसलिए अपेक्षा यह है कि झाचार्यश्री तुलसी द्वारा प्रवर्तित नैतिक सम्युत्थान के इस पथ को समभ, परस श्रीर सीखकर जीवन में अनुकरण करें। साथ ही उसके झाधार पर अपने व्यवसाय, उद्योग व धन्धे में ऐसे ठोस कदम उठाएं, जिनसे जन-जीवन को भी प्रेरणा मिल सके। धर्म केवल नाम लेने, जय-जयकार करने और मस्तक भुकाने से नहीं होता, अपितु आचरणों में परिलक्षित होता है।

भाचार्यश्री तुलसी के नेतृत्व में जो मंगलकारी कार्य हो रहा है, उसके साथ मैं तन्मय हूँ श्रीर मेरी जो कुछ भी शक्ति है, उसे इस पुण्य कार्य में लगाने को तत्पर हूँ।



एकता के लिए यह आवश्यक है कि दो या अधिक पृथक् इकाइयों का अस्तित्व हो और एक ऐसा संयोजक माध्यम हो जो दोनों को मिलाकर एक सम्पूर्ण इकाई बना दे। हमारे देश में पृथक् समुदायों की कोई कमी नहीं है। जन्म हमें विभक्त करता है, परम्पराएं हमें विभक्त करती हैं, रीति-रिवाज हमें विभक्त करते हैं, धर्म हमें विभक्त करते हैं, सम्पत्ति ने तो लोगों को हमेशा ही विभक्त किया है। भारत में तो ""द्यान भी हमें विभक्त करता है, चाहे हम उसको समभते हों अथवा नहीं। अज्ञजनों की यही प्रवृत्ति होती है कि अन्तिम विश्लेषण में वे अंश के खातिर पूर्ण को खो जाने देते है, अंश को ही पूर्ण मान लेते हैं और ऐसे निर्णय पर पहुँचते हैं जिसका कोई आधार नहीं होता। इस देश में अज्ञान का बोल-बाला है। यह अज्ञान सामाजिक अहंकार, धार्मिक अहंकार, राजनैतिक और आर्थिक शहंकार और अन्त में दार्शनिक अहंकार का पोषण करता है। भारत में सिद्धान्तों के संघर्ष की अपेक्षा अहम् का संघर्ष अधिक दिखाई देता है। एक व्यक्ति के श्रहम् से सारी जाति का नाश हो सकता है और किसी समुदाय का श्रहम् भी कम हानिकर अथवा कम विनाशक नहीं होता।

राष्ट्र के सामने मुख्य कार्य यह है कि या तो इस श्रहम् को समाप्त किया जाये, जो श्रत्यन्त ही कठिन है या उसे मुसंस्कृत बनाया जाये, जो कुछ कम कठिन है। इसका श्रयं यही हुश्रा कि हमें इस श्रहम् को उसकी संकुचित गिलयों से बाहर निकालना होगा। इसका यह श्रयं भी होता है कि हम यह याद रखें कि जिस स्तर पर हम ब्यवहार करते हैं, उन स्तरों पर हमारा श्राचरण पशुश्रों जैसा होता है, जबिक हम वास्तव में मानव हैं। इसलिए हमको मानव की उत्तम श्रीर श्रेष्ठ बृत्तियों को श्रपनाना भौर विकसित करना चाहिए।

क्या घणुवत इस सुसंस्करण की प्रक्रिया में सहायक हो सकता है? घणुव्रत यदि भाचार का विज्ञान नहीं है तो फिर भीर कुछ भी नहीं है। छोटी बातों से प्रारम्भ करके वह ऐसी शक्ति संचय करना चाहता है जिसके द्वारा बड़े लक्ष्य सिद्ध किए जा सके। मनुष्य को दूसरे मनुष्य के साथ व्यवहार में उसका प्रारम्भ करना चाहिए। उसे ऐसा व्यवहार करना चाहिए कि जिससे वह दूसरों के अधिक-मे-अधिक निकट पहुँचता चला जाये भीर भन्त में सारी दूरी समाप्त हो जाये। यह तभी हो सकता है, जब वह उपेक्षा के स्थान में सहमति उत्पन्न करेगा, घृणा के स्थान पर मित्रता और शत्रुता के स्थान पर लिहाज भीर भादर की स्थापना करेगा। आचरण के द्वारा ही यह सब सिद्ध किया जा सकता है।

विषव में बुराई भी है भीर अच्छाई भी। जहाँ भी दुनिया है, वहाँ अच्छाई भीर बुराई दोनों है। मनुष्य को निरन्तर यह प्रयास करना चाहिए कि वह दूसरे व्यक्ति का भला, बलवान् और उज्ज्वल पक्ष देखे और अपने मन को निरन्तर ऐसी शिक्षा दे कि विरोधी की बुराई को अथवा उसके जीवन के निर्बल या कृष्ण पक्ष को देखने की वृत्ति न हो। दक्षिण भारतीय और उत्तर भारतीय, हिन्दू और मुसलमान, बाह्मण और अ-बाह्मण, सवर्ण और हरिजन, आदिवासी भीर अन्य, भाषा के आग्रही और निराग्रही, पंडित और निरक्षर, सरकारी अधिकारी और सार्वजनिक कार्यकर्ता, बंगाली और बिहारी, बिहारी और उड़िया, गुजराती और महाराष्ट्री, ईमाई और अ-ईसाई, सिक्ख और आर्यसमाजी, कांग्रेसा और अ-कांग्रेसी—सभी को उपेक्षा और पक्षपात के सदियों पुराने घेरे से बाहर आने का प्रयत्न करना होगा और सामने वासे व्यक्ति के बारे में ऐसा सोचना होगा कि वह हमारे आदर, सहानुभूति और समर्थन का हकदार है। इसके विना हम सब उस भगंकर संकट से नहीं बच सकते जिसका विघटनकारी शक्तियाँ आज आह्वान कर रही हैं।

सर्वधर्म समभाव धर्णात् सब विश्वासों भीर धर्मों के प्रति आदर भाव का जो महान् गुण है, उसका हर व्यक्ति को प्रतिदिन भीर प्रतिक्षण भाचरण करना चाहिए। इसके बिना भारत बलवाली भीर सुखी नहीं हो सकता भीर न मनुष्यों के एक भ्रत्यन्त प्राचीन जीवित समाज के नाते इतिहास ने उसके लिए जो कर्तव्य निर्धारित किया है, उसकी पूर्ति कर सकता है।

प्रत्येक व्यक्ति को, चाहे उसका जीवन में कोई भी स्थान या पद क्यों न हो, प्रतिदिन एक-दूसरे के प्रति भादर प्रकट करने और एक-दूसरे को समभनें का प्रयत्न करना चाहिए। किसी भी भारतीय के लिए यह महान् देश भिक्तपूर्ण सेवा होगी। कर्तव्य की दृष्टि से यह सेवा बहुत भासान है और परिणाम की दृष्टि से वह उतना ही शक्तिशाली है। इस छोटी बात की तुलना हम अणु-शक्ति केन्द्र के एक छोटे अणु से कर सकते हैं।

श्रणुवत-प्रान्दोलन गौर इस महान् भान्दोलन के प्रवर्तक भाचार्यश्री तुलसी का यही सन्देश है।

0

### एक अच्छा तरीका

### राष्ट्रसंत श्रीतुकड़ोजी

भारत में ही नहीं, प्रिपतु सारे संसार में ध्रधिक-से-ध्रधिक शान्ति, सत्य व महिंसा का प्रचार हो, यह मेरी हार्दिक कामना रही है। मुक्त में भ्रभी तक किसी सम्प्रदाय विशेष का कड़वापन प्रविष्ट नहीं हुआ है। यद्यपि यह मैं अनुभव करता हूँ कि प्रत्येक सम्प्रदाय, पंथ ध्रथवा धर्म में अच्छे तत्त्व होते हैं। यदि ऐसा न होता तो धर्म की जड़ ही संसार से समाप्त हो जाती। धर्म या पंथ, जाति या संगठन, स्वार्थ धौर सत्ता के सीकचों में जकड़ जाते हैं, तब वे अपने तात्त्विक शिखर से नीचे गिरने लगते हैं भौर प्रहिसा, सत्य तथा शान्ति जो कि धर्म के अभिन्त अंग होते हैं, छूटते चले जाते हैं और धर्म निष्प्राण बन जाता है। ऐसी परिस्थित में धर्म को मिटाने की आवाज उठने लगती है। स्वयं उस धर्म के अनुयायी भी ऐसा करते हुए नहीं हिचकिचाते। वहाँ से कान्ति के नाम पर एक नया समाज जन्म लेता है। वह धर्म में फिर से प्राण-प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न करता है। यह कम बार-बार इस सृष्टि में चलता ही रहता है।

मैं भाचार्यश्री तुलसी के व्यक्तित्व, उनकी कार्य-विधि व सुविश्वत प्रणुवत-भान्दोलन से चिर-परिचित रहा हूँ। केवल परिचित ही नहीं, उसे निकट से भी देख चुका हूँ। कई बार उनसे मिलने का भी मुक्ते सुध्रवसर प्राप्त हुमा है। उनके प्रिय शिष्य श्रीर श्रान्दोलन के कर्मठ प्रचारक मुनिश्री नगराजजी से भी मिलने का प्रसंग पड़ा है। श्राचार्यजी ने भणुवत-प्रान्दोलन के द्वारा श्रपने भनुयायी और जनता को व्यसन-मुक्त कर सच्चिरित्र व त्यागी बनाने का प्रशंसनीय प्रयत्न प्रारम्भ किया है। यह एक श्रच्छा तरीका है। उनका कार्य मुसम्बद्ध और एक सूत्र से चलता है, यह मुक्ते बहुत ही अच्छा लगा। भाचार्यश्री तुलसी के उपदेशों से व श्रणुवतों की साधना से जनता को काफी लाभ होता है। उनका यह प्रचार प्रतिदिन बढ़े, यह मैं दिल से चाहता हूँ।



### जनहितरता जीवतु चिरम्

### मुनिधी नथमलजी

सब्वे वि पईवा अभींवसु जत्य अकयत्या तत्थ मए दिट्ठा पढमं तवालोयरेहा सब्वे वि सत्था अभींवसु जत्य अकयकज्जा तत्थ मए दिठो पढ़मं तव विक्कम-क्कमो महापईव! पप्प तव सन्निहिं सयमंध्यारो वि गच्छई प्यासत्तणं अहिंसब्वय! अभिगम्म तव समीवयं सुमहंपि भवइ सत्थमसत्थं असत्थ! सत्थेसु अत्थि विजला तव मई तहावि नित्थ रुद्धा तव गई मइमं! तव मई णकुणइ विरोहं गईए गइमं! तव गई अविक्खए मइं तेणं करेमि तवाहिनंदणं।

स्वयं जातः पन्थाश्चरणयुगलं येन विह्तं,
स्वयं जातं शास्त्रं वचनमुदितं यच्च सहजम्।
स्वयं जाता लिन्धमंनिस यदिदं कित्पतमिप,
न वा दृष्टो रागः क्वचन तव हे कृत्रिमिवधौ।
निमज्जन्नात्मावधौ नयसि पदवीमुन्नततमां,
नयानोप्युच्चैस्त्वं पुनरिप पुनर्मज्जसि निजे।
इदं निम्नोच्चत्वं नयति नियतं त्वां प्रभुपदं,
न यल्लभ्यं सभ्यंजलिधि-वियतोर्न्यस्तनयनैः।
विचित्रं कर्तृत्वं प्रतिपलमितं चक्षुरमलं,
विचित्रां ते श्रद्धाऽप्रतिहतगतिर्याति सततम्।
विचित्रं चारित्रं निजहितरतं सत् परिहतं,
त्वदायता लिन्धजनिहतरता जीवतु चिरम्।

### युगपुरुष ! तुम्हारा अभिनन्दन

### मुनिधी बुद्धमल्लजी

युगपुरुष ! तुम्हारा ग्रभिनन्दन ।

ग्रपना ग्रतिशय चैतन्य लिए इस घरती पर युग के श्वासों को सुरिभित करने श्राये हो, किल के कर्दम में खड़े हुए तुम पंकज से ग्रपनी सुषमा में सतयुग को भर लाये हो, फिर भी निर्लिप्त; निछावर करते श्राये हो जन-हेतु स्वयं के जीवन का तुम हर स्पन्दन। युगपुरुष ! तुम्हारा ग्रभिनन्दन।

युग की पीड़ा का हालाहल खुद पीकर तुम पीयूप सभी को बाँट रहे हो निभंय बन, बत्सलता की यह गोद हो गई हरी-भरी परिहत जब से कि समर्पित तुमने किया स्वतन, युग के पथदर्शक! आज तुम्हारी सेवा में युग-श्रद्धा आई है करने को पद-बन्दन। युगपुरुष! तुम्हारा अभिनन्दन।

मानवता की पांचाली का अपमान भूल सत्साहम का अर्जु न जब भ्रान्त हुआ पथ से, अणुव्रत की गीता तब तुमसे उपदिष्ट हुई कर्तव्य-बोध के अंकुर फिर फूटे अथ से, नव-युग के पार्थ-सारथी! तुम निज कौशल से संचालित करते युग-चेतनता का स्पन्दन। युगपुरुष! तुम्हारा अभिनन्दन।

### गति ससीम और मित ऋसीम

### मुनिश्री नगराजजी

शीतकाल का समय था। भाषायंवर चतुर्विध संघ के साथ बंगाल से राजस्थान की सुदीर्घ पद-यात्रा पर थे। मगवान् श्री महावीर की विहार-भूमि का हम भितिकमण कर रहे थे। एक दिन प्रात:काल गाँव के उपान्त माग में आचार्यवर यात्रा से मुड़ने वाले लोगों को मंगल-पाठ सुना रहे थे। हम सब साधुजन भपने-भपने परिकर में बँधे जी० टी० रोष्ट पर लम्बे उग भरने लगे। यह सदा का कम था। कुछ ही समय पश्चान् पीछे मुड़कर देखा तो आचार्यवर दुतगति से चरण-विन्यास करते भौर कमश एक-एक समुदाय को लाँधते पधार रहे थे। देखते-देखते सब ही समुदाय उस कम में था गए। केवल हमारा ही एक समुदाय आचार्यवर से धागे रह रहा था। हम सब भी जोर-जोर से कदम उठाने लगे। कुछ दूर आगे चल कर देखा तो पता चला मैं और मुनि महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम' ही आचार्यवर से भागे चलने वालों में रहे हैं। उस समय हमारे चलने की गति लगभग बारह मिनट प्रति मील हो रही थी। कुछ एक क्षणों के बाद पीछे की थ्रोर भाँका तो मैंने पाया अब आचार्यवर से आगे चलने वालों में स्वयं अकेला ही रह गया हूँ, मेरी और आचार्यवर की दूरी दस-बीम कदम भी नही रह पाई है। अकेले को आगे चलते हुए देख आचार्यवर के सहचारी और अनुचारियों में विनोद और कौतुक का भाव भी उभर रहा था।

एक क्षण के लिए मन में भाया, औरों की तरह मैं भी रुक कर पीछे रह जाऊँ, परन्तु दूसरे ही क्षण सोचा आचार्यवर आज सबकी गति का परीक्षण ले ही रहे हैं, तो अपनी परीक्षा कस कर ही क्यों न दे दूँ। गित का कम बारह मिनट प्रति मील से भी सम्भवतः नीचे भा गया था। अब पीछे आँकने को अवसर नहीं था। चलता रहा, भाचार्यवर के साथ चलने वाले स्वयं-मेवकों के जूतों की भावाज से ही मैं भपनी और भाचार्यवर की दूरी माप रहा था। चौदह प्रस्तर फर्लागों के और दो प्रस्तर मीलों को लाँघ कर ही मैंने पीछे की भीर आँका। लगभग चार फर्लाग की दूरी मेरे और भाचार्यवर के बीच था गई थी।

श्रव मुक्ते सोचने का श्रवसर मिला, यह श्रच्छा हुआ या बुरा ! सड़क के एक ओर हट कर बैठ गया । देखते-देखते श्राचार्यवर पधार गये । मुक्ते शक था, श्राचार्यवर इतना तो श्रवश्य कह ही देंगे, इस प्रकार श्रागे चलते रहे, तेतीम श्रासालनाएं पढ़ी हैं या नहीं ? इसी चिन्तन में मैं वन्दना करता रहा, श्राचार्यवर श्रवोले ही श्रागे पधार गए ।

ग्यारह मील का विहार सम्पन्न कर हम सब भलवा की कोठी में पहुँच गए। दिन भर रह-रहकर मन में स्राता था, मेरे श्रविचार को भ्राचार्यवर ने कैसे लिया होगा। संतों में परस्पर नाना विनोद पूर्ण चर्चाएं रही, पर श्राचार्यश्री ने भ्रपने भावों का जरा भी प्रकाशन नहीं किया।

सायंकाल प्रतिक्रमण के पश्चात् में बन्दन के लिए आचार्यवर के निकट गया। मुनिश्री नथमलजी प्रभृति श्रनेकों संत पहले से बैठे थे। मैं भी वन्दन कर उनके साथ बैठ गया। शाचार्यवर ने आकस्मिक रूप से कहा—तुम्हारी गित तो गेरी धारणा से बहुत श्रधिक निकली! शाचार्यवर की वाणी में प्रसन्नता थी। उपस्थित साधुजन प्रातः काल के संस्मरण को याद कर हँस पड़े। उसी प्रसंग पर पृथक्-पृथक् टिप्पणियां चलने लगीं। शाचार्यवर ने सबका घ्यान श्राकित करते हुए कहा—ऐसी घटना यह सर्वप्रथम ही नहीं है। बहुत पहले भी ऐसी एक घटना अपने यहां घट चुकी है। कालूगणीराज कहा करते थे, तैरापंथ के घटन शाचार्यश्री माणकगणी जो कि बहुत ही तेज चलने वालों में थे, एक दिन के विहार में एक-एक करके सब संतों को पीछे छोड़ते हुए पधार रहे थे। मैं उनकी भावना को भाप गया। अपने पूरे वेग से ऐसा चला कि श्राले गाँव में सर्वप्रथम पहुँचा। इस प्रकार शाचार्यवर ने उस दिन के प्रसंग को जिस तरह सँवारा, उनकी श्रलौकिक महत्ता श्रीर श्रसाधारण संवेदनकी सता का परिचायक था। सचमुच ही उस दिन उन्होंने मेरी गति को मापा श्रीर मैंन उनकी मति को। मेरी गति ससीम रही श्रीर उनकी मति श्रसीम रही। उनके प्यार में मेरी हार स्पष्ट दीक्षने लगी।

### संकल्प की सम्पन्नता पर

### मुनिकी महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम'

श्राचार्यश्री के चौबीसवं पदारोहण दिवस के उपलक्ष पर कलकत्ता में मैंने एक संकल्प किया था। वह मैंने उसी दिन लिखकर श्राचार्यश्री को निवेदित भी कर दिया था। उसकी भाषा थी—"धवल समारोह की सम्पन्नता तक ग्यारह हजार पृष्ठों के साहित्य का निर्माण, सम्पादन श्रादि करने का प्रयत्न करूँगा।" उसके श्रनन्तर ही मैं श्रपने कार्य में जुट पड़ा। श्राचार्यश्री की कृतियाँ, प्रवचन व यात्राएं सम्पादित करने व लिखने की दिशा में तथा तत्सम्बन्धी श्रन्य साहित्यिक कार्य श्रागे बढ़ा। नाना दुविधाएं श्रस्वाभाविक रूप से सामने श्राई। फिर भी कुल मिलाकर मैं देखता हूँ तो मुक्ते प्रसन्तता है कि मैं श्रपने विहित संकल्प की सम्पन्नता पर पहुँच गया हूँ। श्राज जब कि श्राचार्यश्री तुलसी का देश तथा बाहर के विद्वान् श्रभिनन्दन कर रहे हैं; मैं भी उस साहित्यिक भेंट के द्वारा श्रपनी हार्दिक श्रद्धा श्रपिन करता हैं।



### जीवन्त और प्राणवन्त व्यक्तित्व

### श्री जैनेन्द्रकुमार

श्राचार्यश्री तुलसी उन पुरुषों में है, जिनके व्यक्तिस्व से पद कभी ऊपर नहीं हो पाना। वे जनमत के तेरापंथी सम्प्रदाय के पट्टधर श्राचार्य हैं श्रीर इस पद की गरिमा श्रीर महिमा कम नहीं है। वे एक ही साथ श्राध्यात्मिक श्रीर लौकिक हैं। किन्तु तुलसी इतने जीवन्त श्रीर प्राणवन्त व्यक्ति हैं कि उस श्रासन का गुरुत्व स्वयं फीका पड़ सकता है। वेश-भूषा से वे जैनाचार्य हैं, किन्तु श्रान्तिरिक निर्मलता श्रीर संवेदन-क्षमता से वे सभी मत श्रीर सभी वर्गों के श्रात्मीय बन सके हैं। मेरा जितना सम्पर्क श्राया है, मैंने उन्हें सदा जागृत व तत्पर पाया है। श्रीयल्य कहीं देखने में नहीं श्राया। प्रमाद श्रीर श्रवसाद उनमें या उनके निकट टिक नहीं पाता। श्रासपास का वाता-वरण उनकी कर्मशीलता से चैतन्य श्रीर उन्तत बना दिखता है। परिस्थित से हारने वाले वे नही हैं, श्रास्था के बल से उसे चुनौती ही देते रहते हैं। परम्परा से उच्छिन नहीं हैं, लेकिन नव्यता के प्रति भी उच्चत हैं। उनकी नेतृत्व की क्षमता श्रीमनन्दनीय है। नेतृत्व उस वर्ग का जिसका प्रत्येक सदस्य निस्पृह, निस्वार्थ श्रीर सर्वथा मुक्त हो, श्रासान काम नहीं है। किसी प्रकार का लोभ श्रीर भय वहाँ व्यवस्था में सहारा नहीं दे सकता। श्रन्तभूत श्रात्मतेज ही इस नैतिक नैतृत्व को सम्भव बनाये रख सकता है। तुलसी में उसी का प्रकाश दीलता है श्रीर मुक्ते उनके सान्तिध्य से सदा लाभ हुशा है। इस श्रवसर पर मैं श्रपनी हार्दिक श्रदांजिल उनके श्रीमनन्दन में श्रीपत करता हैं।

### आचार्यश्री तुलसी

डा० सम्पूर्णानन्द भूतपूर्व मुख्य मन्त्री, उत्तरप्रदेश

### मेरी झनुभूति

अण्यत-आन्दोलन के प्रवर्तक आचार्यश्री तुलसी राजनीतिक क्षेत्र से बहुत दूर हैं। किसी दल या पार्टी से सम्बन्ध नहीं रखते। किसी वाद के प्रचारक नहीं हैं, परन्तु प्रसिद्धि प्राप्त करने के इन सब मागों से दूर रहते हुए भी वे इस काल के उन व्यक्तियों में हैं, जिनका न्यूनाधिक प्रभाय लाखों मनुष्यों के जीवन पर पड़ा है। वे जैन धर्म के सम्प्रदाय-विशेष के अधिक्ठाता हैं, इसीलिए आचार्य कहलाते हैं। अपने अनुयायियों को जैन धर्म के मूल सिद्धान्तों का अध्यापन कराते ही होंगे, श्रमणों को अपने सम्प्रदाय-विशेष के नियमादि की शिक्षा-दीक्षा देते ही होंगे; परन्तु किमी ने उनके या उनके अनु-यायियों के मुँह से कोई ऐसी बात नहीं मुनी जो दूसरों के चित्त को दुखाने वाली हो।

भारतबर्ष की यह विशेषता रही है कि यहाँ के घार्मिक पर्यायरण की धर्म पर श्रास्था रखी जा सकती है श्रीर उसका उपदेश किया जा सकता है। श्राचार्यश्री तृलसी एक दिन मेरे निवास-स्थान पर रह चुके है। मैं उनके प्रवचन मुन चका हूँ। श्रपने सम्प्रदाय के श्राचारों का पालन तो करते ही हैं, चाहे श्रपरिचित होने के कारण वे श्राचार दूसरों को विविश्व से लगते हों श्रीर वर्तमान काल के लिए कुछ श्रनुपयुक्त भी प्रतीत होने हो; परन्तु उनके श्राचारण श्रीर बातचीत मे ऐसी कोई बात नहीं मिलेगी जो श्रन्य मतावलिक्वयों को श्रविकर लगे। भारत सदा से नपस्वियों का श्रादर करना श्राया है। उपासना शैली श्रीर दार्शनिक मन्तव्यों का श्रादर करना श्रयवारस्य होते हुए भी हम चरित्र श्रीर त्याग के सामने सिर भकाते हैं। हमारा नो यह विश्वास है कि:

### यत्र तत्र समये यथा तथा, योऽसि सोऽस्यभिषया यथा तथा

जिस किसी देश, जिस किसी समय, महापुरप का जन्म हो, वह जिस किसी नाम से पुकारा जाता हो, बीतराग तपस्वी पुरुष सदैव ग्रादर का पात्र होता है। उसलिए हम सभी ग्राचार्य तृलसी का अभिसन्दन करते हैं। उसके प्रवचनों से उस तस्व को ग्रहण करने की श्रमिलाया रखते हैं जो धर्म का मार और सर्वस्व है तथा जो मन्ष्य मात्र के लिए कल्याणकारी है।

भारतीय संस्कृति ने धर्म को सर्दव ऊँचा स्थान दिया है। उसकी परिभाषाएं ही उसकी व्यापकता की द्यांतक हैं। कणाद ने कहा है यतोभ्युदयिन:श्रेयसिसिद्धः स धर्मः जिसमे इस लोक और परलोक में उत्तति हों और परम पुरुषार्थ की प्राप्ति हो, वह धर्म है। मनु ने कहा—धारणाव् धर्मः समाज को जो धारण करता है, वह धर्म है। व्यास कहते है— समिद्यंदक कामदल, स धर्मः किन्न सेव्यते। धर्म से अर्थ और काम दोनों बनते हैं, फिर धर्म का सेवन क्यों नहीं किया जाता? इस पाठ को भुला कर भारत अपने को, अपनी भारतीयता को लो बैठेगा; न वह अपना हित कर सकेगा और न संसार का कल्याण ही कर सकेगा।

### भौतिकता की घुड़-बौड़

इस समय जगत् में भौतिक वस्तुओं के लिए जो चुड़-वीड़ मची हुई है, भारत भी उसमें सम्मिलित हो गया है। जीतिक दृष्टि से सम्पन्त होना पाप नहीं है, अपनी रक्षा के साधनों से सक्जित होना चुरा नहीं है; परन्तु भारत इस दौड़ में अपनी आत्मा को खोकर सफल नहीं हो सकता। अनियन्त्रित स्पर्धा से धन प्राप्त हो आये तो वह धन अविनय और अकरणीय कर्म की ओर ले जाता है। परमाणु वस जैसी नर-संहारवादी वस्तुओं का मार्ग दिखलाता है। मनुष्य आज आकाशाराहण करने जा रहा है। बात तो बुरी नहीं है; पर इसका परिणाम क्या होगा! यदि वह राग-द्वेष का पुतला बना रहा, यदि लोभ ही उसको स्फूर्ति देने वाला रहा और धन-सम्पत्ति का संग्रह ही उसके जीवन का चरम लक्ष्य रहा तो वह दूसरे पिण्डों को भी पृथ्वी की भाँति रणस्थल और कसाईस्ताना बना देगा। यदि उन पिण्डों पर प्राणी हुए तो उनका जीवन भी दूभर हो जायेगा और वे मनुष्य जाति के क्षय को ही अपने लिए वरदान मानेंगे। मनुष्य का ज्ञान-समुख्य उसके लिए अभिशाप हो जायेगा और एक दिन उसे अपने ही हाथों सहस्रों वर्षों से अजित संस्कृति और सम्यता की पोधी पर हरनाल करनी होगी।

लोभ की भ्राग सर्वप्राही होती है। ज्यास ने कहा है—
नाचिद्धस्वा परमर्माण, नाकृत्वा कर्म हुव्करम्।
नाहस्वा मस्यवातीव प्राप्नीति महतीं श्रियम्।।

बिना दूसरों के मर्म का छेदन किये, बिना दुष्कर कर्म किये, बिना मत्स्यघाती की भौति हनन किये (जिस प्रकार धीबर अपने स्वार्ध के लिए निर्देयता से सैकड़ों मछलियों को मारता है) महती श्री प्राप्त नहीं हो सकती। लोग के वशी-भूत होकर मनुष्य और मनुष्यों का समूह अन्या हो जाता है; उसके लिए कोई काम, कोई पाप, अकरणीय नहीं रह जाता। लोभ भीर लोभजन्य मानस उस समय पतन की पराकाष्ठा को पहुँच जाता है, जब मनुष्य भपनी परपीड़न-प्रवृत्ति को परहितकारक प्रवृत्ति के रूप में देखने लगता है, किसी का शोषण-उत्पीड़न करते हुए यह समक्रनेलगता है कि मैं उसका उपकार कर रहा हूँ। बहुत दिनों की बात नहीं है, यूरोप वालों के साम्राज्य प्रायः सारे एशिया और भ्रफीका पर फैले हुए थे। उन देशों के निवासियों का शोषण हो रहा या, उनकी मानवता कुचली जा रही थी, उनके आरम-सम्मान का हनन हो रहा था, परन्तु यूरोपियन कहता था कि हम तो कर्तव्य का पालन कर रहे हैं, हमारे कन्धों पर ह्वाइट मेंस बढंन (गोरे मनुष्य का बोभ) है, हमने प्रपने ऊपर इन लोगों को ऊपर उठाने का दायित्व ले रखा है, धीरे-धीरे इनको सम्य बना रहे है। सम्यता की कसौटी भी पृथक्-पृथक् होती है। कई साल हुए, मैंने एक कहानी पढ़ी थी। थी तो कहानी ही, पर रोचक भी थी और पश्चिमी सभ्यता पर कुछ प्रकाश डालती हुई भी । एक फेंच पादरी प्रकीवा की किसी नर-मांस-मक्षी जंगली जातियों के बीच काम कर रहे थे। कुछ दिन बाद लौट कर फांस गये और एक सार्वजनिक सभा में उन्होंने प्रपनी सफलता की चर्चा की। किसी ने पूछा, "क्या भव उन लोगों ने नर-मांस खाना छोड़ दिया है?" उन्होंने कहा, "नहीं; भभी ऐसा तो नहीं हमा, पर अब यों ही हाच मे लाने के स्थान पर छरी-कटि से लाने लगे हैं।" मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि उस समय पतन पराकाष्ठा पर पहुँच जाता है, जब मनुष्य की आत्मवरुचना इस सीमा तक पहुँच जाती है कि पाप पुण्य बन जाता है। विवेक अध्टानां भवति विनिपातः शतमुखः। एक लोभ पर्याप्त है, सभी दूसरे दोष बानुषंगिक वन कर उसके साथ वले न्नाते हैं। जहाँ भौतिक विभूति को मनुष्य के जीवन में सर्वोच्च स्थान मिलता है, वहाँ लोभ से बचना ग्रसम्भव है।

### ग्रसत्य के कन्धे पर स्वतन्त्रता का बोझ

हम भारत में वैल्फेयर स्टेट—कल्याणकारी राज्य—की स्थापना कर रहे हैं और 'कल्याण' शब्द की भौतिक ब्याच्या कर रहे हैं। परिणाम हमारे सामने हैं। स्वतन्त्र होने के बाद चरित्र का उन्तयन होना चाहिए था, त्याग की वृत्ति बढ़नी चाहिए थी, परार्थ-सेवन की भावना में भिभवृद्धि होनी चाहिए थी। सब लोगों में उत्साहपूर्वक लोकहित के लिए काम करने की प्रवृत्ति दीख पड़नी चाहिए थी। एड़ी-चोटी का पसीना एक करके राष्ट्र की हितवेदी पर सब-कुछ न्योछा-वर करना था। परन्तु ऐसा हुआ नहीं। स्वार्थ का बोलबाला है। राष्ट्रीय चरित्र का घोर पतन हुआ है। कर्तब्यनिष्ठा ढूंढ़े नहीं मिलती। व्यापारी, सरकारी कर्मचारी, अब्यापक, डाक्टर किसी में लोकसंग्रह की भावना नहीं है। सब रूपया बनाने की घुन में हैं, मले ही राष्ट्र का महित हो जाए। कार्य से जी चुराना, अधिक-से-मिधक पैसा लेकर कम-से-कम काम करना— यह साधारण-सी बात हो गई है। हम करोड़ों रुपया व्यय कर रहे हैं, परन्तु असके आधे का भी लाम नहीं उठा

रहे हैं। सोभ सर्वव्यापी हो रहा है और उसके साथ असत्य का साम्राज्य फैला हुआ है। असत्य-भाषण, अमत्य आवरण और सर्वोपिर असत्य-विन्तन। एक बार १६१७ में महात्माजी ने कहा था कि हमारे चिरत में यह दोष है कि हमारी 'हां' का अर्थ 'हां' और हमारे 'नहीं' का अर्थ 'नहीं' नहीं होता। वह दोष आज भी हम में वैसा ही है। परन्तु अमत्य के कन्धे पर स्वतन्त्रता का बोभ नहीं उठ सकता। दुवंल चरित्र देश को ले डूबेगा और मानव-समाज का भी शहित करेगा। इसीलिए महात्माजी ने वैयक्तिक और सामूहिक जीवन में धमं को सर्वोच्च स्थान दिया था। उनका यह डिडिम-घोष था कि 'साधन का महस्व साध्य से कम नहीं होता!' वह राजनीति में भी सत्य और अहिंसा को अनिवाय मानते थे और भावी भारत में धमं को। अपनी कल्पना को रामराज्य के नाम में बराबर लोगों के सामने रखते गये। आज वह नहीं हैं। करोड़ों ने उनके उपदेशों को मुना था, अब भी पढ़ते हैं, परन्तु उनका अनुगमन कौन कर रहा है ? धमं मूलक राज्य, रामराज्य की कल्पना पुस्तकों के पन्नों में ही रह गई।

चरित्र की गिरावट की गति स्रवाध है। इससे घवरा कर कुछ लोगों का ध्यान स्व० श्री बुकर्मन स्त्रीर उनके 'मारल रिम्नामींट' (नैतिक पुनरुत्थान) कार्यक्रम की स्रोर गया। कार्यक्रम भले ही सच्छा हो, पर हमारी सामाजिक स्त्रीर साथिक परिस्थितियाँ भिन्न हैं सौर हम कम्युनिज्म के विरोध के स्नाधार पर राष्ट्रीय चरित्र का उन्नयन नहीं कर सकते। उससे हमारा काम नहीं चल सकता। हमारी अपनी मान्यताएं हैं, परम्पराएं हैं, विश्वास हैं; हमारे सनुकूल वही उपदेश हो सकते हैं जो हमारी सनुभूतियों पर सवलम्बित हों, जिनकी जड़ हमारे महस्रों वर्षों के स्नाध्यात्मिक धरातल से जीवन-रस प्रहण करती हों।

### समाज संगठन का भारतीय व पश्चिमी ग्राधार

पश्चिम के समाज-पंगठन का आधार है—प्रतिस्पर्धा; हमारा आधार है —सहयोग। हम सभूय समुत्थान के प्रतिपादक हैं; पश्चिम में व्यक्तियों और समुदायों के अधिकारों पर जोर दिया जाता है; हम कर्तव्यों, धर्मा पर जोर देने हैं, इस भूमिका में जो उपदेश दिया जायेगा, वही हमारे हृदयों में प्रवेश कर सकता है।

आचार्यश्री तुलसी ने इस रहस्य को पहचाना है। वह स्वयं जैन हैं, पर जनता को नैतिक उपदेश देते समय वह धर्म के उस संच पर खड़े होते हैं जिस पर वैदिक, बौढ़, जैन श्रादि भारत-सम्भूत सभी सम्प्रदायों का समान रूप से श्रधिकार है। वह बालब्रह्म नारी हैं, साधु है, तपस्वी हैं, उनकी वाणी में श्रोज है। इसलिए उनकी बातों को सभी श्रद्धापूर्वक सुनते है। कितने लोग उनके उपदेश को व्यवहार में लाते हैं, वह न्यारी कथा है: परन्तु सुनते मात्र से भी कुछ लाभ तो होता ही है श्रीर फिर: रसरी श्रावत जात ते, सिल पर होत निसान।

श्राचार्यश्री लोगों से जिन बातों का संकल्प कराते हैं, वे सब यूस-फिर कर झिंहमा या श्रस्तेय के अन्तर्गत ही आती हैं। पतञ्जिल ने श्रिहिसा, सत्य, श्रस्तेय, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य को महाबत कहा है और यह ठीक भी है। इनमें में किसी एक को भी निवाहना कठिन होता है और एक के निवाहने के प्रयत्न में सबको ही निवाहना श्रनिवार्य हो जाता है। एक को पकड़ कर दूसरों से बचा नहीं जा सकता। मान लीजिये कि कोई यह संकल्प करता है कि मैं श्राज से रिव्यन नहीं लूँगा और किसी माल में मिलाबट नहीं करूँगा। संकल्प पूरा करने के लिए ही तो किया जायेगा, तोड़ने के लिए नहीं। पदे-पदे प्रलोभन झाते हैं, पुराने संस्कार नीचे की और खींचते हैं। लोभ का संवरण करना कठित होता है। विन्न डांबा-डोल हो जाता है। वह जिन किन्हीं देवी शिक्तयों पर विश्वास करता हो उनसे शक्ति की याचना करता है कि मेरा यह संकल्प कहीं टूट न जाये। मैं मिथ्याचरण को छोड़ कर सत्याचरण की ओर श्राता हूँ, कहीं परीक्षा में डिग न जाऊँ। वैदिक शब्दों में वह यह कहता है—ग्रने, बत्पते, वतं चरिष्यामि, तक्छकेयम तन्ये राष्यताम् इवमहमनृतात्सत्यमुपैमि—हे दोषों को दूर करके पवित्र करने वाले भगवन्! हे बतों के स्वामी, में बत का झाचरण करने जा रहा हूँ। मुभको शक्ति दीजिये कि मैं उसे पूरा कर सकूँ। उसको सम्पन्न कीजिये, मैं श्रनृत को छोड़ कर सत्य को श्रपनाता हूँ। बत का निभ जाना, प्रलोभनों पर विजय पाना, सरल काम नहीं है। वड़ भाग्य से इसमें सफलना मिलती है; और यह भी निश्चित है कि बती की गति एक बत पर ही श्रवरुद्ध न होगी। एक बत उसको दूसरे बत की ओर ले जायेगा। एक को पूरा करने के

लिए युगपन् सबको अपनाना होगा; भौर जो आरम्भ में परम अणु प्रतीत होता रहा हो, वह अपने वास्तविक रूप में बहुत बड़ा वन जायेगा। इसी से तो कहा कि स्वल्पमध्यस्य धर्मस्य शायते महतो भयात्। इसी लिए मैं कहता हूँ कि वस्तुतः कोई भी व्रत अणु नहीं है। किसी एक छोटे ने व्रत को भी यदि ईमानदारी से निवाहा जाये तो वह मनृष्य के सारे चरित्र को बदल देगा।

श्राचार्य तुलसी के प्रवचनों में तो बहुत लोग दील पड़ते हैं, स्त्रियाँ भी बहुत-सी दील पड़ती हैं। सेठ-साहूकारों का भी जमघट रहता है। इसी से मैं घवराता हूँ। हमारे देश में साधुओं के दरबार में जाने और उनके उपदेशों को पल्ले-भाड़ विधि से मुनने का वड़ा चलन है। ऐसे लोग न आवें तो अल्छा है। सबसे पहले उन लोगों को प्रभावित करना है जो समाज का नेतृत्व कर रहे हैं। शिक्षित वर्ग को आकृष्ट करना है। इसी वर्ग में से शिक्षक, श्रध्यापक, डाक्टर, इंजीनियर, राजनीतिक नेता, सरकारी कर्मचारी निकलते हैं। यदि इन लोगों का चरित्र सुधरे तो समाज पर शीझ और प्रत्यक्ष प्रभाव पड़े। मैं आशा करता हूँ कि आचार्यश्री का ध्यान मेरे इस निवेदन की ओर जायेगा। भगवान् उनको चिरायु और उनके अभियान को सफल करे।



# अचार्यश्री तुलसी का जीवन-दर्शन

## भी० वृडलैण्ड क्हेलर सम्पक्ष, सन्तर्राव्होय शाकाहारी संग्न, लन्दन

प्रनित्रिय-सम्बन्ध इस समय समस्त संसार की एक प्रमुख समस्या है। दो विश्व-युद्धों के बाद पुराने हंग के संकीण राष्ट्रीयतावादी भी यह अनुभव करने लगे हैं कि विश्व-व्यापी रूप में, यानी समग्र विश्व की दृष्टि से नई सीमाएं निर्धारित करनी आवश्यक हैं। इस कार्य में सहायता के लिए भारतवर्ष के जैनाचार्य थी तुलसी अपने अनुयायियों को दुनिया में हर चीज पर परस्परावलम्बी अहिंसक दृष्टि से विचार करने की प्रेरणा करते हैं। विश्वव्यापी मंत्री के कृत व्यक्तिगत आत्म-संयम के बीज से ही उत्पन्त होते हैं, इस बात को मुख्य मानते हुए आचार्यश्री तुलसी और उनके सर्वथा साकाहारी अनुयायियों ने अणुद्रत-श्रान्दोलन संगठित किया है। यह एक ऐसे अन्तर्राष्ट्रीय समाज के निर्माण का प्रयश्न है, जिसमे जैन और अजैन सभी ऐसे लोग शामिल हो सकते हैं, जो आदर्शों को अमली रूप देने के लिए निश्चित की गई कुछ अनुशासनात्मक प्रतिज्ञाओं को अपनी क्षमता के अनुसार स्वेच्छापूर्वक ग्रहण करने के लिए तैयार हो।

ब्राचार्यश्री तुलसी २० अक्तूबर, १६१४ को लाडनूँ में पैदा हुए थे, जो भारतीय संघ के राजस्थान राज्यात्तर्गत जोधपुर डिवीजन का एक करबा है। माचार्यश्री तुलसी तीन वर्ष के ही ये कि उनके पिता का देहान्त हो गया। पिता के देहावसान के बाद आचार्यश्री तुलसी के सबसे बड़े भाई मोहनलालजी पर गृहस्थी का भार भाषा। मोहनलालजी अवध्य कहे अनुशासन वाले व्यक्ति रहे होगे, क्योंकि अपनी डायरी में आचार्यश्री तुलसी ने लिखा है—"मैं उनसे इतना इरता था कि उनके विरुद्ध कुछ कहना तो दूर, उनकी उपस्थित में कुछ करने में भी मुक्ते संकीच होता था।"

श्राचार्यश्री तुलसी पर अपनी माता का भी बहुत ग्रनर पडा, जो श्राध्यात्मिक विचारों की श्री ग्रांग बाद में मार्ध्यों बन गई। तेरापंथी साधु-साध्वियों के वातावरण में शाकाहारी तो वह जन्म से ही थे। बाल्यावस्था में ही भ्रपनं मानसिक धरातल को दृढ़ करने के लिए उन्होंने जीवन में कभी नशा श्रीर घृष्ट्रपान न करने की प्रतिज्ञा ली। इस तरह व्यक्तिगत भ्रात्म-संयम का सहारा लेकर उन्होंने छोटी अवस्था से ही उस मार्ग को अपनाया जो कठिन होते हुए भी दुनिया में सुखी रहने का सबसे प्रशस्त मार्ग माना जाता है।

बाल्यावस्था के प्रथमें संस्मरणों में प्राचार्यश्री त्लसी लिखते है—"पाठ काण्ठाप्र करने की मुक्ते प्रादन थी। यहाँ तक कि खेलते समय भी मैं प्रयमा पाठ याद करना रहता था।" प्रारम्भ से ही वे बाहरी प्रभाव के बनिस्पत प्रन्त-रास्मा का प्रनुसरण करते थे भौर प्रारम्भिक काल के उनके सभी प्रध्यापकों ने उनमें नेतृत्व की क्षमता को प्रनुभव किया था। बार या पाँच साल की प्रयस्था में, जबकि बच्चे प्रामतीर पर ऐसी धादतों का परिचय देते हैं जो उनके भावी जीवन की रूपरेखा बनाती हैं, प्राचार्यश्री तुलसी में जरा-जरा सी बात पर गुस्सा हो जाने की प्रादत पड़ गई। कोध के दुष्प्रभाव में मनुष्य का पेट खाए हुए पदार्थ को अच्छी तरह नहीं पचा सकता, लेकिन भाचार्यश्री तुलसी बाल्यावस्था में ही इतने समभवार थे कि जब उन्हें गुस्सा भाता तो खाना खाने से इन्कार कर देते थे। कभी-कभी तो ऐसा होता कि घर के सभी लोगों के बहुत कहने-सुनने पर भी सारे दिन या दो दिन तक वह खाना नहीं खाते। इसी समय किसी ने उन्हें नारियल चुरा कर भगवान पर चढ़ाने की सलाह दो। इस सलाह पर, जिसका भौचित्य निःसन्देह संदिग्ध है, जल कर कथित धार्मिक त्रिया के लिए उन्होंने भ्रपने ही घर से कुछ नारियल चुराए। लेकिन सदानार के जिस मार्ग को उन्होंने भ्रपनाया, उसमें वचपने के ऐसे भवधान बिरले ही हुए। ग्राज्ञा-पालन भौर मृदृता उनके विशेष गृण बन गए, जिनके कारण भगनी इच्छा न होते

हुए भी उन्होंने श्रयनी माता और बड़े भाई मोहनलालजी ने जो कहा, वह किया। ऐसे एक दुःखद प्रसंग का उन्होंने श्रयनी डायरी में उन्लेख किया है, जबकि उनकी माँ ने उनसे पड़ौस के एक घर से छाछ माँग लाने के लिए कहा था। "माँगने में मुक्ते श्रयमान का श्रमुभव होता था।" श्राचार्यश्री तुलसी लिखते हैं, "लेकिन मुक्ते श्रपनी माँ के श्रादेश का पालन करना पड़ा।"

जैन दर्शन के अनुसार पूर्व जन्मों के संस्कार मनुष्य की आत्मा में रहते है, जिनके अनुसार ही मनुष्य अपने उप-युक्त कार्य का चुनाव करता है। आचार्यश्री तुनसी के लिए निश्चित ही यह बात लागू होती है, क्योंकि आध्यात्मिकता की कोई खिपी हुई शक्ति उनका मार्ग-दर्शन करती मालूम पड़ती है। यही बात उनके कुटुम्ब के कुछ अन्य व्यक्तियों के बारे में भी कही जा सकती है। उनका बहन लाडांजी साध्वी बनीं, जो कालान्तर में तेरापंथी सम्प्रदाय की सभी साध्वियों की प्रमुख हुई भीर उनके भाई चम्पालालजी ही नहीं, बल्कि एक भतीजे हंसराजजी भी तेरापंथी साधु बने।

मानार्यश्री तुलसी ने जबसे होश सम्हाला, उनका सारा परिवार तेरापंथ के आठवे आचार्यश्री कालूगणी का अनु-यायी था। अपने बाल्यकाल में आचार्यश्री तुलसी ने भक्सर यह आकांक्षा की तो उसमें आक्चर्य की बात नहीं कि मैं भी साधु हो जाऊं तो कितना अच्छा। अपनी माँ से वह अक्सर आचार्यश्री कालूगणी के बारे में पूछते रहते थे। आचार्यश्री कालू-गणी जब कभी लाडनूँ आते, जो तेरापंथ के प्रभाव का केन्द्र था, आचार्यश्री तुलसी और उनके परिवार के दूसरे सभी व्यक्ति उनके दर्शनों को जाते थे। आचार्यश्री कालूगणी के बारे में आचार्यश्री तुलसी ने लिखा है—"उनके मुख पर जो आध्यात्मिक तेज था, वह मेरे हृदय को आकर्षित करता था और मैं घण्टों उन्हें, उनके लम्बे कद, उनके गौर वदन, उनकी चमकती हुई आँखों की ओर निहारता रहता था। मन-ही-मन कहता—क्या किसी दिन मुक्ते भी ऐसा सौभाग्य प्राप्त होगा कि मैं साधु बन कर उनकी साधना में उनके साथ बैठूं।"

जैन तेरापंथ में स्नाचार्य ही सपने उत्तराधिकारी का चुनाव करते हैं। कालान्तर में स्नाचार्यश्री कालूगणी ने इस प्रश्न पर विचार करना प्रारम्भ किया कि उनके बाद झाचार्य का पद किसे दिया जाये। साचार्यश्री कालूगणी ने लाड़नूँ की अपनी यात्राश्रों में एक बार बालक तुलसी को देखा था श्रीर पहली ही नजर में बालक ने उनका हृदय छू लिया था। बालक की उनके प्रति जैसी भावना थी, उसी तरह वे भी उसकी श्रोर झाक्षित हुए स्वीर बालक तुलसी की चमकती हुई झाँखों में देखते हुए श्राचार्यश्री कालूगणी ने जान लिया कि जिस उत्तराधिकारी की वह खोज में थे उसे उन्होंने पा लिया।

ग्राचार्यश्री तुलसी जब ग्यारह वर्ष के हुए तो ग्राचार्यश्री कालूगणीजी एक बार फिर लाडनूँ ग्राये। साधु बनने के स्वप्न की पूर्ति में विलम्ब न हो, यह सोच कर ग्राचार्यश्री तुलसी ने उनसे ग्रपने को तेरापंथ के साधु-समुदाय में दीक्षित करने की प्रार्थना की। बड़े माई मोहनलालजी इतनी छोटी श्रवस्था में संसार के सारे भौतिक मुखों श्रौर सम्पत्ति का परित्याग करने की ग्रपने छोटे भाई की तैयारी देख कर धक्क रह गए। छोटे माई के कानूनी संरक्षक के नाते, इसके लिए ग्रावव्यक ग्रनुमित देने से उन्होंने इन्कार कर दिया। ग्राचार्यश्री तुलसीजी ने बार-बार ग्राग्रह किया, लेकिन मोहनलालजी भी ग्रपनी वात पर दढ रहे।

इसके कुछ दिन बाद की बात है कि आचार्यश्री कालूगणी लाडनूं में एक विशाल समुदाय के बीच प्रवचन कर रहे थे। सबको और विशेषतः मोहनलालजी को यह देखकर आदचर्य हुआ कि उस विशाल समुदाय के बीच खड़े होकर ग्यारह वर्षीय आचार्यश्री तुलसी ने आचार्यश्री कालूगणी को सम्बोधित करके कहा—"आदरणीय आचार्यश्री, मैं यह प्रतिज्ञा लेना चाहता हूं कि आजीवन बहाच्यं का पालन करूँगा और धनोपार्जन के चक्कर में नहीं पड़ूँगा।" जिसने अभी युवायस्था में भी प्रवेश नहीं किया था, ऐसे बालक का यह साहस देख कर जन-समुदाय भौंचक्का रह गया। भाई मोहनलालजी भी ऐसे चिकत हुए कि कुछ बोल न सके। स्वयं आचार्यश्री कालूगणी भी, जो भारत के विविध भागों के व्यापक प्रवास में अनीखे-अनीखे दृश्य देख-सुन कर अब वयांबृद्ध हो चुके थे, आचार्यश्री तुलसी के इस आकस्मिक परिवर्तन को देख कर चिकत रह गए। बड़े भाई की अवस्थित में प्रतिदिन दबे-दबे रहने वाले तुलसी को आजक्या हो गया? मोहनलालजी का भय कहाँ चला गया? यह किसी की समक्ष में नहीं भाषा। वस्तुतः यह छोटे बालक के बजाय एक वयस्क की ही वाणी थी।

लम्बी बामांशी के बाद ग्रावायंत्री कालूगणी ने कहा-"तुम ग्रमी बालक ही हो, ऐसी प्रतिशा का पालन करना

म्रासान काम नहीं हैं।"

मोहनलालजी की झाँखें आजायंश्री तुलसी पर एकाग्र थीं। जन-समुदाय ज्यों-का-स्यों निःशब्द था। तुलसीजी को यह कसौटी थी। उन्हें लगा कि यहाँ उपस्थित हर एक उनसे प्रश्न कर रहा है, ऐसी हालत में उन्हें क्या करना चाहिए? उन्होंने श्रभीष्ट निर्णय किया कि मुस्रे गलती नहीं करनी चाहिए, अपनी आत्मा की दृढ़ता दिखाने का यही श्रवसर है और स्पष्ट वाणी में आचार्यश्री से कहा — "आदरणीय आचार्यश्री, आप प्रतिज्ञा दिलाने को राजी हों या नहीं, मैं तो आपकी उपस्थित में यह प्रतिज्ञा ले ही रहा हूं।" इसके बाद उस छोटे बालक ने आजीवन विवाह और धनोपार्जन न करने की प्रतिज्ञा को गम्भीरता के साथ दोहराया।

जन-समुदाय में इससे एक बार फिर भारवर्य की लहर दौड़ गई। यहाँ तक कि कठोर प्रमुशासक मोहनलालजी भी अपने छोटे माई के वीरतापूर्ण शब्दों से बहुत प्रभावित हुए। एक क्षण बाद मोहनलालजी भ्रपनी जगह से उठे भीर भावार्यश्री को सम्बोधन करके बोले—'भावार्यश्री, मैं भपने भाई की इच्छा के भागे सिर भुकाता हूँ भीर भापमे भ्रमुरोध करता हूँ कि भ्राप उसे तेरापंथ के साधुमों में दीक्षित कर सें।'

इस बार ग्राचार्यश्री सोच में नहीं पड़े, बल्कि तुरन्त सहमित दे दी। दीक्षा के लिए ऐसी शीघ्र भनुमित बहुत भसाधारण बात थी, जैसा कि पहले कभी विरल ही हुआ था। जन-समुदाय एक वार फिर भौजक्का रह गया।

धाचार्यश्री तुलसी के बाल्यकाल का यह विवरण मुनिश्री महेन्द्रकुमारजी 'द्वितीय' द्वारा लिखित घाचार्यश्री तुलसी की जीवन-भौकी 'भारत की ज्योति' के घाघार पर लिखा गया है। 'भारत की ज्योति' के प्रति पूरा न्याय करना हो तो इस संक्षिप्त निबन्ध की परिधि में बाहर जाना होगा। ब्रात्म-संयम के लिए जो घाष्यात्मिक जिज्ञासा का मार्ग यहण करना चाहें, उनके लिए मैं ब्रणुवत-मान्दोलन का सदस्य बनने की हार्दिक प्रार्थन। करूँगा। भ्रणुवत-मान्दोलन के दो उत्साही सदस्यों रमणीक बन्द और मुन्दरलाल भनेरी की कृपा से कुछ वर्ष पूर्व हमारे पहली बार भारत श्राने पर मुक्ते और मेरी पत्नी को ब्राचार्यश्री तुलसी के चरणों में बैठने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था।

श्राचार्यश्री तुलसी से भेंट करने पर मेरी पत्नी ने कहा था—'श्राचार्यश्री श्रापकी श्रांकों में जो दिव्य ज्योति में देख रही हूँ, वैसी इससे पहले अपने जीवन में मैंने कभी नहीं देखी।' उनके चेहरे का निचला ग्राधा हिस्सा यद्यपि तेरापंथ की परम्परा के श्रनुसार धवल वस्त्र से ढका हुआ था, फिर भी जैन श्राचार्यश्री तुलसी की सुन्दर चमकदार श्रांकों हमसे नहीं छिपी रह सकी और उनके द्वारा हम उनके हृदय की ऊष्मा, उनके व्यक्तिगत श्राकर्षण श्रीर उसमें भी श्रध्यक्ष उनके मन व श्रात्मा की महान शद्धता को श्रनभव कर सकते थे।

इस स्मरणीय पहली भेट में इस बात से हम बहुत प्रभावित हुए कि उनके श्रास-पास पलधी मार कर जमीन पर बैठे हुए सभी लोग हमें प्रमन्त दिखाई पडे। पश्चिमी दुनिया के सुविधावादी दृष्टिकोण से प्रभावित अनेक धार्मिक व्यक्तियों के विपरीत साधु-साध्वियों तथा आचार्यश्री तुलसी के दूसरे अनुयायियों ने स्पष्टतया प्राकृतिक जीवन के श्रपते आनन्द को नहीं खोया है। उनके हास्य और स्वेच्छापूर्ण उल्लास से हमें लगा कि नैतिकता के मार्ग पर चलते हुए उनका समय बहुत अच्छा बीत रहा है। हमारी भेंट के बीच आवार्यश्री तुलसी ने कई अच्छी बातें कहीं, जिनमें से यह मुक्त विशेषतमा याद है—'श्रपनी इच्छाओं पर आप विजय नहीं पायंगे तो वे आप पर हावी हो जायेंगी।'

श्राचार्यश्री तुलसी श्रीर उनके अनुयािययों से विदा होने के पहले मैंने उनसे पूछा कि बीसवी सदी के ठूठे काल में जब प्रगति के नाम पर संहार श्रीर संहार की तैयारी जारी है, तब दुनिया में सच्चे सुख की प्राप्ति कैसे सम्भव है? श्राचार्यश्री ने जो कुछ कहा उसका भावार्थ यह है कि शरीर एक अच्छा नौकर, पर बुरा मालिक है, स्रतः सचमुच मुखी होने के लिए मन्ष्य को ग्राहिसा की ग्रावाज पर चलना चाहिए यानी किसी को चोट नहीं पहुँचानी चाहिए।

तेरायंथ के नवं भाचार्य से अपनी भीर अपनी पत्नी की पहली मुलाकात के बाद से ही सुख के सम्बन्ध में मैं एक नई दृष्टि से विचार करने लगा हूँ भीर वासनाओं की भूख पर बहुत कुछ विचार करने के बाद इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूँ कि सुख की कुंजी, जैसा कि भाचार्यथी तुलसी कहते हैं, आत्म-संयम में ही है। भौतिक शरीर तरह-तरह की भूटी भाकाक्षाओं में प्रानन्दानुभव करता है भौर धगर हम उनके चंगुल में पड़ जाये तो अन्त में हमेशा निराशा ही हाथ

लगेगी। दूसरी और, अगर हम प्राकृतिक नियमों के अनुसार रहने योग्य काफी अनुशासित यानी संयमपूर्ण हो आयं तो हमें सुख की खोज करने की आवश्यकता नहीं रहेगी। तब वह स्वयमेव हमारे पास आयेगा। वास्तव में तो मनुष्य की सच्ची प्रकृति ही मुख है, वह उममें अवस्थित है, जिसे केवल पहचानने की आवश्यकता है।

सासारिक सुख का एक मबसे बड़ा खतरा, मुक्ते लगता है, किसी चीज से ऊब जाना । हमारे व्यय, भौतिक युग में अपनी बावस्यकता की पूर्ति होते ही मनुष्य उस चीज से ऊब जाता है और उससे अपेक्षाकृत बड़ी, अच्छी, तेज तथा अधिक उत्तेजक चीज की आकांक्षा करने लगता है। अतः भौतिक इच्छाओं के विरुद्ध या उन पर विजय पाने के लिए, मनुष्य को बाध्यात्मिक प्रेरणा देने वाले जीवन-दर्शन को अपनाना बावस्यक है— मुख-प्राप्ति की ऐसी जीवन-दृष्टि जिससे अन्तु में निराशा पत्ने न पड़े। मुक्ते लगता है कि मुख के बारे में आचार्यश्री तुलसी की ऐसी ही जीवन दृष्टि है। आचार्यश्री की अग्लों में देखते हुए मुक्ते और मेरी पत्नी को ऐसी ही क्रतक नजर आई।



# आचार्यश्री तुलसी ऋौर अणुव्रत-ऋगन्दोलन

सेठ गोविन्दवास, एम० पी०

मानव, पूर्ण पुरुष परमात्मा की, एक अपूर्ण कृति है; श्रीर मानव हो क्यों, यह सारी मुध्टि ही, जिसका वह नायक बना है, अपूर्ण ही है। जब मानव अपूर्ण है, उसकी सुष्टि अपूर्ण है, तो निश्चय ही उसके कार्य-व्यापार भी अपूर्ण ही रहेंगे। मेरी दृष्टि में मनुष्य का अस्तित्व इस जगती पर उस सूर्य की भाँति है जो अन्तरिक्ष से अपनी प्रकाश-किरणे भू-मण्डल पर फेंक एक निश्चित समय बाद उन्हें फिर अपने में समेट लेता है। इस बीच सूर्य-किरणों का यह प्रकाश जगती को न केवल श्रालोकित करता है, बरन उसमें नित-नृतन जीवन भरता है और समभाव में सदा सबको प्राण-शक्ति से प्लावित रखता है। यहाँ सूर्य को हम एक पूर्ण तस्व मान कर उसकी अनन्त किरणों को उसके छोटे-छोटे अनन्त श्रपुर्ण श्रण-रूपों की संज्ञादे सकते हैं। यही स्थिति पुरुष भौर परमेश्वर की है। गोस्वामी नुलसीदासजी ने कहा भी है, ईश्वर <del>प्रंश जीव प्रविनाशी -- शर्थात् मानव-रचना ईश्वर के श्रण्रूपों का ही प्रतिरूप है, जो समय के साथ प्रपने मूल रूप से</del> पृथक और उसमें प्रविष्ट होता रहता है । सूर्य-किरणों की भाँति उसका ऋस्तित्व भी क्षणिक होता है ; पर समय की यह म्बल्पता, ग्राय की यह प्रत्पज्ञता होते. हए भी मानव की शक्ति, उसकी सामर्थ्य समय की सहचरी न होकर एक श्रुत्त, बट्ट बीर ब्रावण्ड शक्ति का ऐसा स्रोत होती है, जिसकी तुलना में ब्राज सहस्राश की वे किरणें भी पीछे पड़ जाती हैं जो जगनी की जीवनदायिनी है। उदाहरण के लिए, श्रंग्रेजी की यह उक्ति 'Where the sun cannot rises the doctor does inter there.' कितनी यथार्थ है ! फिर भ्राज के वैज्ञानिक यूग में गानव की भ्रन्तरिक्ष-यात्राएं भीर ऐसे ही भ्रनेका-नेक चामत्कारिक ब्रत्वेषण, जो किसी समय सर्वेषा श्रकल्पनीय श्रीर ब्रलौकिक थे, श्राज हमारे मन में श्राद्वर्ष का भाव भी जागत नहीं करते । इस प्रकार की शक्ति और सामर्थ्य से भरा यह ग्रपूर्ण मानव, ग्राज श्रपने पूरुपार्थ के बल पर, प्रकृति के साथ प्रतिस्पर्धी बना खड़ा है।

जगती में सनातन काल से प्रधान रूप में सदा ही दो बातों का इन्द्र चलता रहा है। सूर्य जब प्रपनी किरणे समेटता है तो प्रवित पर सथन ग्रन्धकार छा जाता है। ग्रथींत् प्रकाश का स्थान ग्रन्धकार भीर फिर ग्रन्थकार का स्थान प्रकाश ले लेता है। यह क्रम ग्रन्थत काल से ग्रन्थर चलता रहता है। इसी प्रकार मानव के अन्दर भी यह द्वंत का इन्द्र गतिशील होता है। इसे हम ग्रन्छ ग्रीर बुरे, गुण भीर दोष, जान ग्रीर ग्रजान तथा प्रकाश ग्रीर ग्रन्थकार ग्रादि ग्रगणित नामों से पुकारते हैं। इन्हीं गुण-दोषों के ग्रन्थत-ग्रगणित भेद ग्रीर उपभेद होते हैं जिनके माध्यम से मानव, जीवन में उन्तित ग्रीर ग्रवनित के मार्ग में ग्रनम्यास से ग्रन्थास ही ग्रयसर होता है। यहाँ हम मानव-जीवन के इसी ग्रन्छ भीर बुरे, उचित ग्रीर ग्रन्थित पक्ष पर विचार करेंगे।

## जीवन की सिद्धि धौर पुनर्जन्म की शुद्धि

भारत धर्म प्रधान देश है, पर व्यावहारिक संवाई में बहुत पीछे होता जा रहा है। भारतीय लोग धर्म भीर दर्शन की तो बड़ी चर्चा करते हैं, यहाँ तक उनके दैनिक जीवन के कृत्य, वाणिज्य-व्यवसाय, यात्राएं, वैवाहिक सम्बन्ध धादि जैसे कार्य भी दान-पुण्य, पूजा-पाठ धादि धार्मिक वृत्तियों से ही ग्रारम्भ होते हैं; किन्तु कार्यों के ग्रारम्भ ग्रौर ग्रन्थ को छोड़ जीवन की जो एक लम्बी मंजिल है, उसमें व्यक्ति, धर्म के इस व्यावहारिक पक्ष से सदा ही उदासीन रहता है। इस वर्म-प्रधान देश के मानव में व्यावहारिक सवाई में प्रामाणिकता के स्थान पर भाडम्बर भौर घाषिभौतिक शक्तियों का

प्राधिपत्य होता जा रहा है। जीवन में जब व्यावहारिक सचाई नहीं, प्रामाणिकता नहीं, तो धर्माचरण कैसे सम्भव है! इसके विपरीत भौतिकतावादी माने जाने वाले देशों की जब भारतीय यात्रा करते हैं तो वहां के निवासियों की व्यवहारगत सचाई और प्रामाणिकता की प्रशंसा करते हैं। दूसरी घोर जो विदेशी भारत की यात्रा करते हैं, उन्हें यहाँ की ऊँची दार्शनिकता के प्रकाश में प्रामाणिकता का धभाव खलता है। इस विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि हमारा यह धर्माचरण जीवन-शुद्धि के लिए नहीं; पनजंन्य की शुद्धि के लिए है। किन्तु यहाँ भी हम भूल रहे हैं। जब यह जीवन ही शुद्ध नहीं हुआ तो भगला जन्य कैसे शुद्ध होगा ? यह मुनिश्चित है कि उपासना की धपेक्षा जीवन की सचाई को प्राथमिकता दिये बना इस जन्य की सिद्धि और पुनर्जन्य की शुद्धि सर्वथा धसम्भव है।

अब प्रश्न उठता है कि जीवन की यह सिद्धि भौर पूनर्जन्म की शुद्धि कैसे हो सकती है ? स्पष्ट है कि चारित्रिक विकास के बिना जीवन की यह प्राथमिक और महान् उपलब्धि सम्भव नहीं। चरित्र का सम्बन्ध किसी कार्य-व्यापार तक ही सीमित नहीं, श्रपितु उसका सम्बन्ध जीवन की उन मूल प्रवृत्तियों से है जो मनुष्य की हिंसक बनाती हैं। शोषण, भन्याय, ग्रसमानता, ग्रसहिष्णुता, भाकमण, दूसरे के प्रभुत्व का भपहरण या उसमें हस्तक्षेप भौर भसामाजिक प्रवित्तर्या ये सब चरित्र-दोष हैं । प्रायः सभी लोग इनसे बाकान्त हैं । भेद प्रकार का है । कोई एक प्रकार के दोष से बाकान्त है. सो दूसरा दूसरे प्रकार के दोष से । कोई कम मात्रा में है, तो कोई अधिक मात्रा में । इस विभेद-विषमता के विष की व्याप्ति का प्रधान कारण शिक्षा ग्रीर भ्रयं-ध्यवस्था का दोषपूर्ण होना माना जा सकता है। ग्राज की जो शिक्षा-ध्यवस्था है, उसमें चारित्रक विकास की कोई निदिचत योजना नहीं है । भारत की प्रथम भीर द्वितीय पंचवर्षीय योजना में भारत के भौतिक विकास के प्रयत्न ही सन्निहित थे। कदाचित भूले भजन न होई गोपाला और आरत काह न करें कूकर्म की उक्ति के भन्सार भूखों की भूख मिटाने के प्राथमिक मानवीय कर्तव्य के नाते यह उचित भी था; किन्तु चरित्र-बल के बिना भर-पेट भोजन पाने वाला कोई व्यक्ति या राष्ट्र माज के प्रगतिशील विरुव में प्रतिष्ठित होना तो दूर, कितनी देर खड़ा रह सकेगा, यह एक बड़ा प्रक्त है। अतः उदरपूर्ति के यत्न में अपने परम्परागत चरित्र-बल को नहीं गॅवा बैठना चाहिए। यह हर्ष का विषय है कि तृतीय पंचवर्षीय योजना में इस दिशा में कुछ प्रयत्न अन्तर्निहित है। हमारी शिक्षा कैसी हो, यह भी एक गम्भीर प्रदन है। बड़े-बड़े विशेषज्ञ इस सम्बन्ध में एकमत नहीं हैं। अनेक तथ्य और तर्क शिक्षा के उज्ज्वल पक्ष के सम्बन्ध में दिये जाते रहे हैं श्रीर दिये जा सकते हैं। निश्चित ही भारतीय शिक्षा के क्षेत्र में आगे बढे हैं; किन्तु आज का यह बौद्धिक विकास एक ग्रसंयत विकास है। कोरा-ज्ञान भयावह है, कोरा भौतिक विकास प्रलय है बौर नियंत्रणहीन गति का अन्त खतरनाक। दृष्टि ही विशुद्ध जीवन की धुरी है। दृष्टि शुद्ध है तो ज्ञान शुद्ध होगा; दृष्टि विकृत होगी तो अपन निकृत हो जायेगा, चरित्र दूषित हो जायेगा। इस दृष्टि-दोष से हम सभी बहुत बुरी तरह ग्रसित है। भाषा, प्रान्त, राष्ट्रीयता और साम्प्रदायिकता के दृष्टि-दोप के जो दृश्य देश में आज जहाँ-तहाँ देखने को मिल रहे हैं, ये यहां के चारित्रिक ह्रास के ही परिचायक हैं। घृणा, संकीर्ण मनोवृत्ति श्रौर पारस्परिक श्रविश्वास के भयावह भन्तराल में भारतीय ब्राज ऐसे डूब रहे है कि अपर उठ कर बाहर की हवा लेने की बात सोच ही नहीं पाते। इस भयावह स्थिति को समय रहते समक्ता है अपने-आपको सम्मालना है। यह कार्य चरित्र-बल से ही सम्भव है और चरित्र को सँजीने के लिए शिक्षा में सुधार अपरिहार्य है। प्रश्न है—यह शिक्षा कैसी हो?

संक्षेप में जीवन के निर्दिष्ट लक्ष्य तक यदि हमें पहुँचना है, तो ऐसे जीवन के लिए निरिचत वही शिक्षा उपयोगी होगी, जिसे हम संयम की शिक्षा की संजा दे सकते हैं। संयमी जीवन में सादगी और सरलता का अनायास ही सिम्मश्रण होता है और जहाँ जीवन सादगी से पूर्ण होगा, उसमें सरलता होगी, वहाँ कर्तव्यनिष्ठा बढ़ेगी ही। कर्तव्य निष्ठा के जागृत होते ही व्यक्ति-निर्माण का वह कार्य, जो आज के युग की, हमारी शिक्षा की, उसके स्तर के सुधार की माँग है, सहज ही पूरा हो जायेगा।

## उन्नति की धुरी

ग्रर्थ-श्यवस्था भी दोषपूर्ण है। ग्रर्थ-व्यवस्था सुघरे जिना चरित्रवान् बनने में कठिनाई होती है और चरित्रवान्

बने बिना समाजवादी समाज बने, यह भी सम्भव नहीं है। इसीलिए यह आवश्यक है कि देश के कर्णधार योजनाओं के क्रियान्वयन में चरित्र विकास के सर्वोपरि महत्त्व को दृष्टि से ओकल न करें। ईमानदारी चरित्र का एक प्रधान चरण है। यदि चरित्र नहीं तो ईमानदारी कहाँ से आयेगी, और जब ईमानदारी नहीं, तो इन दीर्धसूत्रीय योजनाओं से, जो ग्राज क्रियान्वित हो रही हैं, आगे चलकर अर्थ-लाभ भले ही हो, पर अभिशाप में अविचार, असंयम और असमानता का ऐसा घरा समाज में पड़ेगा, जिससे निकलना फिर आसान बात न होगी।

इस प्रकार देशोन्नति की घुरी चरित्र ही है। बिना चरित्र विकास के देश का विकास ग्रसम्भव है। चरित्र-निर्माण का सम्बन्ध हमारी शिक्षा भीर भर्थ-व्यवस्था से जुड़ा हुआ है। इनके दोषपूर्ण होने पर निष्कलंक चरित्र की कल्पना नहीं की जा सकती।

भ्राचार्य तुलसी का ऋणुवत-भ्रान्दोलन चरित्र-निर्माण की दिशा में एक ऋभूतपूर्व श्रायोजन है। श्रणुवत का श्रथं है—छोटे दत ।

स्वभाव से ही मानव ग्रन्थकार की परिधि से बाहर निकल प्रकाश की भीर बढ़ने का इच्छुक होता है। ब्रत-ग्रहण में भी यही तथ्य निहित है। मानव-समाज में व्याप्त विषमता, बेईमानी भीर ग्रनैतिकता जब व्यक्ति को दृष्टिगोचर होती है तो उसके श्रन्दर इस वैषम्य, वैमनस्य, शोषण भीर श्रनाचार को हर करने की प्रवृत्ति जागृत होती है और सद्-भावमूलक इस प्रवृत्ति के उदय होते ही त्याग की भावना से श्रभिभूत उसका श्रन्त:करण ब्रह्मों की श्रोर श्राक्षित होता है। जीवन-मुधार की दिशा में ब्रतों का महत्त्व सर्वोपिर है। ब्रतों में प्रधानरूप से श्रात्मानुशासन की श्रावश्यकता होती है। जिस प्रकार सिद्धान्त कायम करना जितना श्रासान है, उस पर श्रमल करना उतना ही कठिन, उसी प्रकार ब्रत लेना तो ग्रामान है, पर उसका निभाना बड़ा कठिन होता है। ब्रत-पालन में स्व-नियमन वहृदय-परिवर्तन से बड़ी सहायता मिलती है।

श्रणुद्रत के पाँच प्रकार है—-श्रहिमा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य या स्वदार-संतोष श्रौर श्रपरिश्रह या इच्छा-परिमाण।

श्राहिसा--रागढेषात्मक प्रवृत्तियों का निरोन या आत्मा की राग-ढेष-रहित प्रवृत्ति ।

सत्य---ग्रहिसा का रचनात्मक या भाव-प्रकाशनात्मक पहलु है।

असौर्य--- श्राहसात्मक अधिकारों की व्याख्या है।

बहा वर्ष-- अहिसा का स्वात्मरमणात्मक पक्ष है।

अपरिग्रह-ग्रहिसा का परम-पदार्थ-निरपेक्ष रूप है।

वत हृदय-परिवर्तन का परिणाम होता है। बहुधा जन-साधारण का हृदय उपदेशात्मक पद्धित से परिवर्तित नहीं होता; अतः समाज की दुर्व्यवस्था को बदलने के लिए भी प्रयत्न किया जाता है। उदाहरण के लिए आर्थिक दुर्व्यवस्था वतों से सीधा सम्बन्ध नहीं रखती, किन्तु आत्मिक दुर्व्यवस्था मिटाने के लिए और संयत, सदाचारपूर्ण जीवन-यापन की दिशा में वत बहुत उपयोगी होते हैं। हृदय-परिवर्तन और वताचरण से जब आत्मिक दुर्व्यवस्था भिट जाती है तो उसमे आर्थिक दुर्व्यवस्था भी स्वतः सुधरती है और उसके फलस्वरूप सामाजिक दुर्व्यवस्था भी मिट जाती है।

व्यक्ति के चरित्र धौर नैतिकता का उसकी धर्थ-व्यवस्था से गहरा सम्बन्ध है— बुभुक्षितः कि न करोति पापम् ? की उक्ति के ध्रनुसार भूखा श्रादमी क्या पाप नहीं कर सकता ! इसके विपरीत किसी विचारक के इस कथन को भी कि संसार में हरएक मनुष्य की श्रावश्यकता भरने को पर्याप्त से ध्रधिक पदार्थ हैं, पर एकभी व्यक्ति की ध्राशा भरने को वह श्रपर्याप्त है, हम दृष्टि मे श्रोभल नहीं कर सकते। एक निर्धन निराशा से पीड़ित है तो दूसरा धनिक श्राशा से। यही हमारी अर्थ-व्यवस्था की सबसे बड़ी विडम्बना है। भगवान् महावीर ने धाशा की ध्रनन्तता बताते हुए कहा है—यदि सोने और चाँदी के कैलाश-तुल्य श्रसंख्य पर्वत भी मनुष्य को उपलब्ध हो जायें तो भी उसकी तृष्णा नहीं

<sup>?</sup> There is enough for everyone's need but not everyone's greed

२ सुवण्ण कवस्स उ पम्बद्धा भन्ने सियाह केलास समा बर्जतया ।

रती, नयोंकि धन असंख्य है और तृष्णा आकाश की तरह अनस्त।

#### गरीब कौन ?

विचारणीय यह है कि वास्तव में गरीब कौन है ? क्या गरीब वे हैं, जिनके पास योड़ा-सा धन है ? नहीं। गरीब तो यथार्थ में वे हैं जो भौतिक दृष्टि से समृद्ध होते हुए भी तृष्णा से पीड़ित हैं। एक व्यक्ति के पास दस हजार रुपये है। वह चाहता है वीस हजार हो जायं, नो धाराम से जिन्दगी कट जायं। दूसरे के पास एक लाख रुपया है, वह भी चाहता है कि एक करोड़ हो जायं तो शान्ति से जीवन बीते। तीसरे के पास एक करोड़ रुपया है, वह भी चाहता है, दस करोड़ हो जायं तो देश का बड़ा उद्योगपित वन जाऊं। धव देखना यह है कि गरीब कीन है ? पहले व्यक्ति की दस हजार की गरीबी है, दूसरे की निन्यानवे लाख की धीर तीसरे की नौ करोड़ की। मनोवंशानिक दृष्टि से यदि देखा जाये तो वास्तव में तीसरा व्यक्ति ही अधिक गरीब है, क्योंकि पहने की वृत्तियाँ जहाँ दम हजार के लिए, दूसरे की निन्यानवे लाख के लिए तड़पती हैं, वहाँ तीसरे की नौ करोड़ के लिए। तात्पर्य यह है कि गरीबी का अन्त सन्तोष है धौर धसन्तोष ही मर्थ-संख्या का सबसे बड़ा अभाव है। सग्रह के जिस बिन्दु पर मनुष्य सन्तोष को प्राप्त होता है, वहीं उसकी गरीबी का अन्त हो जाता है। यह बिन्दु यदि पाँच धथवा पाँच हजार पर भी लग गया, तो व्यक्ति सुखी हो जाता है। हमारे देश की प्राचीन परम्परा में तो वे ही व्यक्ति सुखी और समृद्ध माने गए हैं, जिन्होंने कुछ भी संग्रह न रखने में सन्तोष किया है। ऋषि, महिष साधु-संन्यासी गरीब नहीं कहलाते थे और न कभी उन्हे ग्रथीभाव का दुख ही व्यापताथा।

भगवान् महावीर ने **मुख्छा परिग्गहो**— मूर्च्छा को परिग्रह बताया है। परिग्रह सर्वथा त्याज्य है। उन्होंने स्रागे कहा है— **विसोग ताणं न तमें पमत्ते,** धन ने मनुष्य त्राण नहीं पा सकता। महाभागत के प्रणेता महिष् व्याम ने कहा है—

#### उदरं भ्रियते यावत् तावत् स्वत्वं हि वेहिनाम्। स्रधिकं योभिमन्येत स स्तेनो वश्डमहीत॥

ग्रर्थात्— उदर-पालन के लिए जो आवश्यक है, यह व्यक्ति का भपना है; इसमे भिधक सम्रह कर जो व्यक्ति रखता है, वह चोर है और दण्ड का पात्र है।

ब्राधृनिक युग में ब्रर्थ-लिप्सा से बचने के लिए महात्मा गाधी ने इसीलिए धनपतियों की सलाह दी थी कि वे अपने को उसका ट्रस्टी माने । इस प्रकार हम देखते हैं हमारे सभी महज्जनो, पूर्व पुरुषो, सन्तों और भन्तों ने अधिक अर्थ-मग्रह को ग्रनर्थकारी मान उसका निषेध किया है। उनके इस निषेध का यह तात्पर्य कदापि नहीं कि उन्होंने सामाजिक जीवन के लिए अर्थ की ग्रावश्यकता को दिष्ट में श्रोफल कर दिया हो। संग्रह की जिस भावना से समाज अनीति और अनाचार का शिकार होता है, उसे दृष्टि में रख व्यक्ति की भावनात्मक शृद्धि के लिए उसके दृष्टिकोण की परिशृद्धि ही हमारे महज्जनों का ग्रभोष्ट था। वर्तमान युग अर्थ-प्रधान है। आज ऐसे लोगों की संख्या प्रधिक है जो आर्थिक समस्या को ही देश की प्रधान समस्या मानते हैं। बाज के भौतिकवादी यूग में बार्थिक समस्या का यह प्राधान्य स्वाभाविक ही है। किन्तु चारित्रिक शुद्धि ग्रीर श्राध्यात्मिकता को जीवन में उतारे बिना व्यक्ति, समाज ग्रीर देश की उन्नति की परिकल्पना एक मगमरीचिका ही है। श्रण-श्रायधों के इस यूग में श्रणवत एक श्रत्य-अर्थी प्रयत्न है। एक घोर हिसा के बीमत्स रूप को अपने गर्भ में खिपाये अणुवमों ने सुयज्जित आधुनिक जैट राकेट अन्तरिक्ष की यात्रा को प्रस्तुत हैं; दूसरी श्रोर आचार्यश्री तुलसी का यह अणवत-आन्दोलन व्यक्ति व्यक्ति के माध्यम से हिसा, विषमता, शोषण, संग्रह भीर अनाचार के विरुद्ध श्रहिसा, मदाचार, सहिरणता, अपरिग्रह श्रीर सदाचार की प्रतिष्ठा के लिए प्रयत्नरत है। मानव श्रीर पश् तथा श्रन्य जीव-जीवाणुग्रों में जो एक ग्रन्तर है, वह है उसकी ज्ञान-शक्ति का । निसर्ग ने ग्रन्यों की ग्रपेक्षा मानव को ज्ञान-शक्ति का जो विपूल-भण्डार मौंपा है, अपने इसी सामर्थ्य के कारण मानव सनातन काल से ही सुध्दि का सर्वश्रेष्ठ प्राणी बना हुआ है। ग्राज के विश्व में जबकि एक ओर हिसा और बर्बरता का दावानल दहक रहा, तो दूसरी ओर सहिसा और शान्ति की एक शीतल-सरिता जन-मानस को उहेलित कर रही है। अब ब्रांज के मानव को यह तय करना है कि उसे हिसा और बर्बरता

के दावानन में भुलसना है अथवा अहिसा और शान्ति की शीतल सरिता में स्नान करना है। तराजू के इन दो पलड़ों पर अमन्तुलित स्थित में आज विश्व रखा हुआ है और उसकी बागड़ोर, इस तराजू की चोटी, उसी जान-शक्ति सम्पन्त मानव के हाथ में है जो अपनी ज्ञान सत्ता के कारण मृष्टि का सिरमीर है।

#### 🗴 | सर्वमान्य स्नाचार-संहिता

श्राचार्यश्री तुलसी से मेरा थोड़ा ही सम्पर्क हुआ है; परन्तु वे जो कुछ करते रहे है और अणुव्रत का जो साहित्य प्रकाशित होता रहा है, उसे में ध्यान से देखता रहा हूँ। जैन साधुश्रों की त्याग-वृक्ति पर मेरी सदा से ही वड़ी श्रद्धा रही है। इस प्राचीन संस्कृति वाले देश में त्याग ही सर्वाधिक पूज्य रहा है और जैन साधुश्रों का त्याग के क्षेत्र में बहा ऊँचा स्थान है। फिर ग्राचार्यश्री तुलसी और उनके साथी किसी धर्म के संकृचित दायरे में कैद भी नहीं हैं। मैं ग्राचार्यश्री तुलसी के विवार, प्रतिमा भौर कार्य-प्रवीणता की सराहना किये बिना नहीं रह सकता। उनका ग्रेह अणुव्रत-भाग्वोलन किसी पक्ष-विशेष का भ्रान्दोलन न होकर समूची मानव-जाति के किमक विकास और उसके सदाचारी जीवन का इन वर्तों के रूप में एक ऐसा भ्रनुष्ठान है जिसे स्वीकार करने मात्र से भय, विषाद, हिंसा, ईष्मां, विषमता जाती रहती है और सुख-शान्ति की स्थापना हो जाती है। मेरा विश्वास है हिंसा भले ही बबंरता की चरम सीमा पर पहुँच जाये, पर उसका भी प्रत्न श्रहिसा ही है और इस दृष्टि में हर काल, हर स्थित में भ्रणुव्रत की उपयोगिता, उसकी श्रनिवार्यसा निविवाद है।

श्राचार्यश्री तुलसी एक समृद्ध साधु-संघ के नायक हैं, बृहत् तेरापंथ के आचार्य हैं और लाखों लोगों के पूज्य है। उनके इस बड़पान में जो सबसे बड़ी बान है, वह है उनका स्वयं का तथा अपने प्रभावणाली साधु-संघ का एक विशेष कार्य-क्रम के साथ जन-कल्याण के निमित्त समर्थण। उनके इस जन-कल्याण का जो स्वरूप है, उसकी जो योजना है, वह इस प्रणु-वन-श्रान्दोलन में समाहित है। दूसरे शब्दों में. उनके इस आन्दोलन को देश-निर्माण का आन्दोलन कहा जा सकता है। भारतीय संस्कृति और दर्शन के अहिंसा, सत्य आदि सार्वभौम आधारों पर नैतिक अनों की एक सर्वमान्य आचार-संहिता की संज्ञा भी इसे दे सकते हैं।

#### x | व्यक्ति न होकर स्वयं एक संस्था

त्रावार्यश्री तुलसी प्रथम धर्मालार्य है जो प्रपत बृहत् साधु-संघ के साथ सार्वजितक हित की भावना लेकर व्यापक क्षेत्र में उतरे हैं। प्रावार्यश्री साहित्य, दर्शन और शिक्षा के प्रविकारी धालार्य हैं। वे स्वयं एक श्रेष्ठ साहित्यकार धीर दार्शिक हैं। अपने साधु-संघ में उत्होंने निरपेक्ष शिक्षा-प्रणाली को जन्म दिया है तथा संस्कृत, राजस्थानी भाषा की भी वृद्धि में उतका प्रभिनन्दनीय योग है। उनके संघ में हिन्दी की प्रधानता ग्रालार्यश्री की सूभ-बूभ की परिचायक है। ग्रापकी प्रेरणा से ही साधु-समुदाय सामयिक गति-विधि से दर्शन और साहित्य के क्षेत्र में उतरा है। इसी के अनन्तर ग्राप देश की गिरती हुई नैतिक स्थित को उद्यं संचरण देने में प्रेरित हुए और उसी का ग्रुभ परिणाम यह सर्वविदित ग्रणु-कत-धान्दीलन बना।

भावार्यश्री तुलसी एक व्यक्ति न होकर स्वयं एक संस्था-रूप हैं। श्रापके इस उपयोगी श्रावार्य-काल को पच्चीस वर्ष पूरे हो रहे हैं। श्रव्यासवें वर्ष में तुलसी-धवल समारोह मनाने का जो निश्चय किया गया है, वह श्राचार्य तुलसी के अवल व्यक्तित्व के सम्मान की दृष्टि में भी तथा उनके द्वारा हो रहे कार्य की उपयोगिता श्रीर उसके मृत्यांकन की दृष्टि से सर्वया श्रीमनस्वनीय है। ग

ें मैं इस श्रुभ धवसर पर ब्राचार्यश्री तुलसी को, उनके इस वास्तविक साधु-रूप को तथा उनके द्वारा हो रहे जन-कल्याण के कार्य की, अपनी हार्दिक श्रद्धा अपित करना हुँ।

# एक अमिट स्मृति

#### भी शिवाजी नरहरि भावे

महामिहम प्राचार्यश्री तुलसी बहुत वर्ष पहले पहली बार ही घूलिया पघारे थे। इसके पहले यहाँ उनका परिचय हों था। लेकिन घूलिया पघारने पर उनका सहज ही परिचय प्राप्त हुआ। वे सायंकाल से थोड़े ही पहले प्रपने कुछ साथी साधुओं के साथ यहाँ के गांधी तत्वज्ञान मन्दिर में पघारे। हमारे प्रामंत्रण पर उन्होंने निःसंकीच स्वीकृति दी थी। यहाँ का शान्त ग्रौर पिवत्र निवास-स्थान देख कर उनको काफी संतोष हुआ। सायंकालीन प्रार्थना के बाद कुछ वार्तालाप करेंगे ऐसा उन्होंने ग्राश्वासन दिया था। उस मुताबिक प्रार्थना हो चुकी थी। सारी मृष्टि चन्द्रमा की राह देख रही थी। सब ग्रोर शान्ति ग्रौर समुत्सुकता छाई हुई थी। तत्त्वज्ञान मन्दिर के बरामदे में वार्तालाप ग्रारम्भ हुग्या। सतां सिव्भः संगः कथमिप हि पुण्येन भवति भवभूति की इस उक्ति का मनुभव हो रहा था।

वार्तालाप का प्रमुख विषय तत्त्वज्ञान और अहिसा ही था। बीच में एक ्यक्ति ने कहा—अहिंसा में निष्ठा रखने वाले भी कभी-कभी अनजाने विरोध के अभेले में पड़ जाते हैं। ब्राचार्यश्री तुलसी ने कहा—"विरोध को तो हम विनोद समक्ष कर उसमें ब्रानन्द मानते हैं।"इस सिलसिले में उन्होंने एक पद्य भी गाकर बताया। श्रोताश्रों पर इसका बहुत असर हुआ।

#### मृगमीनसञ्जनानां तृणजलसंतीवविहितवृत्तीनां। सुव्यक्षवीवरपिशुनां निष्कारणवेरिको जगति।

सचमुच भतृंहिर के इस कटु अनुभव को । साचायंश्री तुलसी ने कितना मधुर रूप दिया । सब लोग श्रवाक् होकर बार्तालाप सुनते रहे ।

भाचार्यश्री विशिष्टपंथ के संचालक हैं, एक बड़े भ्रान्दोलन के प्रवर्तक हैं, जैन शास्त्र के प्रकाण्ड पंडित हैं, किन्तु इन सब बड़ी-बड़ी उपाधियों का उनके भाषण में भ्रामास भी किमी को प्रतीत नहीं होता था। इतनी मरलता! इतना स्नेह! इतनी शान्ति! ज्ञान व तपस्या के बिना कैसे प्राप्त हो सकती है?

भ्राचार्यश्रो तुलसी की हमारे लिये यही श्रमिट स्मृति है। इस घवल समारोह के शुभ अवसर पर भ्राशा रखते हैं कि हम सब इन गुणों का अनुसरण करेंगे।







## मौतिक और नैतिक संयोजन

श्रीमन्तारायण सदस्य—योजना बायोग

निःसन्देह करोड़ों मानव झाज प्राथमिक और मामूली जरूरतें भी पूरी नहीं कर पाते हैं। झतः उनका जीवन-स्तर ऊपर उठाना परम भावश्यक लगता है। प्रत्येक स्वतन्त्र धार लोकतन्त्री देश के नागरिक को कम-से-कम जीवनो-बस्तु तो भ्रवश्य ही मिल जानी चाहिए, परन्तु हमें भ्रच्छी तरह समक्ष लेना होगा कि केवल इन भौतिक श्रावश्क-ताभ्रों की पूर्ति कर देने से ही शान्तिपूर्ण और प्रगतिशील समाज की स्थापन। नहीं हो सकेगी। जब तक लोगों के दिलों दिमागों में सच्चा परिवर्तन नहीं होगा, तब तक मनुष्य-जाति को भौतिक समृद्धि भी नसीब नहीं होगी।

#### सादगी और दरिव्रता

ष्ठालिर मनुष्य केवल रोटी खाकर ही नहीं जीना और न भौतिक सुख-सामग्री से मनुष्य को सच्चा मानिमक भौर श्रात्मिक सुख ही मिल सकता है। हमारे देग की संस्कृति में तो ग्रनादि काल से नैतिक भौर श्राध्यात्मिक मूल्यों को सबसे ग्रीधक महत्त्व दिया गया है। इस देश में तो मनुष्य के घन-वैभव को देख कर नहीं, उसके सेवा-भाव ग्रीर त्याग को देख कर उसका ग्रादर होता है। यह सज कि है दरिद्रना ग्रच्छी नीज नहीं है और ग्राघुनिक ममाज को, एक निश्चित मात्रा में कम मे-कम भौतिक सुख-सुविधा तो सवको मिले, ऐसा प्रवन्ध करना होता है। यरन्तु सादगी का ग्रथ दरिद्रता नहीं है ग्रीर न जरूरतें बढ़ा देना प्रगति की निशानी। हमें भौतिक भौर नैतिक कत्याण और विकास के बीच एक संतुखन उपस्थित करना होगा। यह घ्यान प्रतिदिन रखना होगा कि श्राध्यक संयोजन में लक्ष्यों को पूरा करने के साथ-साथ नैतिक पुनक्त्यान के लिए भी ग्रनुकूल परिस्थितियाँ निमित करने का काम भी करते रहना है, नहीं तो हम ऐसे मार्ग पर चल पहेंगे, जो हमारी संस्कृति और राष्ट्र की ग्रात्मा के प्रतिकूल होगा। जब तक देश के निवासी—स्त्रियाँ ग्रीर पुक्ष—नेक ग्रीर ईमानदार नहीं होंगे, हम राष्ट्र की ग्रात्मा के प्रतिकूल होगा। जब तक देश के निवासी—स्त्रियाँ और पुक्ष—नेक ग्रीर ईमानदार नहीं होंगे, हम राष्ट्र की नींव को मजबून नहीं कर मकेंगे। राष्ट्र की ग्रसली सम्पत्ति बड़ी-बड़ी योजनाएं, कारखाने या विशाल इमारतें नहीं है। राष्ट्र की सच्ची सम्पत्ति श्रीर सुख का कारण तो वास्तव में समभदार श्रीर नीति नागरिक हैं, जिन्हें ग्रपने कर्तव्यों और ग्रधिकारों का पूरा-पूरा भान होता है। भारतीय लोक-राज्य का चिह्न भी धर्मचक है, जिसका ग्रय है—सच्ची प्रगति धर्म के ग्रथांत् कर्तव्य ग्रीर सन्मार्ग के ग्रनुसरण में ही है। यदि इस चिह्न को हमय भूला देंगे तो हमारा कभी कल्याण नहीं हो सकता।

अणुद्गत-ग्रान्दोलन को मैं नैतिक संयोजन का ही एक विशिष्ट उपक्रम मानता हूँ। यह ग्रान्दोलन व्यक्ति की सुप्त नैतिक भावना को उद्बुद्ध करता है तथा विवेकपूर्वक जीवन का समत्व प्रत्येक व्यक्ति को समक्षाता है।

मुक्ते यह प्रसन्नता है कि श्राचार्यश्री तुलसी का धवल समारोह मनाने का श्राय।जन किया गया है। २५ वर्ष पहले श्राचार्यश्री श्राचार्य पद पर श्रारूढ़ हुए थे। यह स्वामाविक ही है कि इस ग्रवसर पर उनका गौरव श्रीर श्रीभनन्दन किया जाये।

#### प्रभावशाली व्यक्तित्व

भारत के मुफ जैसे बहुत से व्यक्ति ग्राज ग्राचार्यश्री नुससी को केवल एक पंथ के ग्राचार्य नहीं मानते हैं । हम

तो उन्हें देश के महान् व्यक्तियों में से एक प्रभावशाली व्यक्तिस्व मानते हैं, जिन्होंने भारत मे नीति और सद्व्यवहार का भंडा ऊँचा उठाया है। श्रणुव्रत-श्रान्दोलन द्वारा देश के हजारों और लाखों व्यक्तियों को श्रपना नैतिक स्तर ऊँचा करने का श्रवसर मिला है श्रीर भविष्य में भी मिलता रहेगा। यह श्रान्दोलन बच्चे, बूढ़े, नौजवान, स्त्री, पुरुष, सरकारी कर्मचारी व्यापारी वर्ग श्रादि सबके लिए खुला है। इसके पीख्ने एक ही शक्ति है श्रीर वह है नैतिक शक्ति। यह स्पष्ट ही है कि इस प्रकार का ग्रान्दोलन सरकारी शक्ति से संचालित नहीं किया जा सकता। भारतवर्ष में यह परम्परा ही रही है कि जनता की नैतिकता ऋषि, मुनि व श्राचार्यों द्वारा ही संचालित हुई है।

मैं ग्राशा करता हूँ कि ग्राचार्यश्री तुलसी बहुत वर्षों तक इस देश की जनता को नैतिकता की ग्रीर ले जाने में सफल रहेंगे श्रीर उनके जीवन से हजारों व लाखों व्यक्तियों को स्थायी लाभ मिलेगा।



# भारतीय संस्कृति के संरक्षक

डा॰ मोतीलाल वास, एम॰ ए०, बी॰ एल॰, पी-एच॰ डी॰ संस्थापकमंत्री, भारत संस्कृति परिषव, कलकता

भारतीय संस्कृति एक शाश्वत जीवन शक्ति है। अत्यन्त प्राचीन काल से आधुनिक युग तक महान् आत्माओं के जीवन और उनकी शिक्षाओं से प्रेरणा की लहरें प्रवाहित हुई हैं। इन संतों ने अपनी गतिशील आध्यात्मिकता, गम्भीर अनुभवों और अपने सेवा और त्यागस्य जीवन के द्वारा हमारी सम्यता और संस्कृति के सारभूत तस्व को जीवित रखा है। आचार्यश्री तुलसी एक ऐसे ही संत हैं। यह मेरा बड़ा सौभाग्य है कि मैं ऐसे विशिष्ट महापुरुष के निकट सम्पर्क में आ सका। मैं अणुवत समिति कलकता के पदाधिकारियों का आभारी हूँ कि उन्होंने मुक्ते इस महान् नेता से मिलने का अवसर दिया।

श्राचार्यश्री तुलसी श्रवस्था में मुक्तमे छोटे हैं। उनका जन्म श्रवतूबर, १६१४ में हुन्ना श्रीर मैंने उन्नीसवीं शताब्दी की ग्रस्तंगत किरणों को देखा है। उन्होंने ग्यारह वर्ष की सुकुमार वय में जैनधर्म के तेरापंथ सम्प्रदाय के किटन साधुन्व की दीक्षा ली। श्रपने दुर्लभ गुणों और श्रसाधारण प्रतिभा के बल पर बाईस वर्ष की श्रवस्था में ही वे तेरापंथ सम्प्रदाय के नवे श्राचार्य बन गए। तब से श्राचार्य पद पर उनको पच्चीस वर्ष हो गए हैं श्रीर वे श्रपने सम्प्रदाय को नैतित श्रेष्ठता श्रीर श्राध्यान्मिक उत्थान के नये नार्यों पर श्रग्नसर कर रहे हैं।

#### मंगलमयी स्नाकृति

दुनिया ग्राज घृणोन्माद की शिकार हो रही है। लोभ ग्रीर लिप्सा, भ्रम ग्रीर कोध का दुनिवार बोल-बाला है। भ्रष्टाचार ग्रीर पतन के युग में महान् ग्राचार्य का शान्त चेहरा देख कर कितनी प्रसन्तता होती है। उनके शान्त चेहरे की ग्रीर एक दृष्टि निक्षेण से ही दर्शक को शान्ति ग्रीर ग्राह्माद प्राप्त होता है। संयम-पालन के कारण वह कटोर् ग्रथवा गुष्क नहीं हुए हैं। उनकी ग्राकृति मंगलमयी है जो प्रथम दर्शन पर ही ग्रपना प्रभाव डालती है। उनका चौड़ा ललाट ग्रीर ज्योतिर्मय नेत्र ग्राप को ग्राशा भीर शान्ति का ग्राश्वासन देते है ग्रीर उनका सन्तुलित व्यवहार ग्रापको ग्रपने ग्रालोक में मुग्ध कर देता है।

उनमें और भगवान् बुद्ध में समानता प्रतीत होती है। गौतम बुद्ध महानतम हिन्दू थे, जिन्होंने भ्रमीम मानवता-प्रेम से प्रेरित होकर अपने अनुयायियों को बहुजन हिताय और बहुजन सुखाय धर्म का उपदेश देने के लिए भेजा। उन महान् धर्म-संस्थापक की तरह ही भ्राचार्यश्री तुलसी ने पद-यात्राभ्यों का भ्रायोजन किया है। इस नवीन प्रयोग में कुछ श्रसाधारण सुन्दरता है। तेरापंथ के साधु अपनी पद-यात्राभ्यों में जहाँ कहीं भी जाते हैं, नई भावना और नया वातावरण उत्पन्न कर देते है।

#### धर्म का ठोस ग्राधार

श्रपनी पद-यात्रा के मध्य श्राचार्यश्री तुलसी बंगाल श्राए श्रीर कुछ दिन कलकत्ता में ठहरे। उस समय मैंने उनसे साक्षात्कार किया श्रीर बातचीत की। उन्होंने मुक्तसे श्रणुव्रतों की प्रतिज्ञा लेने को कहा। मुक्ते लज्जापूर्वक कहना पड़ता है कि मैंने श्रपने भीतर प्रतिज्ञाएं लेने जितनी शक्ति श्रनुभव नहीं की श्रीर भिभक पूर्वक वैसा करने से इन्कार कर दिया। किन्तु वे इससे सनिक भी नाराज नहीं हुए। तटस्थ भाव से, जो उनकी विशेषता है श्रीर क्षमाशील स्वभाव से,

जो अपूर्व है, उन्होंने मुक्तसे तौलने, विचार करने भीर फिर निर्णय करने को कहा। आचार्यश्री तुलसी की शिक्षाएं बुद्ध की शिक्षाओं की भौति नैतिक आदर्शवाद पर आधारित हैं। उनके भनुसार नैतिक श्रेष्ठता ही धर्म का निश्चित और ठोस आधार है। जब कि भौतिकवाद का चारों श्रोर बोल-बाला है, उन्होंने मानवता के, नैतिक उत्थान के लिए अणुब्रत-आन्दोलन चलाया है।

दूसरे अनेक व्यक्तियों के साथ जो ज्ञान और अनुभव में विद्वत्ता और आध्यात्मिक भावना में मुभसे आगे हैं, मैं पतनोत्मुख भारत के नैसिक उत्थान के लिए आचार्यथी तुलमी ने जो काम हाथ में लिया है और जो आञातीत सफलताएं प्राप्त की हैं, उनके प्रति इस धवल समारोह के अवसर पर अपनी हार्दिक श्रद्धांजिल भेंट करता हैं।

श्रणुत्रत-आन्दोलन एक महान् प्रयास है और उसकी कल्पना भी उतनी ही महान् है। एक श्रेण्ठ सत्य-धर्मी संन्यासी के द्वारा उसका संचालन हो रहा है। अपने सम्प्रदाय को संगठित करने के बाद उन्होंने १ मार्च, १६४६ को देश व्यापी नैतिक पतन के विरुद्ध अपना आन्दोलन आरम्भ किया।

#### युग पुरुष व बीर नेता

हम सदियों की दासता के बाद सन् १६४७ में स्वतन्त्र हुए, किन्तु हमने अपनी स्वतन्त्रता अनुशासन के कठिन मार्ग में प्राप्ति नहीं की। इसिलिए अधिकार और धन-लिप्सा ने समाज-संगठन की विकृत कर दिया। जीवन के हर क्षेत्र में अकुशलता का बोल-बाला है। नीतिहीनता ने हमारी शक्ति को शीण कर दिया है और इसिलिए जब तक हम नैतिक स्वास्थ्य पुनः आप्त नहीं कर लेते, हम राष्ट्रों के समाज में अपना उचित स्थान प्राप्त करने की आशा नहीं कर सकते। मानव पतन के सर्वव्यापी अन्धकार के मध्य नैतिक उत्यान की उनकी मुखर पुकार आश्वर्यकारक ताजगी लिए हुए आई है और नंगे पाँव व व्वेत वस्त्रधारी यह साधु अचानक ही युगपुरुष व वीर नेता बन गया है। ऐसे ही पुरुष की आज राष्ट्र को तात्कालिक आवश्यकता है।

शुक्ल यजुर्वेद में एक स्फूर्तिदायक मन्त्र है, जिसमें ऋषि ग्रपनी सच्ची श्रास्था प्रकट करते है। "ऐ उज्ज्वल ज्ञान के श्रालोक, शक्ति की श्रीन-शिखा, मुक्ते श्रनीति की राह पर जाने से रोक। मुक्ते मत्यच पर ग्रग्नमर कर। मैं नये पवित्र जीवन को श्रंगीकार करूँगा, श्रमर श्रात्माश्रों के पद-चिक्तो पर चलता हथा मत्य श्रीर साहस का जीवन व्यतीत करूँगा।"

मनुष्य की ब्रात्माभिव्यक्ति कर्म के माध्यम से होती है, ऐसा कर्म जो कष्टसाध्य और स्थायो हो ब्रीर जो श्रात्मा की मुक्ति ब्रीर विजय की घोषणा करते वाला हो। मनुष्य को निःस्वार्थ भाव से फलकी घाकांक्षा का त्याग करके कर्म करता चाहिए। यही सच्ची नपस्या है, यही सच्ची चारित्रिक पूर्णता है। चरित्र और नैतिक श्रेष्ठता के बिना मनुष्य पण् बन जाता है ब्रीर सत्यं, शिवं ब्रीर सुन्दरं का अनुसरण करके वह प्रेम के मार्ग पर ऊँचा और ब्रिश्व ऊँचा उठता जाता है ब्रीर खन्त में ब्रमर ब्रात्माओं के राज-सिंहासन के पद पर ब्रासीन होता है।

## नैतिक मृत्यों की स्थापना

स्रतः स्राचार्यश्री तुलसी ने भारत माता की सच्ची मुक्ति के लिए सणुक्रत-श्रान्दोलन का सूत्रपात करके बडा महत्त्वपूर्ण काम किया है। केवल राजनीतिक स्वतन्त्रता से काम चलने वाला नहीं है। यहाँ तक कि शिक्षा-मुधारों, म्राधिक सफलतान्नों श्रीर सामाजिक उत्थान से भी श्रिधिक सहयोग नहीं मिलेगा। सर्वोपरि द्यावश्यकता इस बात की है कि व्यक्तियों द्यौर सारे समाज के जीवन मे नैतिक श्रीर साध्यात्मिक सूत्र्यों की स्थापना हो। नैतिक पुनक्त्थान का सर्वोत्तम मार्ग यह नहीं है कि लोगों के सामाजिक जीवन में सामूल परिवर्तन होने की प्रतीक्षा की जाये, बल्कि व्यक्ति के सुधार पर घ्यान केन्द्रित किया जाये। व्यक्तियों से ही समाज बनता है। यदि प्रत्येक व्यक्ति सज्जन बन जाये तो सामाजिक उत्थान के पृथक प्रयास के बिसा ही समाज धर्म-परायण बन जायेगा।

जब कोई क्यक्ति प्रतिज्ञा लेता है तो यह श्रपने को नैतिक रूप में ऊँचा उठाने का प्रयास करता है। वह ग्रपने द्वारा श्रंगीकृत कर्तव्य के प्रति धार्मिक भावना से प्रेरित होता है और इसलिए वह उस साधारण व्यक्ति की श्रपेक्षा जिसे कानून ग्रथवा सामाजिक श्रप्रतिष्ठा के भय के भलावा भीर किसी बात मे प्रेरणा नहीं मिलती, श्राज की दुनिया में अधिक सफल होता है।

प्रत्येक व्यक्ति में श्रेष्ठता और महानता का स्वाभाविक गुण होता है चाहे वह समाज के किसी भी वर्ग स सम्बन्धित क्यों न हो। यदि हम प्रत्येक व्यक्ति में घात्म-सम्मान की भावना उत्पन्न कर सकें थ्रीर उसे श्रपने इन स्वाभाविक गुणों का ज्ञान करा सकें, तो चमत्कारी परिणाम ग्रा सकते हैं। यदि श्रात्म-ज्ञान व ग्रात्म-निष्ठा हो तो व्यक्ति के लिए सत्पथ पर चलना ग्रधिक सरल होता है। ऐसी स्थिति में तब वह मदाचार का मार्ग निषेधक न रह कर विधायक वास्तविकता का रूप ले लेता है।

#### प्रतिज्ञा-ग्रहण का परिणाम

अणुवत आन्दोलन आहिसा, सत्य, अस्तेय, बहाचर्य और अपरिग्रह के सुविदित सिद्धान्तों पर आधारित है, किन्तु बह उनमें नई सुगन्ध भरता है। कुछ लोग प्रतिज्ञाओं और उपदेशों को केवल दिखावा और बेकार की चीजें समभते हैं, किन्तु असल में उनमें प्रेरक शक्ति भरी हुई है। उनमें निःस्वार्थ सेवा की ज्योति प्रकट होती है जो मानब-मन में रहे पशु-बल को जला देती है और उसकी राख से नया मानव जन्म लेता है, अमर और देवी प्राणी।

कुछ लोग यह नकं कर सकते हैं कि ये तो युगों पुराने मौलिक सिद्धान्त हैं श्रीर यदि स्नाचार्यश्री तुलमी उनके कल्याणकारी परिणामों का प्रचार करते हैं तो इसमें कोई नवीनता नहीं है। यह तकं ठीक नहीं है। यह साहसपूर्वण कहना होगा कि स्नाचार्यश्री तुलमी ने अपने शक्तितशाली दृढ़ व्यक्तित्व द्वारा उनमें नया तेज उत्पन्न किया है।

श्राचार्यश्री तुलसी श्रणुव्रत-श्रान्दोलन को श्रपने करीब ७०० निःस्वार्थ साधु-साध्वियों के दल की सहायता से चला रहे हैं। उन्होंने प्राचार्यश्री के कड़े अनुशासन में रह कर और कठोर संयम का जीवन बिता कर श्रान्म-जय प्राप्त की है। उन्होंने श्राधुनिक ज्ञान-विज्ञान का भी श्रच्छा श्रध्ययन किया है। इसके श्रातिरक्त ये साधु-साध्वी दृढ संकल्पवान् हैं श्रीर उन्होंने श्रपने भीतर सहिण्णुता और सहनशीलता की श्रत्यधिक भावना का विकास किया है, जिसका हमें भगवान् बुद्ध के प्रसिद्ध शिष्यों में दर्शन होता है।

#### म्राध्यातिमक म्रभियान

यह ब्राध्यात्मिक कार्यकर्ताओं का दल जब गाँवों ब्रीर नगरों में निकलता है तो ब्राह्चर्यजनक उत्साह उत्पन्न हो जाता है ब्रीर नैतिक गुणों की सच्चाई पर श्रद्धा हो ब्राती है। जब हम नंगे पाँव साधुओं के दल को अपना स्वल्प सामान ब्रपने कंधों पर लिए देश के भीतर गुजरते हुए देखते हैं तो यह केवल रोमाचक अनुभव ही नहीं होता, बल्कि बस्तृत: एक परिणामदायी ब्राध्यात्मिक अभियान प्रतीत होता है।

साधु-साध्वियाँ स्वेत वस्त्र धारण करते हैं। वे किसी वाहन का उपयोग नहीं करते। उनका वाहन तो उनके ग्रापने दो पाँव होते हैं। वे साधारणतः किसी को सहायता नहीं लेते, उनका कोई निश्चित निवास-गृह नहीं होता ग्रीर न उनके पास एक पैसा ही होता है। जैसा कि प्राचीन भारत के साधु सन्तों की परस्परा है, वे भिक्षा भी माँग कर लेने है। भ्रमर की तरह वे इतना ही ग्रहण करते हैं, जिससे दाना पर भार न पहे।

श्राचार्यश्री तुलसी का ध्येय केवल लोगों को अपने जीवन का सच्चा लक्ष्य प्राप्त करने में सहयोग देने का एक निःस्वार्थ प्रयास है। पूर्णता प्राप्त करने का लक्ष्य इसी धरती पर सिद्ध किया जा सकता है। किन्तु उसके लिए हमको छोटी-छोटी बातों से प्रारम्भ करना चाहिए। एक-एक बूंद करके ही तो ग्रगाध ग्रसीम समुद्र बनता है। पहले एक प्रतिज्ञा, फिर दूसरी प्रतिज्ञा, इसी प्रकार नैतिक पुनरुत्थान की क्रिया भारम्भ होती है।

#### वैज्ञानिक ग्रौर मनोवैज्ञानिक जीवन-विधि

भाचार्यश्री की जीवन-विधि वैज्ञानिक और मनोवैज्ञानिक दोनों ही प्रकार की है। नैतिक उत्थान का सन्देश सभी

को भाता है। वह जाति और धर्म, लिंग और राष्ट्रीयता, शिक्षा और वातावरण के भेद से परे है। उसका सम्बन्ध शास्वत गुणों से है जिनकी सभी युगों के धार्मिक पुरुषों ने महिसा बलानी है। श्राचार्यश्री ने चरित्र निर्माण कार्य को नई दृष्टि प्रदान की है और नैतिक श्रेष्ठता में ग्रुट श्रद्धा ने चरित्र निर्माण की कला को एक रचनात्मक कार्य बना दिया है।

आध्यात्मिक दुष्काल श्रौर श्रात्म-शिथिलता के इस युग में श्रणुक्षत-श्रान्दोलन ने जीवन की पित्रत्र कला को पुनर्जीवित किया है। पशु की भाँति जीवन बिताना, श्राहार, निद्रा श्रौर मैथुन में ही सन्तोष मानना कोई जीवन नहीं है। वही मनुष्य जीवित है जो धर्म के मार्ग का श्रनुसरण करता है। यह धर्म ही है जो मनुष्य की पाशिवक वृत्तियों को दैवी गृणों में बदल सकता है। श्रनः हम सबको इस श्रान्दोलन का हार्दिक समर्थन करना चाहिए। उससे धार्मिक सौमनस्य उत्पन्न होगा, पूट दूर होगी श्रौर सद्भावना श्रौर प्रेम का प्रसार होगा।

#### समन्बयमूलक ग्रावर्शवाद

आचार्यश्री तुलसी अणुष्ठत-भ्रान्दोलन से भी महान् है। निरसन्देह यह उनकी महान् देन है, किन्तु यही सब कुछ नहीं है। उनकी प्रवृतियाँ विविध हैं और उनकी दृष्टि सर्वव्यापी है। उनका समन्वयमूलक आदर्शवाद उनकी सभी प्रवृत्तियाँ में नये प्राण फूँक देता है, ऐसी प्रफुल्लना ला देता है जो बुद्धिगम्य प्रतीन नहीं होती। श्रगर दुर्गुणों का लोप हो जाता है तो संस्कृति का श्रामन श्रवश्यम्भावी है। जब दुर्गुण, बुराई और पतन नाम शेष हो जाये तो संस्कृति का श्रपने श्राप विकास होता है।

वे प्राचीन भारत के स्रधिकांश धर्माचार्यों से सहमत हैं कि इच्छा ही सारे दुःवों की जड़ है। वे उनकी इस राय से भी सहमत हैं कि जब इच्छा का प्रभाव नष्ट हो जाता है, तभी हम सर्वोच्च शान्ति और धानन्द की प्राप्ति कर सकते है।

कलकत्ता के संस्कृत कालेज में एक साध्वी ने संस्कृत में भाषण दिया था और हमें पता चला कि श्राचार्यश्री साधु-साध्वियों को शिक्षा देने में श्रपना काफी समय वर्ज करते हैं। वे संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान्, श्रोजस्वी वक्ता और गम्भीर विन्तक है। वे श्रपने विचारों में श्रयगामी हैं। वे श्रयक उत्साह और श्रमीम श्रद्धा के साथ देश के एक कोने से दूसरे कोने तक श्रपना नैतिक पुनस्त्थान का सन्देश दे रहे है।

बहुत काम हुआ है और अभी बहुत कुछ होना बंग है। इस कठिन कार्य में हम प्रत्येक भारत प्रेमी से हृदय से सहभागी बनने की प्रार्थना करते है। उत्थान के ऐसे निरन्तर प्रयास से ही कबियों और दार्शनिकों की महान् भारत की वह कल्पना साकार हो सकेगी। भारतीय संस्कृति के इस संरक्षक का सभी अभिनन्दन करते है। राजस्थान का यह सपूत दीर्शनीवी हो और अपने पावन ध्येय को सिद्ध करे।



## तेजोमय पारदर्शी व्यक्तित्व

श्री केवारनाथ चटर्जी सम्पादक—माडर्न रिष्यू, कलकला

#### प्रथम सम्पर्क का मुयोग

वीस वर्ष पूर्व सन् १६४१ के पत्रभड़ की बात है। एक सित्र ने मुक्ते सुक्ताया कि मैं अपनी पूजा की छुट्टियाँ बीकानेर राज्य में उनके घर पर बिताऊँ। इससे कुछ पहले मैं सस्वस्थ था और मुक्ते कहा गया कि बीकानेर की उत्तम जल-वायु में मेरा स्वास्थ्य सुधर जायेगा। कुछ मित्रों ने यह भी सुक्ताया कि ब्रिटिश भारत की सेनाओं के लिए देश के उस भाग में रँगक्रटों की भरती का जो आन्दोलन चल रहा है, उसके बारे में मैं कुछ तथ्य मंग्रह कर सक्रा। किन्तु यह तो दूसरी कहानी है। मैंने अपने मित्र का निमन्त्रण स्वीकार कर लिया और कुछ समय पटना में ठहरने और राजगृह, नालन्दा तथा पावापुरी की यात्रा करने के बाद में बीकानेर राज्य के भादरा नामक कस्बे मं पहुंच गया।

बीकानेर की यात्रा एक ने ऋषिक अर्थ में लाभदायक सिद्ध हुई। निस्मन्देह सबसे मुखद अनुभव यह हुआ कि जैन ज्वेतास्वर तेरापंथ-सम्प्रदाय के प्रधान आचार्यश्री तुलसी से संयोगवन भेट करने का अवसर सिल गया। कुछ सित्र भादरा आए और उन्होंने कहा कि बीकानेर के मध्यवर्ती करने राजलदेसर में कुछ ही दिनों में दीक्षा-समारोह होने वाला है। उसमें सम्मिलित होने के लिए आप आने का कष्ट कर। कुछ नये दीक्षार्थी तेरापंथ साधु-समाज में प्रविष्ट होने वाले थे और आचार्यश्री तुलसी उनको दीक्षा देने वाले थे।

मेर ग्रांतिथेय ने मुक्तमें यह निमन्त्रण स्वीकार करने का श्रमुरोध किया, कारण ऐसा ग्रवसर क्वचित् ही मिलता है ग्रीर मुक्ते जैन धर्म के संयम-प्रधान पहलू का गहराई से ग्रध्ययन करने का भौका मिल जाएगा। इसी सम्भावना को ध्यान में रख कर मैं श्रपने श्रांतिथेय के भतीजे श्रीर एक श्रन्य मित्र के साथ राजलदेसर के लिए रवाना हुआ।

यह किसी दर्शनीय स्थान का यात्रा-वर्णन नहीं है और नहीं यह साधारण पाठक के मन-बहलाय के लिए लिखा जा रहा है; इसलिए दीक्षा-समारोह के अवसर पर मैंने जो कुछ देखा-सुना, उसका अलंकारिक वर्णन नहीं करूंगा और नहीं उस समारोह का विस्तृत विवरण प्रस्तृत करूंगा। मैंने दीक्षा की प्रतिज्ञा लेने के एक दिन पहले दीक्षाथियों को भड़-कीली वेश-भूषा में देखा। उनके चेहरों पर प्रसन्तता लेल रही थी। उनसे से अधिकांश युवा थे और उनसे स्त्री और पुरुष दोनों ही थे। मुक्ते यह विशेष रूप से जानने को मिला कि उन्होंने अपनी वास्तविक इच्छा से साधु और साध्वी बनने का निश्चय किया है। वे ऐसे साधु-समाज में प्रविष्ट होंगे, जिसमें सांसारिक पदार्थों का पूर्णतया त्याग और आत्म-संयम करना पड़ता है। मुक्ते यह भी जात हुआ कि न केवल दीक्षार्थों के संकल्य की दीर्घ समय तक परीक्षा ली जाती है, बिक्त उसके माता-पिता व संरक्षकों की लिखित अनुमित भी आवश्यक समक्षी जाती है। इसके बाद मैंने व्यक्तिगत रूप से इस वात की जांच की है और इसकी पुष्टि हुई है। जहाँ तक इस साधु-समाज का सम्बन्ध है, मुक्ते उनकी सत्यता पर पूरा विश्वास हो गया है।

मेरे सामने सीधा और ज्वलन्त प्रश्न यह था कि वह कौन-सी शक्ति है, जो इस कठोर और गम्भीर दीक्षा-समा-रोह में पूज्य ग्राचार्यश्री के कल्याणकारी नेत्रों के सम्मुख उपस्थित होने वाले दीक्षाथियों को इस संसार और उसके विविध श्राकर्षणों, मुखों भीर इच्छाश्रों क्रा त्याग करने के लिए प्रेरित करती है ?

## ग्रपनी पृष्ठभूमि

इस विषय में श्रीधक लिखने से पूर्व मैं इस संसार और मनुष्य-जीवन के बारे में अपना दृष्टि-बिन्दु भी उपस्थित करना चाहुँगा। मेरे पूर्वजों की पृष्ठभूमि उन विद्वान् ब्राह्मणों की है जो अपनी आँखें खुली रख कर जीवन बिताते थे और उनके मन में निरन्तर यह जिज्ञासा रहती थी—तत् किम्? मेरी तात्कालिक पृष्ठभूमि ब्रह्म समाज की थी। यह हिन्दुओं का एक सम्प्रदाय है जो उपनिषदों की जानमार्गी व्याख्या पर आधारित है। मुभे विज्ञान की शिक्षा मिली है और मैंने लन्दन में डिग्नी और डिप्लोमा प्राप्त किया है। बाद में मेरे पूज्य पिताजी ने मुभे पत्रकारिता की शिक्षा दी, जो अपने समय में इस देश के एक महान् और उदार सम्पादक थे। मैंने विस्तृत भ्रमण किया और तीन महाद्वीपों का जीवन भी देखा है। मेरे पिताजी को सार्वजनिक जीवन में जो स्थान प्राप्त था, उसके कारण मैं देश के प्रायः सभी महापुरुषों और कुछ विशिष्ट विदेशी व्यक्तियों से भी मिल चुका हूँ।

इस प्रकार मुक्ते यह गौरव है कि मेरी पृष्ठभूमि एक सबे हुए निरीक्षक की थी, जो जीवन को एक यथार्थबादी दृष्टि से देख सकता है। पूज्य भावार्यश्री तुलसी से मेंट के समय मेरी भवस्था ५० वर्ष की थी और जीवन के सम्बन्ध में मुक्ते कोई विशेष भ्रम नहीं थे। मैंने सन् १६१४-१८ की अवधि में प्रथम महायुद्ध को निकट से देखा था और इसलिए मानव-स्वभाव और मानव-दुर्बलताओं एवं विकारों के सम्बन्ध में काफी शंकाशील बन गया था। मैं यह सब इसलिए लिख रहा हूँ कि दीक्षार्थियों के सम्बन्ध में मेरी जिज्ञासा का हल धार्मिक उत्साह से उत्पन्न नहीं हुआ था, बल्कि बात इसके बिल्कुल विपरीत थी।

वह ऐसी कौन-सी शक्ति थी, जिसने इन दीक्षाथियों को कठोर संयम और सम्पूर्ण त्याग का जीवन श्रपनाने को प्रेरित किया ? मैंने एक दिन पूर्व उनमें से कुछ को भड़कीली वेश-भूषा में जीवन का उपभोग करते हुए देखा था। दीक्षा-समारोह में मैं इतना निकट बैठा हुआ था कि दीक्षाथियों को साफ-साफ देख सकता था। उनमे दो या तीन लड़ के और एक लड़की थी और वे यौवन की देहली में पाँव रखने जा रहे थे। एक दिन पहले मैंने जो कुछ देखा, उसके बाद यह तो प्रक्ष ही नहीं उठना कि उन्होंने अभाव से प्रेरित होकर यह निर्णय किया होगा। अवश्य ही धार्मिक वातावरण के प्रभाव से इन्कार नहीं किया जा सकता, किन्तु प्रत्येक उदाहरण में क्या यही एकमात्र प्रेरक कारण हो सकता है? यदि इस धर्म को मानने वाले मेरी जान-पहिचान के कुछ लोगों की व्यावमायिक नैतिकता और सामान्य जीवन-पद्धति पर विचार किया जाय तो यही कहना होगा कि यही एक मात्र कारण नहीं है। मुक्ते यह खेदपूर्वक लिखना पड़ रहा है, किन्तु उम समय मेरा यही तर्क था और स्वयं पूज्य आचार्यश्री ने अपने अनुयायियों के बारे में, अणुद्रत-आन्दोलन के सिलमिले में, अपनी पद-यात्रा के दौरान में कलकत्ता में जो कुछ कहा था, उसके आधार पर यह लिखने का साहस कर रहा है।

अपने प्रदन का जो उत्तर मिला, उसे मैं सीघे और स्पष्ट रूप में यहाँ लिख दूँ। इस पाथिव संसार में, साधारण मनुष्यों के लिए मानव प्राणियों पर दैवी प्रभाव किस प्रकार काम करता है, यह मालूम करना श्रासान नहीं होता। जहां तक सामान्य जन का सम्बन्ध है, तीव्रता और प्रकाश का प्रसार आत्मा के भान्तरिक विकास पर निर्भर करता है जो मशालवाहक का काम करना है। मशाल की ज्योति मशालवाहक की आन्तरिक शक्ति के परिमाण पर मन्द या तीव्र होती है। जरूरतमन्दों और पीड़ितों में श्री रामकृष्ण के उपदेशों का प्रचार करने के लिए असीसी के मंत फांसिम जैमी समर्पित आत्मा की आवश्यकता थी। इसी प्रकार आवार्यश्री भिक्षु ने तेरापंथ की स्थापना की। इसलिए मुक्ते अपने प्रश्न का उत्तर प्राचार्यश्री तुलमी के व्यक्तित्व में लोजना पड़ा।

दीक्षा-सभारोह के पहले मैं उनसे मिल चुका था। उन्होंने मुना था कि बंगाल के एक पत्रकार आये हैं। उन्होंने दीक्षाधियों के चुनाव की विधि और दीक्षा के पहले की मारी कियाएं मुक्ते समक्काने की इच्छा प्रकट की। इसका यह कारण था कि उनके साधु समाज के उद्देशों और प्रवृत्तियों के बारे में कुछ अपवाद फैलाया गया था। उन्हें यह जानकर बड़ी प्रसन्तता हुई कि मैं हिन्दी अच्छी तरह बोल और समक्क सकता हूँ और उन्होंने सारी विधि मुक्ते विस्तार से समका दी। अक्त लोग दर्शन करने और पूज्य आवार्यश्री के आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए आते रहे और

इससे बीच-बीच में बाधा पड़ती रही। वे भक्तों को श्राशीर्वाद देते जाते और शान्तिपूर्वक दीक्षा की विधि विस्तार से समभाते रहे।

अन्त में उन्होंने हँसते हुए मुक्ते कोई प्रश्न पूछने के लिए संकेत किया। मेरे मस्तिष्क में अनेक प्रश्न थे, किन्तु उनमें से दो मुख्य और नाजुक थे; कारण उनका सम्बन्ध उनके धर्म मे था। काफी संकोच के बाद मैने कहा कि यदि मेरे प्रश्न आपित्त जनक प्रतीत हों तो वे मुक्ते क्षमा कर दें। मैंने कहा कि मैं दो प्रश्न पूछना चाहता हूं और मुक्ते भय है कि उन पर आपको बुरा लग सकता है। इस पर उन्होंने कहा कि यदि प्रश्न ईमानदारी से पूछोगे तो बुरा लगने की कोई बात नहीं है। तब मैंने प्रश्न पूछे।

#### को प्रदन

पहला प्रश्त जीवन के प्रकार और मेरी विनीत मान्यता के अनुसार पाप और मोक्ष के बारे में या। जिस धर्म में मेरा पालन-पोषण हुआ था, उसमें गृहस्थ आश्रम को मूलनः पापमय नहीं समभा जाता; जबिक जैन धर्म के सिद्धान्तों के अनुसार संसार के सम्पूर्ण त्याग द्वारा ही मोक्ष प्राप्त किया जा सकता है। अनः यदि में अपने धर्म पर श्रद्धा रख कर चलूँ तो क्या मेरे जैसे प्राणी को मोक्ष मिल ही नहीं सकता?

दूसरा प्रश्न था कि दुनिया किस तरह चल रही है ? उस समय दितीय महायुद्ध अपने पूरे वेग, रक्तपात और विनाश के साथ चल रहा था। मैंने पूछा कि जब दुनिया में सत्ता और अधिकार की लिप्सा का बोलवाला है, पिंतशाली वहीं है जो सूक्ष्म नैतिक विचारों की कोई परवाह नहीं करता और उनको कमजोरों और अज्ञानियों का अम-मात्र समभते हैं, क्या ग्रहिसा की विजय हो सकती है ? उनके निकट नैनिकता ग्रीर धर्म-सापेश शब्द हैं। विज्ञान में दक्ष ग्रीर युद्ध करने में समर्थ लोगों के लिए जो उचित है, वह कमजोरों और श्रकुशल लोगों के लिए उचित नहीं है। अपने कथन के प्रमाण स्वरूप ने इतिहास की साक्षी प्रस्तुत करते है।

मेरे साथ एक परिचित सज्जन थे, जो तेरापंथ सम्प्रदाय के अनुयायी थे। उन्होंने कहा कि मेरा दूसरा प्रश्न आचार्यश्री की समक्त में नहीं आया। इसमें मेरे मनमें शंका पैदा हुई और मैंने अपने मित्र की श्रोर एवं किर आचार्यश्री की श्रोर देखा। आचार्यश्री, जब मैं प्रश्न पूछ रहा था, तो चुप थे श्रोर मेरे प्रश्नों का विचार करते प्रतीत हुए। किन्तु मैंने देखा कि उनके शान्त नेत्रों में प्रकाश की किरण चमक उठी और उन्होंने कहा कि इन प्रश्नों का उत्तर देने के लिए शान्त बाता-वरण की आवश्यकता होगी, इसलिए अच्छा होगा कि आप सायंकाल सूर्यास्त के बाद जब आयंगे, मैं प्रतिक्रमण व प्रवचन समाप्त कर चुक्ना और तब एकान्त में वार्तालाप अच्छी तरह हो सकेगा।

मुभे पता था कि मुभे विशेष अवसर दिया जा रहा है; क्योंकि सूर्यास्त के बाद आचार्यश्री से उनके निकट शिष्यों के अतिरिक्त बहुत कम लोग मिल पाते है। मैंने यह सुभाव सहर्ष स्वीकार कर लिया।

## धर्म-ग्रुमों से विशेष चर्चा

मेरे प्रश्न घिसेघिसाए और सामान्य थे, कारण द्वितीय महायुद्ध के बाद के वर्षों में दुनिया बहुत अधिक बदल गई है। किन्तु जिस समय मैंने ये प्रश्न पूछे थे, उस समय उनका विभिन्न जातियों, धार्मिक सम्प्रदायों और जीवन-दर्शनों के बीच विद्यमान मतभेदों की दृष्टि में कुछ और ही महत्त्व था। उस समय मनुष्य और मनुष्य के मध्य सहिष्णुता के अभाव के कारण में मतभेद उतने तीच और अनुल्लंघनीय थे कि विचारों का स्वतन्त्र आदान-प्रदान न केवल असम्भव; बल्लि ब्यर्थ हो गया था। इस प्रकार के आदान-प्रदान के फलस्वरूप प्रतिदिन मुस्थिर रहने वाले तनाव में वृद्धि हो हो सकती थी।

मैं पहला प्रश्न थोडे हेर-फेर के साथ भिन्त-भिन्न धर्मों के अनेक विद्वान् धर्म-गुरुखों से पूछ चुका हूँ। उनमे एक रोमन कैथोलिक सम्प्रदाय के मुक्ति-गंथी पादरी, एक मुस्लिम मौलाना और एक हिन्दू सन्यासी शामिल थे। मुसे जो उनमे उत्तर मिले, वे या तो अत्यन्त दयनीय या निश्चित रूप से उद्ण्डतापूर्ण थे। उनको समाधानकारक तो कभी नहीं कहा जा सकता। दूसरे प्रश्न के सम्बन्ध में, दितीय महायुद्ध जो मौत और विनाश के पथ पर तेजी से आगे बढ़ रहा था, श्राहंसा की विजय की समस्त आशाओं को निर्मूल करता हुआ प्रतीत होता था। जैसा कि विश्व किव रवीन्द्रनाथ ने अपनी एक निराशाजनक किवता में इसी आशय की पुष्टि करते हुए कहा भी था— 'करुणाधन, धरणी तले करो कलंक शून्य।' अवश्य ही शान्ति के दूसरे उपासक महारमा गांधी स्वयं अपने अनुयायियों के विरोध और शंकाशील उद्गारों के बावजूद भी अपनी अहिसा की मान्यता पर अविचल भाव से डटे हुए थे। यह स्थिति तो केवल भारत में थी। शेष दुनिया में जंगल के कानून का बोलबाला था और केवल शहिसा का नाम लेने मात्र पर हल्की और तिरस्कारपूर्ण हँसी सुनने को मिलती थी।

इस पृष्ठभूमि में मैंने अपने दो प्रश्न पूछे थे और मैं जिज्ञासा और प्रत्याशामिश्रित भाव से उनके उत्तरों की प्रतीक्षा कर रहा था; क्योंकि उत्तर ऐसे व्यक्ति के द्वारा मिलने वाले थे जो भारतीय ज्ञान के प्रकाण्ड विद्वान् समभ्रे जाते हैं; भले ही उन्हें पश्चिम की रीति-नीति की प्रकट जानकारी न हो। मैं अपने परिचित साथी के कथन से, जो उनके अनु-यायी थे, कुछ ऐसा ही समभा था।

मैं निराश नहीं हुआ। उन एकान्त शान्त नेत्रों की जमक से जो आशाएं मेरे हृदय में उत्पन्न हुई थीं, उनकी निराशा में परिणत नहीं होना पड़ा। मेरे परिजित मित्र ने अपने अंग्रेजी भाषा के ज्ञान के दर्प में इस प्राचीन और युगमान्य उक्ति को या तो सुना नहीं या उस पर व्यान नहीं दिया कि प्रशा भिनत्तु में तमः अर्थात् सच्चा ज्ञान अज्ञान के समस्त अन्धकार का नाश कर देता है।

जब मैं श्राचार्यश्री से संघ्या के शान्त समय में पुनः मिला तो मुक्तसे कहा गया कि मैं अपने प्रश्नों को विशेषकर दूसरे प्रश्न को विस्तार से पुनः पूर्छू। मैंने अपने दूसरे प्रश्न का विस्तार करते हुए कहा कि पश्चिम में लोग पौरुष और शौर को हमारे प्राचीन क्षत्रियों की भाँति मानवी गुण मानते हैं और जीवन में साहस को सर्वोपरि स्थान देते हैं। उत्तर स्पष्ट और निश्चित थे और अच्छा होता कि मैंने उनको पूरा लिख लिया होता। किन्तु भव भपनी स्मृति के श्राधार पर मंक्षेप में ही उनका विश्लेषण कर पाउँगा।

प्रथम प्रश्न का उत्तर देते हुए आचार्यश्री ने कहा कि किसी धर्म, मान्यता या सम्प्रदाय और उसके संतों या धर्माचार्यों के बारे में निन्दात्मक या हीन भाषा का प्रयोग करना स्वयं उनके धर्म के विरुद्ध है।

दूसरे प्रश्न का उत्तर काफी विस्तृत भीर लम्बा था। उनका कहना था कि हिसा भीर संदेह-लिप्सा दो मूलभूत बुराइयाँ हैं, जिनसे मानव-जाति पीड़ित है भीर ये युद्ध के अत्यन्त उग्न भीर व्यापक प्रतीक है। इन दोनों नग्न बुराइयों पर विजय प्राप्त करने का एकमात्र मार्ग ब्रहिसा ही है और दुनिया को यह सत्य एक दिन स्वीकार करना ही होगा। मनुष्य सबसे बड़ी बुराइयों पर विजय प्राप्त किये बिना कैसे महत्तर सिद्धि प्राप्त कर सकता है?

ग्रन्त में ग्राचार्यश्री मेरी श्रोर मुस्कराये ग्रीर पूछा कि क्या मेरा समाधान हो गया । मैंने उत्तर दिया कि मुक्ते उत्तर ग्रत्यन्त सहायक प्रतीत हुए हैं श्रीर मैंने प्रणाम कर उनमे विदा ली ।

#### उसके बाद

इस घटना के वर्षों बाद, मैंने कलकत्ता में एक विशास जनसमूह से भरे हुए पण्डाल में धाचार्यश्री को अणुप्रत-धान्दोलन पर प्रवचन करते हुए सुना। उसके बाद उन्होंने थोड़े समय के लिए मुफ्तसे व्यक्तिगत वार्तालाप के लिए कहा। उन्होंने देश के भीतर नैतिक मूल्यों के ह्रास पर अपनी चिन्ता व्यक्त की। उन्होंने कहा कि उन्हें भष्टाचार धौर नैतिक पतन की शक्तियों के विरुद्ध ग्रान्दोलन करने की अन्तर्तम से प्रेरणा हो रही है, विशेषकर जबकि स्वयं उनके श्रपने सम्प्र-दाय के लोग भी तेजी से पतन की धोर जा रहे हैं।

मैंने पूछा कि अपनी सफलता के बारे में उनका क्या ख्याल है, उनके मुख पर वही मुस्कराहट खेल गई, हालाँकि उनके नेत्रों में उदासी की रेखा खिची हुई दिखाई दी। उन्होंने कहा, जब वह नई दिल्ली में पंडित जवाहरलाल नेहरू से मिले थे तो उन्होंने पंडितजी से पूछा था कि अणुवत-आन्दोलन की सफलता के बारे में उनका क्या ख्याल है। पंडितजी ने कहा था कि वह दिन-प्रतिदिन दुनिया के सामने अहिंसा का प्रचार करते रहते हैं, किन्तु उनकी बात कौन सुनता है? पंडितजी ने कहा कि हमको ग्रपने घ्येय पर भ्रटल रहना है भौर उसका प्रचार करते जाना है। ग्राचार्यश्री ने कहा कि शान्ति भ्रौर पवित्रता के घ्येय पर उनकी भी ऐसी ही श्रद्धा भौर निष्ठा है।

#### तेजोमय महापुरुषों की झगली पंक्ति में

मुक्ते सौभाग्य श्रथवा दुर्भाग्य वश श्रपने जीवन के ७० वर्षों में ऐसे बहुसंख्यक लागों से मिलने का काम पड़ा जो प्रसिद्ध और महान् व्यक्ति की स्थाति श्रजित कर चुके थे। खेद है कि उनमें से बहुत कम लोगों के मुख पर मैंने सत्य श्रौर पिवश्रता की वह उज्ज्वल ज्योति श्रपने पूरे तेज के साथ चमकते हुए देखी, जैसी कि एक शुद्ध श्रावदार हीरे में चमकती दिखाई देती है। मैं पारदर्शी और तेजोमय महापुरुषों की श्रगली पंक्ति में श्राचार्यश्री तुनसी का स्थान देखता है।



# सम्भवामि युगे युगे

श्री को० झ० सुब्रह्मण्य झय्यर भूतपूर्व उपकुलपति—लखनऊ विश्वविद्यालय

#### प्रगति की गति

प्राज संसार एक भयंकर स्थित में है। एक फ्रोर तो पाश्चात्य विद्वान् ग्रीर वैज्ञानिक प्रपने बुद्धि-बल ग्रीर परिश्रम से विज्ञान की अद्भुत वृद्धि करा रहे हैं भीर दूसरी ग्रोर वहीं के राजनैतिक नेता वैज्ञानिकों द्वारा ग्राविष्कृत तत्त्वों के आधार पर नये-नये विध्वंसक ग्रस्त-शस्त्र बनवा रहे हैं ग्रीर सारे संसार को विनाशोन्मुख बना रहे हैं। जहाँ मनुष्य-निर्मित ग्रह सूर्य का परिभ्रमण कर रहा है, वहाँ यह समाचार भी सुनने में ग्राता है कि एक क्षण में एक विस्तृत भूमि-भाग को निर्जीव बनाने की शक्ति रखने वाले 'कोबाल्ट बम' का निर्माण ग्रत्यन्त निकट है। प्रेम को ऐहिक ग्रीर पारली कि सुल का मुख्य उपाय घोषित करने वाले ईसाई धर्म में उसी के अनुयायियों की श्रद्धा प्रतिदिन शिथिल होती जा रही हैं। विमानों के नये-नये प्रकार ग्राविष्कृत हो रहे हैं, जिससे पृथ्वी में दूरता का लोप-सा हो रहा है। विप्रकृष्ट मनुष्य-जातियां सन्तिकृष्ट हो रही हैं। इसके फलस्वरूप ग्रव सभी मनुष्य-जातियां ग्रन्य मनुष्य जातियों को साक्षान् देख सकती हैं ग्रीर उनसे सम्पर्क ग्रीर व्यवहार कर मकती हैं। परन्तु इस परस्पर-परिचय से पारस्परिक ग्रादर ही बढ़ रहा हो, यह बात नहीं है; कभी-कभी पारस्परिक द्वेष भी बढ़ना है। जब तक विजातीय ग्रीर विधर्मा लोग दृष्टिगोचर नहीं होने हैं, विप्रकृष्ट ही रहते हैं, तब तक उनके प्रति उपेक्षा की ही बुद्धि ग्रधिकांश बनी रहती है। ग्रव तो सब लोग सब जगह जल्दी पहुंच जाने हैं। ग्रव भारतीय ग्रधिक संस्था में विदेशों में संचार करते है ग्रीर निवास भी करते है। इसी प्रकार विदेशी ग्रव ग्रिय ग्रविक संस्था में भारत ग्राने लगे हैं। इसलिए परस्पर भेद ग्रियक स्पष्ट होने लगा है।

## सम्यता, संस्कृति ग्रौर युग

इस नये संसार में भारत, अपने स्वभाव और अपनी संस्कृति के अनुसार, एक विशिष्ट स्थान प्राप्त करने के लिए यसन कर रहा है। अब भारत ने राजनैतिक स्वातन्त्र्य प्राप्त कर लिया है। परन्तु स्वातन्त्र्य एक उपाय-मात्र है। उसके द्वारा एक बड़े लक्ष्य को सिद्ध करना है तथा इस प्राचीन देश को नतीन बनाता है। यह एक बहुत बड़ा काम है और उसमें हर व्यक्ति का सहयोग अपेक्षित है। इस देश की पुरानी सस्यता और संस्कृति को इस नये युग के अनुरूप बनाता है। जीवन के हरएक विभाग में आमूल परिवर्तन लाना है। यह काम प्रारम्भ हो गया है। केन्द्रीय सरकार की जो पर्तवर्षीय योजनाएं चल रही हैं, उनका मुख्य उद्देश्य यही है। उनमें यद्यपि आर्थिक सुधार पर अधिक जोर दिया जा रहा है, फिर भी अधिकारियों को इस वात का पूरा जान है कि केवल आर्थिक उन्तति से, केवल दारिद्रध-निवारण से, देश की उन्तित नहीं हो सकती है। साथ-साथ अनेक सामाजिक सुधार भी आवश्यक है। शिक्षा-क्षेत्र में यह देश बहुत पिछड़ा हुआ है। इस युग में यह लज्जा और परिभव की बात है। यद्यपि इस देश में अच्छे-अच्छे बिद्धान् भी मिलते है। परन्तु इस युग में उन्तित की कमौटी ही दूसरी है। केवल बीस प्रतिशत आदमी ही पेट-भर खा सके और सब भूखे रह जायें तो यह देश को समृद्धि नहीं कही जा सकती है। अच्छे-अच्छे बिद्धान् भले ही मिलते हों, परन्तु अधिकांश जनता यदि निरक्षर है तो दशा उन्तित की नहीं समभी जा सकती है। इतनी विद्वत्ता तो व्यर्थ गई, क्योंकि उसका साधारण जनता पर कोई असर ही नहीं हुआ। इस युग में साधारण जनता की उन्तित ही उन्तित समभी जाती है। इस दृष्टि से अभी भारत में बहुत काम बाकी है।

काम इतना बढ़ा और सर्वतोमुख है कि सारी जनता यदि बढ़ी तत्परता ग्रीर एकता के साथ निरन्तर प्रयत्न करे, तब कार्य-सिद्धि की सम्भावना है, नहीं तो बिल्कुल नहीं है। कुछ इने-गिने व्यवितयों के इस काम में भाग लेने से लक्ष्य पूरा नहीं हो सकता है। सारी जनता का सहयोग अपेक्षित है; बढ़ा ऐकमत्य हो और उत्साह हो। चीन के सम्बन्ध में भारत में तरह-तरह की भावनाएं हैं। वहाँ की राजनैतिक और आधिक व्यवस्था के बारे में यहाँ काफी मतभेद भी हैं। कुछ भारतीय चीन हो श्राये हैं श्रौर उन्होंने श्रपने-ग्रपने श्रनुभवों का वर्णन भी किया है। इन वर्णनों को पढ़ने के बाद श्रौर लौटे हुए कुछ व्यक्तियों से वार्तालाप करने के अनन्तर यह बात स्पष्ट हो जाती है कि चीन में उत्साह है भीर एकता है। चीन की जनता अपने देश की उन्नति के लिए बड़े उत्साह के साथ भगीरथ प्रयत्न कर रही है। इस बात की भारत में भत्यन्त श्रावश्यकता है। क्या यहां अपेक्षित उत्साह और एकता है? कुछ अंश में तो दोनों हैं। कुछ अंश में एकता है, इस बात का प्रमाण यह है कि सारे भारत में एक ही राजनैतिक दल राज्य कर रहा है। भारत ने संसार का सबसे बडा प्रजातन्त्र स्थापित किया है भीर वह चल भी रहा है। देश की उन्नति के लिए बड़ी-बड़ी योजनाएं बनाई जा रही हैं और कार्यान्वित की जा रही हैं। इस काम में लाखों की संख्या में सरकारी कर्मचारी लगे हैं, ग्रसंख्य साधारण व्यक्ति भी व्यापत हैं। जहाँ रवातन्त्र्य के पहले न केवल अंग्रेजी राज था, अनेक छोटी-छोटी देशी रियासनें भी थीं, राजा-महाराजे और नवाब भ्रपने-भ्रपने राज्य में स्वेच्छानुसार राज करते थे; वहाँ तब इन रियासतों में प्रजा का कोई भी भ्रधिकार नही था। इस समय तो भारत का कोई भी खंश नहीं, जहां प्रजातन्त्र चल नहीं रहा हो और जहां प्रजा का अधिकार न हो। इस दृष्टि से समस्त भारत एक ही सूत्र में बाँधा गया है। यह एक प्रकार की एकता है। यह अवश्य उन्नति का लक्षण है। इसके श्राधार पर बड़े-बड़े काम किये जा सकते हैं।

#### चरित्र-भ्रंश

कुछ सन्तोपजनक बातों के होते हुए भी स्वानन्त्र्य के बाद देश में ग्रसन्तोप फैल रहा है। पचवर्षीय योजनाओं के सफल होने पर भी देश में शिका<mark>यते सुनने मे ब्रा रही हैं । ये दु</mark>:ख की ब्रावाजें साधारण जनता की दरिद्रता ब्रीर पिछड़ी हई स्थित के सम्बन्ध में नहीं हैं। चारों स्रोर से एक ही शब्द-प्रयोग सूनने में स्नाता है और वह है 'चरित्र-भ्रंश'। लोग श्रपने साधारण वार्तालाप में, नेतु-वर्ग श्रपने भाषणों में, यही घोषित करते हैं कि देश के सामने सबसे बड़ी समस्या जनता के चरित्र-भ्रंश की है । धर्म और मानवता का पुरा निरस्कार करके लोग भ्रपना स्वार्थ साधने में तत्पर है । जीवन के हर-एक क्षेत्र में इस बात का अनुभव किया जा रहा है। जनता का ऐसा कोई भी वर्ग नहीं है जो इस चरित्र-भ्रश से बचा हो। किसी वर्ग, दल, धर्म, सम्प्रदाय या वर्ण को दूसरों पर इस विषय में अभियोग करने का अधिकार नहीं है। जब तक गांधीजी हमारे बीच थे, तब तक हम लोगों के एक बड़े पथ-प्रदर्शक थे। वे हर एक व्यक्ति को, हर एक दल को, हर एक वर्ग को, शासन के अधिकारियों को, समस्त देश को चरित्र की दृष्टि से देखा करते थे। उनकी वही एक कसौटी थी। राजनीति के क्षेत्र में धर्म ग्रौर चरित्र की रक्षा करते हुए काम करना ग्रसम्भव समभा जाता था। उनका सारा जीवन इस बात का प्रमाण है कि यह विचार श्रत्यन्त भ्रममूलक है । प्रतिदिन श्रपनी प्रार्थना-सभाशों में जो छोटे-छोटे दस-दस मिनट के भाषण दिया करते थे, उनका मूख्य उद्देश्य जनता का चरित्र-निर्माण ही था। उनके ये भाषण बड़े मार्मिक थे, विचारशील लोग उनकी प्रतीक्षा करते थे, समाचार-पत्रों में सबसे पहले उन्हीं को पढ़ा करते थे ग्रीर दिन में भपने मित्रों के साथ उन्हीं की चर्चा करते थे। इन भाषणों का प्रभाव सरकारी कर्मचारियों पर, प्रध्यापक और विद्यार्थियों पर, व्यापारियों पर, गृहस्थों पर, धर्मोपदेशकों पर, सारी जनता पर पड़ता था। गांधीजी के स्वर्गवास होने के बाद उनका वह स्थान अब भी रिक्त है। कोई भी उसको ग्रहण करने में मपने को समर्थ नहीं पा रहा है।

## धर्म निरपेक्षता बनाम धर्म-विमुखता

देश के पुनर्निर्माण में सबसे बड़ा काम केन्द्रीय और प्रादेशिक शासनों के द्वारा ही किया जा रहा है। यह स्वाभाविक भी है। उनके पास शक्ति भी है, घन भी है। परन्तु इस काम में शासनों की एक विशेष दृष्टि होती है। उनकी वृष्टि अधिकांश आधिक होती है। हमारे शासन को धर्म-निरपेक्ष शासन होने का बढ़ा गर्व है। बास्तव में तो हमारा शासन धर्म-निरपेक्ष शासन नहीं है। धर्म विशेष निरपेक्ष भने ही हो, परन्तु सर्वथा धर्म से विमुख नहीं है। कोई भी शासन सामान्य धर्म की उपेक्षा नहीं कर सकता। परन्तु वस्तुस्थित यह है कि शासन की बड़ी-बड़ी योजनाएं धर्म की दृष्टि से नहीं बनाई जा रही हैं। हमारा शासन तो अवस्थ बाहता है कि जनता का चरित्र ऊँचा हो। हमारे शासन को बहुत दु:ख है कि देश में स्वातन्त्र्य के बाद चरित्र गिर रहा है। परन्तु शासन का विचार यह है कि देश में आर्थिक उन्नति के साथ-साथ चरित्र की उन्नति स्वयं ही हो जायेगी। अर्थित्र-उन्नति के साक्षात् प्रयत्न करना शासन का काम नहीं है, वह तो जनता का काम है।

प्राचीन भारत में प्रिरिस्थितियाँ भिन्न थीं। जनता में धर्म बुद्धि श्रधिक थी, परलोक से उर था, धर्माचार्यों के नेतृत्व में श्रद्धा थी। प्रत्येक धर्म ग्रीर सम्प्रदाय के श्रनेक धर्माचार्य होते थे और जनता पर बड़ा प्रभाव था। शासन ग्रीर धर्माचार्यों का परस्पर सहयोग था। दोनों मिलकर जनता को चरित्र-भ्रंश से बचाते थे। वह परिस्थिति श्रव नहीं है। प्रश्न यह है— प्रव क्या हो ?

## धर्माचायाँ के लिए स्वर्णिम प्रवसर

परिस्थित तो अवश्य बहुत बदल गई है; परन्तु स्मरण रहे कि हम लोग अपने-अपने घम को सनातन मानते हैं। हम लोग मानते हैं कि परिस्थित के भिन्न होते हुए भी मानव-जीवन में कुछ ऐसे तस्व हैं जो सनातन है, जिनकों स्वीकार किये विना मनुष्य-जीवन सफल नहीं हो सकता है, मनुष्य मुख प्राप्त नहीं कर सकता है। भारत में अनेक धर्मी अीर सम्प्रदायों का जन्म हुआ। हर एक धर्म और सम्प्रदाय अपने तस्वों को सनातन मानता है और उनको हर एक परिस्थित में उपयुक्त मानता है। इन तस्वों का रहस्य हमारे धर्माचार्य ही जानते हैं, वे ही साधारण जनता में उनका प्रचार कर सकते है। भारत में जो-जो धर्म और सम्प्रदाय उत्पन्न हुए, वे सब भारत में आज भी किसी-न-किसी रूप में विद्यमान हैं। उनकी परम्पराएं भी अधिकांश सुरक्षित हैं। इन धर्मों के रहस्य जानने वाले धर्माचार्य और साधु-संन्यासी हमारे ही बीच हैं और जगह-जगह काम भी कर रहे हैं। हां, अब झासन से उनका इतना सम्बन्ध नहीं है जितना प्राचीन काल मे था। नथापि इन धर्मों का रहस्य जानने वाले जनता ही के बीच रहते हैं और जनता के अन्तर्गत हैं। क्या हमको यह आशा करने का अधिकार नहीं है कि इस भयंकर समय में जब चरित्र-अंश के कारण जनता अधिक पीडित है, हमारे धर्माचार्य और साधु-संन्यासी अपने को संगठित करके देश के चरित्र निर्माण का काम अपने हाथ में वे ले। जनता में इस प्रकार की अशा होना स्वाभाविक है और धर्माचार्यों को यह दिखलाने के लिए एक स्वर्णम अवसर प्राप्त हैं कि हमारे प्राचीन धर्मों स्रोर सम्प्रदायों में आज भी जान है।

## माचार्यथी तुलसी की दिव्य दृष्टि

जिन धर्माचार्यों ने वर्तमान परिस्थितियों को ग्रच्छी तरह से समक्ष कर इस नये ग्रवसर पर, भारतीय जनता श्रीर भारतीय संस्कृति के प्रति श्रगाध श्रद्धा श्रीर प्रेम से प्रेरित होकर उनकी रक्षा श्रीर सेवा करने का निश्चय किया, उनमें श्राचार्यश्री तुलसी का नाम प्रथम गण्य है। श्राचार्यश्री ने श्रपना 'श्रणुव्रत-ग्रान्दोलन' प्रारम्भ करके वह काम किया है जो हमारे सबसे बड़े विश्वविख्यात नेता नहीं कर सकते थे। उन्होंने प्रपनी दिव्य दृष्टि से देख लिया कि चरित्र-भ्रंग के क्या-क्या बुरे ग्रसर देश पर हो चुके हैं श्रीर ग्रधिक क्या-क्या हो सकते हैं। उन्होंने देखा कि इसके कारण देश का कृच्छ-समु-पाजित स्वातन्त्र्य खतरे में है। चरित्र-भ्रंश के कारण व्यक्ति, वर्ग, दल श्रीर जातियां ग्रपने-भ्रपने स्वार्थ-साधन में तत्पर हैं, देश, धर्म श्रीर संस्कृति का चाहे जो भी हो जाए। चरित्र-भ्रंश का एक बहुन कड़वा फल यह होता है कि जनता में पार-स्परिक विश्वास सर्वथा समाप्त हो जाता है। जहां परस्पर विश्वास नहीं है, वहां संगठन नहीं हो सकता है; जहां फूट होती है, बहां एकता नष्ट होती है। ग्रब देश में फिर श्रलग-भ्रलग होने की प्रवृत्ति बढ़ रही है। नये-नये सूबों की माँग चारों श्रोर से उठ रही है। इनके पीछे व्यक्तियों का श्रीर वर्गों का स्वार्थ खिपा हुमा है। भाषा-सम्बन्धी भगड़े जिस प्रकार उत्तर भारत में ब्रोह श्रीर हिंसा के कारण हो रहे हैं, उसी प्रकार दक्षिण भारत श्रीर लंका में भी। व्यक्तिगत जीवन में

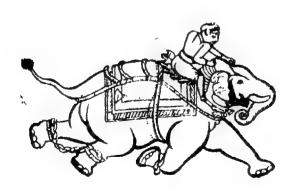
इतना शैथित्य आ गया है कि संयम का कुछ भी मूल्य नहीं रहा। भारतीय संस्कृति का प्राण हो संयम है। संयम-प्राण अणुव्रत-श्रान्दोलन प्रारम्भ करके आचार्यश्री तुलसी ने अपनी धर्मनिष्ठा और दूरदर्शिता दिललाई है।

अणुवत के अन्तर्गत जो पाँच वत हैं, अर्थान् अहिंसा, सत्य, अचीर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह—ये भारतीय संस्कृति से स्वरूप परिचय भी रखने वालों के लिए कोई नई बात नहीं है। भारत में जितने धर्म उत्पन्न हुए, उन सबसे इनका प्रथम स्थान है। क्योंकि ये सब संयममूलक हैं और संयम ही भारतीय धर्मों का प्राण है। अथवा धर्म-मात्र का, चाहे वह भारतीय हो अथवा विदेशी, संयम ही किसी-न-किसी रूप में प्राण है। इन बतों को स्वीकार करने में किसी भी धर्म के अनुसायियों को आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

ये व्रत इसलिए अणुव्रत कहे गये हैं कि महाव्रत इनमें भी बढ़कर हैं और उनके पालन करने में अधिक आध्या-तिमक शक्ति अपेक्षित है। परन्तु साधारण व्यक्तियों के लिए अणुव्रतों के पालन में भी चिरत चाहिए। जनता में इन पाँचों तस्त्वों के अभाव असंख्य रूप ग्रहण किये हुए हैं। अहिसा ही को लीजिये। इसके अभाव का बहुत स्पष्ट रूप तो आमिप-भोजन है। परन्तु इसके और भी असंख्य रूप हैं जिनको पहचानने के लिए विकसित बुद्धि अपेक्षित है। इनके पालन में त्याग की आवश्यकता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि अगर कोई व्यक्ति सच्ची निष्ठा से इनका पालन करे तो उसके जीवन में एक बड़ा परिवर्तन हो जाता है। समाज से उसका सम्बन्ध आनन्दमय हो जाता है, वह भीतर से सुखी बन जाता है। शर्त यह है कि श्रद्धा हो। व्रतों का पालन भीतरी प्रेरणा से हो, बाहर के दबाव से नहीं।

#### भारतीय संस्कृति का एक पुष्प

जिस पद्धित से श्राचार्यश्री नुलसी ने श्रणुवत-श्रान्दोलन प्रारम्भ किया श्रीर उसको समस्त भारत में फैलाया, उससे उनके व्यक्तित्व का प्रावत्य श्रीर माहात्म्य स्पष्ट होता है। पहले तो उन्होंने इस काम के लिए अपने ही जैन-सम्प्रदाय के कुछ साधुश्रो श्रीर साध्वयों को तैयार किया। श्रव उनके पास श्रनेकों विद्वान्, सहनशील, हर एक परिस्थिति का सामना करने की शक्ति रखने वाले सहायक हैं जो पद-यात्रा करते हुए भारत के भिन्त-भिन्त-प्रदेशों में सचार करते है श्रीर जनता में नये प्राण फूँक देते हैं। उनकी नियमबद्ध दिनचर्या को देख कर जनता श्राञ्चर्य-चिकत हो जाती है। उसके पीछे शताब्दियों की परम्परा काम कर रही है। श्राचार्यश्री श्रीर उनके सहायकों की जीवनशैली प्राचीन भारतीय संस्कृति का एक विकसित पुष्प है। इस प्रकार की जीवन शैली भारत के बाहर नही देखी जा सकती है। इस पुष्प को श्राचार्यश्री ने भारतमाता की सेवा में समर्पित किया है। श्राजकल के गिरे हुए भारतीय समाज में श्राचार्यश्री का जन्म हुशा। यही लक्षण है कि इस समाज का पुनकत्थान अवश्य होगा।



# आचार्यश्री तुलसी के अनुभव चित्र

## मुनिश्री नयमलजी

ग्राचार्यश्री तुलसी विविधताधों के संगम हैं। उनमें श्रद्धा भी है, तर्क भी है, सिहण्णुता भी है, ग्रावेग भी है, साम्य भी है ग्रीर शासक का मनोभाव भी है। हृदय का सुकुमारता भी है ग्रीर कठोरता भी है, श्रपेक्षा भी है ग्रीर उपेक्षा भी है। राग भी है ग्रीर विराग भी है।

#### विरोधी युगलों का संगम

अनेकान्त की भाषा में प्रत्येक बस्तु और प्रत्येक व्यक्ति में अनन्त विरोधी युगल होते हैं। आचार्यश्री भी एक व्यक्ति हैं। उनमें भी अनन्त विरोधी युगलों का संगम हो, वह कोई आक्ष्यं नहीं। अस्तित्व की दृष्टि से आक्ष्यं-जैसा कुछ है भी नहीं। प्रत्येक आत्मा में अनन्त ज्ञान है, अनन्त-दर्शन है, अनन्त आनन्द है और अनन्त शिवत है। आक्ष्यं का क्षेत्र है, अभिव्यक्ति। अदृश्य जब दृश्य बनता है, तब मन को चमत्कार-सा लगता है। पानी का योग मिलता है, मिट्टी की गन्ध अव्यक्त से व्यक्त हो जाती है। अपिन का योग मिलता है, अगर की गंध अव्यक्त में व्यक्त हो जाती है। मिट्टी में और अगर में गन्ध जो है, वह असत् नहीं है; बस्तु के बहुत सारे पर्याय, बहुत-सारी शिक्तयाँ अव्यक्त रहती हैं; अनुकूल निमित्त मिलता है, तब वे व्यक्त हो जाती हैं। वह अभिव्यक्ति ही चमत्कार का केन्द्र है। पौद्गलिक विज्ञान और क्या है! यही पुद्गल की अव्यक्त शक्तियों के व्यक्तीकरण की प्रक्रिया।

धर्म भौर क्या है? यही चैतन्य की अव्यक्त शक्तियों के व्यक्तीकरण की प्रक्रिया। इसीलिए उनके संस्थान चमत्कार ने परिपूर्ण है। आचार्यश्री का व्यक्तित्व भी इसीलिए आक्चर्यजनक है कि उसमें बहुत सारी शक्तियों को व्यक्त होने का अवसर मिला है। हमें आचार्यश्री के प्रति इसीलिए आकर्षण है, उनकी उपलब्धियाँ विशिष्ट हैं। और सर्वोपरि आकर्षण का विषय है उनकी शक्तियों की अभिव्यक्ति की प्रक्रिया। हम उनकी विशिष्ट उपलब्धियों को देख केवल प्रसोद का अधिकार पा सकते हैं; किन्तु अभिव्यक्ति की प्रक्रिया को जान कर हम स्वयं आचार्यश्री तुलसी बनने का अधिकार पा सकते हैं।

#### प्रायोगिक जीवन

तये विना कोई भी व्यक्ति ज्योति नहीं बनता और खपे बिना कोई भी व्यक्ति मोती नहीं बनता, यह बाइवत स्थिति है; पर जनतन्त्र के युग मे तो यह बहुत ही स्पष्ट है। याचार्यश्री ने बहुत तप तपा है, वे बहुत खपे हैं। जनता नी भाषा में, उन्होंने जन-हित-सम्पादन के लिए ऐसा किया है। उनकी ग्रपनी भाषा में, उन्होंने अपनी साधना के लिए ऐसा किया है। ग्रात्मोपकार के बिना परापकार हो सकता है, इसमें उनका विश्वास नहीं है। उनके ग्रभिमत में परोपकार का उत्स ग्रात्मोपकार ही है। जो ग्रपने को गँवाकर दूसरों को बनाने का यत्न करता है, वह भौरों को बना नहीं पाना और स्वयं को गँवा देना है। दूसरों का निर्माण वही कर सकता है, जो पहले ग्रपना निर्माण कर ले। ग्राचार्यश्री को व्यक्ति-निर्माण में जितना रस है, उसमे कहीं ग्रधिक रस ग्रपने निर्माण में है। लगता है, यह स्वार्थ है; पर उनकी मान्यता में, परमार्थ का बीज स्वार्थ ही है। उन्होंने ग्रपने विषय में जो ग्रनुभव ग्राप्त किये हैं; वे उन्हों की भाषा में इस प्रकार हैं— ''मेरा जीवन प्रयोगों का जीवन है। मैं हर बात का प्रयोग करता रहता हूँ; जो प्रयोग करा उत्तरता है, उसे स्थायी

रूप देता हैं।"3

श्राचार्यश्री का जीवन वैयक्तिक की अपेक्षा सामुदायिक अधिक है। उनका चिन्तन समुदाय की परिधि में अधिक होता है। वे तेरापंथ के शास्ता हैं। शासन में उनका विश्वास है, यदि वह आत्मानुशासन में फिलत हो तो। संगठन में उनका विश्वास है, यदि वह आत्मिक पवित्रता में शृंखिलत हो तो। उनकी मान्यता है, ''मेरा आत्मा जितनी अधिक उज्ज्वल रहेगी, शासन भी उतना ही समुज्ज्वल रहेगा।''

#### स्तवना में खुश न होने की साधना

आजारंश्री की आस्था आत्मा से फलित है और धर्म में कियान्वित है। इसलिए वे आत्म-विजय को सर्वांपरि प्राथिमिकता देते हैं। लक्ष्य की सिद्धि का अंकन करते हुए आचार्यश्री ने लिखा है—"लाइनूँ का एक व्यक्ति—"आया और उसने कहा—'इन वर्षों में मेरे मनोभाव आपके प्रति बहुत बुरे रहे हैं। मैंने अवांच्छनीय प्रचार भी किया है। उसने जो किया, वह मुभे सुनाया। उसे मुन कोध उभरना सहज था, पर मुभे बिल्कुल कोध नहीं आया। मैंने सोचा, निन्दा मुन कर उत्तेजिन न होना, इस बात में तो सेरी साधना काफी सफल है; पर स्तवना या प्रशंसा सुन कर खुश न होना, इस बात में मैं कहाँ तक सफल होता हुँ, यह देखना है।" उ

#### म्रसमर्थता की मनुभूति

म्राचार्यश्री सत्य की उपासना में संलग्न है। सत्य को अभय की बहुन वड़ी श्रपेक्षा है। जहाँ स्रथ्य नहीं होता, यहाँ सन्य की गति कुण्ठिन हो जाती है। सत्य धौर अभय की समन्वित ने प्राचार्यश्री को यथार्थ कहने की शक्ति दी है और इसीलिए उनमें अपनी दुर्बलताश्रों को स्वीकार करने व दूसरों की दुर्बलताश्रों को उन्हीं के सम्मुल कहने की क्षमता विकसित हुई है। तेरापंथ के श्राचार्य जो चाहते हैं, यह उनके गण में सहज ही कियान्वित हो जाता है। किन्तु कुछ भावनाएं ऐसी हैं, जिन्हें श्राचार्यश्री समूचे गण मे प्रतिबिध्यित नहीं कर पाए। इस श्रममर्भता का उल्लेख श्राचार्यश्री ने इस भाषा में किया है—"मेरा हृदय यह कह रहा है कि धम को ज्यादा से ज्यादा व्यापक बनाना चाहिए। पर समूचे संघ में मैं इस भावना को भरने में समर्थ नहीं हुआ। हो सकता है, मेरी मावना में इतनी मजबूती न हो, श्रथवा श्रन्य कोई कारण हो।"

श्राज रविवार के कारण विशेष व्याख्यान था, पर मेरी दृष्टि में श्रधिक प्रभावोत्पादक नहीं रहा।''र

श्राचार्यश्री किसी भी धर्म-सम्प्रदाय पर आक्षेप करना नहीं चाहते; पर धार्मिक लोगों में जो दुर्बलताएं घर कर गई हैं, उन पर कर प्रहार किये विना भी नहीं रहते। बीकानेर में एक ऐसा ही प्रसंग था। उसका चित्र श्राचार्यश्री के शब्दों में यों है—"ग्राज साल्हें की होली वाले चौक में भाषण हुग्ना। उपस्थिति अच्छी थी। लगभग पाँच-छह हजार भाई-बहिन होगें। दस बजे तक व्याच्यान चला। इस स्थान में जैनाचार्य का व्याच्यान एक विशेष घटना है। यहाँ ब्राह्मण हो ब्राह्मण रहते हैं। जैनधर्म के प्रति कोई ग्रिमिन्च नहीं; किर भी बड़ी शान्ति से प्रवचन हुग्ना। यद्यपि ग्राज का प्रवचन बहुत स्पष्ट श्रीर कर्ट था, किर भी क्टुकौषध-पान-स्यायेन लोगों ने उसे बहुत अच्छे में ग्रहण किया।" ।

- १ वि० सं० २०१० चैत्र कृष्णा १४
- २ वि० सं० २०१४ ग्राध्यिन शुक्ला ४, सुजानगढ़
- ३ वि० सं० २०१४ बीपावली, सुजानगढ़
- ४ वि० सं० २०१० चैत्र कृत्णा ७, प्नरासर
- ५ वि० सं० २०१० आवण कृष्णा ८, जोधगुर
- ६ वि० सं० २०१० वैसाल कृष्णा ६, बीकानेर

#### उदार वृष्टिकोण का परिणाम

प्राचायंश्री केवल वाक्-पटु ही नहीं, समयज्ञ भी हैं। वे कटु बात भी ऐसी परिस्थित में कहते हैं कि श्रीता को वह असह्य नहीं होती। ग्राचायंश्री बहुत बार कहते हैं कि मुक्त में व्यवहार-कीशल उतना नहीं, जितना कि एक शास्ता में चाहिए। पर सचाई यह है कि उनका कठोर संयम उन्हें कृतिम व्यवहार की श्रोर प्रेरित नहीं करता। वे ग्रीपचारि-कताओं से दूर हटते जा रहे हैं, फिर भी उनकी सहृदयता परिपक्व है। ग्राचायंश्री के मानस में क्रिक विकास हुआ है। उनकी प्रगति तत्त्ववेत्ता की भूमिका से स्थितप्रक्रता की भूमिका की ओर हुई है। वे एक धर्म-सम्प्रदाय के ग्राचायं है, फिर भी उनका दृष्टिकोण सम्प्रदायातीत है। उनकी विशेषताएं इसलिए चमकी हैं कि उन्होंने दूसरों की विशेषताओं को मुक्त भाव से स्थीकार किया है। वे इसीलिए सबके बने हैं कि उन्होंने सबको ग्रपनत्व की दृष्टि से देखा है। वे ग्रतीत भौर वर्तमान की तृलना करते हुए अनेक बार कहते हैं—"ग्राज हम भी उदार बने हैं, ग्राप लोग भी उदार बने हैं। मैं मानता हूं कि सब सम्प्रदाय उदार बने हैं। उदार बने बिना कोई व्यक्ति ग्रहणशील भी नहीं बनता।" ग्राचार्यश्री की बायरी के पृष्ठ इसके स्वयंभू प्रमाण हैं। "ग्राज दुपहरी में पौने तीन वजे विमला वहिन ग्राई। वह विनोबा के भूदान-यक्त की विशेषज्ञा है, विदुणी है। बड़ा ग्रच्छा वक्तव्य देती है। ग्राकृति पर भोज है। थोड़ा प्रवचन मुना। भूदान-यक्त के कार्यकर्ता ग्रच्छे-ग्रच्हे हैं। इससे प्रगति का मूचन मिलता है। ग्राकृति पर भोज है। थोड़ा प्रवचन मुना। भूदान-यक्त के कार्यकर्ता भच्छे-

"ग्राज वृन्दावन के वन महाराज वैष्णव संन्यासी भाए। वे वृन्दावन में एक विश्वविद्यालय बनाना चाहते हैं। प्राथमिक तैयारी हो गई। उसमें सब धर्मों के तुलनात्मक श्रध्ययन के लिए तेरह पीठ रखे गये हैं। उनमें एक जैन-पीठ भी है। जैन-पीठ के लिए लोगों ने हमारा नाम सुभाया, इसलिए वे भ्राए हैं। बहुत बातें हुई। समन्वयवादी व विद्वान् व्यक्ति मालूम हुए।"

इस उदार दृष्टि से ही ब्राचार्यश्री का अन्य दर्शनानुयायियों के साथ सम्पर्क बढ़ गया है। वे यहाँ ब्राते हैं ब्रीर ब्राचर्यश्री उनके वहाँ जाते हैं। इस कम से समन्वय की एक सुन्दर सृष्टि हुई है। ब्राचार्यश्री ने ऐसे भ्रनेक प्रसंगों का उल्लेख किया है—"भ्राज तीन बौद्ध भिक्षु भाए। एक लंका के थे, एक वर्मा के भौर तीसरे महाबोधि सोसायटी बम्बई के मंत्री थे। प्रवचन सुना। ब्रागामी रविवार को सोसायटी की तरफ से यहीं सिक्कानगर में ब्याख्यान रखा है ब्रीर मुक्ते ब्रापने विहार में ले जाने के लिए निमंत्रण देकर गए हैं।"

'भ्राज हम बौद्ध विहार में गए। वहाँ के मिक्षुत्रों ने बड़ा स्वागत किया। अच्छी चर्चा चली। फिर फादर विलियम्स के चर्च में गए। ये सब वम्बई संट्रल स्टेशन की तरफ हैं।''

#### द्रुतगामी पाद-विहारी

श्राचार्यश्री पाद-विहारी हैं; किन्तु उनका कार्यक्रम यान विहारी से द्वतगामी होता है। एक प्रसंग है—"श्राज सिक्कानगर में व्याख्यान हुआ। व्याख्यान के बाद एक 'रशियन' सुन्दरलाल के साथ भाया। उसने कहा — "भारतीय लोगों की तरह रशियनों को स्वतंत्रता से फलने-फूलते का भवसर नहीं मिलता। बड़ा कष्ट होता है।" उसकी बहुत जिजासाएं थीं, पर हमें समय नहीं था। डेढ़ बजे जे० जे० स्कूल भाँफ श्रार्ट्स, जो एशिया का सुप्रसिद्ध कला-शिक्षण केन्द्र है, में प्रवचन करने गए। फिर वोरीवन्दर स्टेशन होते हुए लाँकागच्छ के उपाश्रय में यति हमचन्द्रजी, जो दो बार अपने यहाँ

१ वि० सं० २०१० प्रादिवन शुक्ला १, बम्बई-सिक्कानगर

२ वि० सं० २०१६ कार्तिक कृष्णा ७, कलकसा

३ वि० सं० २०११ प्राधियम शुक्ला २, बम्बई

४ वि० सं० २०११ भ्रादिवन शुक्ला ३, बम्बई

मा चुके थे, से मिलने गए। कुछ प्रवचन किया। उपाश्रय बड़ा है। फिर सिक्कानगर माये।"

"गंगागहर से विहार किया। दूसरे दिन नाल पहुँचे। रास्ते में नयुसर दरवाजे के बाहर लालीबाई का भ्राश्रम है, वहाँ गए। वह पुरुष-वेष में रहती है। मगवा पहनती है। विषवा बहिनों के वरित्र-सुधार का काम करती है। उसकी बहुत शिष्याएं हैं। वे सिर के बाल मुँडाती हैं और सफेद वस्त्र पहनती हैं। लालीबाई बोली—'भ्राचार्य भ्राशाराम जी से हम भ्रापके विषय में बहुत बातें सुनती हैं, पर भ्राज भ्रापके दर्शन हो गए। वहाँ का वातावरण श्रच्छा मालूम दिया।"

#### सिद्धान्त ग्रीर समग्रीतावादी वृद्धिकोण

भाषार्यभी सर्व धर्म-समन्वय के समर्थक रहे हैं। साम्प्रदायिक एकता उनकी दृष्टि में भ्रसंभव या अस्वाभाविक प्रयत्न है। सिद्धान्त भीर समभौतावादी दृष्टिकोण उनके श्रीममत में भिन्न वस्तुएँ हैं। वे सम्प्रदाय-मैत्री के पोषक हैं। विचार-भेद मैत्री के सभाव में ही पलता है। सहज ही तर्क होता है, क्या विचार-भेद मैत्री में बाधक नहीं है? प्रति-प्रश्न भी होता है, क्या जिनमें मैत्री है, उनमें कोई विचार-भेद नहीं है। भ्रथवा जिनमें विचार-भेद नहीं है उनमें मैत्री है ही? मैत्री का सम्बन्ध जितना सद्व्यवहार भीर हृदय की स्वच्छता से है, उतना विचारों की एकता से नहीं है। भ्रपने-भ्रपने सिद्धान्तों को मान्य करते हुए भी सब सम्प्रदाय मित्र बन सकते हैं। जो विचारों से हमारे साथ नहीं है, बह हमारा विरोधी ही है—ऐसा मानना भ्रपने हृदय की श्रपवित्रता का चिह्न है। दो विरोधी विचारों का सहावस्थान या सह-प्रस्तित्व सर्वथा सम्भव है। इसी धारणा की नीति पर श्राचार्यश्री ने विष् संज्ञ २०११ बम्बई में सम्प्रदाय-मैत्री के पाँच व्रत प्रस्तुत किए:

- १. मण्डनात्मक नीति वरती जाये। श्रपनी मान्यता का प्रतिपादन किया जाये। दूसरों पर लिखित या मौिखक श्राक्षेप न किया जाये।
  - २. दूसरों के विचारों के प्रति सहिष्णुता रखी जाये।
  - ३. दूसरे संप्रदाय और उसके भ्रनुयायियों के प्रति घुणा व तिरस्कार की भावना का प्रचार न किया जाये।
  - ४. कोई संप्रदाय-परिवर्तन करे तो उसके साथ सामाजिक बहिष्कार ग्रादि ग्रवाखनीय व्यवहार न किया जाये।
- प्र. धर्म के मौलिक तथ्य—ग्रहिंमा, सत्य, ग्रचौर्य, ब्रह्मचर्य ग्रीर भ्रपरिग्रह को जीवन-व्यापी बनाने का सामूहिक प्रयन्न किया जाये ।

उन दिनों के आचार्यश्री के मनोमन्थन के चित्र ये हैं: 'इस वर्ष स्थानकवासी साधुओं का सम्मेलन भीनासर में होने वाला है। सुना है, वे थली की श्रोर भी जायंगे। मैंने श्रपने श्रावकों से कहा है कि यदि वे वहाँ श्रायें तो उनके साथ किसी प्रकार का दुर्व्यवहार न हो, इसका पूरा ब्यान रखा जाये।''<sup>3</sup>

''आज जयप्रकाशनारायण से मिलन हुआ। एक घंटे तक बातचीत हुई। विचारों का आदान-प्रदान हुआ। अहिमक दृष्टियों का समन्वय हो, यह मैंने सुभाया। वातावरण बड़ा मौहार्दपूर्ण रहा।''

"जयप्रकाशजी माज तीन बजे फिर माये। उनसे जीवनदानी बनने का इतिहास मुना,बड़ा स्फूर्तिदायी था। फिर उन्होंने पूछा—"म्रहिसक शिक्तयों का मिलन हो, इस बारे में भापके क्या सुभाव हैं? मैंने कहा विचारों का भादान-प्रदान हो, परस्पर एक-दूसरे को बल दे, किनाइयों के प्रतिकार के लिए सह-प्रयत्न हो और सामान्य नीति का निर्धारण हो।" उन्होंने कहा—"मैं यह विचार विनोबा के पास रखूँगा। और म्राथने भी समय-समय पर सम्पर्क बनाये रखूँगा।"

१ वि० सं० २०११ भावत कृत्णा ११, बस्बई

२ वि० सं० २०१० द्वितीय वैसाल कृष्णा १, नाल

३ वि० सं० २०११ मृगसर कृष्णा १, बम्बई-- चर्चगेट

४ वि० सं ० २०११ मृगसर कृत्णा ३, बम्बई--- वर्जोट

४ दि० सं० २०११ मृगसर कृष्णा ४, बम्बई-─वर्जीट

#### मौन की साधना

समन्वयं की साधना के लिए श्राचार्यश्री ने बहुत सहा है। मौन की बहुत बड़ी साधना की है। उसके परिणाम भी अनुकूल हुए हैं। इस प्रसंग में श्राचार्यश्री की डायरी का एक पृष्ठ है:

"ग्राज ब्यारूयानोपरान्त बम्बई समाचार के प्रतिनिधि मि० त्रिवेदी ग्राए। उन्हें प्रधान सम्पादक सोरावजी भाई ने भेजा था। हमारा विरोध क्या हो रहा है ? उसे जानना चाहते थे। ग्रीर वे यह भी जानना चाहते थे कि एक ग्रोर से इतना विरोध भीर दूसरी ग्रोर मे इतना मौन। भ्रास्तिर कारण क्या है ?"

"भ्राज त्रिवेदी का लेख बस्बर्ड-समार्चार में भ्राया। काफी स्पष्टीकरण किया है। वे कहते थे, श्रव हमने भ्राक्षेप-पूर्ण लेखों का प्रकाशन बंद कर दिया है। यह निभेगा तो अच्छी बात है।"

''समन्वय-साधकों के प्रति प्रशंसा का भाव बन रहा है—विजयवल्लभ सूरीजी का स्वर्गवास हो गया। उनकी भावना समन्वय की बी। वे घपना नाम कर गए।''<sup>3</sup>

"इस दिशा में सर्वे धर्म-गोष्ठियाँ भी होती रहीं—श्वाज सर्वधर्म-गोष्ठी हुई । उसमें ईसाई धर्म के प्रतिनिधि धॉ० वेरन श्रादि तीन ग्रमरीकन; पारसी, रामकृष्ण मठ के संन्यासी सम्बुद्धानन्दजी, ग्रार्य समाजी ग्रादि वक्ता थे ।

श्चन्त में श्रपना प्रवचन हुआ। फादर विलियम्स ने उसका अंग्रेजी अनुवाद किया। वहे श्रच्छे ढंग से किया। कार्य-कम सफल रहा।"<sup>8</sup>

उन्हीं दिनों बम्बई-समाचार में एक विरोधी लेख प्रकाशित हुन्ना। श्राचार्यश्री ने उस समय की मनःस्थिति का चित्रण करते हुए लिखा है—"श्राज बम्बई समाचार में एक मुनिजी का वहुत वड़ा लेख श्राया है। श्राक्षेपों से भरा हुन्ना है। भिश्च-स्वामी के पद्यों को बिक्टन रूप में प्रस्तुन किया गया है। जघन्यता की हद हो गई। पढ़ने मात्र से श्रात्म-प्रदेशों में कुछ गर्मी श्रा सकती है। श्रीरों को गिराने की भावना से मनुष्य क्या-क्या कर सकता है, यह देखने को मिला। उसका प्रतिकार करना मेरे तो कम जँचना है। श्राब्दि इस काम में (श्रीरों को नीचा दिखाने के काम में ) हम कैसे बराबरी कर सकते हैं ! यह काम तो जो करने हैं, उन्हों को मुवारक हो ! श्राल्यना स्पष्टीकरण करना जरूरी है, देखे, किस तरह होगा।"

"इधर में विरोधी लेखों की बड़ी हलचल है। दूसरे लोग उनका सीधा उत्तर दे रहे हैं। उन्हें घृणा की दृष्टि से देख रहे हैं। ग्रपता मौन बड़ा काम कर रहा है।"<sup>६</sup>

#### साधु-साध्वयों का निर्माण

डम मौन का बर्थ वाणी का खप्रयोग नहीं, किन्तु उसका संयम है। धाचार्यश्री का जीवन संयम के संस्क ﷺ में पला है, इसलिए वे दूसरों के ब्रसंयम को भी संयम के ढारा जीतने का यत्न करते हैं। वे व्यक्ति-विकास में विश्वास करते हैं; उसका ब्राधार भी संयम ही है। उन्होंने ब्रपने हाथो क्रनेक व्यक्तियों का निर्माण किया और कर रहे है। उनका सर्वाधिक निकट-क्षेत्र है—साधु-समाज। पहला द्ष्टिपात वहीं हो, यह क्रस्वाभाविक नहीं। निर्माण की पहली रेखा यही है। "साधु-साब्वियों में प्रारम्भ मे ही उच्च साधना के संस्कार डाल दिये जायें तो बहुत संभव है कि उनकी प्रकृति में ब्रच्छा

- १ वि० सं० २०११ श्रावण शुक्ला १०, बस्बई
- २ वि॰ सं॰ २०११ श्रावण शुक्ला १३, बम्बई
- ३ वि० सं० २०११ प्रादिवन कृष्णा ११, बम्बई
- ४ वि० सं २०११ घादिवन कृष्णा १२, बम्बई सिक्कानगर
- ५ वि वं २०११ ब्राहियन शुक्ला २, बस्बई--सिक्कानगर
- ६ वि० सं० २०११ आवण शुक्ला ११, बम्बई---सिक्कानगर

मुधार हो जाये। इसे प्रामाणिक करने के लिए मैंने इधर में नव-दीक्षित साधुमों पर कुछ प्रयोग किये हैं। जलते समय इधर-उघर नहीं देखना, बातें नहीं करना, वस्त्रों के प्रतिलेखन के समय बातें नहीं करना, अपनी भूल को नम्रभाव से स्वीकार करना, उसका प्रायश्वित करना, आदि बादि। इससे उनकी प्रकृति में यथेष्ट परिवर्तन आया है। पूरा फल तो भविष्य बतायेगा।"

"आज के बालक साधु-साध्वियों के जीवन को प्रारम्भतः संस्कारी बनाना मेरा स्थिर लक्ष्य है। इसमें मुभे, बड़ा धानस्य मिलता है।"

''साधुआं को किस तरह बाह्य विकारों से बचा कर आन्तरिक वैराग्य-वृत्ति में लीन बनाया आये, इस प्रश्न पर मेरा चिन्तन चलता ही रहता है।''<sup>3</sup>

''इस बार साधु-समाज में ग्राचार मूलक साधना के प्रयोग चल रहे हैं। साधु-साध्वियों से ग्रपने-ग्रपनं ग्रनुभव निखाए। वे प्रामाणिकता के साथ ग्रपनी प्रगति व खामियों को लिख कर लाये। मुभ्रे प्रसन्नता हुई। ग्रागामी चातुर्मास में बहुत कुछ करने की मनोभावना है।''

साधु-साधना में ही है, सिद्धि में नहीं। वे समय पर भूल भी कर बैठते हैं। ब्राचार्यश्री को उससे बहुत मानसिक वेदना होती है। उसी का एक चित्र है; "श्राज कुछ बातों को लेकर साधुओं में काफी ऊहापोह हुआ। श्रालोचनाएं चलीं, कुछ व्यंग्य भी कसे गये। न जानें, ये श्रादनें क्यों चल पड़ीं। कोई युग का प्रभाव है या विवेक की भारी कमी? श्राखिर हमारे संघ में ये बातें मुन्दर नहीं लगतीं। कुछ साधुओं को मैंने मावधान किया है। श्रब हृदय-परिवर्तन के सिद्धान्त को काम में लेकर कुछ करना होगा।"

गृहस्थों के जीवन-निर्माण के लिए भी आचार्यश्री ने समय-समय पर अनेक प्रयत्न किये हैं। उन्हें जो भी कमी लगी, उस पर प्रहार किया है और जो विशेषता लगी, उसका समर्थन किया है। 'आज मित्र-परिषद् के सदस्यों को मौक़ा दिया। उन्होंने विशिष्ट सेवाएं दी हैं। एक इतिहास बन गया है। मैंने उनसे एक बात यह कहा है, यदि तुम्हे आगे बढ़ना है तो प्रतिशोध की भावना को दिल से निकाल दो।'' ।

ग्रणुत्रत-श्रान्दोलन इसी परिवर्तनवादी मनोवृत्ति का परिणाम है। वे स्थिति चाहते हैं, पर श्राज जो स्थिति है, उससे उन्हें सन्तोष नहीं है। वे न्यूनतम संयम का भी अभाव देखते हैं तो उनका मन छटपटा उठता है। वे सोचते रहते हैं — जो इण्ट परिवर्तन धाना चाहिए, वह पर्याप्त मात्रा में क्यों नहीं था रहा है ? इसी चिन्तन में से श्रनेक प्रवृत्तियाँ जन्म लेती हैं। 'नया मोड' का उद्भव भी इसी धारा में हुया है। समाज जब तक प्रचलित परम्पराग्रों में परिवर्तन नहीं लागेगा, नव तक जो संयम इण्ट है, वह संभव नहीं। उसके बिना एक दिन मानवता और धार्मिकता दोनों का पलड़ा हल्का हो जायेगा। उनके हित-चिन्तन में बाधाएं भी कम नहीं है। कई बार उन्हें थोडी निराशा-मी होती है; किन्तु उनका श्रात्म-विद्वाम फिर उसे भक्तभोर देता है—''इथर मेरी मानसिक स्थिति में काफी उतार-चढ़ाव रहा। कारण, मेरी प्रवृत्ति सामूहिक हित की ओर श्रधिक श्राकृष्ट है और मैं जो काम करना चाहता हूँ, उसमें कई तरह की बाधाएं सामने या रही हैं, इसमे मेरा हृदय सन्तुष्ट नहीं है। मेरा श्रात्म-विद्वाम यही कहता है कि बाखिर मेरी धारणा के श्रनुसार काम होकर रहेगा, थोडा समय चाह लग जाए।''

- १ बि० सं० २०१० चंत्र कृष्णा १४, उदासर
- २ बि० सं० २०१० आवण शुक्ला १४, जोषपुर
- ३ वि० सं० २०११ मृगसर कृष्णा ८, बम्बई-- चर्चगेट
- ४ वि० सं० २०१२ जेठ शुक्ला १०, डांगर---महाराष्ट्र
- भ वि० सं० २०१४ मावाद कृष्णा E, बीदासर
- ६ वि० सं० २०१६ कातिक कृष्णा ६, कलकत्ता
- ७ विर्व संव २००६ पोष शुक्ला १०, श्रीड्ंगरगढ़

#### ग्रास्था का ग्रालोक

श्राचार्यश्री में चिन्तन है, विचारों के श्रीमनव उन्मेष हैं। इसलिए वे कह मार्ग पर ही नहीं चलते, उपयोगितानुमार नये मार्ग का भी आलम्बन लेते हैं, नई रेखाएं भी खींचते हैं। यह सम्भवतः श्रसम्मव ही है कि कोई व्यक्ति नई रेखा लींचे श्रीर संघर्ष का वातावरण न बने। संघर्ष को निमन्त्रण देना बुद्धिमानी नहीं है, तो प्रगति के परिणामस्वरूप जो भाये उसे नहीं भेलना भी बुद्धिहीनता है। संघर्ष बुरा क्या है? वह सफलता की पहली तेज किरण है। उसमें जो चौंधिया जाता है, वह भटक जाता है और उसे जो सह लेता है, वह सफलता का वरण कर लेता है। भसफलता भौर सफलता की भाषा में स्वामी विवेकानन्द ने जो कहा है वह चिर सत्य है—"संघर्ष और वृद्यों की परवाह मत करो। मैंने किसी गाय को भूठ बोलते नहीं मुना; पर वह केवल गाय है, मनुष्य कभी नहीं। इसलिए असफलताओं पर ध्यान मत दो, ये छोटी-छीटी फिमलने हैं। बादर्श को सामने रख कर हजार बार श्राम वहने का प्रयत्न करो। यदि तुम हजार बार ही असफल होते हो तो एक बार फिर प्रयत्न करो।" श्राचार्यश्री को अपनी गति में अनेकानेक श्रवरोधों का सामना करना पड़ा, पर वे यके नहीं। विराम लिया, पर को नहीं। उस श्रवाध गित के संकल्प और श्रमध श्रास्था ने उनका पथ प्रशस्त कर दिया। श्रास्था-हीन व्यक्ति हजार बार सफल होकर भी परिणाम काल में श्रसफल होता है भीर श्रास्थावान् पुरुष हजार श्रमफल ताओं को चीर कर श्रन्त में सफल हो जाना है। श्राचार्यश्री ने श्रपनी श्रास्था के श्रालीक में श्रपने-श्रापको देखते हुए लिखा है:

"यह तीन चार वर्ष का संकान्ति-काल रहा। इसमें जो घटना-चक चला, उसका हरेक झादमी के दिमाग पर झमर हुए बिना नहीं रहता। इस समय मेरा साथी मेरा झात्म-बल था और साथ ही मैं अपने भाग्य विधाता गुरुदेव को एक घड़ी के लिए भी भूला हूँ, ऐसा नहीं जान पड़ता। उनकी स्मृति मात्र से मेरा खल हर वक्त बढ़ता रहा। मेरी झात्मा हर वक्त यह कहती रही कि तेरा रास्ता सही है और यही सत्य-निष्ठा मफे छागे बढ़ाए चल रही है।

"विरोध भीषण था, पर मेरे लिए बलवर्षक बना। नंघर्ष खनरनाक था, पर मेरे भीर संघ के श्रात्मालीचन के लिए बना। इसमें सनर्कता बढ़ी। साधु-संब में प्राचीन ग्रन्थों व सिद्धान्तों के प्रध्ययन की श्रीकिच बढ़ी। सजगता बढ़ी। प्रजासों वर्षों के लिए रास्ता सरल हो गया। इत्यादि कारणों से मैं इसे एक प्रकार की गुणकारक वस्तु समभता हूँ। फिर भी संबर्ष कभी न हो, बान्त बानावरण रहे, संगठन श्रीक दृढ़ ग्हे, हर बबत यही काम्य है। भिक्षु जासन विजयी है, बिजयी रहे। साधु-संब कुलत श्राचारवान् है, वैसा ही रहे। "व

#### ग्रपराजेय मनोवृत्ति

विजय की भावना व्यक्ति के मात्म वल से उदभृत होती है। म्रात्मा प्रवल होती है, तब परिस्थिति पराजित हो जाती है; आत्मा दुर्वल होता है, फरिस्थिति प्रवल हो जाती है। साधना का म्राह्मय यही है कि म्रात्मा प्रवल रहे, परिस्थिति से पराजित न हो। इस म्रपराजेय मनोवृत्ति का म्रंकन इस प्रकार हुमा है—"स्वास्थ्य कुछ ठीक नहीं रहता। मौन व विश्वास से काम चल जाता है। वर्ष भर तक दवा लेने का प्रत्याख्यान है। श्रात्म-बल प्रवल है, फिर क्या ?"

श्रातमा में श्रनन्त बीमं है उसका उदय अभिसन्धि ने होता है। श्रभिसन्धिहीन प्रवृत्ति से वीमं की स्फुरणा नहीं होती। जो कार्य वीम-श्रभिसन्धि के बिना किया जाता है, वह सफल नहीं होता। श्रीर वही कार्य श्रभिसन्धि ढारा विया जाता है, तो सहज सफल हो जाता है। आचार्यश्री का अपना श्रनुभव है— 'परिश्रम की अधिकता के कारण सिर में भार, श्रीखों में गर्मी श्राज काफी बढ़ गई। रात्रि के विश्राम ने भी श्राराम नहीं मिला, तब सवेरे डेढ़ घण्टे का मौन किया श्रीर नाक में नम्बे श्वाम लिये। इसमें बहुत श्राराम मिला। पुनः शक्ति-संचय-सा होने लगा। चित्र प्रसन्त हुमा। येरा विश्वाम

१ वि० सं० २००६ फाल्गुन कुच्चा २, सरदारशहर

२ वि० सं० २०१२ भाष्र शुक्ला २, उज्जैन

है कि मौन साधना मेरी आत्मा के लिए, मेरे स्वास्थ्य के लिए, बहुत अच्छी खुराक है। बहुत बार मुक्ते ऐसे अनुभव भी होते रहते हैं। यह मौन साधना मुक्ते नहीं मिलती तो स्वास्थ्य सम्बन्धी वड़ी कठिनाई होती। पर वैसा क्यों हो ? स्वाभा-विक मौन चाहे पाँच घण्टा का हो उससे उतना आराम नहीं मिलता, जितना कि संकल्पपूर्वक किये गए एक घण्टा के मौन से मिलता है। इससे यह भी स्पष्ट है कि संकल्प में कितना बल है। साधारणत्या मनुष्य यह नहीं समक्त सकता, पर तत्त्वत: संकल्प में बहुत बड़ी आत्म-शक्ति निहित है। उससे आत्म-शक्ति का भारी विकास होता है। अवश्य हो मनुष्य को इस संकल्प-बल का प्रयोग करना चाहिए। "

मानार्य हरिमद्र ने मिमसन्धिपूर्वक वस्तु के परिहार को ही त्याग कहा है। सकल्प में किनना वीर्य केन्द्रित है, उसे एक कुशल मनोवैज्ञानिक ही समक्त सकता है। मानार्यश्री ने जो कुछ पाया है, उसके पीछे उनका कर्नृत्व है, पुरुषार्थ है भौर लक्ष्य पूर्ति का दृढ़ संकल्प। वे लक्ष्य की ग्रोर बढ़े हैं, बढ़ रहे हैं। जब कभी लक्ष्य की गिल में भन्तराय हुआ है, उसका पुन: सन्धान किया गया है—"इन दिनों डायरी भी नहीं लिखी गई। मौन भी छूट गया। भव दोना पुन: प्रारम्भ किये हैं। भनजी सेठिया बंगलोर बाले भाए, भौर बोले— आपने मौन नयों छोड़ दिया? वह चालू रहना चाहिए। उसले विश्वाम, स्वास्थ्य भौर बल मिलेगा। मैने कहा—"भाठ वर्षों से चलने वाला मौन यू० पी० से बन्द हो गया, पर अब चालू करना है। जेठ सुदी १ से पुन: मौन प्रारम्भ है।"

## सिद्धान्त-विरोधी प्रवृत्ति में प्रसहिष्णुता

श्राचार्यश्री में समता के प्रति श्रास्था है श्रीर सिद्धान्त के प्रति श्रनुराग । इसलिए वे किसी भी सिद्धान्त-विरोधी प्रवृत्ति को सहन नहीं करते । "दुपहरी में संत व्याख्यान दे रहे थे । एक लाल दरी बिछी हुई थी । सब लोग बैठे थे, कुछ भांभी (हरिजन) भी उस पर बैठ गए । मुनने लगे । जैन लोगों ने यह देखा तो बड़े जांदा से बोले—तुम लोगों में होण नहीं जो जाजम पर श्राकर बैठ गए । यह पंचायती जाजम है । वे श्राक्रीश करते हुए हरिजनों को उठा कर जाजम खींच कर ले गये । बहुतों को बुरा लगा, हरिजनों को बहुत ही धक्का लगा । कई तो रोने लग गये, मैंने भीतर से यह दृश्य देखा । मन में वेदना हुई । इस मानवता के श्रपमान को मैं मह नहीं सका । मैं व्याख्यान में गया । स्पष्ट शब्दों में मैंने कहा—"जिन तीर्थंकर भगवान महावीर ने जातिवाद के विरुद्ध प्रवल श्रान्दोलन किया, उन्हों के भक्त श्राज उसी दलदल में फंस रहे है, बडा श्राद्धार्थ है । मैंने श्रांखों ने देखा—"मनुष्य किस प्रकार मनुष्य का श्रपमान कर मकता है । दरी श्रापको इतनी त्यारी थीं तो बिछाई ही क्यों ?" मैंने उनसे कहा—"साधुश्रों के सान्तिध्य में इस प्रकार किसी जाति का तिरस्कार करना क्या साधुश्रों का तिरस्कार नहीं है ?" वहाँ के सरपंच को, जो जैन थे, मैंने कहा—"क्या पंचायत में सभी सबणे ही है?" नही, भाभी भी हें ! "तो कैसे बैठते हो ?" वहाँ तो एक ही दरी पर बैठते हैं । "तो फिर यहाँ क्या हुश्य ।" हमारे यहाँ ऐसी ही रीति है । श्राखिर उन्होंने भूल स्वीकार की । उन्हें छुश्राछूत की भावना मिटाने की प्रेरणा दी श्रीर हरिजनों को भी शान्त किया ।"



१ बि० सं० २०११ फाल्गुन शुक्ला ७, पूना

२ वि० सं० २०१६ जेठ शुक्ला १, कलकला

३ बि॰ सं० २०१० वैसास कुण्णा १०

## जागृत भारत का ऋभिनन्दन!

प्रणुविस्फोटों के इस युग में अणुव्रत ही संबल मानव का, व्रत-निष्ठा के बिना विफल है अनयंत्रित भुजबल मानव का! संघबद्ध स्वार्थों के तम में अणुव्रत ही प्रत्यूष-किरण-कण, महाज्योति उतरेगी भू पर कभी अणुव्रती के ही कारण! सदा सुभग लघु लघु सुन्दर की महिमा से ही मंडित है जग, नापेंगे कल दिग-दिगन्त भी अणुव्रत के कोमल वामनपग! अणु की लिघमा शक्ति करेगी देशांतर का सहज संचरण, भूमिकिरण के किरण-बाण से होगा ऊर्ध्व बिन्दु का वेधन! द्यावा की विराट शोभा ही अणुव्रत की दूर्वा है भू पर, दूर्वा का अतिशय लघु तृण ही मुक्ति-नोड़ में सबसे ऊपर! अणुव्रत के आचार्य प्रवर, जो शील विनय संयम के दानी, व्यक्ति व्यक्ति का शुभ्न आचरण बन जाती है जिनकी वाणी! अणुव्रत के अभिनन्दन में है उन श्री तुलसी का वंदन, अणुव्रत के अभिनन्दन में है जागृत भारत का अभिनन्दन!

—नरेन्द्र शर्मा

## मैक्सिको की श्रद्धांजलि

## डा० फिलिप पार्डिनास डीन, इतिहास भौर कला संकाय, बाईबेरो-ग्रमरीकाना विश्वविद्यालय, मैक्सिको

मैंक्सिको से साचार्यश्री तुलसी को बिनत प्रणाम । स्राचार्यश्री तुलसी के प्रति श्रद्धांजलि प्रकट करने का श्रवसर पाकर मैं अपने को घन्य मानता हूं । मेरी यह छोटी-सी स्रमिलाषा रही है कि इस भारतीय जैन श्राचार्य के प्रति जिन्होंने विश्वशान्ति के लिए स्रपना समग्र जीवन समर्पित कर दिया है, विश्व के श्रनेक विद्वान् जो श्रद्धांजलि भेट करेगे, उसमे मैं भी मैक्सिको की स्रोर से अपना योग दुँ।

मैक्सिको सभी तक एक युवा देश है, किन्तु सम्भवतः उतना युवा नहीं, जैसा बहुत लोग समभते हैं। यद्यपि हमारा इतिहास अर्थात् में हमारे लोगों का जीवन-वृत्त ईमा पूर्व की दो सहस्राब्दियों से प्रारम्भ होता है, फिर भी हमारी स्पष्ट जानकारी मैक्सिको की घाटी में स्रवस्थित टिस्रोटिहुस्राकन (Teotihuacan) नामक एक धार्मिक केन्द्र के सम्बन्ध में प्रारम्भ होती है। इस केन्द्र के माथ-साथ ईसा पूर्व के लगभग छठी शताब्दी में दो सीर महत्त्वपूर्ण केन्द्र थे। ला वंटा (La venta) जो वर्तमान में टाबस्को प्रान्त में है और मोण्टे सलबान (Monte Alban) जो स्रोक्साका प्रान्त में है। इन तीनों केन्द्रों ने लेखन-कला और तिथि-पत्र का विकास किया। तिथि-पत्र का उद्देश्य केवल मौनम पर ही नहीं, समय पर नियन्त्रण प्राप्त करना था, कारण तत्कालीन कृषि-प्रधान सम्यता के लिए यह धावश्यक था। सबसे स्रधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि ये वड़े-बड़े नगर युद्धों स्रीर शस्त्रों में स्रपरिचित्त थे। वह शान्ति का काल था और उस समय हमारे लोग श्रम करते, देवनाओं की प्रार्थना करते और शान्तिपूर्वक रहते थे।

दूसरे केन्द्रों के विषय में भी जो श्रव ग्रश्नाटेमाला गणराज्य में है, यही बात कही जा मकती है। उनके नाम हैं, टिकाल (Tikal) और युश्नाक्साक्टन (Uaxactan)। यद्यपि ये समारोहिक सास्कृतिक केन्द्र उल्लिखित केन्द्रों से पश्चाटकालीन थे।

दुर्भाग्यवश पिक्तम के सम्पर्क से पहले ही हमारे देश में विनाश और हिंसा का प्रादुर्भाव हो चुका था। उस महान युग के अन्त को, जो करीब ईसा की सातवीं से नवीं अनाब्दी के मध्य था, हम 'विशिष्ट' (Classic) युग कहते हैं। उस समय हमारे लोगों के जीवन से अत्यन्त आकस्मिक और गहरा परिधर्तन हुआ। आन्तरिक कान्ति और बाह्य प्रभावों ने इन समुदायों में आभूल परिवर्तन कर दिया। हमें बोनाम्पक (Bonampak) योद्धाओं और बिलदानी पुरुषों के आध्वर्यजनक भित्ति-चित्रों में हिंसा का इतिहास मिलता है। दुर्भाग्यवश ऐसा प्रतीत होता है कि ठेठ पाश्चात्यों के आगमन तक यह नई स्थिति स्थायी रही। ईस्वी सन् १६१४ में जब हरमन कोर्टीज ने मैक्सिकों के मुख्य संस्कृति के केन्द्र टेनोक्टिट्लान (Tenoctitlan) नगर पर विजय प्राप्त की, तब से लेकर दीर्घकाल तक हिंसा का बोलवाला रहा। केवल अन्तिस २४-३० वर्षों में शान्ति का नया जीवन हमें देखने को मिला है।

यह रोचक तथ्य है कि प्राचीन भारतीय सम्यता के श्रनेक विचार हमारे लोगों के मानस में गहरे बैठे हुए है। किन्तु जो लोग केवल फिल्मों श्रीर कुछ साहित्य के अधार पर मैक्सिकों के विषय में अपनी धारणा बनाते हैं, उन्हें यह समभ्रते में किनाई होगी कि हमारे लोगों के मानस की एक विशेषता यह भी है कि वे शान्तिपूर्ण हैं, हिसक नहीं। जब श्राप हमारे राजनीतिक इतिहास का नहीं, हमारे सांस्कृतिक इतिहास का थोड़ी गहराई के साथ श्रध्ययन करेंगे तो श्राप सरलता से हमारे श्रीहंसा-प्रेम का पता लगा सकेंगे।

धपने पिछले भारत प्रवास के समय मुक्ते अपने विद्यार्थियों के एक दल के साथ जब धपने मित्र श्रीसुन्दरलाल भवेरी के माध्यम से ग्रणुवत-भ्रान्दोलन और उसके मुख्य सिद्धान्तों का परिचय प्राप्त हुन्ना, तो बड़ी प्रसन्नता हुई। इस प्रवास में मुक्ते भ्राचार्यश्री तुलसी के भ्राक्चर्यजनक कार्य और उनके महान् जीवन के सम्बन्ध में जानने का भवसर मिला।

हमने मैक्सिको लौटने के पश्चात् टेलीबिजन पर व्याख्यानों द्वारा लोगों का अणुब्रत-आन्दोलन का परिचय दिया और लोगों ने इस भान्दोलन के सिद्धान्तों के विषय में सुन कर बड़ी जिज्ञासापूर्ण उत्सुकता प्रकट की।

इसलिए मैं यह विश्वासपूर्वक कह सकता हूँ कि इस महान् भारतीय आवार्य के कार्य का हमारे आधुनिक जगत् पर गहरा प्रभाव पड़ेगा। हिंसा के विश्व एकमात्र शब्द और सन्देश मैत्री का ही हो सकता है। मनुष्यों के प्रति मैत्री, जीवों के प्रति मैत्री और प्राणीमात्र के प्रति मैत्री। अतः मैं आपको यह कहना चाहूँगा कि यह मेरी उत्कट आन्तरिक इच्छा है कि इस महान् धर्माचार्य की वाणी का असंख्य मानव-फ्रात्माओं द्वारा श्रवण हो, जिससे कि वे इस विश्व को अधिक मानवीय और प्रधिक शान्तिमय बनाने के प्रयास में सहयोग दे सकें।



# एक ऋाध्यात्मिक अनुभव

### भी बारन फ्रोरी फोन ब्लोमबर्ग बोस्टन, प्रमेरिका

जब मैं जैन धर्म के प्रमुख आवार्यश्री तुलसी के सम्पर्क में आया, तब मेरे लिए वह एक नया आध्यात्मिक श्रनुभव था और उससे मैं ग्रत्यधिक प्रभावित हुआ। श्रनेक वर्षों से मैं यह मानने लगा हूँ कि श्रध्यात्म ही सब कुछ है और ग्राध्या-त्मिक मार्ग से सब समस्याएं हल हो सकती हैं।

दुनिया ने कूटनीति, राजनीति, बल-प्रयोग, प्रणुबमों भीर भौतिक साधनों का प्रयोग किया, किन्तु सब ग्रसफल रहे । मैं स्वयं एक ईसाई हूँ भौर मुफे स्पष्ट प्रतीत होता है कि जैन दर्शन में सब धर्मों भौर विद्वासों का समावेश हो जाता है ।

भाज दुनिया को भाष्यात्मिक एकता की जितनी भावश्यकता है, उतनी पहले कभी नहीं थी। जब दुनिया में भाग लगी हुई है तो हम बहुधा एक-दूसरे के विरुद्ध क्यों काम कर रहे हैं? भाज यदि हम सच्चे भाष्यात्मिक प्रेम-भाव से मिल कर काम करें तो सभी लक्ष्य सिद्ध हो सकते हैं।

मैं प्रति क्षण यही प्रार्थना करता हूँ कि मेरा जीवन पूर्णतया आध्यात्मिक हो; मैं बचन और कर्म में सत्य का अनु-सरण करूँ। यह प्रकट सत्य है कि भौतिक पदार्थों का सम्पूर्ण त्याग कर देने पर भी जैन साधु मुख और शान्तिपूर्वक रहते हैं। यथार्थ रूप में तो मुक्ते कहना चाहिए कि उनकी शान्ति 'त्याग कर देने पर भी' नहीं, अपितु त्याग करने के कारण है। मैं चाहुँगा कि जैन धर्म और उसके सिद्धान्तों का हर देश में प्रसार हो। यह विश्व के लिए अरदान ही सिद्ध होगा।

मैं यह मानता हूँ कि यह मेरे परम भाग्य का उदय था कि द्याचार्यश्री तुलसी के सम्पर्क में मैं द्याया। जैनों की पुस्तिका मेरे हाथ में झाई श्रीर उनके प्रतिनिधि बम्बई में मुक्तसे मिलने झाए। मै इस सबके लिए श्रत्यन्त झाभारी हूँ।

मैं अपने कार्य के सम्बन्ध से दुनिया के नाना देशों में जाता हूं, बरावर यात्रा करता रहता हूं और सभी तरह के एवं सभी श्रेणियों के लोगों से मिलता हूँ। ग्राज मर्वत्र भय का साम्राज्य है—युद्ध का भय, भविष्य का भय, सम्पत्ति-ग्रपहरण का भय, स्वास्थ्य-नाश का भय, भय ग्रीर भय! उस भय के स्थान में हमें विश्वास श्रौर श्रद्धा की स्थापना करनी होगी; वह श्रद्धा जिससे कि श्रन्ततः विश्व-शान्ति श्रवस्य स्थापित होगी। इतिहास हमें बार-बार यही शिक्षा देता है कि युद्ध से युद्धों का जन्म होता है। जीत किसी की नहीं होती, श्रपितु सभी की करुणाजनक हार ही होती है।

पूर्णता प्राप्त करने के लिए हमें प्रतिदिन ऐसा प्रयत्न करना चाहिए, जिससे मोक्ष और ईश्वरत्व की प्राप्ति हो सके। ग्रास्त्य, पर-मिन्दा, सांसारिक भाकांक्षाए—सभी का त्याग करना चाहिए और उनके स्थान पर जाति, धर्म भीर वर्ण का भेद भुलाकर सबके प्रति सच्ची मैची का विकास करना चाहिए तथा ग्रन्सिम लक्ष्य की घोर कदम-से-कदम मिला कर ग्रागे बढ़ना चाहिए। मेरा विश्वास है कि ग्रणुवत-आन्दोलन स्थायी विश्व-शान्ति का सच्चा और शक्तिशाली साधन बन सकता है। धीरे-धीरे ही सही, किन्तु यह श्रान्दोलन सारे विश्व में फैल सकता है।

जीत दर्शन का मूल सत्य है। सत्य से सब कुछ सिद्ध हो सकता है। हमारा भविष्य हमारे अपने हाथों में है। हम अपने-आप सुख और दुःख की रचना कर सकते हैं।

पश्चिम को जैन सिद्धान्तों की बड़ी ग्रावस्थकता है। पूर्व ग्रीर पश्चिम के धर्म एक-दूसरे की पूर्ति कर सकते हैं। उन सबसे प्रेम ग्रीर सत्य का स्थान है। इस विषय में उनमें कोई ग्रन्तर नहीं है।

दुनिया में ग्राज पूर्वाग्रहों को लेकर गहरी साई पड़ी हुई है। उस पर हमको सहमित का पुत निर्माण करना चाहिए। ग्रध्यात्म के द्वारा ही यह सम्भव हो सकता है।

# मानव जाति के पथ-दर्शक

भी हेलमुथ डीटमर, भारत में पश्चिमी जर्मनी के प्रधान स्वापार दूत

श्राचार्यश्री तुलसी के धवल समारोह के श्रवसर पर मुक्ते कुछ वर्ष पहले माटुँगा (बम्बई) में श्रायोजित जैन समाज के धार्मिक समारोह की याद हो श्राती है, जो साध्वीश्री गोराँजी के तत्वावधान में हुआ था श्रीर उसमें मैं प्रथम बार जैनों के सम्पर्क में भाया था। मैं उस समारोह ने श्रत्यन्त प्रभावित हुआ। मैं श्रावक श्रीर श्राविकाशों के बीच बैठा हुआ था श्रीर मैंने साध्वीजी के मुख से धर्म-लास्त्रों की व्याख्याएं सुनीं। उन्होंने काम, कोध, मद लोभ, हिंसा, दभ, श्रसत्य, चोरी, ग्रहंकार श्रीर भौतिकवाद के विरुद्ध प्रवचन दिया। जब उन्होंने कहा कि श्रहिसा परम धर्म है, सबसे मुख्य विधान श्रीर सर्वोत्तम गुण है, तो मुभे उनका यह कथन बहुत सुन्दर लगा। मैं साध्वीजी के भव्य श्राध्यात्मक श्रीर शान्त रूप को कभी विस्मृत नहीं कर सर्वृगा।

इस अवसर पर जैन धर्म, उसके सिद्धान्तों, सम्यग् दर्शन, सम्यग् ज्ञान और सम्यग् चरित्र की विधियों और, अणुव्रत-आन्दोलन का मुक्त पर गहरा और स्थायी असर पड़ा और मैं उनका प्रशंसक बन गया। मेरी कामना है कि जैन स्वेताम्बर तेरा पंथ के निवें आचार्य और अणुव्रत-आन्दोलन के प्रणेता आचार्यथी तुलसी दीर्घायु हों और मानव-जाति का पथ-प्रदर्शन करते रहें।



### मानवता का कल्याण

डब्ल्यू फोन पोखाम्मेर बम्बई में जर्मनी के भूतपूर्व प्रधान व्यापार दूत

जब मैंने भारतीय धर्मी का अध्ययन शुरू किया तो मै विशेषतः जैन धर्म मे अस्यन्त प्रभावित हुआ। वह मनुष्य का उसके अन्तर में स्थित नैतिक व एकमान्न दैवीतत्त्व के साथ सीधा सम्बन्ध ओडता है।

मै जैनों की कुछ घामिक सभाशों में सम्मिलित हुआ हूँ और मुक्ते यह जान कर प्रसन्तता हई कि वे नैतिकता को सर्वोपरि सहत्त्व देते हैं। वे हमको शिक्षा देते हैं कि केवल श्रोता बन कर मत रहो, श्रपितु आचरण भी करो; सक्रिय मनुष्य बनो। इसका यह अर्थ हुआ कि प्रत्येक सत्संग का परिणाम वस के रूप में आना चाहिए।

आचार्यश्री तुलसी मुभे विशिष्ट पुरुष प्रतीत हुए, कारण वह अपने सम्प्रदाय के अनुसायियों को ही नहीं, अपितु सभी को नैतिक सिद्धान्तों के अनुसार जीवन विताने की प्रेरणा देते है।

मेरी हार्दिक कामना है कि वह भ्रापने उच्च लक्ष्य को सिद्ध करने में सफल होंगे, जिसके फलस्वरूप न केवल भारत का भ्रापितु समस्त मानवता का कल्याण होगा।



# नैतिक जागरण का उन्मुक्त द्वार

डा० लुई रेनु, एम० ए०, पी-एच० डी० बम्बक, भारतीय विद्याध्ययन-विभाग, संस्कृत-प्राच्यायक, वेरिस विश्वविद्यालय

भावार्यश्री तुलसी तेरापंथ सम्प्रदाय के नवम अधिशास्ता हैं,जिनसे मिलने का मुक्ते सौभाग्य प्राप्त हुआ है। वे एक आकर्षक व्यक्तित्व वाले हैं। वे युवक हैं जिनकी शारीरिक आकृति सुन्दर है। उनकी श्रांखों में विशेष रूप से आकर्षण है, जिसका किसी भी दर्शक के हृदय पर भनायास ही गहरा समरपड़ता है। वे संस्कृत-साहित्य के प्रधिकारी विद्वान् है और विशिष्ट कि भी। सबसे अधिक सब प्राणियों के प्रति उनकी दयालुता और जो सहिष्णुता है, वह बड़ी उच्चकोटि की है। उनके साढ़े छः सौ के करीब साध-साध्वयाँ शिष्य हैं। उनके अनुयायी पाँच लाख के करीब हैं, जो हिन्दुम्तान के भिन्न-भिन्न प्रान्तों में रहते हैं।

मुक्ते ज्ञान है कि भारतीय जनता की प्रवृत्ति बहुत धार्मिक है। मैंने इस तथ्य को कुमारी अन्तरीप से दरभंगा तक के अपने दौरे में बहुधा अनुभव किया है। किन्तु धर्म के प्रति जितनी शुद्ध एवं सच्ची श्रद्धा मुक्ते तैरापंथ संघ में प्रतीत हुई, उतनी अन्यत्र कहीं भी नहीं।

तेरापंथ संघ के लिए यह बड़े सौभाग्य का विषय है कि उनको आचार्यश्री तुलसी जैसे महान् व्यक्ति भाषार्य के रूप में प्राप्त हुए हैं। मैं सोचता हूँ कि उनके कारण ही यह संघ भ्रपना व्यापक विकास करेगा तथा भ्रपनी महत्ता के साथ सारे ससार में प्रसार पायेगा।

श्राचार्यश्री तुलसी का घवल समारोह उनके प्रतिश्रद्धा प्रकट करने का श्रवसर देता है। श्राधुनिक भारत के वे एक श्रत्यन्त प्रमुख महापुरुष है और इस सम्मान के पूर्णतया श्रिधकारी है। उन्होंने न केवल तेरापंथ समाज का सही मागं-दर्शन करके पूर्व श्राचार्य के काम को प्रमावशाली रूप से श्रामे बढ़ाया है, प्राचीन शास्त्रों के श्रनुसार यह सम्यग् दर्शन, सम्यग् ज्ञान और सम्यग् चरित्र का कार्यक्रम है; बल्कि नैतिक जागरण का द्वार उन्युक्त कर दिया है। यह कार्यक्रम हमारी ग्राज की श्रशान्त और त्रस्त दुनिया में विवेक और शान्ति का सबल स्तम्भ है।



# ढाई हजार वर्ष पूर्व के जैन-संघ में

डा० डब्ल्यू नोर्मन साउन श्रम्यका, बिक्किन-पूर्व एशियाई प्रवेश-सम्मयन विभाग तथा सम्यापक, संस्कृत, पेस्स्यासवेनिया विश्वविद्यालय (यू० एस० ए०)

तेरापंथ सम्प्रदाय के निकट सम्पर्क में आने का सौभाग्य मुक्ते तभी प्राप्त हुन्ना जब कि मैं आचार्यश्री और उनके शिष्य साधु-साध्वियों के तथा श्रावक-श्राविकाओं के परिचय में आया। जब कभी मैं जैनों से मिलता हूँ, मुक्ते अत्यधिक प्रसन्नता होती है और आचार्यश्री तुलसी के दर्शन पाकर भी मैंने यही अनुभूति की है।

मेरे लिए वह एक मूल्यवान् एवं आनन्दवायक समय था जब कि आचार्यक्षा से बातचीत करने का तथा गोष्टी में भाग लेने का अवसर मुक्ते मिला था। आचार्यश्री की स्वयं की विद्वता और उनके साधु-साध्वियों की विद्वता से भी, कोई भी व्यक्ति प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। मुक्ते यह भी आक्ष्ययं हुआ कि उनके श्रावकों में भी यह क्षमता है कि वे गोष्टी में चित्र तात्त्विक विषयों को, जो कि गुजराती, संस्कृत और प्राकृत आदि भाषाओं में होती रही, समक सकते थे। यह तो मुक्ते अत्यधिक ही अद्भुत लगा, जब कि एक साधु बिना किसी पूर्व तैयारी के प्राकृत भाषा में भाषण करने लगे। इन सब बातों से यह स्पष्ट हो जाता है कि आचार्यश्री के मार्ग-दर्शन में उनका सम्प्रदाय जैन दर्शन और सिद्धान्तों का परिश्रम पूर्वक अध्ययन और विकास कर रहा है।

मैं यह मानता हूँ कि आचार्यश्री के साथ वार्तालाप करने से मुक्ते तेरापथ के विशिष्ट सन्देश की जानकारी हुई है। उनसे तेरापथ के आदशों, पढ़ितयों, संघ-ध्यवस्था, विश्व-शान्ति की दिशा में उसके प्रयत्नों आदि के विषय में स्पष्ट भौर अधिकारपूर्ण जानकारी मुक्ते प्राप्त हुई है। आचार्यश्री के साथ के मेरे सम्पर्क के समय मुक्ते यह अनुभूति होती थी, मानो में ढाई सहस्र वर्ष पूर्व के किसी जैन-सच में प्रविष्ट हुआ हूँ।



# महान् कार्य और महान् सेवा

श्री बी० बी० गिरि राज्यपाल, केरल

तीन वर्ष पहले की बात है। मैंने कानपुर में अण्वत-आन्दोलन के नवम वार्षिक अधिवेशन में भाषण दिया था तो मुक्ते इस आन्दोलन का पूरा विवरण जानने का सौभाग्य मिला था। तभी से मैं आचार्यश्री तुलसी के उस महान् कार्य और महान् सेवा से प्रभावित हूँ जो वह मानव जानि की भावी प्रगति के लिए नैनिक आधार स्थापित करने के लिए कर रहे हैं।

#### एक मशाल

भाज दुनिया को नैतिक उत्थान की जितनी अवश्यकता है, उतनी पहले कभी नहीं थी। कोई राष्ट्र तब तक अगति नहीं कर सकता अथवा अपने को बलवान् नहीं कह सकता, जब तक उसके लोग उच्च आदशों का अनुसरण नहीं करते और सद्गुणी नहीं होते। जीवन के प्रति भौतिक दृष्टिकोण ने लोगों को स्वार्थी बना दिया है और अष्टाचार एवं अष्ट व्यवहारों; जैसे कि रिश्वतखोरी और मिलावट ने भारतीय जीवन को तबाह कर दिया है। आज हम मानव भविनव्य के चौराहे पर खड़े हैं। ऐसी स्थित में जब कि हमारे पास युगों पुरानी परम्पराओं और सांस्कृतिक मृत्यों की बिरासल में मिली हुई निधि विद्यमान है, तब समस्त अन्यकार को दूर करने के लिए केवल एक मशाल की आवश्यकता है। अणुवत-आन्दोलन वह सशाल है।

जैमा कि ब्रानार्यश्री तुलसी ने स्वयं कहा है, 'ब्रणुव्रत-धान्दोलन जीवन के ब्राध्यात्मिक धौर नैतिक सिंचन की योजना है। उसका उद्देश्य सामाजिक श्रथवा राजनीतिक हिन की श्रपेक्षा कहीं धधिक व्यापक है। वह उद्देश ब्राध्यात्मिक कल्याण है और ब्राध्यात्मिक कल्याण है और ब्राध्यात्मिक कल्याण केवल सर्वोच्च श्रेय ही नहीं सम्पूर्ण श्रेय है। उसमें स्वयं के श्रेय श्रीर दूसरों के श्रेय दोनों का समावेश होता है।

### नैतिक मूल्यों से उपेक्षित ग्रर्थशास्त्र ग्रसत्य

धाज हमने समाजवादी ढंग के समाज को ग्रापना राष्ट्रीय उद्देश्य स्थीकार किया है। मेरे विचार ने यह केवल राजनीतिक भ्रथवा भ्राधिक नहीं है जिसके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को अपनी उन्नित के लिए समान अवसर मिलना चाहिए भ्रीर राष्ट्रीय प्रयास में भाग लेना चाहिए श्रथवा प्रत्येक नागरिक को कुछ-न-कुछ ग्राधिक न्याय मिलना चाहिए, प्रत्युत ऐसा भ्रादर्श है जो सर्वव्यापक है भीर राष्ट्र के श्राध्यात्मिक भीर सांस्कृतिक जीवन को स्पर्श करता है एवं जिसका नैतिक भ्राधार है। सन् १६२४ में गांधीजी ने 'यंग इण्डिया' में लिखा था, 'वह अर्थजास्त्र असत्य है जो नैतिक मूल्यों की उपेक्षा प्रथवा भवहेलना करता है। श्राधिक क्षेत्र में श्रहिंसा के नियम के विस्तार का इसके श्रतिरिक्त कोई श्रथं नहीं होना कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का नियमन नैतिक मूल्यों के भ्राधार पर किया जाए।'

भारतीय पद्धति के समाजवाद में जो गांधीजी का स्वप्त था व हमारा राष्ट्रीय घ्येय है; दूसरे कथित समाज-वादी देशों के समाजवाद में यह अन्तर है कि हम अपने घ्येय की प्राप्ति के लिए सत्य और अहिंसा पर सम्पूर्ण श्रद्धा रखते हैं जब कि अन्य समाजवादी देश शक्ति को नये समाज की प्रसव पीड़ा मानते हैं अथवा जैसा कि अन्य कुछ लोग कहते हैं, अण्डे को तोड़ें बिना आमलेट नहीं बन सकता। विदेशों में जो लोग समाजवाद की करपना के पृष्ट पोषक बने हुए हैं, उनके निकट साधनों का कोई महस्व नहीं यदि साध्य न्योयोचित हो । किन्तु गांधीजी का कहना था कि साधनों को साध्य से पृथक् नहीं किया जा सकता । इसका यह धर्य होता है कि न्यायोचित साध्य को अनुचित साधनों से प्राप्त करना नैतिक नहीं है। गांधीजी का कहना था कि हमको लोगों का हृदय परिवर्तन करके सामाजिक परिवर्तन लाना चाहिए ।

हमारी सभी नीतियों और कार्यक्रमों में यही नैतिक मावना निहित है। सन् १६३७ में गांघीजी ने प्राधिक पुनरंचना के प्रपने सिद्धान्तों का विश्लेषण किया और कहा, "प्रार्थशास्त्र उच्च नैतिक मानदण्ड का कभी विश्लेषण किया और कहा, "प्रार्थशास्त्र उच्च नैतिक मानदण्ड का कभी विश्लेष नहीं होता, जिस प्रकार कि सभी सच्चे नैतिक नियमों को उत्तम प्रार्थशास्त्र के भी धनुकूल होना चाहिए। जो प्रार्थशास्त्र केवल सक्ष्मी की पूजा करने का ग्राग्रह करता है और बलवान को निबंल को हानि पहुँचा कर धन-मंग्रह करने में समर्थ बनाता है, वह क्रूठा और दयनीय विज्ञान है। वह मौत का सन्देशवाहक होगा। इसके विपरीत मच्चा प्रार्थशास्त्र सामाजिक न्याय का पोषक होता है, वह सबका, निबंल से निबंल का हित साधन करना है और उत्तम जीवन के लिए ग्रानिवार्य होता है।" समाजवाद के नैतिक ग्राधार की इसने ग्राच्छी व्याख्या दूसरी नहीं हो सकती।

#### ग्रध्यात्म की नकेल

श्राचार्यश्री तुलसी ने यही विचार प्रतिपादित किया है। उन्होंने भौतिकता पर आध्यात्म की नकेल लगाई है। उनका तत्त्व ज्ञान व्यक्ति पर केन्द्रित है और सर्वोच्च सामाजिक श्रेय प्राप्त करने के लिए व्यक्ति को नियमों का कुशलता-पूर्वक पालन करना चाहिए। यह विधि संहिता कोई ऐसी कठोर नहीं है कि उसकी अवहेलना करने पर न्यायालयों द्वारा किसी को दण्ड पाना पड़े। न्यायालय वास्तविक और प्रभावशाली समाजवाद की स्थापना करने में सहायक नहीं हो सकते। यह बहुधा कहा गया है कि लोकतन्त्र की सफलता मुख्यतः इस पर निर्भर करती है कि लोग अपने अधिकारो शौर सुविधाओं की माँग करने के पहले अपने कर्तव्यों और उत्तरदायित्वों को पूरा करें। लोकतन्त्र की भाँति समाजवाद की सफलता की भी यही कसौटी होगी। आदर्श की पूर्ति के लिए नागरिकों को राष्ट्र के सामने उपस्थित सभी कार्यों में बिना किसी बाहरी सत्ता के आदेश के स्वेच्छा और उत्साहपूर्वक योग देना चाहिए।

इन प्रयत्नों में ग्रणुवन और ऐसे ही अन्य आन्दोलन राजनीतिक, सामाजिक और आधिक ढाँचे में ठोस और स्थिर नैतिक आधार पर व्यापक परिवर्तन लाने में हमारी सहायता कर सकते हैं।



## संत भी, नेता भी

### श्री गोपीनाथ 'ग्रमन' ब्रध्यक्ष, जन-सम्पर्क समिति, दिल्ली प्रशासन

करीब माठ-नौ वर्ष पूर्व की बात है जबिक मैं दिल्ली विधान-सभा का उपाध्यक्ष था; एक दिन मेरे मित्र श्री जैनेन्द्र-कुमारजी ने, जब हम दोनों एक श्रधिवेशन से वापस आ रहे थे, कहा कि चिलये, श्रापको एक संत के दर्शन कराएं। मैंने पूछा, कौन? उन्होंने बताया, श्राचार्यश्री तुलसी। मैंने श्राचार्यश्री तुलसी का नाम तो मुन रखा था, न मैंने उन्हें देखा था और न उनके श्रान्दोलन को। मैं जैनेन्द्रजी के साथ नया बाजार में श्राया। वहाँ श्राचार्यश्री तुलसी के दर्शन हुए। सड़क के किनारे उनके श्रद्धालु भक्तों की बहुत बड़ी भीड़ थी। मेरा थोड़ा ही परिचय हुशा और मैं दर्शन करके चला श्राया। कोई विशेष बातचीत नहीं हुई। दर्शनों मे मैं प्रभावित श्रवश्य हुशा, परन्तु इतना ही कि यह एक संत हैं श्रीर एक धार्मिक सम्प्रदाय के श्राचार्य है। यद्यप यह भी श्रपने-श्राप में बहुत बड़ी बात है, परन्तु तब मैं श्रणुवत-श्रान्दोलन को नहीं जानता था। इसकी कुछ रूप-रेखा मुक्ते उनके मंतों के द्वारा उस समय जात हुई. जब मै एक वर्ष वाद दित्ली-राज्य का मन्त्री बन गया। मुनिश्रो नगराजजी और मुनिश्रो बुद्धमलजी, मुनिश्री महेन्द्रकुमारजी 'श्रथम' और मुनिश्री नथमलजी से मेरा परिचय हुशा और मैंने श्रणवत-आन्दोलन का थोडा-बहुत श्रध्ययन किया। जहाँ तक मुक्ते याद है, मैने जोधपुर में पहला अधिवेशन देखा। फिर तो सरदार शहर और राजम्थान के कई स्थानों में जाने का सीभाग्य प्राप्त हुशा और प्राचार्यश्री तुलसी के दर्शन निकट से हो सके।

जब मैं मन्त्री था, तो कुछ मेरे अणुद्रती होने की भी चर्चा चली, परन्तु मन्त्री होने हुए मैं अणुद्रत के नियमों को पूरी तरह निवाह नहीं सकता था। मैं यह नहीं कहता कि यह निवाह किसी मन्त्री के लिए सम्भव नहीं है, परन्तु मेरे-जैसे दुवल मनुष्य के लिए अगम्भव अवश्य था। फिर जब विधान सभा टूटी और मैं जन-सम्पर्क समिति का प्रधान बना तो उसी के कुछ सप्ताह पीछ मैंने एक रात्रि को आचार्यश्री तुलसी के सान्तिध्य में अणुद्रत भी ग्रहण किये। अब एक अणुद्रती होने के नाते और दिल्ली अणुद्रत समिति के प्रधान तथा अखिल भारतीय अणुद्रत समिति के उपप्रधान होने के नाते आचार्यश्री से और निकट सम्पर्क हुआ। मैं जो अपने विचार लिख रहा हूं, वह उनकी पूरी रूप-रेखा नहीं है; परन्तु इतना ही है, जितना कि मैं देख सकता था।

### सिद्धान्त की ध्रपेक्षा व्यक्ति से प्रभावित

मै सिद्धान्त की अपेक्षा मनुष्य से अधिक प्रभावित होता हूँ। जब मैं सन् १६२१ में कांग्रेस में आया तो गांधीजी के चरित्र से आकर्षित होकर; और अणुत्रत-आन्दोलन में आया तो आचार्यश्री तुलसी और उनके संतों से प्रभावित होकर। महावनी का जीवन बीसवीं शताब्दी में, बल्कि संवत् के हिसाब से इक्कीसवीं शताब्दी में बड़ा आश्चर्यजनक है। मनुष्य ने अपनी आवश्यकताएं बढ़ा ली हैं और आवश्यकताओं का बढ़ाना सम्यता का चिह्न समक्षा जाने लगा है। एक ऐसे दौर में कोई व्यक्ति या उससे भी बढ़ कर कोई मण्डली अपनी आवश्यकताओं को इतना समेट ले कि उसके पास एक-दो कपड़े और पात्रों से अधिक कुछ न हो, यह बड़े आश्चर्य की बात है। और फिर ऐसे महास्र तियों का अपना संगठन है, यह और भी आश्चर्य की बात है।

आचार्यश्री मुलसी एक संत ही नहीं, एक नेता भी हैं। संत नेता होना बहुत कठिन काम है। संत तो अपना ही

मुधार करते है और जो उनके सम्पर्क में या जायें, तो कथी-कभी प्रभावित होकर उनका भी सुधार हो जाता है; परन्तु एक नेना तो मुधार का मिशन लेकर चलता है। धाचार्यश्री तुलसी के पीछे साढ़े छः सौ संत और साध्वयां हैं और लाखों मनुष्य भी। इन साढ़े छः सौ महाव्रतियों को नियंत्रित रखना कोई साधारण काम नहीं। नेता की दृष्टि में तो वह सच्चा और पूर्ण नेता है जो सबकी कमजोरियों को भी, जो होती ही हैं, निवाह देता है। धाचार्यश्री तुलसी को भी कई ऐसी कठिनाइयाँ पेश द्याती रहनी है, जैसे महात्मा गांधी को घाश्रम में पेश घाती थीं। इसके विशेष वर्णन की धावश्यकता नहीं, केवल संकेत करना ही काफी है। परन्तु धाचार्यश्री तुलसी में नेतृत्व का इतना बड़ा जौहर है कि मैंने उन्हें कभी धशान्त नहीं देखा। यह एक नेता का सबसे बड़ा गुण है और यह एक संत नेता में ही हो सकता है। इस समय धाचार्यश्री तुलसी एक तो तेरापंथ-सम्प्रदाय के धाचार्य हैं और दूसरे धणुवत-धान्दोलन के नेता। तेरापंथी सम्प्रदाय तो एक धार्मिक सम्प्रदाय है; परन्तु धणुवत-धान्दोलन एक नैतिक धान्दोलन है, जिसमें जैन ही नहीं, बिल्क न जाने कितने मुक्त-जैसे धजैनी भी सम्मितित हैं। यह कोई छिपी हुई बात नहीं कि जो लोग केवल जैनियों को धणुवतों का धिकारी मानते हैं या धणुवत को केवल इसी रूप में मानते हैं कि वह महावती के लिए प्राथमिक साधन है, वे धाचार्यश्री तुलसी के धणुवत-धान्दोलन का विरोध भी करते हैं; परन्तु धाचार्यश्री तुलसी ने न तो धपने स्तर से उतर कर कभी इन विरोधियों को उत्तर दिया है और न कभी उनसे प्रभावित होकर धपने धान्दोलन के काम को रोका है। यह भी एक सच्चे नेना की ही बात है।

### विरोध की एक लम्बी कहानी

ग्राचार्यश्री तुलसी के विरोध में क्या-क्या किया गया, क्या-क्या कहा गया, क्या-क्या लिखा गया, यह भी एक लम्बी कहाती है। कलकत्ते में सन् १६५६ के श्रधिवेशन में भी मुभे निमन्त्रित किया गया था। वहाँ मैंने भी इन विरोधों का कुछ रूप देखा। मैं कभी-कभी आवेश में भी आया, परन्तु आचार्यश्री मुस्कराते ही रहे। ये संत माइकोफोन पर नहीं बोलते, इसलिए बड़ी सभाग्रों में उनकी आवाज पहुँचने में भवश्य ही कित्नाई होती है; परन्तु आचार्यश्री त्लसी की आवाज बहुन तेज है। मैंने देखा कि कलकने में उनके बोलते समय जोर-जोर से पटाले छोड़े गए, ताकि सभा के काम में खलबली मचे; परन्तु आचार्यश्री न केवल स्वयं शान्त रहे, बिल्क उनमें इतना प्रभाव था कि उन्होंने सारे समूह को शान्त रखा। उस समूह में मुभ-जैने लोग भी थे, जो जल्दी आवेश में आ जाते हैं; परन्तु यह उनका प्रभाव और आकर्षण था कि कोई आवेश में नहीं आया। उन्होंने अपने व्याख्यान में भी कहा कि जो मेरे भाई मेरे विरोधी हैं, वे मुभे अवसर दे कि वे मुभे समभा दें या मैं उनको समभा दूं। इतने बड़े महान् नेता के लिए यह बात कहना उसकी महानता का परिचायक है। मैंने आचार्यश्री से जब-जब बातें की है तो मैंने यह देखा कि विरोधियों के प्रति उनमें जरा भी रोप नहीं। संसार के अन्य महान् व्यक्तियों की तरह वे विरोधियों को निपटाते तो हैं, परन्तु न उन्हें कोई हानि पहुँचाना चाहते हैं भीर न उनके स्तर पर उतर कर कोई जवाब देना चाहते हैं, यह बहुत बड़ी बात है।

### जीवन में स्याद्वाद

दूसरी महानता जो मैंने आचार्यश्री में देखी, वह यह कि स्याद्वाद को उन्होंने अपने जीवन में पूर्ण रूप से ग्रहण कर लिया है। उनके दर्शकों में हिन्दू, मुसलमान, ईसाई सभी वर्गों के और सभी जातियों के लोग होते हैं। यह भी स्पष्ट है कि जैन-धर्म जितना अहिंसा पर जोर देता है, अन्य सभी धर्म उतना जोर नहीं देते, परन्तु आचार्यश्री यह देख लेते हैं कि मेरे साथ कोई कितना चल सकता है और उसमें उतनी ही आधा करते हैं। इससे संगठन में बहुत सहायता मिलती है। इन दिनों आचार्यश्री ने 'नया मोड़' आन्दोलन चलाया है। समाज-सुधार का काम वैसे ही बड़ा कठिन है, परन्तु मारवाड़ी समाज जितना पिछड़ा हुमा है, उसमें यह काम और भी कठिन है। पर्ने के विरोध में, दहेज के विरोध में, ब्याह-धादियों में अधिक धन खर्च करने और दिखावा करने के विरोध में, विषवाओं के तिरस्कार करने के विरोध में आचार्यश्री ने एक पिछड़े हुए समाज में जिस प्रकार आवार्ज उठाई, उससे कुछ लीग असंतुष्ट भी हैं। आवार्यश्री ने ऐसे हरिजनों के

यहाँ, जिनका सानपान गुढ़ है, अपने संतों को निक्षा लेने को भी आजा दे दी। इस पर भी उनका विरोध हुआ और जब ऐसी बातों में उनका विरोध होता है तो मुसे गांधीजी की याद आती है। महात्मा गांधी भी जीवन-दर्यन्त समाज को उठाने का प्रयत्न करते रहे और उनके विरोधी उन्हें बुरा-भला कहते रहे। आज जो लोग सच्चा धर्म नहीं चाहते, जो सकीर के फकीर बने रहना चाहते हैं, जो यह चाहते हैं कि साधु-संत उन्हें पिछली कथाएं सुनाते चले जायें और भविष्य के बारे में कुछ न कहें, कान्ति की बात न करें, ऐसे लोगों में आचार्यश्री के प्रति अश्रद्धा और अविश्वास होना प्रावृतिक ही है। परन्तु आचार्यश्री जिस मार्ग पर चल रहें हैं या जिस पर चलना चाहते हैं, उससे उन्हें नोई विचलित नहीं कर सकता।

#### कुशल बक्ता

कुजल वक्तृस्व का भी भाषायंश्री में एक विशिष्ट गुण है। एक तो उनकी भावाज ही बहुत ऊँची है, मधुर भी है भीर वह यह देख लेते हैं कि जिस जनता में मैं बोल रहा हूँ, वह कितना ग्रहण कर सकती है। बाज ऊँचे व्यक्तियों में यह दोष होता है कि वे कभी-कभी बिल्कुल बे-पढ़े-लिखे लोगों में दर्शन शास्त्रों का वर्णन करने लगते हैं। श्राचार्यश्री को इतना अनुभव हो गया है कि वह जिस जनता में बात करते हैं, ऐसी बात कहते हैं कि उसके द्वृदय में उतर जाये। यह बात ग्रौर है कि वह जनता कहाँ तक उस उद्देश्य को किया-रूप में परिणत कर सकती है।

हजारों मील पैदल चल कर लाखों मनुष्यों में सम्पर्क रखते हुए श्राचायंश्री तुलसी को कब सोचने का श्रीर लिखने का समय मिलता है, यह भी श्राइचर्य की बात है। सब-कुछ करते हुए भी वे मनन भी करते रहने हैं श्रीर लिखते भी रहते हैं। गद्य में भी लिखते हैं श्रीर पद्म में भी वे लिखते हैं। दोनों में मधुरता है, दोनों में सरसता है, दोनों में गम्भोरता है श्रीर दोनों में एक ऊँचे दर्जे का उद्देश्य है।

### ऊँचे विचार कार्य-बुद्धि में विघन नहीं

श्राचार्यश्री तुलसी उस गुण के भी धनी हैं, जो महात्मा गांधी में था। ऊँची-ऊँची बातों का विचार करते हुए भी छोटी बातें उनकी श्रांखों से श्रोभल नहीं होतीं श्रीर वे कुशलतापूर्वक छोटे-छोटे मसलों को भी निपटाते रहते हैं। किस संत को कहाँ जाना है, किस गृहस्थी से बात करनी है, कार्यक्रम कैसे बनाना है, सभा में किस-किस का वर्णन करना है, किसको कहाँ बँठना है, कौन किस प्रकार बैठा है, कौन मुन रहा है, कौन बात कर रहा है, यह सब उनकी नजर में रहता है। उनके उच्च विचार, उनकी कार्य-बुद्धि में विघ्न नहीं डालते। मैंने श्रिधवेशनों में उनका यह गुण विशेष रूप से देखा है। छोटे-से-छोटा मनुष्य हो या देश का सबसे बड़ा व्यक्ति, या बाहर के देश से श्राया हुशा कोई विद्वान् या उच्च पदा-धिकारी, उनसे मिल कर सबको सन्तोष होता है। हरिजन उनके कमरे में श्राते भिभकते थे, परन्तु उनके हौमला दिलाने से उन्हें चरण-स्पर्श का सीभाग्य प्राप्त हुशा।

श्रणुद्गत-ग्रान्दोलन की गति से श्राचार्यश्री तुलसी को नहीं जाँचना चाहिए । उसनी प्रगति यदि मन्द है तो उसके लिए हम जैसे श्रकर्मण्य लोग जिम्मेदार हैं।

> पूरा सत्गृव क्या करै, जो सिर्क्षा में खूक। सन्धा लोक न सेते रहाो, कहै कबीरा कुक।।

भ्राज जबकि साचार्यश्री तुलसी का घयल-समारोह मनाया जा रहा है, मैं नम्रतापूर्वक उनके वरणों में श्रपनी श्रद्धांजिल प्रस्तुन करता हूँ ।

# आधुनिक भारत के सुकरात

महर्षि विनोद, एम० ए०, पी-एच० डी०, न्यायरत्न, दर्शनालंकार प्रतिनिधि विदय शास्त्रिकान्दोलन, टोकियो (जापान) सदस्य, रायल सोसाइटी घाफ आर्टस्, लग्बन

### <sup>---</sup> तपस्या सर्वधेष्ठ गुण है

---पौधविस्त (तंत्तरीय उपनिषद्, १-६)

श्राचार्यं तुलसी एक श्रथं में श्राष्ट्रनिक भारत के सुकरात हैं। वह एक पारंगत तर्कविद् हैं, किन्तु उनकी मुख्य शिक्षा यह है कि सत्य केवल वाद-विवाद का विषय नहीं, प्रत्युत झाचार का विषय है। एक शताब्दी से अधिक की अंग्रेजी शिक्षा ने भारतीय मानस को तर्कप्रधान बना दिया है। महात्मा गांधी श्रीर पंच मदनमोहन मालवीय, डा० राषाकृष्णन् ने इस बुराई का प्रकटतः बहुत कुछ निवारण किया है। आचार्यं तुलसी ने भारत में मिथ्या तर्कवाद की बुराई को दूर करने के लिए एक नया ही मार्ग अपनाया है। उनका आग्रह है कि मनुष्य को नैतिक अनुशासनों का पालन करके सत्यमय और ईश्वरपरायण जीवन विताना चाहिए।

#### छोटा झाकार, विशाल परिणाम

इत दिनों हम घटनाओं और वस्तुओं की विशालता से प्रभावित होते हैं और उनके झान्तरिक महत्त्व की उपेक्षा करते हैं। फांसीसी गणितज्ञ पोयंकेर ने कहा है कि एक चींटी पहाड़ से भी बड़ी होती हैं। पहाड़ की एक छोटी-सी चट्टान लाखों चींटियों को मार सकती है, किन्तु पहाड़ को यह पता नहीं चलना कि उसे स्वय को भ्रथवा चींटियों को क्या हुआ। इसके विपरीत हर चींटी को पीड़ा और मृत्यु का भ्रथं विदित होता है। श्राचार्य तुलसी की अणुक्रत-विचारधारा नैतिक अनुशासन का महत्त्व प्रकट करती है। यह अनुशासन भाकार में छोटे होते हुए भी परिणाम की दृष्टि से बहुत विशाल है।

श्रपने प्रारम्भिक जीवन में झाचार्य तुलसी ने अत्यन्त कड़े शनुशासन का पालन किया। वे यह मानते थे कि कठोर तपस्या के द्वारा ही मनुष्य इस संसार में नया जीवन प्राप्त कर सकता है। नये जीवन का यह पुरस्कार प्रत्येक व्यक्ति श्रपने ही प्रयत्नों से प्राप्त कर सकता है। नया जीवन अपने आप नहीं मिलता। उसे प्राप्त करना होता है। झाचार्य तुलसी के कथनानुसार प्रत्येक व्यक्ति को अपना लक्ष्य निर्धारित करना चाहिए। भारत जैसे देश में ही झाचार्य तुलसी जैसे महापुरुष जन्म ले सकते है। तपस्या के द्वारा नया जीवन प्राप्त करने के लिए भारतीय पूर्वजों का उदाहरण और भारतीय मांस्कृतिक सम्पदा अत्यन्त मूल्यवान् याती है।

मैं श्राचार्य तुलसी ने मिला हूँ। मैंने अनुभव किया कि वे ईश्वरीय पुरुष है और उन्होंने ईश्वर का सन्देश फैलाने और उसका कार्य पूरा करने के लिए ही जन्म धारण किया है। वे न भूत काल में रहते हैं, न भविष्य काल में। वे तो नित्य वर्तमान में रहते हैं। उनका सन्देश सब युगों के लिए और सारी मानव जाति के लिए है।

### ईश्वर द्वारा मनुष्य की खोज

अज्ञात काल से मनुष्य का भारतरिक विकास केवल एक सत्य के भाधार पर हुआ है। वह सत्य है—सानव की ईष्वर की खोज। इस बात को हम बिल्कुल दूसरी तरह से भी कह सकते हैं कि ईष्वर भी मनुष्य की खोज कर रहा है ईष्वर को मनुष्य की खोज उतनी ही प्रिय है जितना कि मनुष्य ईश्वर की खोज करने के लिए उत्सुक है। एक बार यदि हम यह समक्त लें कि ईश्वर ग्रौर मनुष्य दो पृथक् सिद्धान्त नहीं हैं, पूर्ण मनुष्य ही स्वयं ईश्वर होत है तो दुनिया के सभी धर्म भ्रात्म-ज्ञान प्राप्त करने के भिन्त-भिन्न मार्ग प्रतीत होंगे। जब मनुष्य ईश्वर का साक्षात्कार करता है तो वह केवल भ्रपनी सर्वश्रेष्ठ भ्रात्मा का ही साक्षात्कार करता है।

भाषायं तुलसी के सन्देश का भाज के मानव के लिए यही भाशय है कि वह स्वयं अपने लिए अपनी अन्तरात्मा के भन्तिम सत्य का पता लगाये। यही देवत्व का सिद्धान्त है। उन्होंने स्वयं पूर्ण दर्शन की स्थापना की है, जिसके द्वारा मनुष्य भात्म-ज्ञान के भन्तिम लक्ष्य को प्राप्त कर सकते हैं। भणुव्रत उनके व्यावहारिक दर्शन का नाम है और वह भ्राज के भणु-युग के सर्वथा उपयुक्त है।

श्रणु शब्द का मर्थ होता है—छोटा भीर कत शब्द का मर्थ है—स्वयं स्वीकृत मनुशासन । जैमिनी के प्रनुसार क्रत एक मनो क्यापार है, बाह्य कमें नहीं । मणु भौतिक पदार्थ का सूक्ष्मातिसूक्ष्म भाग होता है । प्राधुनिक विज्ञान ने यह निद्ध कर दिया है कि एक भौतिक प्रणु में अनन्त शक्ति छिपी हुई है ।

### त्रिसूत्री उपाय

श्राचार्य तुलसी ने इस वैज्ञानिक सत्य का मनुष्य के नैतिक भीर भाष्यात्मिक प्रयास के क्षेत्र में प्रयोग किया है। उन्होंने यह पता लगाया है कि छोटे-से-छोटा स्वयं स्वीकृत श्रनुष्ठासन मनुष्य की हीन प्रकृति को ग्रामूल बदल सकता है। मनुष्य की श्रान्तरिक प्रकृति को परिष्कृत करने के लिए दिखाऊ त्याग करने भ्रथवा भक्तिपूर्ण कार्यों का प्रदर्शन करने की ग्रावश्यकता नहीं होती। यह उपाय त्रिसूत्री है: १. गहरी व्याकुलता, २. ग्रसंदिग्ध संकल्प और ३. एकान्त निष्टा।

पहले हममें आत्म-विकास की गहरी व्याकुलता उत्पन्न होनी चाहिए। हम बाहरी वस्तुओं और वातावरण में बहुत अधिक व्यस्त रहते हैं। हमको अपनी अन्तरात्मा की नवीन विशालता को पहचानना चाहिए। फांसीसी यथार्थवादी लेखक सरतरे ने इस व्याकुलता को ही वेदना का नाम दिया है। व्याकुलना की यह भावना इतनी तीव होनी चाहिए कि हर क्षण केचैनी और व्याकृत अनुभव हो।

दूसरे प्राव्यात्मिक प्रगति के लिए स्पष्ट मुनिश्चित संकल्प ग्रत्यन्त श्रावश्यक है। इन दिनों किनारे पर रहने का फैशन चल पड़ा है। लोग कहते हैं, हम न इस तरफ हैं, न उस तरफ। राजनीति में यह उचित हो सकता है, किन्तु ग्राध्यान्तिमक क्षेत्र में तटस्थता का अर्थ जड़ता होता है। तटस्थता की भावना भय का चिह्न होती है। यदि हममे श्रद्धा है श्रीर यदि हम भय से प्रेरित नहीं है तो स्पष्ट संकल्प करना कुछ भी कठिन नहीं हो सकता।

तीसरे एकान्त निष्ठा का म्रथं है—सम्पूर्ण मात्म समर्पण की पावन किया। विभक्त मात्मा उस जीवन में कुछ भी सफलता प्राप्त नहीं कर सकता। म्रानिश्चय हमारे समय का स्रामिशाप है। प्रायः सारी द्निया में शिक्षा प्रणालियाँ इस म्रान्तरिक विघटन की बुराई का पोषण कर रही हैं। एमसंन ने बहुत समय पूर्व इस बुराई के विषद्ध हमें चेताया था। म्रान्य-ममर्पण की भावना हमको म्रान्तरिक मन्शासन का जीवन विताने में समर्थ बनायेगी।

### इस शताब्दी के शान्ति-दूत

श्राधुनिक जीवन दिखावटी हो गया है। उसमें कोई गंभीरता, कोई सार व कोई श्रर्थ नहीं है। मनुष्य सम्पूर्ण श्रात्म-घात के किनारे पहुँच गया है। मनुष्य यदि श्राचार्य तुलसी के श्रात्मानुशासन के मार्ग का अनुसरण करे तो वह अपने को श्रात्म-नाश में बचा सकता है। अणुव्रत की विचारधारा मनुष्य को अपने श्रान्तरिक शत्रुओं से लड़ने के लिए अत्यन्त शक्तिशाली अस्त्र प्रदान करती है। अल्प अनुशासन आध्यात्मिक शक्ति का विशाल भण्डार सुलभ कर सकता है। श्राचार्य तुलसी अपने अणुद्धत के अस्त्र के साथ इस शताब्दी के शान्ति के दूत हैं। हम अणुद्धतों का व्याकुलना, दृढ़ मंकल्प श्रीर निष्टापूर्वक पासन करके उनके देवी पथ-प्रदर्शन के अधिकारी वनें।



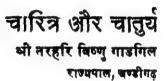
## सव सम्मत समाधान भारतरत्न, महर्षि डी० के० कर्वे

W

स्पूर्तानक के इस युग में हम विज्ञान द्वारा प्राप्त महान सफलताओं और प्रकृति पर मानव के प्रभुत्व की बात सुनते हैं। किन्सु साथ ही हम नई खोजों की बुराइयों से भयभीत हैं, जो मानव जीवन का ही मस्सित्व समाप्त कर सकती हैं। धराजकता की इस स्थिति में घाचार्यश्री तुलसी भणुद्रत-भान्दोलन के रूप में दुनिया की सब बुराइयों का एक समाधान प्रस्तुत करते हैं, जो सर्वसम्मत है। वह है— मात्म-शुद्धि कावह प्राचीन सन्मागं जो मनुष्य के जीवन को सुखद बना सकता है।



W





गीता के अनुसार जब धर्म का क्षय होता है और अधर्म की अवस्था बढ़ती है, तब-तवभगवान घवतार लेते हैं और घधमें को समाप्त करके धमें संस्थापन का कार्य करते हैं। सर्व समर्थ ईक्वर निराकार होने की वजह से अवतार-कार्य व्यक्ति के द्वारा किया जाता है। श्राधृतिक भाषा में यदि हम इसी अर्थ को करें, श्रव कोई बड़े महात्मा या युगपुरुष बार-बार नहीं होते । समाज के मार्ग-दर्शन का कार्य नई-नई विचारधाराग्रों द्वारा किया जाता है। मैं तो यह समभता हुँ कि नवीन दृष्टि समाज के परिवर्तन में श्रवश्य हो जाती है भीर वह दृष्टि रखने वाले जो सज्जन होने हैं, वे प्रधान विभूति माने जाते हैं। विद्यमान दुनिया में ग्रसन्तोष भौर ग्रशान्ति इननी फैली हुई है कि कल क्या होगा, कोई कह नहीं सकता। न जाने जानकीनाथ प्रभाने कि भविष्यति । श्रण से ब्रह्माण्ड का नाश करने का पडयंत्र रचा जा रहा है । बैर से बैर का नाश करने का प्रयत्न किया जा रहा है । परिणाम यह नजर श्रा रहा है कि वैर बढ़ता जा रहा है और असन्तोष की एक चिनगारी का स्वरूप महान ज्वालामुखी में परिवर्तित हो रहा है। गान्ति तो नजर ही नहीं भ्राती और अगर मुखंता से या प्रविवेकी साहस से कोई एक कदम उठाया जाये तो जगत का नाश श्रनिवार्य है। इसीलिए श्राज शान्ति का और सच्चरित्र का मन्देश श्रावश्यक है श्रीर यही काम श्राचार्यश्री तुलसी वर्षों से कर रहे हैं। अणु का मुकाबला अणक्रत से किया जा रहा है। एक-एक व्यक्ति अपने जीवन में साधु भाचार करे तो समाज का जीवन स्थिर नैतिक दृष्टि से बढता ही जायेगा। आज आवश्यकता है, चरित्र की, चात्र्यं की नहीं। ग्राज व्यावश्यकता है, सम्यक् ग्राचार की, समलंकृत वाणी की नहीं; कार्य की आवश्यकता है, विवरण की नहीं और यही मार्ग-दर्शन आज शाचार्यश्री तुलसी कर रहे हैं। उनके प्रति श्रद्धांजलि धर्पण कर रहा हैं। वे अपने कार्य में सफल हों और उनके द्वारा देश के चरित्र की संस्थापना हो, यही मेरी प्रार्थना है।

## सत्य का पवित्र वन्धन



श्रीमत्परमहंस परिद्राजकाचार्य महामहिम श्री रघुवल्लभ तीर्थस्वामी श्री पालिमार मठाधीश, उडीपी

भाषायंत्री तुलसी द्वारा प्रवर्तित श्रणुव्रत-भान्दोलन ग्रत्यन्त प्रशंसनाय है श्रीर सही रास्ते पर समने में सहायता प्रदान करता है।

सहग्रस्तित्व के लिए यह भान्दोलन निश्चित ही बहुत सहायक होगा, भ्रतः समस्त मानव जाति सत्य के इस पवित्र बन्धन के प्रकाश से भ्राबद्ध होगी, ऐसी हम कामना करते हैं।

Z Z

### समाज-कल्याण के लिए

### श्री विद्यारत्न तीर्थ श्रीपादाः श्री माध्वाचार्य संस्थानम् श्री कृष्णापुर मठ, उद्योगी

भौतिकवाद के इस गुग मे जब कि जनसाधारण का जीवन नैतिक हास भीर नैतिक पतन की थोर जा रहा है, यह सर्वथा उपयुक्त है कि उस पतन को रोका जाये श्रीर लोगों के सम्मुख नैतिक महानता के समृद्ध श्रादर्शों को श्रस्तुत किया जाये, जिनके लिए कि देश के महान् श्राचार्यों ने सपने जीवन काल में कठोर परिश्रम किया थौर उनके बाद उनके द्वारा स्थापित सठ यही काम कर रहे हैं। तुलसी भवल समारोह समिति निस्संदेह भिनन्दन की पात्र है, जो तेरापंथ के भाचार्यश्री तुलसी की एकचतुर्थ शताब्दी की उपलब्धियों का विवरण प्रस्तुत कर रही है। इस ग्रीभनन्दन ग्रन्थ का व्यापक प्रसार होना चाहिए श्रीर उसमे देश के नास्तिकों भीर भ्रमित नवयुवकों की भौंखं खुल जानी चाहिए की इस देश के विभिन्न सम्प्रदायों के साधुओं, संतों श्रीर संन्यासियों ने कितनी महान् सफलताएं प्राप्त की हैं। हम भगवान् कृष्ण से प्रार्थना करते हैं कि इस लौकिकता के श्रीर राजनीतिक नेताओं की लस्बी-चौड़ी बातों के भावरण में जन-साधारण की, पवित्र हिन्दुओं की मौलिक ग्राकांक्षाएं डूबने न पायें। तुलसी धवल समारोह समिति के प्रयास की सफलता की कामना करते हुए हम एक बार पुनः प्रार्थना करते हैं कि धावार्यश्री तुलसी भौर उनके जैसे संत समाज के कल्याण के लिए दीर्षजीवी हों।



## भारत का प्रमुख अंग

श्री गुलजारीलाल नन्दा श्रम मन्त्री, भारत सरकार

मुभ यह जान कर अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि अणुव्रत-आन्दोलन के प्रवर्तक आचार्यथी तुलसी के सार्वजनिक सेवाकाल के पच्चीस वर्ष पूरे होने के उपलक्ष में उन्हें एक अभिनन्दन प्रन्थ भेंट करने का निश्चय किया गया है। अध्यात्मवाद ही भारत का प्रमुख अंग है। इसे बिना अपनाये हम अपने चरित्र को ऊँचा नहीं उटा सकते। इस दिशा में आचार्यथी तुलसी ने जो कार्य किया है, वह स्तुत्य एवं स्पृहणीय है। ऐसे विद्वानों का अभिनन्दन करने से सर्वसाधारण में स्फूर्ति आती है और उनका अनुकरण करने की प्रवृत्ति जागृत होती है। अभिनन्दन प्रन्थ की सफलता के लिए मेरी शुभकामनाएं।



**w w** 

## पुरातन संस्कृति की रक्षा

श्री श्रीप्रकाश राज्यपाल, महाराज्य



श्राचार्यश्री तुलसी से मेरा प्रथम परिचय ग्राज से करीब पन्द्रह-सोलह वर्ष पूर्व बीकानेर के च्रूक नामक स्थान में हुग्रा था। तब से उनसे श्रीर उनके समुदाय से मेरा सम्पर्क बना रहा ग्रीर कई बार मुर्भ उनसे मिलने ग्रीर उनका प्रवचन सुनने का मुग्रवसर मिला। इससे मैंने बहुत ग्रानन्द का ग्रनुभव किया।

मुक्ते यह देख कर भी बहुत सन्तोष हुआ कि उनके अनुयायी बहुत ही उत्साही स्त्री-पुरुष है जो कि उनके बिचारों का सित्र्य प्रचार करते हैं। उनके द्वारा जन-साधारण की सेवा होती है और जनता को धार्मिक मार्ग पर चलने की प्रेरणा मिलती है। अपने देश में धर्म का सदा से ही प्रवल प्रभाव रहा है। आधुनिक विचार शैलियों के कारण इस ओर से कुछ लोग उदासीन होने लगे हैं। ऐसी अवस्था मे उनको पुनः इस ओर ध्यान दिलाते रहना उचित है; क्योंकि इसी में हमारा कल्याण भी है और अपनी पुरातन संस्कृति की रक्षा भी है।

मेरी शुभ कामना है कि घाचार्यश्री तुलसी हमारे बीच में बहुत दिनों तक रह कर हमारा पथ-प्रदर्शन करते रहे और इनके जीवन और वचन से धिकाधिक नर-नारी दिन-प्रतिदिन प्रभावित होते रहें। अपनी शारीरिक, मानमिक और ग्राध्यात्मिक उन्तित करते रहें और व्यक्तिगत मानमर्यादा बनाये हुए देश और समाज की सेवा भी उनके ढारा होती रहे।

## राष्ट्रोतथान में सिक्रय सहयोग



श्री जगजीवनराम रेल मन्त्री, भारत सरकार

श्रात्मोत्थान भीर नैतिक चारित्र्य-निर्माण अन्योन्याश्रित हैं। एक को छोड़ दूसरा सम्भव नहीं। धर्माचार्य दोनों का मार्ग-दर्शन करने में अधिक समर्थ होते हैं। ऐसे आचार्यों में ही आचार्यश्री तुलसी का स्थान है।

श्राचार्यश्री ने प्रपने गत पच्चीस वर्षों के श्राचार्यत्व एवं सार्वजनिक सेवा-काल में राष्ट्र के श्राध्यात्मिक व नैतिक उत्थान में सिक्रिय सहयोग दिया है। श्रणुवत-श्रान्दोलन के रूप में श्रापकी सेवाएं सराहनीय हैं। इस उपलक्ष मे उनका अभिनन्दन करना श्रपने दायित्व को निभाना ही है। श्राचार्यश्री के सन्देशों व उपदेशों का समावेश करके प्रन्थ को स्थायी महत्त्व की वस्तु बनाने का प्रयन्त किया जायेगा, इस ग्राशा के साथ मैं श्रपनी श्रभकामना प्रेषित करना हैं।

W

1

W.

## विश्व-मैत्री का राज-मार्ग

श्री यशबन्त राव चह्नाण स्थान प्रमुख्यमंत्री, महाराष्ट्

सितम्बर मास के अन्त की बात है, राष्ट्रीय एकता सम्मेलन मे भाग लेने मैं दिल्ली पहुँचा हुआ था । अकस्मान् आचार्यश्री तुलसी के अनुयायी मुनि (मुनिश्री महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम') में साक्षात्कार हुआ। उन्होंने आचार्यश्री तुलसी धवल समारोह का ब्यौरा मुभे बताया। वर्षों की मुषुप्त स्मृतियां मेरी आँखों के सामने आ गई। आचार्यश्री बम्बई आये थे। लगभग न महीने तक अणुअतआन्दोलन का प्रभावशाली कार्यक्रम चला था। मैं अनेकों बार उस समय आचार्यश्री के सम्पर्क मे आया। उनका व्यक्तित्व अविस्मरणीय है।

प्रत्येक मनुष्य शान्ति चाहता है, पर वह शान्ति व मुख के मार्ग पर चलता नहीं। यही तो कारण है कि आज भीषणतम आणिविक अस्त्रों के परीक्षण चल रहे हैं। मनुष्य सत्ता-लोलुप होकर सस्कृति और सम्यता के साथ खिलवाड़ कर रहा है। यह आध्यात्मिक शून्य भौतिक प्रगति का परिणाम है। आचार्यश्री जैंमे लोग आध्यात्मिकता के उन्नयन में लगे हैं। यह चिर शान्ति का मार्ग है, मानवता के विकास का मार्ग है। मनुष्य हैवान रहते हुए चन्द्रलोक में भी यदि पहुंच गया तो वहाँ भी उसे आत्मिक शान्ति के अभाव में ध्यक्ते अंगारे ही मिलेंगे। अणुवत-आन्दोलन विश्वबन्धुता और विश्वमैत्री का राजमार्ग है। आचार्यश्री भूले-भटके लोगों को राह लगा रहे हैं। उनके प्रति मेरे हृदय में अगाध श्रद्धा और असीम सम्मान है।



# आचार्यश्री का व्यक्तित्व

श्री हरिविनायक पाटस्कर राज्यपाल, मध्यप्रवेश

मुभे, यह जानकर प्रसन्तता हुई कि माचारंश्री तुलसी के भाचारंकाल व सार्वजनिक सेवाकाल के पञ्चीस वर्ष पूर्ण होने के उपलक्ष में उन्हें एक ग्रीभनन्दन ग्रन्थ भेंट कर श्रद्धांजिल ग्रीपित की जा रही है। ग्राचारंजी का व्यक्तित्व तथा दर्शन, साहित्य ग्रादि क्षेत्रों के श्रेष्ठत्व के सम्बन्ध में दो मत नहीं हो सकते। मैं इस महान् ग्रियास की सराहना करता हुन्ना ग्रीभनन्दन ग्रन्थ के लिए हार्दिक शुभ कामनाएं भेजता हूँ।



w w

## मणि-कांचन-योग

डा० कैलाशनाथ काटजू मस्य मंत्री, मध्यप्रदेश



मुभे यह जान कर हार्दिक प्रसन्नता हुई कि अणुव्रत-श्रान्दोलन के प्रवर्तक श्राचायंश्री तुलसी को उनके सार्वजिनक सेवा के गौरवधाली पच्चीस वर्ष पूरे होने पर श्रीभनन्दन ग्रन्थ मेंट किया जा रहा है। श्रीभनन्दन ग्रन्थ वास्तव में हम सबकी उनके प्रति बनी हुई सम्मान-भावना का प्रतीक है। पिछले वर्षों में देश के सभी क्षेत्रों में पैदल भ्रमण कर श्रापने राष्ट्र के नैतिक एवं चारित्रिक पुनरुत्थान का जो महान् कार्य हाथ में लिया है, वह हमारे पूज्य भारतीय सन्तों की उज्ज्वल परम्परा के श्रनुरूप ही है। इतिहाम जानता है कि इस विधाल देश के सभी क्षेत्रों को एकता के पावन सूत्र में बाँधने के लिए कितने महापुरुषों तथा सन्तों ने सारे देश का भनेक कठिनाइयों और वाधाओं के बावजूद भी भ्रमण किया है। भाचायंश्री तुलसी उसी परम्मपरा की नई कड़ी हैं, जो देश में नैतिक जागरण के लिए भ्रपना सारा जीवन दे रहे हैं। सेवा की पावत्र भावना के साथ भाचायंश्री तुलसी में भध्यमन की जो गहराई है, वह मणि में कांचन-योग के समान है। इस भवसर पर में कामना करता हूं कि श्राचायंश्री तुलसी के सेवामय जीवन की आयु बहुत बड़ी हो और उन्हें भपने कार्यों में सफलता प्राप्त हो।

# आध्यात्मिक स्वतन्त्रता का आन्दोलन

श्री मुज्ञानेन्द्र तीर्थ श्रीपादाः श्री पुत्तगी मठ, उडीपी



भाषार्यश्री तुलसी ने भणुवत-भान्दोलन का प्रवर्तन ऐसे समय पर किया है जबिक भारत भपनी लुप्त भाष्यात्मिक स्वतन्त्रता को पुनः प्राप्त करने में लगा है। भाजार्यश्री ने भारत में सर्वत्र भपने भनुयायियों को भेज कर इस भ्रान्दोलन के रूप में एक सन्देश दिया है।

श्रीभनन्दन भन्थ के प्रकाशन से हमें सचमुच ही प्रसन्तता होती है। सभी लोग धाचार्यश्री तुलसी के इस धान्दोलन में भ्रपना सहयोग दें भौर वे भ्रपने पूरे प्रयत्न के साथ इस भ्रान्दोलन को चलाते रहें, ऐसी हमारी शुभ-कामना है।

W

W

T

# पंच महावत और अगुवत

स्वामी नारदानन्दजी सरस्वती, नेमिबारण्य

ग्राहिसाप्रतिष्ठायां तत्सम्बिषो वैर त्यागः । सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफला-भयत्वम् । ग्रस्तेयप्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्यानम् । बह्यश्रयंप्रतिष्ठायां वीयंलाभः । ग्रपरिप्रहस्यैयं जन्मकथन्तासंबोधः ॥

---योग हर्जन

राजनीति व राष्ट्रीय संस्थाएं इनको पंचशील कहती हैं। महर्षि पतंजिल उप-रोक्त पिंचों को पंच महाब्रत कहते हैं। सार्वभौम एकता के लिए शास्त्रीय पढ़ित में इनके पालन द्वारा विश्व अपना चारित्रिक निर्माण कर सर्वप्रकारेण सुखी हो सकता है। जातिदेशकालसमयानविद्यक्षाः सार्वभौमा महाब्रतम्, महर्षियसंजलि ने इनको पंच महावृत बताया है।

श्राचार्यश्री तुलसी ने इन्हीं बतो की एक सुगम विधि उपस्थित करते हुए सरलता के श्रथों में इनको पंच श्रणुव्रत के नाम से प्रचारित करके जनता को चरित्र की शिक्षा दी श्रीर समाज का विशेष कल्याण किया है। ईश्वर के भजन करने वालों को, शास्त्र पर चलने वालों को इन नियमों से बड़ी सहायता मिलती है। वेद सिद्धान्त के मानने वाले श्राज भौतिकवाद की ज्वाला से जलते हुए समाज को वचाने के लिए इन नियमों में मिल कर विश्व शान्ति करने में सफल हो सकेंगे।

हम वैदिक धर्म को मानने वाले भी आचार्य जी के दया, सत्य, त्याग, तपस्या से प्रभावित हुए । भौतिकवाद की कठोरता से पीड़ित जनता को इन नियमों से शान्ति मिलेगी।



# भारत को महत्तर राष्ट्र बनाने वाला आन्दोलन

डा० बलभद्रप्रसाद, डी० एस-सी, एफ० एन० आई० उपकुलपति, इलाहाबाद विश्वविद्यालय

देश में बहुत से व्यक्ति ऐसे होते हैं जो राष्ट्र के समक्ष उपस्थित समस्याग्नों को जान लेते हैं; किन्तु ऐसे व्यक्ति बहुत थोड़े ही होते हैं, जो ममस्याग्नों का सामता करते हैं और उनके समाधान के लिए प्रयत्न करते हैं। ग्राचार्यश्री तुलसी एक ऐसे ही महापुरुष हैं। उन्होंने ग्रनुभव किया कि राष्ट्र की नैतिक भित्ति उसके साधारण विकास के लिए भी सुदृढ़ नहीं है, ग्रतः उन्होंने राष्ट्रीय चरित्र के निर्माण एवं विकास के ग्रावश्यक कार्य में ग्रपना जीवन भोंक, दिया है। इस कार्य को करते हुए वे ग्रनेक प्रकार की दुविधाग्नों का सामना करते हैं। समाज सेवा ग्रीर नैतिक उत्थान के कार्य में मिली हुई सफलता का ग्रंकन श्रत्यन्त ही कठिन हुआ करता है। बहुधा ऐसा होता है कि वर्षों पश्चात् इनका परिणाम दिखाई पउता है। मुभे इस बात में तो सन्देह ही नहीं है कि पूज्य ग्राचार्यश्री तुलसी ने जो कार्य किया है, उसका फल श्रवश्य मिलेगा और यह भारत को महत्तर राष्ट्र बनाने में सहायक भी होगा। ग्राचार्यश्री तुलसी ग्रपने इस कार्य के लिए ग्राभनन्दन के पात्र हैं ग्रीर ग्रन्थ के सम्पादकों को भी मेरी बधाई है कि वे ग्राचार्यश्री के कार्य का ग्रन्थ रूप में सम्पादित कर रहे हैं। ग्राचार्यश्री तुलसी, को मैं ग्रपनी श्रिभकामना ग्रीर बन्दन प्रेष्टित कर रहा हूँ।



u u

# महान् व्यक्तित्व

डा० वाल्थर शुक्रिंग एम० ए०, पी-एच० डी० हेम्बुर्ग विश्वविद्यालय



प्राचार्यश्री तुलसी के धवल समारोह का समाचार मिला। ग्रनेक घन्यवाद।
मुभे आचार्यश्री की गत पच्चीस वर्ष की निःस्वार्थ, नैतिक श्रीर सामाजिक सफलताओं श्रीर उनके महान् व्यक्तित्व के प्रति अपनी श्रद्धांजिल भेंद्र करते हुए परम
प्रसन्तता हो रही है श्रीर इस कार्य में मैं उनके प्रशंसकों श्रीर अनुयायियों के साथ
हूँ। मेरी हार्दिक कामना है कि तेरापंथ सम्प्रदाय के पूज्य धाचार्य श्रीर अणुवत
आन्दोलन के प्रणेता अपने उद्देश्य में श्रीर अधिक सफल हों। मुभे यह बताते हुए,
प्रसन्तता होती है कि स्विट्जरलण्ड में नैतिक उत्थान का एक आन्दोलन चल रहा
है, जिसे इण्टर नेशनल कौक्स मुबमेन्ट (International Caux Movement)
कहते हैं। मैं इसे पिरचम में अणुवत्थान्दोलन की ही प्रतिच्छाया समभता हूँ। मैं
अभिनन्दन प्रत्थ व धवल समारोह की सफलता के लिए शुभकामनाएं प्रेषित
करता हूँ।

## अपने आप में एक संस्था

एच० एच० श्री विश्वेश्वरतीर्थं स्वामी श्री पेजाबर मठाधील, उडीपी



श्राचार्यश्री तुलसी अपने आप में एक संस्था है और प्राचीन काल के ऋषियों डारा प्रदत्त हमारी सम्यता के सर्वोत्तम, सर्वश्रेष्ठ तथा अत्यधिक प्रकाशमान पह-लुओं का प्रतिनिधित्व करते हैं। आध्यात्मिक श्रेष्ठता की अगम्य गहराइयों में पैठ कर मोती निकालने का जो काम वे कर रहे हैं, वह लौकिक मस्तिष्क की पहुंच के परे की बात है।

निराशा से पीड़ित जो विश्व घृणा, ग्रविश्वास तथा छल के कगार पर है, उसमें धाचार्यश्री तुलसी प्रकाशस्तम्भ हैं। वे सद्भावना एवं पारस्परिक विकास पर भाषारित दया और क्षमा के सर्वोत्तम गुणों का प्रसार कर इस समय विद्यमान घोर अन्धकार में मृन्दर मार्ग-दर्शन कर रहे हैं।

उनके प्रणुवत-ग्रान्दोलन में उन्हीं ऊँचे ग्रादशों का समावेश है, जो उनके ग्रापने जीवन में फलीभूत हुए हैं। ग्रतएव मनुष्य के रोगग्रस्त मस्तिष्क में सन्तुलन तथा उसके कार्यों में विवेक लाने के लिए उनसे बहुत सहयोग मिलना चाहिए।

# प्रेरणादायक आचार्यत्व

श्री एन० लक्ष्मीनारायण शास्त्री, निजी सचिव, जगव्गुद शंकराचार्य, जगव्गुद महासंस्थानं, शारदा पीठ, श्रुंगेरी (मैसूर राज्य)

धाचार्यश्री तुलसी ने अपना जीवन जन-कल्याण और उनके नैतिक उत्थान के लिए समर्पित कर दिया है। शृंगेरी शारदा पीठ मठ के जगद्गुरु शंकराचार्य महास्वामीजी ने इस बात पर प्रसन्नता व्यक्त की है कि भ्राचार्यश्री तुलसी धवल समारोह समिति ने श्राचार्यश्री तुलसी के प्रेरणा-काल के पच्चीस वर्ष पूरे होने पर समारोह करने तथा तुलसी श्रभिनन्दन ग्रंथ निकालने का निश्चय किया है।

इस समारोह की सुखद एवं सफलतापूर्ण समाप्ति के लिए जगद्गुरु अपनी गुभकामना भेजते हैं और भगवान् चन्द्रमौलेश्वर तथा श्री शारदम्बा से प्रार्थना करते हैं कि भाषायंश्री तुलसी दीवंजीबी होकर दीवंकाल तक मानव जाति के कल्याणार्थ कार्य करते रहेंगे।



# श्रीकृष्ण के श्राश्वासन की पूर्ति

श्री टी० एन० बंकट रमण प्रध्यक्ष, श्री रमण प्राथम

भारतवासी कितने सीभाग्यशाली हैं कि आचार्यश्री तुलसी ने जीवन के नैतिक व आध्यात्मिक प्रभिस्तिचन के लिए देश में अगुबत-प्रान्दोलन का सूत्रपात किया है।

भारत वैदिक और उपनिषदीय गाथाओं का देश है, किन्तु उसे राजनैतिक पराभीमता से मुक्त होने के पश्चात् झब इस अणुव्रत-आन्दोलन की आवश्यकता है। देश ने यह स्वतन्त्रता महिसा के अस्त्र द्वारा प्राप्त की और इस अस्त्र का प्रयोग करने वाले महात्मा गांधी थे। गांधीजी सत्य को ही ईश्वर मानते थे और जीवन में उनका एक-मात्र ध्येय सत्य की नौका खेना था और उनकी एक-मात्र इच्छा थी कि असत्य पर सत्य की जय हो।

#### द्याध्यात्मिक परम्पराद्यों का धनी

देश को स्वतन्त्र हुए चौदह वर्ष हो गये। इस प्रविध में देश का राजनैतिक एकीकरण हुमा भौर राष्ट्र निर्माण की बड़ी-बड़ी प्रवृत्तियाँ शुरू हुई। इसका प्रकट प्रमाण है—श्रौद्योगिक कान्ति भौर सामाजिक प्रनगठन। उसमे हमारा राष्ट्र कमशः बलवान् होगा भौर अन्य पूर्वी और पाश्चात्य देशों के साथ-माथ विश्व-कल्याण के लिए नेतृत्व कर सकेगा। पश्चिमो देश भारत के इस नेतृत्व को स्वीकार करने के लिए उद्यत है। केवल इसलिए नहीं कि राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की कीर्ति चारों भीर फैल गई है, प्रत्युत इसलिए भी कि भारत अत्यन्त प्राचीन आध्यात्मिक परम्पराम्नों का धनी है। किन्तु यदि हमारे राष्ट्र को दूसरे देशों को आध्यात्मिक मृल्य मृलभ करने की आकांक्षा की पूर्ति करना हो तो उसे आत्म-निरीक्षण करना होगा। इस मात्म-निरीक्षण की अत्यन्त आवश्यकता है। क्योंकि नैतिक पतन का संकट भी इस समय राष्ट्र पर मंडरा रहा है, चारित्रिक और आध्यात्मिक मृल्यों को भुला देने की बात तो दूर रही, वेदों, उपनिषदों, ब्रह्मसूत्रों और भगवद्गीता के होते हुए, महात्मा गांधी की महान् नैतिक और आध्यात्मिक शक्ति के उठ जाने के पश्चात् भारतीय सामूहिक रूप में पतन की भोर अग्रसर हो रहे है और अपने समस्त उच्च आदशों को भुलाते जा रहे हैं। इसलिए अणुवत जैसे मान्दोलन की अत्यन्त भावश्यकता है। राष्ट्र को आचार्यश्री तुलसी और उनके संकड़ों साधु-साध्वयों के दल के प्रति कृतक होना चाहिए जो इस आन्दोलन को चला रहे हैं।

हमें यह देखकर बड़ा सन्तोष होता है कि इस झान्दोलन का झारम्भ हुए यश्चपि दस-बारह वर्ष ही हुए हैं, किन्तु वह इतना शक्तिशाली हो गया है कि हमारे राष्ट्र के जीवन में एक महान् नैतिक शक्ति बन गया है। हम इस झान्दोलन को भगवान् श्रीकृष्ण के झाश्वासन की पूर्ति मानते हैं। उन्होंने भगवद्गीता के जीये झध्याय के झाठवें इलोक में कहा है कि धर्म की रक्षा करना उनका मुख्य कार्य है और वह स्वयं समय-समय पर नाना रूपों में झबतार धारण करते है।

### साधन चतुष्टय की प्राप्ति में सहयोगी

हमारे देश के नवयुवक हमारे संतों और महात्माओं के जीवन चरित्रों और धर्म-शास्त्रों का ध्रध्ययन करके इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि शास्वत सुख जैसी कोई वस्तु है और उसे इसी लोक और जीवन में प्राप्त किया जाना चाहिए। हमारे धर्मशास्त्र कहते हैं—'तुम अनुभव करो प्रथवा नहीं, तुम धात्मा हो।' उसका साक्षात्कार करने में जितना बड़ा लाभ है, उसनी ही बड़ी हानि उसे प्राप्त न करने में है। इसलिए वे भारम-साक्षारकार करने के लिए प्रवृक्त होते है। यह भारमा है क्या भीर उसे कैसे प्राप्त किया जाए? यही उनकी समस्या बन जाती है। वे बारम-ज्ञान का फल तो चाहते हैं, किन्त उसका मूल्य नहीं चुकाना चाहते । वे साधन चतुष्ट्य ( माधना के चार प्रकार ) की उपेक्षा करते हैं, जिसके द्वारा ही मारम-ज्ञान प्राप्त होता है। माजायंश्री तुलसी का मणृवत-मान्दोलन साधन चतुष्ट्य की प्राप्ति में बड़ा सहायक होगा भीर मारम-साक्षात्कार का मार्ग प्रशस्त करेगा।

यात्म-साक्षात्कार जीवन का मूल लक्ष्य है; जैमा कि श्री शंकराचार्य ने कहा है श्रीर जैसा कि हम भगवान् श्री रमण महर्षि के जीवन में देखते हैं। भगवान् श्री रमण ने श्रपने जीवन में श्रीर उसके द्वारा यह बताया है कि श्रात्मा का बास्तविक श्रान्य देहात्म-भाव का परित्याग करने में ही मिल सकता है। यह विचार श्रूटना चाहिए कि मैं यह देह हूँ। 'मैं देह नहीं हूँ' इस का भयं होता है कि मैं न स्थूल हूँ, न सूक्ष्म हूँ श्रीर न श्राकित्मक हूँ। 'मैं श्रात्मा हूँ' का भयं होता है में साक्षात् चैतन्य हूँ, तुरीय हूँ जिसे जागृति, स्वप्न श्रीर मुषुप्ति के श्रनुभव स्पर्श नहीं करते। यह 'साक्षी चैतन्य' श्रथवा 'जीव साक्षी' सदा 'सब साक्षी' के साथ संयुक्त है जो पर, जिब श्रीर गुरु है। भतः यदि मनुष्य श्रपने शुद्ध स्वरूप को पहचान ने तो फिर उसके लिए कोई श्रन्य नहीं रह जाता, जिसे वह थोखा दे सके श्रथवा हानि पहुँचा सके। उस दशा में सब एक हो जाते हैं। इसी दशा का मगवान् श्रीकृष्ण ने इस प्रकार वर्णन किया है—'ऐ गुड़ाकेश, मैं श्रात्मा हूँ जो हर प्राणी के हृदय में निवास करता हूँ; मैं सब प्राणियों का श्रादि, मध्य श्रीर श्रन्त हूँ।' श्राचार-मेवन के महावत हारा श्रीर श्रवण, मनन, निदिध्यासन के द्वारा श्रहंकार-शून्य श्रवस्था श्रथवा श्रहम् महा।स्मि की दशा प्राप्त होती है। महावत के पालन के लिए श्राचार्यश्री तुलसी द्वारा प्रतिपादित श्रण्वत प्रथम चरण होंगे।

श्राचार्यश्री नुलसी ने नैतिक जागृति की भूमिका में ठीक ही जिल्हा है, "मनुष्य बुरा काम करता है। फलस्वरूप उसके मन को श्रशान्ति होती है। ग्रशान्ति का निवारण करने के जिए वह धर्म की श्ररण लेता है। देवता के श्रागे गिड़-गिड़ाता है। फलस्वरूप उसे कुछ मुख मिलता है, कुछ मानसिक वास्ति मिलती है। किन्तु पुनः उसकी प्रवृत्ति गलत मार्ग पकड़ती है और पुनः श्रशान्ति उत्पन्त होती है गौर वह पुनः धर्म की शरण जाता है। असल में धर्म और धार्मिक श्रम्यास निर्वाण के लिए है। जब मनुष्य एकदम निरावरण होता है, वह मुख और दुःख से उपर उठ सकता है शौर सुख एवं दुःख को समभाव से श्रनुभव कर सकता है। यही कारण है कि विष्णु सहस्रनाम में, निर्वाणम्, भेषजम्, सुखम् श्रादि नाम गिनाये हैं। निर्वाण हमारे सब रोगों की भेषज है और ग्रगर वह प्राप्त हो जाये तो वही सच्चा सुख है—सर्वोच्च शानत्व है।

### निषेध विधि से प्रभावक

श्रापका श्रादकों ज्ञान-योग, भिन्त-योग श्रथवा कर्म-योग कुछ भी हो, श्रपने ग्रहम् को मारना होगा। एक बार यह श्रनुभूति हो जाये कि श्रापका श्रहम् मिट गया, केवल चिद्भास शेष रह गया है, जो अपना जीवन श्रीर प्रकाश पारसाथिक से प्राप्त करना है। पारमाथिक श्रीर ईश्वर एक हो हैं, तब आपका श्रस्तित्वहीन श्रहम् के प्रति प्रेम श्रपने-आप नव्ट हो जायेगा। भगवान् श्री रमण महर्षि के समान सब महान्मा यही कहते हैं। इसलिए हम सब अणुवतों का पालन करें, जिनके बिना न तो भौतिक ग्रीर न श्राध्यात्मिक जीवन की उपलब्धि हो सकती है। श्रणुवत की निषेघात्मक प्रतिज्ञाएं विधायक प्रतिज्ञाशों से श्रीयक प्रभावकारी हैं ग्रीर वे न केवल धर्म श्रीर श्राध्यात्मिक साधना के प्रेमियों के लिए प्रत्युत सभी मानवता के प्रेमियों के लिए पूरी नैतिक ग्राचार-संहिता बन सकती हैं।

भगवान् को अयोरणीयान् महतो महीयान् कहा है। आत्मा हृदय के अन्तरतम में सदा जागृत और प्रकाशमान रहता है, इसलिए वह मनुष्य के हाथ-पाँव की अपेक्षा अधिक निकट है और यदि मानवता इस बात को सदा घ्यान मे रखे तो मानव अपने सह मानवों को धोखा नहीं दे सकता और हानि नहीं पहुँचा सकता। यदि वह ऐमा करता है तो स्वयं अपनी आत्मा को ही धोखा देगा अथवा हानि पहुँचाएगा, जो उसे इतन। प्रिय होता है।



# बीसवीं सदी के महापुरुष

महामहिम मार ग्रथनेशियस जे० एस० विलियम्स, एम० ए०, डो० डो०, सी० टो०, एम० झार० एस० टो० (इंग्लैंग्ड) बम्बई के ग्रावं विशय एवं प्राइमेट, ग्राजाद हिन्द वर्ष

संसार में हजारों धार्मिक नेता हो चुके हैं और पैदा होंगे। परन्तु उनमें कुछ ऐसे भी हैं, जिन्होंने लोगों के हृदय परिवर्तित किये हैं, संसार में प्रेम और शान्ति के स्रोत बहाये हैं और लोगों के दिलों को इसी दुनिया में स्वर्गीय प्रानन्द से सरोबार करने के श्रमूल्य प्रयत्न किये हैं। बीसवीं सदी में हमारी इन श्रौंकों ने भी एक ऐसे ही महापुरुष प्राचार्यश्री तुलसी को देखा है।

यही वह व्यक्ति है जिसके पवित्र जीवन में जैनी अगवान् श्री महाबीर को देखते हैं ग्रीर बौद्ध भगवान् बुद्ध को देखते हैं। हम जो महाप्रभु यीशू क्षीप्ट के अनुयायी हैं यीशू स्त्रीष्ट की ज्योति भी उनमें देखते हैं। म्राचार्यश्री तुलसी ने महाप्रभु यीशू स्त्रीप्ट के उस कथन को अपने वैरियों से भी प्रेम करो, को इतना सुन्दर रूप दिया है कि विरोध को विनोद समक्ष कर किसी की श्रीर से मन में मैल न श्राने दो।

#### चर्च से बिदाई

पृथ्वी पर कोई ऐसा स्थान नहीं है जा ग्राचायंश्री तुलसी को प्यारा न हो। हमें वह दिन भी याद है, जब ग्राचायंत्रवर बस्बई की बेलासिस रोड पर 'ग्राजाद हिन्द चर्च' में पधारे थे। ग्रपने ग्रनुयायियों के साथ मिल कर उन्होंने भजन सुनाये थे और माषण दिया था। चर्च में ग्राशीर्वाद देकर ग्रपने साधु भीर साध्वियों को भारत के कोने-कोने में नैतिकता भीर धर्म-प्रसार के लिए बिदा किया था। इस दृश्य को देख कर वग्बई में हजारों व्यक्तियों को यह ग्राइचर्य होता था कि जैन साधु ईमाइयों के चर्च में कैसे ग्रा जा रहे हैं। केवल यह तो ग्राचार्यश्री ही की महिमा थी जो ईमाइयों का गिरजा- घर भी हिन्दू भाइयों के लिए पवित्र-स्थान भीर धर्म-स्थान बन गया था।

### जीवन में एक बड़ी ऋान्ति

म्रणुवत-म्रान्दोलन का प्रसार कर माचार्यश्री ने जनता के जीवन में एक बहुन बड़ी कान्ति कर दी है। यह हमारा सौभाग्य है कि आज भाग्त के कोने-कोने में सत्य भीर प्रेम का प्रसार हो रहा है। जनता जनादंन अपने साधारण जीवन में ईमानदारी का व्यवहार कर रही है। सरकारी कर्मचारी भी अपने कर्तव्य की ईमानदारी से पूरा करने का उपदेश ले रहे हैं। व्यापारी वर्ग से धोखेबाजी भीर चोरबाजारी दूर होती जा रही है। केवल भारतीय ही नहीं, दूसरे देश भी म्राचार्यश्री के उच्च विचारों से प्रभावित हो रहे हैं।

यह मेरा सौभाग्य है कि मैं भी अणुद्रत-आन्दोलन का एक साधारण सदस्य हूँ और मुभे देश-देश की यात्रा करने का सौभाग्य भी प्राप्त हुआ है। जब यूरोप और रूस की कड़कती ठंडक में भी मैंने चाय और कॉफी तक को हाथ नहीं लगाया तो वहां के लोगों को आदचर्य होता था कि यह कैसे सम्भव है? किन्तु यह केवल आचार्यश्री के उन शब्दों का चमत्कार है जो आपने सन् १९४४ के नवस्वर महीने के प्रारम्भ में बस्बई में कहे थे---फादर साहब, आप शराब तो नहीं पीते हैं?

ग्राचार्यश्री के साथ सैकड़ों साथु ग्रीर साध्वी जन-सेवा में ग्रपना जीवन बलिदान कर रहे हैं। इन तेरापंथी जैनी साधुभों जैसा त्याग, तप श्रीर मेवा हमारे देश ग्रीर मानव समाज के लिए वड़े गौरव की बात है। ग्राचार्यश्री के शिष्य ग्रीर वे लोग भी जो ग्रापके सम्पर्क में ग्रा चुके हैं, ग्रपने ग्राचार-विचार से मनुष्य जाति की ग्रनमोल सेवा कर रहे हैं।

श्राचार्यश्री ने हर जाति के और धर्म के लोगों को ऐसा प्रभावित किया है कि श्रापके श्रादर्श कभी भुलाये नहीं जा सकते श्रौर वे सदा ही मनुष्य जाति को जीवन ज्योति दिखाले रहेंगे।



# आचार्यश्री तुलसी का एक सूत्र

#### ग्राचार्य धर्मेन्द्रनाथ

तीन वर्ष पूर्व सन् १६५० में झाचार्यश्री तुलसी झागरा जाते हुए जयपुर पधारे। उस समय उनके प्रवचन सुनने का झवसर मुफ्ते भी प्राप्त हुआ। आचार्यश्री जिस तेरापंथ-सम्प्रदाय के आचार्य हैं, उसे उद्भव-काल से ही स्वकीय समाज में अनेक विरोधों और भेदों का सामना करना पड़ा। किसी भी सम्प्रदाय में जब नई शाखा का प्रसव होता है तो उसके साथ ही वैर और विरोधों का घवसर भी झाता ही है। पूर्व समाज नये समाज को पुरातन लीक से हटाने वाला और अधामिक बताता है और नया समाज पहले समाज की व्यवस्था को सड़ी-गली और नये जमाने के लिए अनुपयुक्त बताता है। बाद में दोनों एक-दूसरे को अनिवार्य मान कर साथ रहना सीख जाते हैं और विरोध का रूप उतना मुखर नहीं रह जाता, लेकिन मौन-देष की गाँठ पड़ी हो रह जाती है। आचार्यश्री के जयपुर-आगमन के अवसर पर कहीं-कहीं उसी पुरानी गाँठ की पूँजी खुल-खुल पड़ती। विरोधी जिनना निन्दा-प्रचार करते, उससे अधिक प्रशंसक उनकी जय-जयकार करते।

### सम्पन्न लोगों की दुरभिसन्धि

इस सब निन्दा-स्तुति में कितमा पूर्वाग्रह भौर कितना बस्तु विरोध है, इस उत्सुकता से मैं भी एक दिन ग्राचार्यश्री का प्रवचन मुनने के लिए पण्डाल में चला गया। पण्डाल मेरे निवासस्थान के पिछवाड़े ही बनाया गया था। ग्राचार्यश्री का व्याव्यान त्याग की महत्ता और सामुग्नों के ग्राचार पर हो रहा था: ""किसी धनिक ने साधु-सेवा के लिए एक चानुर्मास-विहार बनवाया जिसे साधुग्नों को दिला-दिला कर वह बता रहा था कि यहाँ महाराज के वस्त्र रहेंगे, यहाँ पुस्तकें, यहाँ भोजन के पात्र और यहाँ यह, यहाँ वह। साधु ने देखभाल कर कहा कि एक पाँच खानों की ग्राचमारी हमारे पंच-महा- वतों के लिए भी तो बनवाई होती, जहाँ कभी-कभी उन्हें भी उतार कर रखा जा सकता।" ग्राचार्यश्री के कहने का मतलब था कि साधु के लिए परिग्रह का प्रपंच नहीं करना चाहिए, ग्रन्यथा वह उसमें लिप्त होकर उद्देश्य ही भूल गायेगा।

मैं जिस पण्डाल में बैठा था, उसे श्रद्धालु श्रावकों ने हिन से सजाया था। श्रावक-समाज के वैभव का प्रदर्शन उसमें प्रभिन्नेत न रहने पर भी होता अवश्य था। निरन्तर परिग्रह की उपासना करने वालों का अपने अपरिग्रह साध्यों का प्रदर्शन करना और दाद देना मुसे खासा पाखण्ड लगने लगा। श्राचार्यश्री जितना-जितना अपरिग्रह की मर्यादा का व्याख्यान करते गये, उतना-उतना मुसे वह सम्पन्त लोगों की दुर्श्विसिच्ध मालूम होने लगा। हमारा परिग्रह मत देखों, हमारे साधुओं को देखों! श्रहों! प्रभावन्तापसाम्! श्रगले दिन के लिए भोजन तक संचय नहीं करते। वस्त्र जो कुछ नितान्त आवश्यक हैं, वह ही अपने शरीर पर धारण करके चलते हैं। ये उपवास, यह ब्रह्मचर्य, ये श्रदृष्य जीवों को हिसा से बचाने के लिए बाँधे गए मुँछीके, यह तपस्या और यह अणुवम का जवाब अणुवत ! मुसे लगा कि अपने सम्प्रदाय के मेटों की लिप्सा और परिग्रह पर पर्दा डालने के लिए साधुओं की यह सारी चेष्टा है, जिसका पुरस्कार श्रनुयायियों के हारा जय-जयकार के रूप में दिया जा रहा है। जब और नहीं रह गया तो मैंने वहीं बैठे-बैठे एक पत्र लिख कर श्राचार्यश्री को भिजवा दिया, जिसमें ऐसा ही कुछ बुखार उतारा गया था।

### ग्रश्रद्धा भीर हठ का भाव

श्राचार्यश्री से जब मैं प्रगले दिन प्रत्यक्ष मिला, तब तक श्रश्रद्धा और हठ का भाव मेरे मन पर से उतरा नहीं था।

भाजायंश्री अणुवल-बान्दोलन के प्रवर्तक कहे जाते हैं, इस पर अनेक इतर जैन-सम्प्रदायों को ऐतराज रहा है। "अणुवल तो बहुल पहले से चले आते हैं। साधुओं के लिए अहिंसा, बहाजयं, अपरिप्रह आदि पंज वर्तों का निर्विशेषतया पालन महावल कहलाला है और इन्हीं वर्तों का अणु (छोटा) किया गृहस्थयर्मीय सुविधा-संस्करण अणुवल है। फिर आचायंश्री अणुवतों के प्रवर्तक कैसे?" इस प्रकार की आपत्ति अक्सर उठाई जाती रही है। आचायंश्री के परिकर वालों को ख्याल हुआ कि 'अणुवल-आन्दोलन के प्रवर्तक' शब्द से जिड़ कर मैंने आचायंश्री को यह सब लिखा है। लेकिन मुक्ते तब तक इसका भान भी नहीं था। अणुवलों और महावलों का चाहे पूर्व मुनियों ने निक्ष्णण भी किया हो, लेकिन इसको एक जनान्दोलन का रूप आचायंश्री तुलसी ने ही दिया है, इसलिए उनके आन्दोलन के प्रवर्तकत्व से मुक्ते विरोध क्यों होता। वस्तुलः मेरे विरोध के मूल में अंगलः परिग्रह की पृष्ठ-भूमि में अपरिग्रह के विरोधाभास से उत्पन्न एक तात्कालिक प्रतिक्रिया थी और अंशतः कुछ पूर्व धारणाएं थीं, जिनकी संगति मैं आज भी जैन-दर्शन से पूर्णतः नहीं मिला पाया है।

उदाहरण के लिए मैं इस निष्कर्ष से सहमत रहा हूँ कि माहार की दृष्टि से मनुष्य न भेड़-बकरी की तरह शाकाहारी है भौर न सेर-तेंदुओं की तरह मांसाहारी। बल्कि उमयाहारी जन्नुओं जैसे मालू, चूहे या कीए की तरह शाकाहार और मांसाहार दोनों प्रकार का माहार खा-पचा सकता है। इसलिए मानव-प्रकृति के विषद्ध होने से प्रादमी के लिए माहार का दावा मूलतः गलत है। दूसरे; माहार चाहे वानस्पतिक हो मथवा प्राणिज, उसमें जीवकपता होती ही है, मन्यथा भ्राहार देह में सात्म्य किंवा तदूप नहीं बन सकता। मतः जैव माहार के ऊपर, स्थिति भौर हिंसा का त्याग, ये दोनों बातें एक साथ नहीं चल सकतीं। म्राहार-मात्र हिंसामूलक है, बल्कि म्राहार ग्रीर हिंसा ग्रीमन्न प्रथव पर्यायवाची हैं, ऐसी मेरी धारणा रही है।

इसके श्रतिरिक्त ईश्वर की सत्ता और धर्म की श्रावश्यकता बादि कितने ही विषयों पर मेरी मान्यताएं जैन विश्वासों से भिन्न थीं। जब बात चल निकली तो मैंने अपना कैसा भी मतभेद बाचार्यथी तूलसी से छिपाया नहीं।

मेरा लयाल था कि आचार्यश्री इस विषय को तकों से पाट क्षेगे; लेकिन उन्होंने तर्क का रास्ता नहीं अपनाया श्रीर इतना ही कहा कि "मतभेद भले ही रहे, मनोभेद नहीं होना चाहिए।" मैं तो यह मृतने ही चकरा गया। तर्क की तो श्रव बात ही नहीं रही। चुण बैठ कर इसे हृदयंगम करने की ही चेष्टा करने लगा।

### श्रद्धा बढ़ी

वाद में जितना-जितना मैं इस पर मनन करता गया, उतनी ही द्याचार्यथी नुलसी पर मेरी श्रद्धा बढ़ती गई। वास्तव में विचारों के मतभेद से ही तो समाजों और वर्गों में इतना पार्थक्य हुमा है। एक ही जाति के दो सदस्य जिस दिन से भिन्न मत अपना लेते हैं, तो मानो उसी दिन से उनका सब-कुछ भिन्न होता चला जाता है। भिन्न ब्राचार, भिन्न विचार, भिन्न व्यवहार, भिन्न संस्कार, सब-कुछ भिन्न। यहाँ तक कि सब तरह से ब्रल्य दिखना ही परम काम्य बन जाता है। मतभेद हुग्रा कि मनोभेद उसके पहले हो गया। मनोभेद से पक्ष उत्पन्न होता है और पक्ष पर बल देने के साथ-साथ उत्तरोत्तर ग्राग्रह की कट्टरता बढ़ती जाती है। अन्त में ग्राग्रह की ग्राघकता से एक दिन वह स्थिति ब्रा जार्ता है, जब भिन्न मताबलम्बी की हर चीज से नफरत और उसके प्रति हमलावराना रुख ही अपने मत के अस्तित्व की रक्षा का एक मात्र उपाय मालूम देता है।

मुक्ते यहाँ तक याद श्राता है, किसी भी विचारक ने इसके पूर्व यह बात इस तरह और इतने प्रभाव से नहीं कही। मन की स्वतन्त्रता की रक्षा की वांछनीयता का हवा में बोर है। जनतन्त्र के स्वस्थ विकास के लिए भी मतभेद आवश्यक बताया जाता है श्रीर व्यक्ति के व्यक्तित्व के निखार के लिए भी मतभेद रखना जरूरी समक्ता जाता है। बल्कि मतभेद का प्रयोजन न हो, तो भी मतभेद रखना फँशन की कोटि में श्राने के कारण जरूरी माना जाता है। परिणाम यह है कि चाहे लोगों के दिल फट कर राई-काई क्यों न हो जायें, लेकिन असूल के नाम पर मतभेद रखने से श्राप किसी को नहीं रोक सकते।

यदि मुक्ते किसी एक बीज का नाम लेने को कहा जाये, जिसने मानव-जाति का सबसे ज्यादा खून बहाया है

भीर मानवता को सबसे ज्यादा काँटों में घसीटने पर मजबूर किया है तो वह यही मतभेद है। इसी के कारण भलग धर्म, सम्प्रदाय, पंथ, समाज आदि बने हैं, जिन्होंने भपनी कट्टरता के आवेश में भतभेद को आमूल भीर समूल नष्ट कर डालना चाहा है। मतभेदों का निपटारा जब मौस्तिक नहीं हो पाया तो तलवार की दलील से उन्हें सुलकाने की कोशिशों की गई हैं। एक ने भ्रपने मत की सच्चाई साबित करने के लिए कुर्बान होकर भ्रपने मत को भ्रमर मान लिया है, तो दूसरे ने भपने मत की श्रेष्टता सिद्ध करने के लिए अपने हाथ खून से रंग कर भपने मत की जीत मान ली है। दुनिया का अधिकांश इति-हास इन्हों मतभेदों और इनके मुलकाने के लिए किये गए हृदयहीन संघर्षों का एक लम्बा दु:खान्त कथानक है।

धव प्रश्न उठता है कि जब मतभेद रखना इतना विषाक्त और विपरिणम्य है, तो क्या मतभेद रखना प्रपराध करार दिया जा सकता है, या शास्त्रीय उपाय का धवलम्बन करके इसे पाप और नरक में ले जाने वाला घोषित कर दिया जाये ? न रहेंगे मतभेद, न होगी यह खून-खराबी और अशान्ति ।

लेकिन समाधान इससे नहीं होगा। अगर आदमी के सोचने की और मत स्थिर करने की क्षमता पर समाज का कानून अंकुश लगायेगा, तो कानून की जड़ें हिल जायेंगी और यदि धर्मपीठ से इस पर प्रतिबन्ध लगाने की शावाज उठी तो मनुष्य धर्म से टक्कर लेने में भी हिचकेगा नहीं। धर्म ने जब-जब मानव को सोचने और देखने से मना करने की कोशिश की है, तभी उसे पराजय का मुँह देखना पड़ा है। अपना स्वतन्त्र मत बनाने और मतभेद को व्यक्त करने की स्वतन्त्रता तो मानव को देनी ही होगी; जो पात्र हैं उनको भी और जो पात्र नहीं हैं उनको भी।

फिर इसे निर्विष कैसे किया जाये ? विशुद्ध तर्क से तो सबको अनुकूल करना सम्भव है नहीं, और शस्त्र-बल से भी एकमन की प्रतिष्ठा के प्रयोग हमेशा असफल ही रहे हैं। किया, फिर प्रतिकिया—फिर प्रति-प्रतिकिया; हमले और फिर जवाबी हमले। मतों और मतभेदों का अन्त इससे कभी हुआ नहीं। ऐसी अवस्था में आवार्यश्री तुलसी का सूत्र कि 'मतभेद के साथ मनोभेद न रखा जाये', मुक्ते अपूर्व समाधानकारक मालूम देता है। विष-बीज को निर्विष करने का इसमे ग्रिशिक श्रीहिमक, यथार्थवादी और प्रभावकारी उपाय मेरी नजरों से नहीं गुजरा।

### भारत के युग-द्रव्टा ऋषि

इसके उपरान्त भी मैं भाचार्यश्री तुलसी से अनेक बार मिला, लेकिन फिर अपने मतभेदों की चर्चा मैंने नहीं की। मिन्न मुण्ड में भिन्न मित तो रहेगी ही। मेरे अनेक विद्वास हैं, उनके अनेक आधार हैं, उनके साथ अनेक ममत्य के मूत्र सम्बद्ध हैं। सभी के होते हैं। लेकिन इन सब भेदों से अतीत एक ऐसा भी स्थल होना चाहिए, जहाँ हम परस्पर सहयोग से काम कर सकें। मैं समभता हूँ कि यदि चेष्टा की जाये तो समान आधारों की कमी नहीं रह सकती।

श्राचायश्री तुलसी एक सम्प्रदाय के वर्मगृष हैं। श्रीर विचारक के लिए किसी सम्प्रदाय का गुरु-पद कोई बहुत नके का सौदा नहीं है। बहुधा तो यह पदनी विचारवन्धन भीर लंगनजरी का कारण बन जाती है। लेकिन भाषायंश्री की दृष्टि उनके अपने सम्प्रदाय तक ही निगडित नहीं है। दे सारे भारत के युग-द्रष्टा ऋषि हैं। जैन-शासन के प्रति मेरी श्रादर-बुदि का उदय उनसे परिचय के बाद ही हुआ है, भतएव मैं तो अ्यक्तिशः उनका भागारी हूँ। उनके धवल समार रोह के इस स्रवसर पर मेरी विनम्न भीर हादिक श्रदांजलि!



# दो दिन से दो सप्ताह

### डा० हर्बेट टिसी, एम० ए०, डी० फिल०, म्रास्ट्या

मैं अपने निश्चित कार्यक्रम के अनुसार केवल दो दिन ही ठहरने वाला था, लेकिन दो सप्ताह ठहरा। मैं उस अद्भुत मनुष्य का चित्र लीचना चाहता था श्रीर उस मानव का, जो महात्मा पद के उपयुक्त था, श्रध्ययन करना चाहता था। प्रायः एक मनुष्य दूसरे मनुष्य के बारे में क्वचित् ही ऐसा कर सकता है। जैसे ही मैंने उनके प्रथम बार दर्शन किये, उनका असाधारण व्यक्तित्व मेरे हृदय को छूने लगा। उनके नेत्र स्नेहिल और तेजस्वी थे। जैसे ही उन्होंने मेरी श्रीर दृष्टिपात किया, मेरा श्रहम् नष्ट हो गया और मुभे उनकी महानता का अनुभव हुआ। मैं वहाँ गया तो था उनके कुछ फोट् लीचने के लिए, किन्तु जैसे ही मैंने उनको जाना, उनका परिचय पाया, फोट् खींचना तो भूल ही गया। उनके विचारों को और शब्दों को समभने लगा।

उनके अनुयायियों व साधु-साध्वियों के लिए वे महान् प्रेरक के रूप में होने चाहिये, जो कि उनके प्रति भ्रगाध श्रद्धा रखते हैं और उनके बारे में निःशंक हैं। उनका प्रभाव इतना अधिक है कि यदि वे चाहें तो वे एक बहुत ही भयंकर व्यक्ति बन सकते हैं और मनुष्यों को अशान्ति के कगार तक पहुँचा सकते हैं और अपना कठिनतम लक्ष्य भी प्राप्त कर सकते हैं। किन्तु उनका केवल एक ही विचार व ध्येय है जिसे कि श्रीहिंसा-विकास कह सकते हैं।

पूर्ण अहिंसा पर उनकी श्रद्धा का राष्ट्र रूप से प्रकटीकरण ही मेरे हांसी जाने का कारण बना है। इस धर्म के अनुयायी मुँह पर पट्टी बाँधते हैं: जैसे डाक्टर लोग आपरेशन के समय मुँह पर 'मास्क' लगाते हैं। उसका प्रयोजन है कि उनकी आवाज से निःसृत व्यति तरंगों से हवा की, जो कि उनके अभिमतानुसार सजीव है,हत्या न हो। वे अन्धेरे में चलते समय भूमि का प्रमाजन कर पाँव रखते हैं ताकि किसी भी जीव की हत्या न हो। इसलिए मैं हांसी गया और वहाँ पर इस संघ के आचार्य ने मुक्ते समआया।

उनका पूरा नाम है पूज्य श्री १००० श्राचार्यश्री तुलसीरामजी स्वामी। श्राप जैन क्वेताम्बर तेरायंथ के नवम श्राचार्य हैं। उनका नाम उतना ही बड़ा है, जितना कि उनका नम्रता गुण। '१००० की संख्या जो दो श्री के बीच में है. वह १००० गुणों की द्योतक है। 'तुलसीराम' उनका व्यक्तिगत नाम है श्रीर उसके पीछे जो 'जी' जुड़ा है, वह जर्मन भाषा के Chen के समान श्रादर का सूचक है। 'स्वामी' का अर्थ है—वह व्यक्ति जो गृहस्थ जीवन का त्याग करता है। 'जैन' एक बहुत ही प्राचीन धर्म है जो हिन्दू धर्म की अपेक्षा बौद्ध धर्म के श्रीधक निकट है। क्वेताम्बर तेरायंथी सम्प्रदाय जैन धर्म में ही एक सुधारक भान्दोलन के रूप में २०० वर्ष का प्राचीन सम्प्रदाय है। मैं उनके सामने बैठ गया श्रीर वे मेरी भ्रीर देखने लगे।

वह एक भ्रान्तरिक मनुभव था जो कि केवल हृदयग्राही ही था, वाणी के द्वारा व्यक्त नहीं हो सकता। किन्तु यदि प्रथम मनुभव को व्यक्त न कर सका तो प्रस्तुत उपक्रम प्रधूरा ही रह जायेगा।

मैं अब वहाँ गया, वे एक ऊँचे तरूत पर बैठे हुए थे और दैनिक प्रवचन कर रहे थे। उनके सामने लगभग हजार धादमी जमीन पर बैठे हुए थे। मैं अकेला ही वहाँ विदेशी था, अतः मेरे मित्र मुक्ते आचार्यश्री के समीप ले गये। आचार्यश्री बोलते हुए थोड़े रुके और मेरा परिचय उनको दिया गया। हम आचार्यश्री की श्रीर देखते हुए शान्ति से बैठ गये। दुर्भाग्य-वश, बहुत सारे लोगों का ध्यान मेरी श्रीर खिचा रहा, किन्तु कुछ समय बाद मैं यह भूल गया और मैं श्रीर श्राचार्यश्री सकेले रह गये।

प्रायः यह होता है कि यदि मनुष्य किसी भी व्यक्ति की धोर घरयन्त व्यानपूर्वक देखता है तो उसके मुख पर देष, प्रेम या उत्तेजना के भाव उत्यन्न हो जाते हैं, किन्तु आषार्यश्री के विशाल विवेक पूर्ण और काले नेत्रों में इनमें से एक भी नहीं पाया गया। मुक्ते ऐसा लगा उनकी दृष्टि मेरे शरीर को चीर कर हृदय तक पहुँच रही है और उन्होंने मेरा प्रन्तर हृदय पहंचान लिया है। पहले-पहल मुक्ते इम प्रकार का अकेलापन थोड़ा अखरा, किन्तु बाद में उनके सामने मेरी यह भावना लुप्त हो गई। मेरे हृदय में नाना प्रकार के भाव तरंग उछलने लगे। मैंने एकाएक ही अनुभव किया कि मैं श्रय अकेला नहीं हूँ। मुक्ते लगा कि मेरे अनुकूल विचार समक्ते गये हैं और प्रतिकूल विचारों की निन्दा नहीं की गई है। श्रयांत् मेरे अच्छे विचार के कारण मुक्ते स्वागत मिल रहा है और बुरे विचारों के कारण मेरी निन्दा नहीं की जा रही है। श्रचानक ही मेरी स्मृति में अपने शैशव काल का विस्तृत स्विणम जगत् स्पष्ट हो गया—निराशा के कारण से नहीं। युवाकाल की स्मृति रहती है, किन्तु उसके साथ जो संशय होता है, वह नष्ट हो गया। मेरा हृदय श्रच्छे श्रीर आनन्ददायक विचारों ने भर गया।

मैं जानता हूँ कि इन शब्दों में जो कुछ मैंने लिखा है, वह भ्रतिशयोक्ति-सा लगता होगा, किन्तु वह अपना कार्य समुजित रूप से करता है और श्राचार्यथी के साथ वार्तालाप के समय अत्येक क्षण में मेरे हृदय पर नियन्त्रण करने वाली भावनाओं का वर्णन मैंने किया है। वास्तव में तो, संत पुरुषों का यह स्वभाव ही होता है कि वे दूसरों के मन में श्रज्धे विचारों को उत्पन्न कर देते हैं और उन विचारों को अब्छे कार्य के रूप में परिणत करना तो यह हमारा काम है।

प्रतिदिन तीन बार श्राचार्यथी प्रवचन देते हैं, जिनमें सहस्रों की संख्या में लोगों की उपस्थिति होती है। उनके अनुयायी लोग बहुत संशों में राजस्थान और पंजाब के वासी हैं और उनमें से अधिकतर माड़वाड़ी हैं, जो कि भारत के ब्यापारियों में सबसे अधिक प्रतिक और परिग्रहासकत हैं।

श्राचार्यश्री उनको ग्रगरिग्रह भौर सदाचार का उपदेश देने हैं। यह एक कैसा विरोधाभास था। एक भोर जहाँ उनके अनुयायी—जो कि बहुत भच्छे व्यापारी लोग हैं, जो कि धोलाबाजी से लाखों रुपये कमाते हैं, जो सारी दुनिया के साथ व्यापार का सम्बन्ध रुपते हैं, जो कर की चौरी करने के सब तरीकों को काम में लेते हैं भौर विश्वास्थान करने है। दूसरी श्रोर ये छोटे कद के श्राचार्यश्री जिसके पास अपना कुछ नहीं है न घर है, न मन्दिर है, न पुस्तकों है—केवल हाथ से लिखे हुए सुन्दर शास्त्र हैं, मामूली बिछाने का कपड़ा और श्रत्यन्त सामान्य प्रकार के वस्त्र धौर स्वाभाविकनया मुल-विस्त्रका और रजोहरण—यही उनका सब कुछ है।

वे एक कुशल मनोवैज्ञानिक है। वे जानते है कि जो व्यक्ति इस प्रकार से अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर कालेबाजार करते हैं, उनके पास से बड़े त्याग की आशा नहीं रखी जा सकती। उनमें से किसी को भी संसार को त्याग करने का उप-देश नहीं दिया जा सकता। किन्तु उनके पास से कम-से-कम यह आशा तो की जा सकती है कि वे सच्चे अर्थ में मानव वनें, इसलिए उन्होंने अणुवत-आन्दोलन का प्रवर्तन किया है। यह आन्दोलन छोटे-छोटे वर्तों का आन्दोलन है। उनके अनु-यायियों को इस प्रकार के वर्त दिलाये जाते हैं कि मैं अप्रमाणिकता नहीं कहाँगा। मैं अनैतिकता और आडम्बर को छोड़ दैगा। मैं अन्य स्त्रियों पर बुरी दृष्टि नहीं डाल्गा।

कुल मिलाकर ४६ वत महिंसा, सत्य, श्रजीर्य, बहाजर्य, ग्रीर मपरिग्रह इन पाँच विभागों में विभवत है। इससे में प्रायः सभी वत स्वाभाविक हैं, भीर प्रायः सभी घर्मों के मूल-भूत सिद्धान्त है। उससे से थोड़े वत ऐसे है जो कि केवल भारतीय संस्कृति से जुड़े हुए हैं, जैसे कि मैं सद्यपान नहीं करूँगा, दो सौ व्यक्तियों से श्रधिक बृहत् भीज नहीं करूँगा। ये नियम बहुत ही कम यूरोपवासियों द्वारा ग्राह्म हो सकते हैं। किन्तु एक ग्रीसत भारतीय विवाह के प्रसंग में उकत संस्था का उत्लंघन सामान्यतथा करता है, तथापि ग्राचार्यश्री के इस ग्राह्मान से उनके ग्रनुयायियों में एक नई चेतना ग्राई है।

मैं त्रपने एक मित्र के घर ठहरा था। वह एक बहुत ही अच्छे स्वभाव का और मोटा आदमी था। उसने छेरी के व्यापार से धनार्जन किया था। एक बार सायंकाल मैं उसकी दूध की दुकान पर उसके साथ गया। उसने उत्साह ने बनाया कि अब मैं पहले की तरह ग्रधिक धन नहीं कमाता हु; क्योंकि मैं अणुबती हूँ। इससिए दूध के व्यापार में कमाई कम होती है। यह स्वाभाविक है कि अणुवत में मिलावट छोड़ देने से मेरे मित्र के कहने के अनुसार उसको कमाई पहले जैसी नहीं होती। अणुवती बनने से पूर्व वह मित्र यह सब जानता था।

यह हो सकता है कि अणुबतों के बारे में मेरा श्रष्ट्ययन केवल उपर-उपर का ही हो, किन्तु मैं विदेशी के साथ मैंशी करने से श्रवस्य लाभान्वित हुआ हूँ। एक प्रसंग ऐसा बना, जिससे मैं हाँसी को कभी नहीं भूल सकता। केवल एक स्पये के बारे में बात थी। मैं प्रतिदिन एक दुकानदार के पास से सिगरेट खरीदताथा। मैं जो सिगरेट पीताथा, उस प्रकार की गाँव में श्रीर कोई नहीं पीताथा। मुसे सड़क पर सिगरेट पीने में भी लज्जा का श्रनुभव होताथा। उस सिगरेट की कीमत उस दुकान पर लिखी हुई थी। मैं जब उसके लिए पैसा देने लगा, नब उस दुकानदार ने बहुत ही नम्न भाषा में मेरे से पैसा लेने से इन्कार किया। यदि गर्मी के दिनों में मुसे किसी होटल पर ठंडा लेमन पिलाया जाता, तो उसको भी मुसे भेंट रूप में ही स्वीकार करना होता।

अणुव्रत के नियम बहुत ही सरल हैं। क्योंकि वे अणु यानी छोटे-छोटे व्रत है। ग्राचार्यथी व्रत लने के लिए किसी पर भी दबाव नहीं डालते। अपने प्रवचनों में वे अनुयायिओं को उपदेश देते हैं कि यदि वे पारलौकिक सुख चाहते हैं तो उन्हें पाप करने से डरना चाहिए। जब वे बुराइयों को छोड़ने की प्रतिज्ञा करते हैं, तब ही आचार्यथी प्रसन्त होते हैं। जो ४६ वतों को पालन करने की प्रतिज्ञा करता है, वही पूर्ण अणुक्ती हो सकता है।

ग्राचार्यश्री के भ्रधिकांश अनुयायी व्यापारी हैं। आचार्यश्री अणुव्रतों के बारे में उनके साथ घण्टों तक उत्साहपूर्वक चर्चाएं करते हैं। उस चर्चा में वे लोग इतने जल्दी-जल्दी बोलते थे कि मुफ्ते उनकी बात का कुछ पता नहीं चलता था।
किन्तु जब भी वे लोग ब्लैंक मारकेट शब्द का प्रयोग करते थे, मुफ्ते पता चल जाता था; क्योंकि प्राय: भारतीय
लोग बातचीत में भ्रंग्रेजी शब्द ब्लैंक मारकेट का प्रयोग करते है। ये व्यापारी लोग अपने व्यापार-सम्बन्धी कागजात ग्रादि
माथ नेकर आचार्यश्री के पास आये और वे आचार्यश्री को यह बताना चाहते थे कि बिना कालाबाजार आदि अनीतक
कार्य किये यदि वे व्यापार करे तो, निश्चित ही उनका दीवाला निकल जाये। आचार्यश्री ने उनकी सब बातों को ध्यान में
मुना, उन कागजातों को ध्यान में देखा और उनके मुनाफा और घाटा सम्बन्धी सब बातों को सुना। अन्त में तो वे अपनी
मांग पर निश्चल ही रहे कि व्यापारियों को अनीतिक व्यापार को छोड़न। चाहिए। इस प्रकार से चर्चा के बाद में सभी
ब्यापारी कालाबाजार आदि को पूर्ण रूप से छोड़ने के लिए तो नैयार नहीं हुए, किन्तु बहुत से व्यापारियों ने थोड़ी छूटके
माथ में नियम लिए कि

मै अनैतिक व्यापार को अमुक मर्यादा से अधिक नहीं करू गा।

मैं रिश्वत नहीं लुगा।

में भूठे खाते नहीं रम्यूंगा।

मैं समाहित हो गया था कि वे लोग इन नियमों को प्रच्छी तरह से पालगे।

इसके बाद ग्रावायंश्री ने मुक्तसे कहा—मैं चाहता हूँ कि लोग संयम को ग्रपनायें। ग्रणुवत ग्रासानी से ग्रपनायें जा सकते हैं। इन वर्तों का नाम ग्रणुवत इसलिए रखा है कि हमें ग्रणुवम के साथ लड़ना है और उससे सम्बन्धित सभी बुराइयों से लड़ना है। यदि थोड़े लाख व्यक्ति भी ग्रणुवती बन आये तो यह वैज्ञानिक सफलता—ग्रणुवम के भय को नप्ट कर देगी।

इस पर मैंने पूछा—क्या भ्रापका उद्देश्य राजनैतिक है । उन्होंने उत्तर दिया—नहीं, हमारा उद्देश्य केवल धार्मिक है । गांधीजी महात्मा भी थे और राजनैतिक नेता भी । मैं केवल एक महात्मा बनना चाहता हूँ ।

मैंने उनसे भारमा, परमात्मा, पुनर्जन्म जैसे दार्शनिक प्रश्न पूछे व कुछ उनके वैयक्तिक जीवन तथा उनके साधु संघ के बारे में भी जिज्ञासाएं की । उन्होंने मेरे प्रत्येक प्रश्न व जिज्ञासाका अत्यन्त मधुरता के साथ समाधान किया। मुक्ते भय था कि कहीं ग्राचार्यश्री को मैंने नाराज तो नहीं कर दिया। मेरे लम्बे-लम्बे प्रश्न जो कि मैंने उनके पवित्र जीवन को जानने की दृष्टि से पूछे थे, मूल विषय से काफी दूर थे और मेरे तुच्छ उत्साह को प्रकट करने वाले थे, उनसे शायद वे नाराज हो गये हों। फिर भी उन्होंने उस प्रकार का कोई भी भाव व्यक्त नहीं किया, प्रत्युत मेरे

जैसे एक विदेशी व्यक्ति के ऊपर माचार्यभी की पूर्ण कृपा रही भौर इसलिए सम्भवतः मैं लोगों की ईच्या का पात्र भी बना।

एक बार विनोद में मैंने भाचार्यश्री से कहा—मैंने भापके धर्म की एक प्रार्थना (नमस्कार) मन्त्र के कुछ पद कण्ठस्थ किये हैं। क्या भाप सुनने की कृपा करेंगे। श्राचार्यश्री ने धीरे से हाथ हिलाते हुए लोगों को शान्त किया। वह नमस्कार मंत्र मुफे उनके मुनियों ने सिखाया था। उसको मैंने कण्ठस्थ कर लिया था और कई बार पुनरुच्चारण भी कर लिया था ताकि बिना कोई भूल किये मैं उसका उच्चारण कर सर्जू। मैंने कहा—

नमो द्वरिहंताणं नमो सिद्धाणं नमो द्वायरियाणं नमो उवल्फायाणं नमो लोए सम्बसाहणं

मैं उन महात्माओं को नमस्कार करता हूँ जिन्होंने मोह, राग और द्वेष रूप शत्रुओं को जीत लिया है। मैं उन महात्माओं को नमस्कार करता हूँ जो कि मुक्त अवस्था को प्राप्त कर चुके हैं। मैं धर्मनायकों को, आचार्यों को —नमस्कार करता हूँ। मैं धर्मनायकों को, आचार्यों को —नमस्कार करता हूँ। मैं संसार के सभी साधु साध्वियों को नमस्कार करता हूँ। मैं संसार के सभी साधु साध्वियों को नमस्कार करता हूँ। आचार्यश्री ने स्मित हास्य के साथ कहा—यह तो तुम्हारा इस दिशा में प्रथम चरण है। अब तुम मुँह पर मुख यस्त्रिका और हाथ में रजोहरण कब लेने वाले हो? इस प्रकार से अन्त में वह दिन आ गया, जिसके दूसरे दिन सुबह पाँच बजे ही मैं दिल्ली के लिए प्रस्थान करने वाला था। जब मैं बिदा लेने लगा, तब आचार्यश्री ने हाथ ऊँचा कर आशीर्वाद दिशा।



# देश के महान् आचाय

भी जयसुखलाल हाथी विद्युत् उपमंत्री, भारत सरकार

### किशोर के लिए एक कसौटी

दुनिया में सभी संतों के जीवन में एक विशेषता होती है, वही विशेषता भाषायंश्री तुलसी के जीवन में भी दिखाई देती है। उनके बाल्यकाल में ही उनकी महानता के चिद्ध दिखाई देने लगे थे। बचपन में ही उन्होंने ऐसे गुणों का परिचय दिया, जिनसे यह पता चलता था कि वे भविष्य में एक महान् धर्म गुरु बनेंगे। ग्यारह वर्ष की अवस्था में उन्होंने दीक्षा लेने की इच्छा प्रकट की। उनके परिवार के सभी लोगों को बड़ा भाइचर्य हुमा कि ग्यारह वर्ष का किशोर इननी कम अवस्था में दीक्षा लेने की बात कसे सोच सकता है। उनके बड़े भाई अनुमति देने को तैयार नहीं थे, किन्तु किशोर तुलसी की अन्तरात्मा ने उनको साधु-श्रेणी में प्रविष्ट होने को प्रेरित किया और वे अपने संकल्प से विरत नहीं हुए। वया उन्हें त्याग का अर्थ विदित था? उनके पारिवारिक जनों के लिए यह एक समस्या थी। जिस दिन वे संन्यास लेने वाले थे, उसके पूर्व पहली रात को उनके बड़े भाई मोहनलालजी ने उनको सौ रुपए का एक नोट दिया और कहा कि वह उने अपने पास रख ले, जब कि वह उन सबसे अगले दिन बिदा ने रहे थ। आचार्यश्री तुलसी को यह पता था कि साधु का क्या कर्तव्य होता है और उन्होंने हॅसकर पूछा—"मैं इन रुपयों का क्या करूँगा। साधु को एक पैसा भी अपने पास नहीं रख सकता।" यह किशोर तुलसी के लिए एक कसौटी थी। उन्होंने सिद्ध कर दिया कि दुनिया के प्रलोभनों और भोग-विलाम का उनके लिए कोई अर्थ नही है।

उनमें प्रारम्भ से ही त्याग और संयम के गुण मौजूद थे। आगे चल कर उनका साधु-जीवन विकसित हुआ और वे महान् धर्म-गुरु बन गए। बाईस वर्ष की अवस्था में आचार्यश्री कालूगणी ने मुनिश्री तुलसी को अपना उत्तराधिकारी मनोनीत किया। आचार्य बनने के लिए यह अवस्था छोटी ही थी, किन्तु मुनिश्री तुलसी ने जो गुण विकसित कर लिए थे, उनके कारण उनका यह चुनाव सर्वथा उचित सिद्ध हुआ। संस्कृत में एक उक्ति है: गुणा: पूजास्थानं गुणिषु, न च लिंग न च बयः अर्थात् न तो आयु का और न लिंग का महत्त्व है; असली महत्त्व तो गुणों का ही होता है। आचार्यश्री तुलसी भी अपने गुणों के कारण अपने शिष्यों की श्रदा और आदर के अधिकारी बने।

### म्रणुवत का प्रवर्तन

सन् १६४६ में उन्होंने झणुवत-आन्दोलन चलाया। नैतिक मापदण्डों की गिरावट के विरुद्ध यह आन्दोलन था। नैतिक पतन के पाश से राष्ट्र को मुक्त करना उसका उद्देश्य है। श्राज जब कि दुनिया आध्यात्मिक केन्द्र से दूर जा रही है, मानव का दृष्टिकोण अधिकाधिक भौतिकवादी बनता जा रहा है, नैतिक मुल्यों को विस्मृत किया जा रहा है, अणुव्रत-आन्दोलन मनुष्य को नैतिक अधः-पतन के दलदल में फँसने से रोकता है और उसे आन्तरिक शान्ति और मुख की उपलब्धि कराता है। जैसा कि 'अणुव्रत' शब्द से ही प्रकट है, वह छोटी-छोटी प्रतिक्षा से प्रारम्भ होता है। प्रत्येक व्यक्ति के लिए 'पूर्ण' बनना सम्भव नहीं हो सकता, किन्तु अल्प प्रारम्भ करके वह सर्वोच्च आदर्श को प्राप्त कर सकता है। अणुव्रत-आन्दोलन समाज के नैतिक चरित्र का निर्माण करना चाहता है। इस आन्दोलन के मुख्य उद्देश्य ये हैं----१. जाति, वर्ण, राष्ट्रीयता और धर्म का कोई भेद न करते हुए सब लोगों के लिए संयम का आदर्श प्रस्तुत करना और उस आदर्श के अनु- सार अधिकाधिक जीवन बिताने के लिए प्रेरित करना; २. समाज में विश्व-शान्ति का प्रचार करने के लिए प्रचारक तैयार करना और उन्हें प्रेरित करना। इन उद्देशों की पूर्ति के लिए अणुव्रत-श्रान्दोलन अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अह्मचर्य और अपरिग्रह की पाँच प्रतिज्ञाएं लेने को कहता है। यदि मनुष्य स्वतन्त्र रूप में इन पाँच वतों का पालन करने का प्रयत्न करे तो वह पूर्ण आदर्श को प्राप्त कर सकेगा। जीवन के हर क्षेत्र में वह इन वतों का पालन कर सकता है।

हम आज देखते हैं कि धर्म, भाषा, जाति और सम्प्रदाय के नाम पर लोग परस्पर लड़ रहे हैं। धर्म की भावना को लोगों ने ठीक प्रकार से नहीं समक्षा है। धर्म केवल मन्दिर जाने और दैनिक कर्मकाण्डों का पालन करने में नहीं है। वह इन सबसे कुछ प्रधिक है। वास्तविक धर्म सभी धर्मों के प्रति सिह्ण्णुता दिखाने में है। पूजा की विधि कुछ भी हो, उसका तात्पर्य यह है कि मनुष्य अपने को नैतिक और आध्यात्मिक दृष्टि से ऊँचा उठाए और रचनात्मक दृष्टिकोण अप-नाए बिना यह लक्ष्य सिद्ध नहीं किया जा सकता।

### उदार मनोवृत्ति का परिचय

श्राचार्यश्री तुलसी ने एक धर्माचार्य के रूप में श्रपनी उदार मनोवृत्ति का परिचय दिया है; कारण वह कहते हैं कि दूसरे धर्मों के प्रति किसी को निन्दात्मक भाषा का लेखनी या वाणी द्वारा प्रयोग नहीं करना चाहिए। केवल श्रपने विचारों का ही प्रचार करना चाहिए। दूसरे धर्मों के प्रति सहिष्णुता दिखानी चाहिए। दूसरे धर्मों के संतों श्रीर श्राचार्यों के प्रति घृणा या तिरस्कार नहीं कैनाना चाहिए। श्रगर कोई व्यक्ति श्रपना धर्म या सम्प्रदाय बदल लेता है तो उसके साथ दुव्यंवहार नहीं करना चाहिए और न उसका सामाजिक बहिष्कार ही करना चाहिए। धर्म के सर्वमान्य गूल तस्वों का यथा—श्रहिसा, सत्य, श्रस्तेय, ब्रह्मचर्य श्रीर अपरिग्रह का प्रचार करने का सामूहिक प्रयास करना चाहिए। श्रगर मनुष्य इन श्राचार-नियमों का पालन करने लगे तो वर्तमान दुनिया में महान् कान्ति हो जायेगी।

राष्ट्र का निर्माण करने के लिए नैतिक और आध्यात्मिक पृष्ठभूमि की सर्देव आवश्यकता होती है और अणुव्रत-आन्दोलन एक प्रकार से देश के नैतिक उत्थान का आन्दोलन है। जो आन्दोलन वर्तमान युग की चुनौती का मामना नहीं कर सकता, वह चल नहीं सकता। अणुव्रत आन्दोलन वर्तमान युग की चुनौती का उत्तर देता है। वह लोगों को केवल भौतिक विचारों का परित्याग करने और नैतिक एवं आध्यात्मिक उत्थान के लिए काम करने का आह्वान करता है। सत और धर्माचार्य युग-युग से शान्ति का अचार करते आए हैं; किन्तु जब तक अहिंसा और सत्य के गुणों का विकास नहीं होगा, तब तक शान्ति की स्थापना नहीं हो सकती। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यदि अणुव्रत-आन्दोलन के पौची वतों का पालन किया जाये तो युद्धों की सम्भावना टल जायेगी। इस प्रकार यह आन्दोलन वर्तमान युग को चुनौती का समाधान है।

श्रीर जब अणुद्रत-भ्रान्दोलन के प्रणेता भाचायंश्री तुलसी भ्रपने श्राचार्य-पद के पच्चीस वर्ष पूरे कर रहे है, यह उचित ही है कि देश भ्रपने इस महान भ्राचार्य के प्रति श्रद्धांजलि भ्रपित कर रहा है।



# नैतिक पुनरुत्थान के नये सन्देशवाहक

श्री गोपालचन्द्र नियोगी सम्यादक—दैनिक वसुमति, बंगला, कलकत्ता

#### नई स्राज्ञा का नया सन्देश

मनुष्य का जीवन केवल खाने-नीने और मौज उड़ाने प्रथवा कष्ट धौर दुविधाएं भेलने के लिए ही नहीं है। वह उपन्यास के पृष्टों की आँति भी नहीं है। मनुष्य समाज का प्राणी है और समाज भी मानव प्राणियों से ही बना है। उसका जीवन सामाजिक जीवन है और सामाजिक बातावरण से उसका बनिष्ठ सम्बन्ध है। साथ ही वह सामाजिक सम्बन्धों से उत्पन्न होने वाली समस्याओं पर विजय प्राप्त कर सकता है। मनुष्य को केवल प्रधिकार ही प्राप्त नहीं है, उसे कुछ कर्तव्यों का पालन और दायित्वों का निर्वाह भी करना होता है। स्वभाव से वह चेतन और सित्र्य प्राणी है और उसे तर्क शक्ति प्राप्त है। उसका पारिवारिक, सामाजिक राजनैतिक और आधिक जीवन होता है और वह भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार का होता है। प्रनिवार्यतः वह जीवन की ऐसी योजना बनाने का प्रयत्न करता है, जिससे उसके शरीर और मन की भावश्यकताएं पूरी हो सकें और वह जीवन की यावश्यक समस्याओं को हल कर सके। किन्तु उसे मार्ग में अनेक कवावटों का सामना करना पड़ता है, जो दुर्लच्य प्रतीत होती हैं। सामाजिक परि-रिथितियाँ ही ये समस्याए हैं। उन्होंने एक सुविधा मोगी वर्ग को जन्म दिया है जो प्रगति के फलों का उपभोग करता है। समाज सत्ता-प्रेम, मुनाफाखोरी और भ्रष्टाचार के दृढ़ पाश में जकड़ा हुआ है। कलस्वरूप बहुसंख्यक जन समाज घोर दुःव में जीवन बिता रहा है। कठोर परिश्रम करने पर भी अधिकतर लोग दो जून पेट भर कर रोटी नहीं खा सकते। विफलता और निराशा का भ्रंथेरा उनके मानस पर खाया रहता है। वर्षों के गहरे चिन्तन के बाद शाचार्यश्री तुलसी करोड़ों कोंधितों और श्रमजीवियों के लिए नई ग्राशा और मानव जाति के लिए नैतिक पुनरस्थान का नया सन्देश लेकर प्रवत्र हो हों की किती है।

श्राचार्यश्री तुलसी जैन धर्म के व्वताम्बर तरायथ सम्प्रदाय के श्राध्यात्मिक श्राचार्य है। साधारणतः कहा जाता है कि जैन धर्म का सबसे पहले भगवान् महावीर ने प्रचार किया, जो भगवान् बुद्ध के समकालीन थे। किन्तु अव यह स्वीकार कर लिया गया है कि जैन धर्म भारत का मत्यन्त प्राचीन धर्म है, जिसकी जड़ें पूर्व ऐतिहासिक काल मे पहुंची हुई हैं। लगभग दो सौ वर्ष पूर्व भावार्य भिक्षु ने जैन धर्म के तेरापंथ सम्प्रदाय की स्थापना की; जिसका अर्थ होता है— वह समुदाय जी तेरे (भगवान् के) पथ का अनुसरण करता है। आचार्यश्री तुलसी इस सम्प्रदाय के नवम गुरु अथवा आध्यात्मिक पथ प्रदर्शक हैं। केवल ग्यारह वर्ष की अत्य शायु में उन्होंने दीक्षा ग्रहण की और फिर ग्यारह वर्ष की प्राध्यात्मिक साधना के परचात् वे उस सम्प्रदाय के पूजनीय गुरुपद पर आसीन हुए। भाचार्यश्री तुलसी का हृदय जनसाधारण के कष्टों को देख कर द्रवित हो गया। उनके प्रति असीम प्रेम से प्रेरित होकर उन्होंने अणुवृत आन्दोलन का सूत्र-पात किया। उसका उद्देश्य उच्च नैतिक मानदण्ड को प्रोत्साहन देना और व्यक्ति को शुद्ध करना ही नहीं है, प्रत्युत जीवन के प्रत्येक पहलू में प्रवेश कर समाज की पुनर्रचना करना है। अणुवृत जीवन का एक प्रकार और समाज की एक करूपना है। अणुवृती बनने का अर्थ इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं है कि मनुष्य भला और सच्चा मनुष्य बने।

#### नैतिक शास्त्र का ब्राविक्कार

प्रत्येक ग्रान्दोलन का अपना ग्रादर्श होता है और अणुद्रत-भ्रान्दोलन का भी एक ग्रादर्श है। वह एक ऐसे समाज की रचना करना चाहता है जिसमें स्त्री ग्रीर पुरुष ग्रपने चरित्र का सोच-समक्ष कर परिश्रम पूर्वक निर्माण करते हैं भीर ग्रपने को मानव जाति की सेवा में लगाते हैं। प्रणुद्रत-भ्रान्दोलन पुरुषों भीर स्त्रियों को कुछ विशेष भ्रम्यास करने की प्रेरणा देता है, जिनसे लक्ष्य की प्राप्त होती है। हमारे साधारण जीवन में भी हमको यह विचार करना पड़ता है कि हमको क्या काम करना चाहिए ग्रीर क्या नहीं करना चाहिए। फिर भी हम सही मागं पर नहीं क्स पाते। हम क्यों ग्रस्त होते हैं ग्रीर किस प्रकार सही गागं पर चलने का वृद्ध संकल्प कर सकते हैं, यह भ्रत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रक्त है। पूज्य ग्राचार्यश्री तुलसी ने उन विषयों पर पर्याप्त प्रकाश ग्राचा है ग्रीर ग्रणुद्रत-भ्रान्दोलन के विषय में ग्रपने विभिन्न सार्व-जिन ग्रीर व्यक्तिगत प्रवचनों में उनकी भ्रत्यन्त वैज्ञानिक ढंग से व्यक्ति की है।

लोकतन्त्र एक ऐसी राजनैतिक प्रणाली है, जिसके द्वारा समाज का ऐसा संगठन किया जाता है कि सब मनुष्य उसमें सुखी रह सकें। किन्तु जब हम लोकतन्त्री सामाजिक जीवन की भोर देखते हैं तो हमें हृदयहीन धन-सला भौर शोषण के दर्शन होते हैं। राज्य शासकों और शासितों में विभक्त दिखाई देता है। लोकतन्त्र की उज्जवन कल्पना भौर भयानक वास्तविकता में अन्तर बहुत स्पष्ट दिखाई देता है। मानव प्रेम और अगाध निष्ठा से प्रेरित होकर बारह वर्ष पूर्व आचार्यश्री तुलसी ने अणुवत के नैतिक शास्त्र का आविष्कार किया और उसको व्यावहारिक रूप दिया। अणुवत शब्द निःसन्देह जैन शास्त्रों से लिया गया है, किन्तु अणुवत-आन्दोलन में साम्प्रदायिकता का लवलेश भी नहीं है।

इस भ्रान्दोलन का एक प्रमुख स्वरूप यह है कि वह किसी विशेष धर्म का भ्रान्दोलन नहीं है। कोई भी स्त्री-पुरुष इस म्रान्दोलन में सम्मिलित हो सकता है भीर इसके लिए उसे भपने धार्मिक मिद्धान्तों से तिनक भी इधर-उधर होने की भ्रावश्यकता नहीं होती। श्रन्य धर्मों के प्रति सिंहण्णुता इस म्रान्दोलन का मूल मन्त्र है। वह न केवल भ्रसाम्प्र-दायिक है, प्रत्युत सर्वव्यापी मान्दोलन है।

अणुवत जैसा कि उसके नाम से प्रकट है, प्रत्यन्त सरल वस्तु है। अणु का अर्थ होता है— किसी भी वस्तु का छोटे-से-छोटा ग्रंग। प्रतः प्रणुवत ऐसी प्रतिज्ञा हुई, जिसका धारम्भ छोटे-से-छोटा होता है। मनुष्य इस लक्ष्य की भोर प्रणनी यात्रा सबसे नीची सीढ़ी से धारम्भ कर सकता है। कोई भी व्यक्ति एक दिन में, प्रथवा एक महीने में वांछित परिणाम प्राप्त नहीं कर सकता। उसको धीरे-धीरे किन्तु गहरी निष्ठा के साथ प्रयत्न करना चाहिए और शनै:-शनै: प्रपने कार्य-क्षेत्र का विस्तार करना चाहिए। मनुष्य यदि व्यवसाय में किसी उद्योग में या और किसी धन्धे में लगा हुआ हो तो अणुवत-ग्रान्दोलन उसे उच्च नैतिक मानदण्ड पर चलने की प्रतिज्ञा लेने की प्रेरणा देता है। इस प्रतिज्ञा का ग्राच-रण बहुत छोटी बात से आरम्म होता है और धीरे-धीरे उसमें जीवन की सभी प्रवृत्तियों का समावेश हो जाता है। प्रणुव्यत मनुष्यों को बुद्ध-संगत जीवन की सिद्धि के लिए आत्म-निर्भर बनने में महायता देता है। उसके फलस्वरूप प्रहिसा, शान्ति, सद्भावना और प्रन्तर्राष्ट्रीय सहमति की स्थापना हो सकेगी।

### नैतिक कान्ति का सन्वेश

भारत चौदह वर्ष पूर्व विदेशी शासन के जुए से स्वतन्त्र हुआ। विशाल पंचवर्षीय योजनाओं के द्वारा भी हम आर्थिक और सामाजिक शान्ति नहीं कर पाये। जब तक हम ऐसी नई समाज व्यवस्था की स्थापना नहीं करेंगे, जिसमें निर्धन से निर्धन व्यक्ति भी सुली जीवन बिता सकेगा, तब तक हमारा स्वराज्य इस विशाल देश के करोड़ों व्यक्तियों का स्वराज्य नहीं हो सकेगा। अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में हमारे सिर पर सर्वसंहारकारी अणुयुद्ध का भयानक खतरा मंडरा रहा है। इस आणविक युग में जबकि शस्त्रों की प्रतियोगिता चल रही है, सर्वनाश प्रायः निश्चित दिखाई देता है। हमारे राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय दोनों क्षेत्रों में समस्याणं अधिकाधिक जटिल होती जा रही हैं और ऐसा प्रतीत होता है कि लोकमत सम्बन्धित सरकारों को प्रभावित नहीं कर पा रहा है। इस संकट में ग्राचार्यश्री तुलसी का ग्रणुव्रत ग्रान्दोलन एक नई सामाजिक ग्राधिक,राजनीतिक ग्रौर नैतिक कान्ति का सन्देश देकर हमको मार्ग दिखा रहा है। यह न तो दया का कार्यक्रम है ग्रौर न ही दान-पुण्य का। यह तो ग्रात्म-शुद्धि का कार्यक्रम है। इसमें केवल व्यक्ति की ही ग्रात्म-रक्षा नहीं है, प्रत्युत संसार के सभी राष्ट्रों की रक्षा निहित है। जबिक विनाश का खतरा हमारे सम्मुख है, ग्रणुव्रत-ग्रान्दोलन हमें ऐसी राह दिखा रहा है, जिस पर चल कर मानव जाति त्राण पा सकती है।

9

# स्वीकृत कर वर ! चिर ऋभिनन्दन

श्री भ्रोमप्रकाश द्रोण

श्रमल श्रकुल नव ज्योति विभाकर सार्वभौम हित द्योति दिपाकर जन-जन के मन के दूषित वर बन्धन सकल श्रबन्धनमय कर।

> भ्रणुत्रत, सत्य, श्रहिसात्मक बल पा कर हो जन-जन-मन भ्रविचल पंकिल जल रत ज्यों नव उत्पल किंजलकीरत, त्यों जग-हृत्थल।

प्रसरित धवल-कमल-वर-चन्दन पुलिकत चपल भ्रमर दल जन-मन गुजित ग्रमल समल जग-कानन 'चरैवेति' रत वर जन-जीवन

> ग्रहण राग लांछित मम बन्दन स्वीकृत कर वर ! चिर ग्रिभनन्दन



# सुधारक तुलसी

### डा० विश्वेश्वरप्रसाद, एम०ए०, डी० लिट् ब्रध्यक्ष—इतिहास विभाग, बिल्ली विश्वविद्यालय

विश्व के इतिहास में समय-समय पर अनेक समाज-सुधारक होते रहे है, जिनके प्रभाव से समाज की गति एक सीधे रास्ते पर बनी रही है। जब-जब वह राजमार्ग या घर्ममार्ग को छोड़ कर इधर-उधर भटकने लगता है, तब-तब कोई महान् नेता, उपदेशक और सुधारक आकर समाज की नकेल पकड़ उसे ठीक मार्ग पर ला देता है। भारतवर्ष के इतिहास में तो वह बात और भी सही है। इसीलिए गीता में भगवान् कृष्ण ने कहा था कि "जब-जब धर्म की हानि होती है, तब-तब श्रधर्म को हटाने के लिए मैं श्रवतरित होता हूँ।'' महान सुधारक ईश्वर के श्रंश ही होते है और उसी की श्रेरणा से यह समाज को धर्म के राजमार्ग पर लाते हैं। समाज की स्थिरता और दृढ़ता के लिए आवश्यक है कि वह धर्म की राह पकड़े। यह धर्म क्या है ? मेरी समभ में धर्म वही है, जिससे समाज का अस्तित्व बने । जिस चलन मे समाज विश्वंखल हो धीर उसकी इकाई को ठेम लगे, वह प्रथम है। समाज को शृंखलाबद्ध रखने के लिए श्रीर उसके अंगी-प्रत्यंगों में एकता भीर सहानुभृति बनायं रखने के लिए धर्म के नियम बनायं जाते हैं। यद्यपि समाज की गति के साथ इन नियमों में परिवर्तन भी होता रहता है, फिर भी कुछ नियम मौलिक होते हैं जो सदा ही समान रहते है और उनके अक्लित होने पर समाज में शिथिलता मा जाती है, मनाचार बढता है भौर समाज का मस्तित्व ही नप्ट होने लगता है। ये नियम सदाचार कहलाते है ग्रीर हर युग तथा काल में एक समान ही रहते हैं। शास्त्रों में धर्म के दस लक्षणों का वर्णन है। ये लक्षण मौलिक हैं भौर उनमे उथल-पुथल होने से समाज की स्थिति ही खतरे में पड़ जाती है। सत्य, श्रस्तैय, ग्रंपरिग्रह ग्रांदि ऐसे ही नियम हैं जो समाज के भारम्भ से माज तक भीर भविष्य में समाज के जीवन के साथ सदैव ही मान्य होंगे भीर उनमें श्रद्धा घटने पर या उनके विरुद्ध भाचरण होने पर समाज मिट जायेगा । इसीलिए पूर्वकाल से निरन्तर समाज-सुधारकों तथा गुरुजनों का संकेत सर्देव इन नियमों के पालन की श्रीर रहा है श्रीर जब भी सामुदायिक रूप से व्यक्तियों ने इनके विरुद्ध श्राचरण किया है; सुधार की भावाज तेज हुई है और कोई बड़ा नेता उत्पन्त हुआ है जिसने समाज की गति को फिर धर्म की स्रोर मोड़ दिया है।

वैदिक काल में वेदों भौर उपनिषदों में सदाचार और धर्म के कुछ नियम बनाये गए। उपनिषदों ने भ्राचरण पर बल दिया भौर मोक्ष या निर्वाण को व्यक्ति के कमों पर भवलम्बित माना। परन्तु यह रास्ता कठिन था, भ्रतः लोगों ने एक सहज मार्ग को खोज निकाला भौर यजादि के फल पर भरोसा करके भपने और परमात्मा के बीच पुरोहित के माध्यम को स्वीकार किया। इसका परिणाम यह हुग्रा कि यज्ञों की भरमार होने लगी और सभी प्रकार की बिल दी जाने लगी। हिसा का बोलवाला हुग्रा और धर्म केवल ढोंग रह गया। यह भावना मनुष्य के जीवन के दूसरे अंशों में भी व्याप्त हो गई और पारस्परिक कलह, राज्यों के भगड़े, लड़ाई और अत्याचार का जोर हुग्रा। सामाजिक सम्बन्धों में स्थिरता के स्थान पर ग्रस्थिरता ग्राने लगी और सैन्य या पाशविक बल के भाधार पर साम्राज्य वने तथा विभिन्त वर्गों के सम्बन्धों में भी यही त्राधार होने लगा जिसमें निर्वाल और पिछड़े हुए वर्ग पद-दिलत हुए और उनके अधिकारों को क्षति पहुँची। ऐसे समय पर दो महापुरुषों ने इस देश में जन्म लिया, भगवान् महावीर तथा गौतम बुद्ध। उन्होंने धर्म के सच्चे तस्वों का विदलवण किया और समाज की दृष्टि बाह्य रूप से हटा कर पुनः मौलिक नियमों की ओर म्राकुष्ट की। म्राचरण पर बल दिया गया भीर निर्वाण को, समाज में मनुष्य के पारस्परिक व्यवहार पर ही प्राप्य बताया। हिसा से हट कर अहिसा में आस्था हुई

भीर मशोक ने इस सदाचरण को ही राज्य का धर्म बनाया। व्यक्ति का भपने परिवार, भपने पड़ौसी भीर समाज के प्रति क्या कर्तिया है, यह भशोक ने पूर्ण रूप से भंकित किया और प्रहिसा को शासन-दण्ड वनाया। समाज फिर धर्म-मार्ग की भीर उन्मुख बना। परन्तु इस भवस्था में पुनः परिवर्तन हुआ और सदाचरण की बागडोर फिर ढीली पड़ने लगी। बुद्ध और महाबीर के भनुयायी ही उस सक्ये मार्ग से विचलित होने लगे और धर्म के सच्चे तत्त्वों को भूल कर पुनः कर्म-काण्ड में लिप्त हुए। मठों भौर मन्दिरों के निर्माण, प्रतों और बाहरी लिबास को ही सब कुछ माना गया, जिमसे आवरण में शिथिलता भायी। समाज ढीला पड़ने लगा भौर फिर आपसी सम्बन्ध विगड़ने लगे। राजनीतिक स्तर पर साम्राज्यों का बनना-विगड़ना सैनिक बल पर ही भाषारित था और देश की एकता को हानि पहुँची। हर्ष के काल में यह भावना उन्रतेत्तर भौर प्रवन्त होती गई तथा देश पर बाह्य आक्रमण हुए। देश के भीतर युद्धों की परम्परा चल पड़ी और विदेशी धर्म का भी प्रादुर्भाव हुआ। जनसमूह घबड़ा उठा और सच्चे मार्ग को पाने के लिए छटपटा उठा। इस काल में अनेक धर्म-सुधारक और नेता देश में भवनरित हुए जिनका उपदेश फिर यही था कि अपना श्राचरण ठीक करो, भिनत-मार्ग का भ्रव-लम्बन करो और पारस्परिक सहानुभूति, सामंजस्य और सहिष्णुता को बढ़ाओ जिससे मत-मतान्तरों के भगड़ों से ऊपर उठ कर सत्य-मार्ग का आश्रय लिया जाये। मत्याचार से इसी मार्ग द्वारा मृक्ति मिल सकती थी।

शंकराचार्य, रामानुज, रामानन्द, कबीर, नानक, तुलसी, दादू श्रादि श्रनेक सुधारक कई सौ वर्षों में होते रहे श्रीर समाज को सीघे मार्ग पर चलाने का प्रयत्न करते रहे, जिससे उस समय के शासन श्रीर राजनीति की कठोरताश्रों के बाव-जूद हिन्दू-समाज श्रीर व्यक्ति शान्ति भ्रीर श्रात्म-विष्वास कायम रख सका ।

देश पर पुनः एक संकट अठारहवीं कती में आया और इस बार विदेशी शासन और विदेशी संस्कृति ने एक जोरदार भाकमण किया, जिससे भारतीय समाज भौर देश के धर्म का पूर्ण शस्तित्व ही नग्ट प्राय हो गया था। पश्चिम के ईसाई-सम्प्रदाय ने हिन्दुओं को अपने मत में लाने का घोर प्रयन्त किया और इस कार्य में मिशनरी लोगों को शासन ने सर्विष्ध सहायता प्राप्त थी। उन्तीसवीं शती के आरम्भ में देश में अन्धविश्वास, आडम्बरपूर्ण धार्मिक आचरण और शास्त्रयुक्त नियम और ग्राचरण के प्रति अथढा वढ़े, जिससे यहाँ के वाशी पादचान्य धर्म और संस्कृति के सहज ही शिकार होने लगे। विशेषतः नई अंग्रेजी शिक्षायुक्त कलकत्ते का नययुक्क-समुदाय तो देश की सभी परम्परात्रों, वरी या भली, सभी का घोर विरोध करने लगा और ईसाई मत या नास्तिकता की श्रोर अग्रसर हुआ। इस सर्वग्रासी ब्रायोजन से देश श्रौर संस्कृति को बचाने का श्रेय राममोहनराय, दयानन्द सरस्वती, रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द प्रभृति महान सुधारकों ग्रौर धर्मोपदेशकों को है, जिन्होंने भारतीय दर्शन श्रीर धर्म का शद्ध रूप वलपूर्वक दर्शाया श्रीर उसके प्रति विश्वास श्रीर श्रद्धा की पुन:स्थापना की । इन सभी सुधारकों ने सामयिक कूरीतियों श्रीर संयमगुन्य पद्धतियों का जोरदार खंडन किया श्रीर बताया ि कि उनके लिए झास्त्रों में झौर पुनीत वैदिक धर्म स्रादि में कोई भी पुष्टि नहीं है । उन्होंने वैदिक हिन्दू धर्मका पवित्र रूप सामने रखा और उसी का अनुगमन करने का उपदेश दिया। उस धर्म में आवरणपर बल दिया गया; जान को सर्वोपरि माना गया; भीर मनुष्य अपने शुभ कर्मों द्वारा अपने भाग्य का स्वयं निर्माता है, इस तथ्य को बनाया गया। इस प्रकार शाश्वत, सनातन धर्म केवल पाखंड भौर पोपलीला न होकर बृद्धिसिद्ध (rational) श्रौर समाज के लिए कत्याणकारी है, इस बात को दर्शाया गया। इन मुधारकों के यत्न से देश की संस्कृति जागृत हुई ग्रौर जन समुदाय में नई चेतना ग्रौर श्रात्मविश्वास का विकास हुआ, जिससे राष्ट्रीयता का जन्म हुआ और देश स्वतन्त्रता की स्रोर समसर हुआ।

इस शताब्दी के भारम्भ में जिस समय राष्ट्रीय भान्दोलन बढ़ रहा था और हिसा की प्रवृत्ति प्रवल हो रही थी, उस समय महात्मा गांधी ने उसकी बागडोर सँभाली भौर भान्दोलन को महिसात्मक मार्ग पर चलाया और सत्य व सदाचार पर जोर दिया; क्योंकि इनके बिना स्वतन्त्रता प्राप्त होने पर भी राष्ट्र उन्नित नहीं कर सकता है। त्याग सत्य का प्रेरक है भौर सदाचार का प्रणेता। इसी त्याग पर गांधीजी ने बल दिया और सत्याग्रह का मार्ग दिखा कर देश के जन-समुदाय को राष्ट्र हित के लिए त्याग की भोर प्रेरति किया। जहाँ त्याग भौर सेवा प्रमुख कर्तव्य हैं, वहाँ ऊँच-नीच का भेद, छोटे-बड़े भौर अफसर-मालहत की संज्ञा का ही लीप हो जीता है भौर समाज में एकता, समता भौर सद्-व्यवहार का भाषिपत्य हो जाता है। बिना इन गुणों के समावेण के समाज मुसंगठित नहीं होता। इस महान् तथ्य को महात्मा गांधी

ने देश के सामने रखा और इसी के आधार पर देश को स्वतन्त्र किया। उनके निर्वाण के बाद जब भारतवर्ष सर्वसत्तासम्पन्न गणराज्य बना भीर देश में विकास की योजनाएं बनायी गई, तब लाभकारी कार्यों की कभी न रह गई और विभिन्न
वर्गों की उन्नित के नये रास्ते खुल गये। देश को विकास की थोर ले जाना था, उसकी धार्थिक उन्नित्त करना था, जिससे
सम्पूर्ण जनता का उत्थान हो और उसकी धार्थिक दशा सुधरे। इस योजना के लिए आवश्यक था कि सच्चरित्र, परिहतरत, कर्तव्य-परायण, सदाचारी नेता, हाकिम, व्यापारी, शिक्षक, कारीगर आदि देश के विकास की बागडोर अपने हाथ
में लें। यदि इन वर्गों में सदाचार की कमी हुई तो देश का हित न होकर अहित हो जाये और देश उन्नित की घोर
भग्नसर नहीं हो सकता। दुर्भाग्यवश जिस समय यह सुअवसर घाया और आशा हुई कि अब इतने वर्षों के कठोर परिश्रम
और त्याग के फलस्वरूप देश की उन्नित होगी और गरीबी मिटेगी, उस समय देखा गया कि कर्मचारियों, नेताओं,
व्यापारियों आदि में अनाचार और स्वार्थ की वृद्धि हो रही है; क्योंकि अब इनके लिए नित्य नये अवसर आने लगे।
धगर यही कम बना रहा तो नई योजनाध्यों का कोई लाभ न होगा और उनकी सफलता संदिग्ध बन जायेगी। देश में चारों
और यही आवाज उठने लगी कि शासन को इस प्रकार के मगरमच्छों से बचाया जाये और अव्दाचार (Corruption)
को दूर किया जाये।

ऐसे समय में माचार्य तुलसी ने प्रपने मणुवत-मान्दोलन को प्रवल किया भौर भनेक वर्गों के सदस्यों को पुन: सदाचार की ओर प्रेरित किया। माचार्य तुलसी ने यह काम पहले ही शुरू कर दिया था, पर इसकी प्रधानता श्रौर गितशीलता स्वतंत्रता के बाद, विशेष रूप से बढ़ी। इनका यह ग्रान्दोलन भपने ढंग का निराला है। धर्म के सहारे व्यक्ति को ये बती बनाते हैं भौर उसको इस प्रकार बल देकर कुमार्ग भौर कुरीतियों से मलग करके सदाचार की भ्रोर श्रम्पर करते हैं। यह बत छोटे-छोटे होते हैं, पर इनका प्रभाव बहुत ही गम्भीर होता है, जो व्यक्ति तथा समाज के जीवन में कान्ति ला देता है। व्यापारियों, सरकारी कर्मचारियों, विद्यार्थियों श्रादि में यह श्रान्दोलन चल चुका है भौर इसके प्रभाव में सहस्रों व्यक्ति मा चुके हैं। माज इसकी महत्ता स्पष्ट न जान पड़े, पर कल के समाज में इसका ग्रसर पूरी तरह दिखाई पड़ेगा, जब समाज पुन: सदालार भौर धर्म द्वारा श्रनुप्लावित होगा श्रौर भविष्य में श्राज की बुराइयों का ग्रस्तित्व न होगा। श्राचार्य तुलसी और उनके शिष्य मुनिगण का कार्य भविष्य के लिए है और नये समाज के संगठन के लिए सहायक है। इसकी सफलता देश के कल्याण के लिए है। श्राशा है, यह सफल होगा श्रौर आचार्य तुलसी सुधारकों की उम परम्परा में, जो इस देश के इतिहास में बराबर उन्तित लाते रहे हैं, श्रपना मुख्य स्थान बना जायेंगे। उनके उपदेश श्रौर नेतत्व से समाज गौरवशील बनेगा।



लाहौर-षड्यन्त्र के शहीद सुखदेव और मैं लाहौर के नेशनल कालेज में सहपाठी थे। एक दिन लाहौर जिला-कच्चहरी के समीप हमें दो खेताम्बर जैन साधु सामने से आते दिखाई दिये। हम दोनों ने मन्त्रणा की कि इन साधुमों के महिंसा-त्रत की परीक्षा की जाये। हम उन्हें देखकर बहुत जोर से हँस पड़े। सुखदेव ने उनकी भीर संकेत करके कह दिया, "देखों तो इनका पाखंड!" उत्तर में हमें जो कोष-मरी गालियाँ सुनने को मिलीं, उससे उस प्रकार के साधुओं के प्रति हमारी प्रश्रद्धा, गहरी विरक्ति में बदल गई।

मेरी प्रवृत्ति किसी भी सम्प्रदाय के अध्यात्म की श्रोर नहीं है। कारण यह है कि मैं इहलोक की पार्थिव परि-स्थितियों श्रीर समाज की जीवन-व्यवस्था से स्वतन्त्र मनुष्य की, इस जगत् के प्रभावों से स्वतन्त्र चेतना में विश्वास नहीं कर सकता। श्रध्यात्म का श्राधार तथ्यों से परखा जा सकने वाला ज्ञान नहीं है, उसका श्राधार केवल शब्द-प्रमाण ही है। इसलिए मैं समाज का कल्याण श्राध्यात्मिक विश्वास में नहीं मान सकता। श्रध्यात्म में रित. मुक्ते मनुष्य को समाज से उन्मुख करने वाली श्रीर तथ्यों से भटकाने वाली स्वार्थ परक श्रात्मरित ही जान पड़ती है। इसलिए श्रणुव्रत-श्रान्दोलन के लक्ष्यों में, सामाजिक श्रीर राजनैतिक उन्नित की श्रपेक्षा श्राध्यात्मिक उन्नित को महत्त्व देने की घोषणा से, मुक्ते कुछ भी उन्साह नहीं हुशा था।

जैन-दर्शन का मुस्ने सम्यक् परिचय नहीं है। 'काकचंचु'-न्याय से ऐसा समफता हूँ कि जैन-दर्शन ब्रह्माण्ड भीर संसार का निर्माण और नियमन करने वाली किसी ईश्वर की शक्ति में विश्वास नहीं करता। वह कभी भजर-भ्रमर म्रात्मा में विश्वास करता है, इसलिए जैन मुनियों भीर श्राचार्यों द्वारा भ्राध्यास्मिक उन्नित को महत्त्व देने के भ्रान्दोलन की बात मुक्ते बिल्कुल भ्रसंगत भीर निरर्थक जान पड़ी। ऐसे भ्रान्दोलन को मैं केवल भन्तर्मुख-चिन्तन की भात्मरित ही समभता था।

दो-तीन वर्ष पूर्व प्राचार्य तुलसी लखनऊ में ग्राये थे। ग्राचार्यश्री के सत्संग का ग्रायोजन करने वाले सज्जनों ने मुक्ते सूचना दी कि ग्राचार्यश्री ने ग्रन्य कई स्थानीय नागरिकों में मुक्ते भी स्मरण किया है। लड़कपन की कटु स्मृति के बावजूद उनके दर्शन करने के लिए चला गया था। उस सत्संग में ग्राये हुए ग्रधिकांश लोग प्रायः ग्राचार्य तुलसी के दर्शन करके ही सन्तुष्ट थे। मैंने उनसे संक्षेप में ग्रात्मा के ग्रभाव में भी पुनर्जन्म के सम्बन्ध में कुछ प्रश्न पूछे थे ग्रीर उन्होंने मुक्ते समाजवाद की भावना को व्यावहारिक रूप दे सकने के सम्बन्ध में बात की थी।

धाचार्य का दर्शन करके लौटा, तो उनकी सौम्यता और सद्भावना के गहरे प्रभाव से सन्तोष प्रनुभव हुग्रा। ग्रनुभव किया, जैन साथुओं के सम्बन्ध में लड़कपन की कटु स्मृति से ही धारणा बना लेना उचित नहीं था।

दो बार भीर---एक बार अकेले भीर एक बार पत्नी-सहित आचार्य तुलसी के दर्शन के लिए चला गया था भीर उनसे भात्मा के भगाव में भी पुनर्जन्म की सम्भावना के सम्बन्ध में बातें की थीं। उनके बहुत संक्षिप्त उत्तर मुक्ते तर्क-संगत लगे थे। उस सम्बन्ध में काफी सोचा; और फिर सोच लिया कि पुनर्जन्म हो या न हो, इस जन्म के दायित्वों को ही निवाह सर्जू, यही बहुत है।

एक दिन मृनि नगराजजी व मृनि महेन्द्रकुमारजी ने मेरे मकान पर पथारने की कृपा की। उनके आने से पूर्व उनके बैठ सकने के लिए कुर्सियाँ हटा कर एक तकत डाल कर सीतलपाटी विद्या दी थी। मृनियों ने उस तस्त पर विद्यी सीतलपाटी पर प्राप्तन ग्रहण करना स्वीकार नहीं किया। तस्त हटा देना पड़ा। कर्ष की दरी भी हटा देनी पड़ी। तब

मुनियों ने ग्रयने हाथ में लिये चैंबर से फर्झ को भाड़ कर ग्रयने ग्रासन बिछाये ग्रौर बैठ गये। मैं भीर पत्नी उनके सामने फर्झ पर ही बैठ गए।

दोनों मुनियों ने मार्क्सवादी दृष्टिकोण से शोषणहीन समाज की व्यवस्था के सम्बन्ध में मुभसे कुछ प्रश्न किये। मैंने ग्रपने ज्ञान के ग्रनुसार उत्तर दिये। मुनियों ने बताया कि श्राचार्यश्री के सामने श्रणुव्रत-प्रान्दोलन की भूमिका पर एक विचारणीय प्रश्न है। ग्रणुव्रत में ग्राने वाले कुछ एक उद्योगपित ग्रपने उद्योगों को शोषण-मुक्त बनाना चाहते हैं, पर अब तक उन्हें एक समुचित व्यवस्था इस दिशा में नहीं दीख रही है। लाभ-विभाजन का मान-दण्ड क्या हो, यह एक प्रश्न श्रणुव्रती नहीं सुलक्षा पा रहे हैं। इस दिशा में सन्तुलन बिठाने के लिए वे ग्रपना लाभांश कम करने के लिए भी तैयार हैं।

मैंने अर्थशास्त्र के दृष्टिकोण से उत्तर दिया कि उद्योग-धन्धों से यदि लाभ नहीं होगा, तो हानि होगी। उद्योग-धन्धों अथवा उत्पादन का तो अयोजन ही यह होता है कि उत्पादन में श्रम और व्यय के रूप में जितना भूत्य लगे उससे अविक भूत्य का फल हो। सेर-भर गेहूँ बोकर सेर-भर गेहूँ पाने के लिए खेती नहीं की जाती। शोषण उद्योग-धन्धों से होने बाले लाभ के कारण नहीं होता, बिल्क वह लाभ एक व्यक्ति द्वारा ही हथिया लिया जाने के कारण या लाभ का वितरण सब श्रम करने वालों में समान रूप से न किया जाने के कारण होता है। अपृत्रती जनहित के विचार ने उद्योग-धन्धे आरम्भ करें तो उनकी सफलता न्यूनतम व्यय और अधिक-से-अधिक उत्पादन में होगी। उन उद्योग-धन्धों द्वारा श्रमिकों को उचित जीविका देने के बाद भी यथेष्ट लाभ होना चाहिए, परन्तु वह लाभ किसी व्यक्ति-विशेष की सम्पत्ति नहीं, बिल्क श्रमिकों को ही सम्मिलत सम्पत्ति मानी जानी चाहिए। साधनों को कायम रखने और बढ़ाने के अतिरिक्त वह लाभ-धन उन उद्योग-धन्धों में लगे हुए श्रमिकों को शिक्षा, चिकित्सा तथा मांस्कृतिक सुविधाएं देने के लिए उपयोग किया जा मकता है। परन्तु उद्योग-धन्धों से लाभ अवश्य होना चाहिए; समाजवादी देशों में ऐसा ही किया जाता है।

मेरी बात से मुनियों का समाधान नहीं हुआ। उन्होंने कहा—जिस प्रणाली और व्यवस्था में लाभ का उद्देश्य रहेगा, उस व्यवस्था से निश्चय ही शोषण होगा। वह व्यवस्था और प्रणाली श्रीहिमा और पारस्परिक सहयोग की नहीं हो सकेगी।

मैं मुनियों का समाधान नहीं कर सका; परन्तु इस बात से मुभे धवस्य सन्तोष हुआ कि अणुक्रत-ग्रान्दोलन के अन्तर्गत कोषण-मुक्ति के प्रयोगों पर सोचा जा रहा है।

गैंने मुनिजी से अनुमित लेकर एक प्रश्न पूछा—आप अपने व्यक्तिगत स्वार्थ को छोड़ कर समाज-सेवा करना चाहते हैं; ऐसी अवस्था में आपका समाज और सामाजिक व्यवहार से पृथक् रहकर जीवन बिताना क्या तर्कसंगत और सहायक हो सकता है ? इसमें वैचित्र्य के अतिरिक्त कौन सार्थकता है ? इससे यापको अमृतिधा ही तो होती होगी।

मुनिजी ने बहुत शान्ति से उत्तर दिया—हमें अमुनिधा हो, तो उसकी चिन्ता हमें होनी चाहिए । हमारे बेश भयवा कुछ व्यवहार प्रापको विचित्र लगे हैं, तो उन्हें हमारी व्यक्तिगत रुचि या विश्वास की बात समक्ष कर उसे सहना चाहिए । हमारे जो प्रयत्न ग्रापको समाज के लिए हितकारी जान पड़ते हैं, उनमें तो भ्राप सहयोगी बन ही सकते हैं ।

मुनिजी की बात तर्कसंगत लगी। उनके चले जाने के बाद खयाल प्राया कि यदि किसी की व्यक्तिगत कि प्रार्थि प्रार्थित समाज के लिए हानिकारक नहीं है, तो उनसे खिन्त होने की क्या जरूरत? यदि मैं दिन-भर सिगरेट एंक्ति रहने की प्रपनी ग्रादत को श्रसामाजिक नहीं समभता, उस ग्रादत को क्षमा कर सकता हूँ, तो जैन मुनियों के मुख पर कपड़ा रखने श्रीर हाथ में चँवर लेकर चलने की इच्छा से ही क्यों खिन्त हूँ? श्राचार्य तुलसी की प्ररणा से ग्रणुवत-श्रान्दोन्तन यदि ग्राध्यात्मिक उन्तित के लिए उद्बोधन करता हुआ भी जनसाधारण के पायिव कब्टों को दूर करने ग्रीर उन्हें मन्त्य की तरह जीवित रह सकने में भी योगभूत बनता है तो मैं उसका स्वागत करता हूँ।

# तुम ऐसे एक निरंजन

### भी कन्हैयालाल सेठिया

तुम ऐसे एक विसर्जन जो सृजन लिये चलते हो!

> कब घन भ्रपनी बूँदों से भ्रपनी ही तृषा बुकाता? कब तह भ्रपने सुमनों से भ्रपना शृङ्गार सजाता?

तुम ऐसे एक समर्पण जो ग्रहण लिये चलते हो !

> देते हो दान विभा का लेते हो जग की ज्वाला, तुम सुधा बौट कर शिव सम पीते हो विष का प्याला,

तुम ऐसे एक निरंजन जो भुवन लिये चलते हो !

> तुम महामुक्ति के पंथी बन्धन की महत्ता कहते, तुम भ्रात्म रूप भ्रपने में पर देह रूप से रहते।

तुम ऐसे एक विचक्षण जो द्वैत बने दलते हो!

> तुम ऐसे एक विसर्जन . जो सृजन लिये चलते हो !

# अचार्यश्री तुलसी मेरी दृष्टि में

### सेवाभावी मृतिश्री चम्पालालजी

श्राचार्यश्रा तुलसी निःसन्देह एक महापुरुष हैं। महापुरुष कोई जन्म से नहीं होता, वंश-परम्परा, समाज या स्थान उसे महान् नहीं बनाता। व्यक्ति अपनी चारित्रिक प्रवृत्ति में ही महान् होता है। उसकी प्रत्येक किया एक श्रवि-च्छिन्न सत्य से भ्रोत-प्रोत होती है, किन्तु उस किया का प्रयोग होता है—सर्वजन-हिताय। हित का जहाँ तक प्रश्न है, वह मनोनीत नहीं होता। उसे सीमाश्रों की परिधि में भी नहीं बाँघा जा सकता श्रीर जो रेखांकित होता है, सम्भवतः वह विशुद्ध हित भी न हो। हित सदा उन्मुक्त रहा है। उसकी कसौटी भ्रात्म-भावना है। जहाँ निर्विवाद निर्ममत्व, निम्वार्थना हो, वही श्रमंदिग्ध किया हित है। सीभे शब्दों में जो किया जीवन नैमंत्य का प्रतीक है, श्रीरों को जिससे भात्म-संबल मिले; वही सर्वोत्तम हिन है। ग्राचार्यश्री तुलसी सर्वजनहिनाय बढ़ रहे हैं। उनका वह बहुमुखी व्यक्तित्व सबके सामने है।

मुक्ते झाज भी वे दिन याद हैं, जिन दिनों झाचार्यश्री तुलसी का जन्म हुझा था। उस समय मेरी आयु छः वर्ष को पार कर चुकी थी। झपने नन्हे भाई को देखने के लिए मन में तीच्र उत्सुकता थी। जन्म के तीसरे ही दिन मैंने सबसे पहले तुलसी को देखा। एक पीत वस्त्र में लिपटा हुझा गुलाबी फूलों का गुल्छा-सा, सिंदूर ढालते से नन्हे-नन्हे पैर, खिलता हुझा बेहरा, एक प्रभा-सी सामने झाई। हर्ष-विभोर मन नाच उठा। जी जाहना था कि उसे गोट में ले लूँ, पर नहीं मिला। नामकरण के अवसर पर घर में एक नवीन चहल-पहल थी। हम तुलसी, तुलसी पुकारने लगे।

तुलसी मुभ्ते बहुत भाता। मैं नहीं भूल रहा हँ, जब तुलसी दो वर्ष का हुआ होगा, गृडाली वलने और थड़ी करने ही लगा था: न जाने किस कारण से, आपसी सीचातान में या गिर जाने से उसका एक पैर चढ़ गया। तुलसी बहुत रोया, बहुत रोया। डाक्टर को बुलाया, वैद्यों को बुलाया, स्थाने को बुलाया, पर पैर नहीं उतरा।

हमारे मामा श्री नेमीचन्दजी कोठारी श्रन्छे अनुभवी व्यक्ति थे। मैं उन्हें बुला लाया। माँ ने कहा—भाई तुलसी का पैर । ग्रब । ग्रामाजी ने लोहे का एक भारी-सा कड़ा तुलसी के पैरों में पहना दिया। उसकी गोदी में लिये लिये रखना होता। सारी-सारी रात माताजी खड़ी-खड़ी निकालती। धीरे-धीरे कुछ दिनों में पैर बोफ के खिचाव से ग्रपने ग्राप पूर्ववत् हो गया। उन दिनों जो मानसिक कष्ट होता, वह अनुभव की ही बात है। तुलसी को रोता देख मैं रोता तो नहीं, पर बाकी कुछ नहीं रहता। मैंने भी उन दिनों घण्टों घण्टों तक तुलसी को गोद में रखा।

मुभने छोटा भाई सागर बड़ा ही तूफानी था। जब तब वह तुलमी को तंग करता, पर तुलसी नहीं भलकता। बहुवा तुलसी की छोर से मैं डटता और सागर के तूफानों से बचाता। कभी-कभी तो तुलसी के लिए मुभे भड़प भी करनी होती। प्रायः तुलसी बच्चों में नहीं सेलता। एकान्त-प्रियता और अपने आपमें व्यस्त रहना उसका सहभावी धर्म-सा था। बाल्य-चपलता जो सहज है और होनी भी चाहिए, पर तुलसी की चपलता उससे सर्वथा भिन्न थी। उन दिनों पुस्तकं बहुत कम थीं। प्रायः विद्यार्थी स्लेट (पाटी) बस्ता ही रखते थे। तुलसी बरते का शौकीन था। मैं उसे बहुधा छोटे-छोटे बरतों के टुकड़े दिया करता और तुलसी दिन भर उन टुकड़ों से आँगन में उल्टी-सीधी लाइनें खीचते रहता या एकान्त पा अपने आप गुनगुनाना ही उसकी चपलता थी। निष्कारण न कभी हँमना, न रोना और न बोलना तुलमी का स्वभाव था।

एक दिन नुलसी बरते से कान कुरेद रहा था । किसी अचानक अक्के से बरता अन्दर टूट गया । सुनार के यहाँ

बरते को समाणी से निकालने का प्रयत्न किया, पर नहीं निकला। डाक्टर के यत्न भी श्रसफल रहे। शायद तुलसी समस्त विद्या को मस्तिष्क में लिख लेना चाहता हो, इसीलिए कान के द्वार से उसे श्रपने श्रन्दर प्रवेश करवाया हो। उसी कारण में कान का परदा विकृत हो गया। उसमें रसी, मवाद-पीप पड़ गई, कान बहने लगा। डाक्टरों ने सलाह दी कि इसे पिच-कारी से साफ करो। एक दिन कान में पिचकारी मारते-मारते बरता बाहर निकल पड़ा। तब से कान में थोड़ी-सी कमी रह गई।

मैं इस बीच कलकत्ता यात्रा को गया। तुलसी उदास था, खिन्न-सा डबडबाई आंखें लिये मुक्ते पहुँचाने आया। यह कितना स्नेहिल,मृदु और मुँह लगा था। भाई का अलगाव बहुत दिनों तक अखरा। मैं पुनः लौटा। तुलसी के लिए कुछ खिलोने लाया, किन्तु तुलसी बहुत नहीं सेला। सेलगा पसन्द भी कम था। एक पढ़ने की धुन में वह मग्न रहता।

तुलसी बचपन में जितना सरल, गम्भीर और धैर्यशील था, उतना ही जिद्दी भी था। जिद्दी इस माने में था कि जब तक उसे कुछ नहीं जचता, वह नहीं मानता, चाहें कोई कितना ही समभाभी और कहो। जब समभ में भाती तो उसका भाग्रह वहीं समाप्त हो जाता। कभी-कभी भृति भाग्रह होता तो वह लंगा पकड़ कर बैठ जाता।

जब वह थोड़ा समभने लगा,चिन्तन जैसी स्थिति में ग्राया, मैंने प्रव्रज्या ले ली। तेरापंथ के ग्रप्टमाचार्य श्रीमद् कालूगणी के चरण कमलों में बैठने का सौभाग्य मिला। उनके दयाद्र हृदय में थोड़ा-सा स्थान मेरे लिये भी सुरक्षित था। उनकी कृपा श्रौर वात्सल्य शब्दों में नहीं, ग्रांंंंं में तैरता है। ग्राज भी वह दिग्गज मूर्ति ज्यों की त्यों ग्रांंंं के ग्रागे सद्ग हो उठती है।

प्रविजित होने के डेढ़ साल बाद श्रद्धेय गुरुदेव ससंघ लाडनूँ समवसरित हुए। वहाँ मुक्ते तुलसी की मनःस्थिति आँकने को मिली। एकान्त वार्तालाप किया। उसकी मावना की कसौटी पर चढ़ाने की सोचने लगा। वह सशंक मनोवृत्ति, भद्रता और वाल्य-भीक्ता वश एक-दो वार तो मेरी बातों को टालता रहा, पर टालने से मतलब हल नहीं होता था। नुलसी ने माहस बटोर कर हृदय खोल दिया। उसकी दृढ़ता हृदय को चिह्नित कर गई। मैं गुरुदेव के समक्ष भ्रपनी और तुलसी की भावना व्यक्त करने लगा। मुक्कराहट ने उत्साह बढ़ाया। तुलसी साध्वोचित भ्राचार-प्रक्रिया मीखने लगा। भ्रतेकों प्रयत्त किये, माताजी राजी हुई, पर बड़े भाई श्री मोहनलालजी के बिना काम बन नहीं सकता था। वे बड़े कड़े और निश्चय के पक्के जो थे। बंगाल से उन्हें संवाद ढारा बुलाया गया। कई दिनों तक वार्तालाप चला, भन्त में उन्होंने स्वयं तृलसी की परीक्षाएं की। बहिन लाडांजी के साथ ही दीक्षा-मंस्कार निश्चत हुआ और वि० सं० १९८२ पोष कृष्णा ४ को दीक्षा-संस्कार सम्पन्न हुआ।

एकादण वर्षीय बालक तुलसी अब मुनि तुलसी के रूप में परिवर्तित हुआ। वे प्रारम्भ से ही कुशकाय और तीव प्रतिभा के धनी थे। संयम साधना को मुर्खारत करने का माध्यम अध्ययन बना। वे दत्तचित से अध्ययन में जुट गये। एक गुरुकुल के विद्यार्थी की तरह वे रात की सबके सोने पर सोते और सबसे पहले जगते, उठने। कह देना चाहिए रात-दिन एक कर दिया। जब देखी, पुस्तक हाथ में रहती और अधीत पीठ-आवर्तन सतत चालु रहता।

धीरे-धीरे तुलसी मुनि छात्र से श्रध्यापक की स्थिति में आये, फिर भी उनमें शासक भाव नहीं जागे। मना का क्यामोह उन्हें नहीं सताया। मैंने कभी नहीं देखा श्रध्यापक तुलसी ने मुनि छात्रों के साथ हास्य-विनोद या व्यर्थ समय का अपव्यय किया हो। पूरी छात्र-मण्डली तुलसी मुनि सहित एक कमरे में बैठ जानी। पहरे पर दरबान बन कर मैं बैठना। जिस श्रम से तूलसी मृनि ने ज्ञानार्जन किया, वह किसी श्रमोपलिष्य से कमें नहीं था।

मैं कभी-कभी तुलसी मुनि की शृदियां दूँउने के लिए लुक-छिए कर जाया, करता। मेरा श्राशय स्पष्ट था—मैं श्रपने भाई को नितानत निर्दोष देखना चाहता था। एक दिन तुलसी मुनि भेरे कास आये और बोले—श्रापको मेरे प्रति क्या श्राविश्वास है, आप लुक-छिप कर क्या देखा करते हैं है इतना पूछने का साहस सम्भवतः उन्होंने कई दिनों के चिन्तन के बाद किया होगा। मैंने ग्राधिकार की भाषा में कहा—सुम्हें कोई जरूरत नहीं। मुभे जैसा उचित जचेगा, करूँगा,देखूँगा, पूछूँगा। स्पष्ट श्राऊँ या लुक-छिप, तुम्हें क्या प्रयोजन ? मैं मानता हूँ तुलसी मुनि ने जो मेरा सम्मान रखा, पाज का विद्यार्थी क्या ग्रपने बडे का रखेगा? न विशेष मैं बोलता श्रीर न वे। उपर में बीस-बीस छात्र उनके छात्रावास में रहे,

पर तुलसी के प्रति सब में समान झादर भाव और श्रदा देली।

एक दिन मैंने तुलसी मुनि से कहा — तुलसी ! तुम अपना समय औरों ही औरों के लिए देते रहोगे या स्वयं का भी कुछ करोगे ? पहले अपना पाठ पूरा करो फिर औरों को कराओ । मेरी इस भावना को तत्रस्थ छात्रों ने विपरीत लिया और यदा-कदा यह भी सामने आया—ये जम्पालाल जी हमें पढ़ाने के लिए आचार्यश्री को टोकते हैं, किन्तु मेरा आशय या कि पहले स्वयं अध्ययन नहीं करोगे तो फिर विशेष जिम्मेवारी आने पर नहीं होगा। तुलसी मुनि ने बड़े विवेक से उसका उत्तर ठीक में दिया।

गुरुदेव श्री कालूगणी का वह वात्सस्य भरा आदेश भाज भी कानों में गूँज उठता है—वस्पालाल ! यदि तुलमी में कोई कक्तर रही तो दण्ड तुभे मिलेगा। मैं उन हृदय भरे शब्दों का विस्तार कैसे करूँ; नहीं भाता।

भाज भी लिखते-लिखते ऐसे सैकड़ों संस्मरण मस्तिष्क में दौड़ रहे हैं। एक के शब्दों में शावद्व होने से पूर्व ही दूसरा भीर सामने भा खड़ा होता है। उसे लेना चाहता हूँ, इतने में तीसरा उससे श्रिषक प्रिय लगने लग जाता है। लेखमी तिख नहीं पाती।

एक दिन श्रीकालूगणी ने मुक्ते घादेश फरमाया—तुलमी को बुलाओ। मैं बुला लायां। घच्छा तुम दरवाजे पर बाहर बैठ जाधो। मैं बैठ गया। कई दिनों तक यह कम चलता चला। उन दिनों गुरुदेव रुग्णावस्था में थे। उन्होंने प्रयने उत्तरवर्ती का भार हलका करना घुरू कर दिया था। तुलसी दिन-प्रतिदिन और विनयावनत् होते गयें।

एक दिन वह भी भाषा, जब मैंने अपने हाथों से सूर्योदय होते-होने स्याही निकाली और एक खेन पत्र, लेखनी व मसीदान ले गृरुदेव के श्री चरणों में उपस्थित हुआ। गंगापुर मेवाड़ का वह रंगमवन, उसके मध्यवर्नी उस विज्ञाल हाल में इजानोन्मुख पूज्य गृहदेव विराज भीर अपना उत्तराधिकार तुलसी मुनि को समर्पित किया।

वि० सं० १६६३ भाइव सुक्ला ६ को आप श्री ने आचार्य-भार सँभाला। तब से श्रव तक की प्रत्येक प्रवृत्ति से मैं ही क्यों समूचा साहित्य-जगन् किसी न किसी रूप में परिचित है ही। आज उनके शासन काल की पूरे पच्चीस वर्ष हो चले हैं। संघ की उदीयमान अवस्था का यह श्रमाबारण काल रहा है।



### मानवता के पोषक, प्रचारक व उन्नायक

भी विष्णु प्रभाकर

किसी व्यक्ति के बारे में लिखना बहुत कठिन है। कहुँगा, संकट से पूर्ण है। फिर किसी पंथ के प्राचार्य के बारे में। तब तो विवेक बुद्धि की उपेक्षा करके श्रद्धा के पुष्प अपंण करना ही सुगम मांग है। इसका यह प्रथं नहीं होता कि श्रद्धा सहज होती ही नहीं; परन्तु जहाँ श्रद्धा सहज हो जाती है, वहाँ प्रायः लेखनी उठाने का प्रवसर ही नहीं भाता। श्रद्ध। का स्वभाव है कि वह बहुधा कम में जीती है। लेखनी में घन्सर निर्णायक बुद्धि ही जागृत हो बाती है धौर वही सकट का क्षण है। उससे पलायन करके कुछ लेखक तो प्रशंसात्मक विशेषणों का प्रयोग करके मुक्ति का मार्ग दूंव लेते है। कुछ ऐसे भी होते हैं जो उतने ही विशेषणों का प्रयोग उसकी विपरात दिशा में करते हैं। सच तो यह है कि विशेषण के मोह सं मुक्त होकर जिन्तन करना संकटापन्न है। वह किसी को प्रिय नहीं हो सकता। इसीलिए हम प्रशंसा प्रथवा निन्दा के प्रथाँ में सोचने के प्रादी हो गए।

फिर यदि लेखक मेरे-जैसा हो, तो स्थिति भौर भी विषम हो जाती है। आचार्यश्री तुलसी गणी जैन ब्वेताम्बर तरापंथ की गुरु-परम्परा के नवम पट्टघर आचार्य हैं और मैं तेरापंथी तो क्या, जैन भी नहीं हूँ। सच पूछा जाये तो कही भी नहीं हूँ। किसी मत, पंथ अथवा दल में अपने को समा नहीं पाता। धर्म ही नहीं, राजनीति और साहित्य के क्षेत्र में भी । लेकिन यह सब कहने पर भी मुक्ति क्या मुलभ है! यह सब भी तो कलम से ही लिखा है। अब तर्क आक्ष्मस्त करें या न करें, पराजित तो कर ही देता है। इसीलिए लिखना भी अनिवायं हो उठता है।

### विष ग्रमृत बन सकता है ?

ग्राज के युग में हम कगार पर खड़े है। घन्तरिक्ष-युग है। घरती की गोलाई को लेकर मुदूर व्यतीत में हत्याए हुई हैं। उसी तथ्य को घाज का मानव ग्रांखों में देख ग्राया है। इस प्रगति ने मानस की पटभूमि को ग्रान्दोलिन भी किया है। दृष्टि की क्षमता बढ़ी है। विवेक-बुद्धि भी जागृत हुई है, पर मानव का ग्रन्तर-मन ग्रभी भी वहीं है। हिंसा ग्रौर घृणा की बात विवादास्पद मान कर छोड़ भी दें, लेकिन साम्प्रदायिकता ग्रौर जातीयता, अर्थलोन्पुपता ग्रौर मात्सर्य—में सब उसे ग्रभी पूरी तरह जकड़े हुए है। धर्म, मत ग्रथवा पंथ में न हों, राजनीति ग्रौर साहत्य में हों, तो क्या उनका विष ग्रमृत बन सकता है? भले ही हम चन्द्रलोक में पहुँच जाएं श्रथवा ग्रुक पर शासन करने नगें। उस सफलता का क्या ग्रथं होगा, यदि मनुष्य ग्रपनी मनुष्यता से ही हाथ धी बैठे? मनुष्यता सापेक्ष हो सकती है, परन्तु दूसरे के लिए कुछ करने की कामना में, ग्रथित् 'स्व' को गौण करने की प्रवृत्ति में, सापेक्षता है भी, तो कम-से-कम । वहाँ स्व को गौण करना स्व को उठाना है।

भाचार्यश्री तुलसी गणी के पास जाने का जब अवसर मिला, तब जैसे इस सत्य को हमने फिर से पहचाना हो। या कहें, उसकी शक्ति से फिर से परिचय पाया हो। जब-जब भी उनसे मिलने का सौभाग्य हुआ, तब-तब यही अनुभव हुआ कि उनके भीतर एक ऐसी सास्थिक अग्नि है जो मानवता के हितार्थ कुछ करने को पूरी ईमानदारी के साथ आतुर है। जो अपने चारों छोर फैली अनास्था, आवरणहीनता और अमानवीयसा को अस्म कर देना चाहती है।

### कला में सौन्वर्य के बर्शन

पहली भेंट बहुत संक्षिप्त थी। किन्हीं के झाग्रह पर किन्हीं के साथ जाना पड़ा। जाकर देखता हूँ कि गुभ-स्वेत

वस्त्रधारी, मँभले कद के, एक जैन म्राचार्य साधु-साध्वियों से घिरे हमारे प्रणाम को मधुर-मन्द मुस्कान से स्वीकार करते हुए म्राशीविद दे रहे हैं। गौर वर्ण, ज्योनिर्मय दीष्त नयन, मुख पर विद्वत्ता का जड़ गाम्भीर्य नहीं, बिल्क ग्रहणशीलता का तारस्य देख कर म्राग्रह की कटुता धुल-पुछ गई। याद नहीं पड़ता कि कुछ बहुत बातें हुई हों; पर उनके शिष्य-शिष्याम्रों की कला-साधना के कुछ नमून ग्रवश्य देखे। मुन्दर हस्तलिपि, पात्रों पर चित्रांकन; समय का सदुपयोग तो था ही, साधुम्रों के निरालस्य का प्रमाण भी था। यह भी जाना कि यह साधु-दल शुष्कता का म्रनुमोदक नहीं है, कला में सौन्दर्य के दर्शन करने की क्षमता भी रखता है।

### सौम्य ग्रौर ग्राग्रह-विहोन

दूसरी बार जोक्युर में मिलना हुआ। कोई उत्सव था, भाषण देने वालों और सुनने वालों की अच्छी-खानी भीड़ थी। स्वागत-सत्कार में भी कोई कमी नहीं थी। कुछ बहुत अच्छा नहीं लगा। भाषण और भीड़ से मुभे अरुचि है; और अगर स्वागत-सत्कार के पीछे सहज भाव नहीं है, तो वह भी एक बोभ वन कर रह जाता है। परन्तु यही पर श्राचायंशी तुलसी को जी भर कर पास से देखा। विचार-विनिमय करने का अवसर भी मिला। बहुत अच्छी तरह याद है कि रात को वाल-दीक्षा ग्रादि कुछ प्रश्नों को लेकर आचार्यश्री से काफी स्पष्ट वातें हुई थीं। तभी पाया कि वे सौम्य और प्राग्रह-विहीन हैं। श्रीहसा और प्रपरिग्रह के अपने मार्ग में उन्हें इतना सहज विज्वास है कि शकालु का समाधान करने में मस्तिष्क पर कुछ अधिक जोर देना नहीं. पड़ता। आलोचना से उत्तेजित नहीं होते। सहिष्णुता उनके लिए सहज है, इसीलिए उद्विनता भी नहीं है। है केवल एकाग्रता और श्राग्रह-विहीन पक्ष-समर्थन। वे कुणल वक्ता है। जो कुछ वहना चाहते हैं, विना किसी आक्षेप के प्रभावणाली ढंग से प्रस्तुत कर देते हैं। आश्वस्त तो न तब हुआ था, न आज तक हो सका हूँ; परन्तु विराद मानवता में उनकी अटूट आस्था ने मुभे निश्चय ही प्रभावित किया था। वह अणुश्चत-आन्दोलन के जन्मदाता है। उनकी दृष्टि में चित्र-उत्थान का वह एक सहज मार्ग है। किव की भोति मैं अणुश्चत की अणु-वम से वाव्यात्मक तुलना नहीं कर सकता। करना चाहूँगा भी नहीं। उस सारे आन्दोलन के पीछे जो उदात्त भावना है, उसकी स्वीकार करते हुए भी उसकी संचालन-व्यवस्था में मेरी आस्था नही है। परन्तु उन बनो का मूलाक्षार वही मानवता है, जो कालातीत है, अभिन्न है और है अजेय।

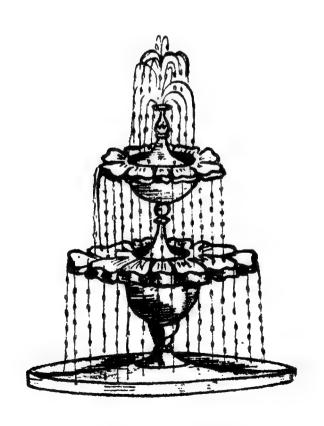
विश्व में सत्ता का खेल है। सत्ता, श्रर्थात् स्व की महिमा; इसीलिए वह अकल्याणकर है। इसी अकल्याण का दंश निकालने के लिए यह अणुद्रस-आन्दोलन है। इन सवका दावा है कि चरित्र-निर्माण द्वारा सत्ता को कल्याण कर बनाया जा सकता है; परन्तु मुक्ते लगता है कि उद्देश शुभ होने पर भी यह दावा ही सबसे वड़ी बाधा है। क्योंकि जहाँ दावा है, वहाँ साधन और साधन जुटाने वाले स्वयं सत्ता के शिकार हो जाते हैं, इसीलिए उनके आस-पास दल उग आते हैं। पैसा देते है और देकर मन-ही-मन सहस्र गुना पाने की आकांका रखते हैं। इसीलिए जैसे ही सिद्ध-प्राप्त व्यक्ति का मार्ग-दर्शन मुलभ नहीं रहता, वे सत्ता के दलदल में आकण्ठ फँस जाते हैं। स्वयं आचार्यथी ने कहा है—"धन और राज्य की मत्ता में विलीन धर्म को विष कहा जाये तो कोई अतिरेक न होगा।" इससे अधिक स्पष्ट और कठोर शब्दों का प्रयोग हम नहीं कर सकते।

### क्रियात्मक शक्ति भ्रौर संवेदनशीलता

पर शायद यह तो विषयान्तर हो गया। यह तो मेरी अपनी शंकामात्र है। इससे अणुद्रत-आन्दोलन के जन्मदाता की मानवता में आशंका क्यों हो ! जो व्यक्ति निवृत्तिमूलक जैन धर्म को जन-कल्याण के क्षेत्र में ले आया, मानवता में उसकी आस्था निव्चय ही अद्भृत हैं। इसीलिए अनुकरणीय भी है। उनकी क्रियात्मक शक्ति और उनकी संवेदनशीलता निश्चय ही किसी दिन मानवता के रेगिस्तान को नाना वर्णों के पुष्पों से आच्छादित हरे-अरे सुरम्य प्रदेश में परिवर्तित कर देगी। कारलाइल ने कहीं लिखा है, "किसी महापुरुष की महानता का पता लगाना हो तो यह देखना चाहिए कि वह अपने से छोटे के साथ कैसा वर्ताव करता है।" आचार्यश्री स्वाभाव से ही सबको समान मानते हैं। बचपन से ही धर्म में उनकी दिन रही है और ये संस्कार उन्हें अपनी मानुश्री की और से विरासत में मिले हैं। उन्होंने गूदों को कहीं छोटा

नहीं समका। स्पष्ट शब्दों में उन्होंने कहा है, "धर्म ब्राह्मणों का है, बिनयों का है; शूदों का नहीं, यह भ्रान्ति है। धर्म का द्वार सबके लिए खुला है।" वे धर्म को सत्य की खोज, अपने स्वरूप की खोज, मानते हैं। जो सत्य का खोजी है, जो अपने को जानना चाहता है, उसके लिए न तो कोई बड़ा है, न छोटा। यही नहीं, वे मानव के एकीकरण में विश्वास रखते हैं। उनकी वृष्टि समानता और समन्वय के तत्त्वों को ही देखती है; विषमता और विश्वंखलता के तत्त्वों को नहीं। उन्होंने बार-बार कहा है, "धर्म-सम्प्रदायों में समन्वय के तत्त्व अधिक है। विरोधी तत्त्व कम।" इसीलिए उनके अणुवत-आन्दोलन में अर्जन तो हैं ही, हिन्दू धर्म के बाहर के लोग भी हैं।

सब विरोधों, विसंगतियों और मतभेदों के बाबजूद ये सब तथ्य नया यह प्रमाणित नहीं करते कि ग्राचायंशी तुलसी गणी का जीवन-लक्ष्य विराट और ग्रखण्ड मानवता का कल्याण है, लघु और खण्डित मानवता का नहीं और उनका यह विश्वास शाब्दिक भी नहीं है, क्रियाशील है। तभी यह अणुव्रत-म्रान्दोलन है। तभी उनका बल ग्राचार पर ग्रिधिक है; क्योंकि व्यास भगवान् के शब्दों में 'ग्राचार ही धर्म है' और बीसवीं सदी में ग्राचार ही मानवता है। श्राचार्यश्री तुलसी इसी मानवता के पोषक, प्रचारक भीर उन्नायक हैं।



## वर्तमान शताब्दी के महापुरुष

प्रो० एन० बी० वैद्य, एम० ए० कर्ग्यूतन कालेज, पूना

सब्बोधं बिवधाति हन्ति कुर्मात निष्यावृशं बाधते, धसे धर्ममति तनोति परमे संवेगनिवेंदने । रागादीन् विनिहन्ति नीतिसमलां पुष्णाति हन्त्युत्वधं, धद्वा कि न करोति सब्गुदमुखादभ्युद्गता भारती ।

महान् ग्रीर सद्गुरु के मुख से निकले हुए वचन सद्जान प्रदान करते हैं, दुर्मित का हरण करते हैं, मिथ्या विश्वासों का नाश करते हैं, धार्मिक मनोवृत्ति उत्पन्न करते हैं, मोक्ष की ग्राकांक्षा ग्रीर पार्थिव जगत के प्रति विरिवित पैदा करते हैं, राग-द्वेष ग्रादि विकारों का नाश करते है, सच्ची राह पर चलने का साहस प्रदान करते हैं श्रीर गलत एवं भ्रामक मार्ग पर नहीं जाने देते। संक्षेप में, सद्गुरु क्या नहीं कर सकता ?

दूसरे शब्दों में, सद्गुरु इस जीवन में श्रौर दूसरे जीवन मे जो भी वास्तव में कल्याणकारी है, उस सबका उद्गम श्रौर मूल स्रोत है।

### शलाकापुरुष

इन पंक्तियों का असली रहस्य मैंने उस समय जाना, जब मैने चार वर्ष पूर्व राजगृह में आचार्यश्री तुलमी का प्रवचन मुना। कुछ ऐसे व्यक्ति होते हैं, जो प्रथम दर्शन में ही मानस पर अनिकमणीय छाप डालते हैं। पूज्य आचार्यश्री सचमुच में ऐसे ही महापुरुष हैं। जैन क्वेताम्बर तेरापंथ सम्प्रदाय के वर्तमान आचार्य को उनके चुम्बकीय आकर्षण श्रीर प्राणवान् व्यक्तित्व के कारण आसानी से युगप्रधान, वर्तमान शताब्दी का महापुरुष अथवा शलाकापुरुष (उच्चकोटि का पृष्य अथवा अति मानव) कहा जा सकता है। मेरा यह अत्यन्त सद्भाग्य था कि मुक्ते उनके सम्पर्क में आने का अवसर मिला और मैं उस सम्पर्क की मधुर और उज्जवल स्मृतियों को हुमेशा याद रख्गा; कारण सतां सद्भिः संगः कथमिष हि पृष्येन भवति अर्थात् सत्संग किसी पृष्य से ही प्राप्त होता है।

उत्तराध्ययन सूत्र में लिखा है कि चार बातों का स्थायी महत्त्व है। वह श्लोक इस प्रकार है:

बतारि परमंगाणि बुल्लहाणीह अंतुणी। माणुसत्तं सुई सद्धा संजमन्मि य बीरियं ॥३-१॥

भर्थात् किसी भी प्राणी के लिए चार स्थायी महत्त्व की बातें प्राप्त करना कठिन है। मनुष्य जन्म, धर्म का ज्ञान, उसके प्रति श्रद्धा भौर म्रात्म-संयम का सामर्थ्य।

उसी प्रकरण में मागे कहा गया है-

माणुरसं विगाहं सद्धं सुई घम्मस्स बुल्लहा । ३-८॥

प्रयात् मनुष्य जन्म मिल जाने पर भी धर्म का श्रवण कठिन है।

१ उत्तराध्ययन पर देवेन्द्र की टीका

दुमपत्तयं नामक दशम अध्ययन में भी इसी भावना को दोहराया गया है: श्रहीण पंचित्रियलं पि से सहे उत्तम धस्म सई ह क्ष्म्सहा। १०-१८

श्रयात् यद्यपि मन्ष्य पाँचों इन्द्रियों से सम्पन्न हो, किन्तु उत्तम धर्म की शिक्षा मिलना दुर्लभ होता है।

इसलिए किसी व्यक्ति के लिए यह परम सौमाग्य का ही विषय हो सकता है कि उसे महान् गुरु ग्रथवा सच्चे पथ प्रदर्शक का सम्पर्क प्राप्त हो—ऐसे गुरु का जो विश्वधर्म के सच्चे सिद्धान्तों का प्रतिपादन करता हो। सबसे महत्त्व-पूर्ण बात यह कि जो भ्रपने उपदेश के भनुसार स्वयं भाचरण भी करता हो। भाचार्यश्री तुलसी के चुम्बकीय भाकर्षण, सच्ची श्रद्धा भीर उनकी उच्च भीर मन्य शिक्षाभों का प्रभाव तत्काल ही मन पर पड़ता है। उनका दृष्टिकोण तिक कट्टरतापूर्ण भयवा संकुचित साम्प्रदायिकता युक्त नहीं है। इसके विपरीत वे भपने चारों भोर उदारता, व्यापकता भीर विशालता का वातावरण विकीण करते हैं। जब हजारों व्यक्ति ध्यान मन्य होकर उनका प्रवचन सुनते है तो कम-से-कम थोड़े समय के लिए तो वे नित्य-प्रति की चिन्ताभों भीर भौतिक स्वार्थों के लिए होने वाले भपने नैरन्तरिक संघर्षों को भूल जाते हैं भीर संकुचित भीर दिक्यानूसी दृष्टिकोण त्याग कर मानो किसी उच्च, भव्य भीर भ्रालौकिक जगत में पहुँच जाते हैं।

### बुराइयों की राम बाण झौषधि

त्रणुवत-भान्दोलन जिसका पूज्य झाचायंश्री संचालन कर रहे हैं और जो प्रायः उनके जीवन का ध्येय ही है, वास्तव में एक महान् वरदान है और वर्तमान युग की समस्त बुराइयों की रामवाण भौषधि सिद्ध होगी। दुनिया में जो व्यक्ति लोगों के जीवन भौर भाग्य-विधाता बने हुए हैं, यदि वे इस महान् भान्दोलन पर गम्भीरता में विचार करें तो हमारे पृथ्वी-मण्डल का मुख ही एकदम बदल जाए और दुनिया में जो परस्पर भारम-नाश की उन्मन्न और आवेशपूर्ण प्रतिस्पर्धा चल रही है, बन्द हो जाए। तब निश्शस्त्रीकरण, भागिवक अस्त्रों के परीक्षण को रोकने भौर मानव जाति के सम्पूर्ण विनाश के खतरे को टालने के लिए लम्बी-चौड़ी बेकार की बहसे करने की कोई भावश्यकता नहीं रह जाएगी। मनुष्य अपने को सृष्टि का मुकुट समभने में गर्व भनुभव करता है। किन्तु भकस्मात् ये उद्गार फूट पड़ते हैं, 'मनुष्य ने मनुष्य को क्या बना दिया है।'

त्रणुवत-म्रान्दोलन यास्तव में मसाम्प्रदायिक म्रान्दोलन है भीर उसको हमारी धर्म निरपेक्ष सरकार का भी समर्थन मिलना चाहिए। यदि इस भ्रान्दोलन के मूलभूत सिद्धान्तों की नई पीढ़ी को शिक्षा दी जाए तो वे बहुत ग्रच्छे नागिरक बन सकेंगे भीर वास्तव में विदव नागरिक कहलाने के अधिकारी हो सकेंगे। राजनैतिक नेताभों की लम्बी-चौड़ी बातों के बजाय जो प्रायः कहते कुछ हैं श्रीर करते कुछ हैं, इस प्रकार का म्रान्दोलन राष्ट्रीय एकता के ध्येय को श्रधिक शी झतापूर्वक सिद्ध कर सकेगा।

धवल समारोह समिति के आयोजकों ने पूज्य आचार्यश्री के प्रति अपनी विनम्न श्रद्धाजिल भेंट करने का जो अवसर मुक्ते प्रदान किया है, उसके लिए मैं अपने को गौरवान्वित और परम सौभाग्यशाली समभता हूँ। अभिनन्दन ग्रन्थ के प्रवन्ध सम्पादक ने जब मुक्तसे आचार्यश्री के बारे में अपने संस्मरण लिखने का अनुरोध किया तो मैंने उसे तुरन्त सहर्ष स्वीकार कर लिया, कारण कवि ने कहा है:

प्रतिबन्नाति हि चेयः पूज्यपूजा व्यतिकमः

## धर्म-संस्थापन का देवी प्रयास

श्री एल० ग्रो० जोशी मुख्य सचिव, बिल्ली प्रशासन

मनुष्य और शेष सृष्टि में एक मुख्य अन्तर यह है कि मनुष्य में मनन व विचार की शक्ति श्रिषक प्रखर एवं प्रवल होती है। मन्' (= मोचना, विचार करना) धातु से ही 'मनुष्य' शब्द की भी व्युत्पत्ति मानी जाती है, ग्रतः मनन मनुष्य की न केवल स्वाभाविक प्रवृत्ति ही है, बल्कि उसका वैशिष्ट्य भी है। यही प्रवृत्ति नर को नारायण बनाने की माशा भी उपजाती है और वानर बनाने की श्राशंका भी। इसीलिए कहा गया है, मन एवं मनुष्याणं कारणं बंधमीक्षयोः मन ही मनुष्यों के बन्धन का कारण है और मोक्ष का भी।

यह मन, यह बुद्धि, मनुष्य को सामान्यतः निर्विकार शान्त नहीं रहने देना। 'सामान्यतः' इसलिए कि इस पर स्वामित्व प्राप्त कर लेने वाले मनीषियां पर तो इसका वस नहीं चलता; किन्तु शेष सब तो इसी के नचाये नाचते रहते हैं। एक दृष्टि से इस प्रवृत्ति का, श्रीर इससे उत्पन्न जिज्ञासा का, बड़ा महत्त्व है। श्रंग्रेजी किव एवं दार्शनिक श्राउनिग लिखता है कि मनुष्य एक मिट्टी का ढेला तो नहीं है, जिसमें शंका व जिज्ञासा की एक चिनगारी भी न चमकती हो। श्रीर जो समक्ते कि जीवन केवल इसीलिए है कि खाश्री-पीश्रो श्रीर मीज करो — श्रथवा जैसे कि टाल्स्टाय ने श्रपनी 'मुक्ति की कहानी' (Confessions and What I believe) में सिवस्तर व्याख्या की है — प्रत्येक विचारशील व्यक्ति के मन में एक प्रश्न उठता है, टाल्स्टाय के लिए भी यह प्रश्न था—''इस ससीम जीवन का कोई निःमीम प्रयोजन श्रथवा श्रथं है या नही ?'' श्रीर यह प्रश्न उसे इस तरह अकभोर देना है, श्रिभभून कर लेना है कि जब तक उसका ममाधान न हो न कोई शान्ति मिलती है, न विश्राम।

में कीन हूँ? किस लिए यह जन्म पाया? क्या-क्या विचार मन में किसने पठाया? माया किसे? मन किसे? किसको ज्ञारीर? श्रारमा किसे कहे सब धर्मधीर?

ये प्रदन श्रनादिकाल से मनुष्य के मस्तिष्क में उठते चले श्राये हैं श्रीर महापुरुषों ने भिन्न-भिन्न देश, काल एवं परिस्थितियों में अत्यन्त उत्कट साधना, अनन्य निष्ठा एवं प्रखर प्रतिभा के द्वारा इनका उत्तर खोजा है। इस खोज में उन्हें जिस सत्य के दर्शन हुए, उसे उन्होंने प्राणी-मात्र के हित के लिए श्रभित्यक्त तथा प्रसारित भी किया है। कालान्तर में इन्हीं उत्तरों का वर्गीकरण हो गया श्रीर वे देश, काल श्रथवा व्यक्ति-विशेष से सम्बद्ध होकर किसी विशिष्ट धर्म के नाम से सम्बद्धित किये जाने लग गये।

### मानव समाज की सपूर्व निधि

इस सन्दर्भ में एक विलक्षण तथ्य की घोर ध्यान सहसा आकृष्ट होता है। जिस प्रकार ग्रध्यात्म ग्रथवा दर्शन के क्षेत्र में इस प्रकार के धनुभव एवं प्रयोग मानव-इतिहास के प्रारम्भ से चले ग्रा रहे हैं, उसी प्रकार भौतिक विज्ञान के क्षेत्र

<sup>?</sup> Finished and finite clods, untroubled by spark.

में भी होते ग्राये हैं। परन्तु इन दोनों में एक महान् अन्तर यह दृष्टिगोचर होता है कि जहाँ भौतिक विज्ञान के क्षेत्र में एक के बाद एक सिद्धान्त प्रयोग और परीक्षण की कसौटी पर कसे जाकर प्रस्थापित होते हैं और उत्तरोत्तर प्रयोगों तथा परीक्षणों से उनके ग्रसत्य प्रमाणित होने पर नये सिद्धान्त नवीनतम सत्य के रूप में प्रतिपादित होते हैं, वहाँ जीवन दर्शन के क्षेत्र में ऋषि-महिंष, विभूतियाँ, ग्रवतार, मसीहा, पैगम्बर, संत भिन्न-भिन्न देश-काल ग्रादि में सत्य की खोज करने निकले ग्रोर मूलतः एक ही परिणाम पर पहुँचे। कितनी श्रद्भुत है यह श्रनुभूति ! यही धर्म की सनातनता है। इसी के फलस्वरूप उत्तरोत्तर प्रयत्नों द्वारा ग्रध्यात्म के क्षेत्र में पूर्ववर्ती श्रनुसन्धान से प्राप्त सत्य की ही पुष्टि एवं व्याख्या हुई। यह शाइवत ग्रविकल दिक-कालादि-श्रनविज्ञन तत्त्व, यह सत्य दर्शन, मानव-समाज की ग्रपूर्व निधि है, यही उसकी मानवता का माप-दण्ड है।

दुर्भाग्य से, समय-समय पर बड़ी चर्चा होती है—धर्म और धर्म के भेदों की, उनसे उत्पन्न कटुताओं की और धर्म-श्राचरण के दुष्परिणामों की। आजकल हमारे देश में भी धर्म एक विभीषिका-सा बना हुआ है। धर्म के नाम पर जो विकृत परम्पराएं ग्रादि धर्म का हास होने पर सबल हो जाती हैं, उन परम्पराधों, ग्रन्धिवश्वासों, संकुचित दृष्टिकोणों को ही धर्म मान कर हम धर्म के शाश्वत तत्त्वों की उपेक्षा करने लगेंगे तो वह विनाश का मार्ग ग्रपनाने जैसा होगा। धर्म की विकृतियों से हट कर गहराई में घुसने और धर्मों की मूलभूत एकता तथा समता का अनुभव करने के लिए धर्म-निष्ठा, धर्म-चिन्तन, धर्म-ग्राचरण का मार्ग ग्रहण करना होगा; धर्म-डेच, धर्म-उपेक्षा या धर्म-ग्रज्ञान का नहीं।

### धर्मों में मूलभूत भेद नहीं

वास्तव में एक धर्म और दूसरे धर्म में कोई मूलभूत भेद न तो है, न हो सकता है। इन भेदों की कल्पना और उनके आधार पर धर्मों के विरुद्ध लगाये जाने वाले आरोप-प्रत्यारोप सब आमक एवं आिल्पामूलक है। वास्तव में कोई विरोध या संघर्ष है तो वह धर्म और धर्म के बीच नहीं, वरन धर्म और अधर्म के बीच है और यह विरोध अनादि काल से चला आ रहा है और चिरकाल तक चलता रहेगा। इस दृष्टि से सोचे तो कितनी सुन्दर लीला यह है—मनुष्य युग-युग में प्रतिपादित उच्चतम दर्शन (धर्म तत्त्व) के उत्तराधिकारी के रूप में जन्मता है; उसमें स्वयं इतनी क्षमता निहित है कि वह इन तत्त्वों का आचरण तथा चिन्तन करके विकास की चरम सीमा तक पहुँच सके; फिर भी, प्रायः वह मोह में पड़ कर पथ-अप्ट हो जाता है और पशुवत् अथवा पशु में भी निम्न श्रेणी का जीवन व्यतीत करता है; फिर यही मानव-समाज किसी ऐसी विभूति को जन्म देता है जो फिर मनुष्य का ध्यान उसकी मनुष्यता के मूल स्रोतों की ओर खींचता है, जो नये-नये दग से उस शाहवत सत्य को प्रतिपादित करता है और धर्म की फिर में अच्छी तरह स्थापना करने का प्रयास करता है। मनुष्य को अध्वं गित की ओर तथा अधोगित की ओर ले जाने वाली शक्तियों के इसी अनवरत संघर्ष—मुरामुर-संग्राम के कारण जगन्नियन्ता को स्वयं अवतीण होकर धर्म-संस्थापन करना पड़ता है, जिससे कि इन शक्तियों का सन्तुलन बिगड न जाये, अधर्म धर्म पर हावी न हो जाये।

इस संघर्ष का एक सुन्दर कलात्मक एवं प्रेरक चित्र उपस्थित करते हुए जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द ने श्रपनी कविता 'सत्य और स्वर्ण' में कितना सुन्दर कहा है—

स्वर्ण भी चिरकाल से है इस घरा पर,

सस्य भी रहता जला ग्राया निरन्तर ।

स्वर्ण की चेण्टा सदा से ही रही यह,

सस्य का मुझ ढके माया-जाल से वह ।

सस्य का यह बस्त जतना ही पुराना,

स्वर्ण के जोहक प्रलोभन में न ग्राना ।

ग्रादि से यह इन्द्र जलता का रहा है,

ग्रास्त कोई भी न इसका पा रहा है।

इस चिरमान इन्ह की जो है कहानी, कथा मानव-साथना की वह पुरानी।

सस्य ग्रन्तर्वाह्य सम ग्रविराम ग्रविजित,

स्वणं से संघवं करता है ग्रकम्पित ।

स्वणं के जो बास वे हैं हाथ उसके,

सत्य के नि:स्वावं साथी साथ उसके ।

जो न इसके, समयंक उसके बने हैं,

गार्ग वो ही नानवों के सामने हैं ।

तीसरा बल विश्व में कोई नहीं है,

सत्य ने ग्राशा कभी खोई नहीं है ।

ग्रहन यह इतिहास का सबसे सतत है—

'कोन किसके साथ इस रण में निरत है ?'

#### श्रेय ग्रौर प्रेय से उपलब्धि

सब धर्मों के सार अथवा अपरिवर्तनीय मूल तत्त्व का संक्षेप में उल्लेख करना सरल नहीं है, तथापि प्रस्तुत संदर्भ में यह कहना अप्रासंगिक न होगा कि यह है आध्यात्मिकता—अथवा ज्ञान्ति या सुख की खोज वाहर न करके अन्दर करना। यही श्रेय मार्ग है, जिसे उपनिषदों ने प्रेय मार्ग से भिन्न बताया और कहा कि श्रेय मार्ग ग्रहण करने से कल्याण होता है, परन्तु प्रेय मार्ग ग्रहण करने से ऐसा 'हीयतेऽर्थः' प्रयोजन ही विफल हो जाता है। इस श्रेय मार्ग का आनन्द त्याग के द्वारा मिलता है, भोग के द्वारा नहीं; अतएव यह आनन्द वास्तविक, पूर्ण तथा बादबत होता है। भोग द्वारा प्राप्त सुख मिथ्या, अपूर्ण तथा अनित्य होता है, इसलिए यदि गुख ही अभीष्ट हो तो विषयेन्द्रिय-संयोग-जन्य विषावत सुख के स्थान पर अतीन्द्रिय सुख का आनन्द लेना मनुष्य को शोभा देता है। श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् कहते हैं— "मैं ही ब्रह्मा की प्रतिष्ठा हूँ, मैं ही अव्यय अमृत की, शाद्वत धर्म की, तथा एकान्तिक मुख की प्रतिष्ठा हूँ।" अर्थान् चाहे अमृतत्व के लिए साधना हो, चाहे धर्म के अथवा सुख के लिए, हमारी दृष्टि यह होनी चाहिए कि जिस अमृत को हम चाह करते हैं, वह अव्यय हो; जिस धर्म में हमारी निष्ठा है, वह शादवत (अपरिवर्तनशील)धर्म हो, जिस मुख की हम खोज करें, वह एकान्तिक हो; ऐसा न हो कि वह दु:ख में परिणत हो जाये।

उपर्युक्त प्रकार से जीवन की दिशा निश्चित हो जाने पर यह कहा जा सकेगा कि सम्यण् ध्यवसितो हि सः यह दिशा ठीक स्थिर हुई। इसके पश्चात् लक्ष्य की ग्रोर बढ़ने की बात भ्राती है। यह प्रगति हमारे दैनिक भ्राचरण, व्यवहार व भ्रम्यास पर निर्भर है। इस क्षेत्र में हमें भाचार्यों, संतों भौर महापुरुषों की जीवन-चर्या से बड़ी प्रेरणा तथा मार्ग-दर्शन मिलते हैं। साधना-पथ की भ्रोर उन्मुख ब्यवित के पैर पथ की विकटता के वर्णनों से दगमगाते हैं— जैसे कि भ्रुरस्य धारा निश्चिता पुरत्यया वुर्ग प्रथमसत् कवयो वदन्ति; Strait is the gate and narrow the path; भ्रथवा कभी-कभी इस भय से कि कहीं वह उभयतः विभ्रष्ट न हो जाये—माया मिली न राम। गृहदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने 'गीतांजिल' के एक गीत में इस दुविधा का एक सुन्दर चित्र खींचा है:

मेरे बन्धन बड़े जिंदल हैं, किन्तु जब में उन्हें तोड़ने का प्रयत्न करता हूँ तो मेरा दिल डुक्को लगता है। मेरा दृढ़ विद्यास है कि दुक्कों प्रमूख निधि है सौर तू ही नेरा सच्या सक्ता है, किन्तु मुक्त में इतना साहस नहीं कि नेरे झन्तर के कूड़े-करकट को निकाल फेंकूं।

यह बाबरण जो मुन्ने ब्रिभिन्न्त किये हुए है, मिट्टी ब्रोर मृत्यू का बना है— में इसते घृणा करता हूँ, परम्तु इसे ही प्रेम से ब्रालिंगन किये हूँ।

मुक्त पर भारी आभार है, मेरी विफलताएं विराट हैं, मेरी सज्जा गोपनीय एवं गहरी है, किन्तु जब में अपने कल्याण की याखना करने लगता हूँ तो इस आशंका से कांप उठता हूँ कि कहीं मेरी प्रार्थना स्वीकार न हो जाये।

ऐसी मनःस्थिति में ही साधक को ब्रावश्यक जीवन दृष्टि तथा साहस प्रदान करने के लिए भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है—"इस मार्ग में ब्रभिकम का नाश या प्रत्यवाय नहीं होता; इस धर्म का स्वल्पांश भी महान् भय से रक्षा करता, है"; — "कल्याण मार्ग का कोई पथिक दुर्गति को नहीं जाता"; "निस्सन्देह मनुष्य का मन वड़ा चंचल है श्रीर बड़ी कठिनाई में निग्रह में ब्राता है, फिर भी वैराग्य तथा ब्रम्थाम में यह सम्भव है ?" ब्रादि-श्रादि।

### ग्राध्यात्मिकता के पुनर्जागरण का शंखनाद

श्राचार्यश्री तुलसी ने श्राज के भौतिकता-प्रधान युग में धर्म श्र्यात् श्राध्यात्मकता के पुनर्जागरण के लिए जो शंखनाद किया है, वह धर्म-संस्थापन के समय-समय पर होने वाले देवी प्रयानों की श्रृंखला की ही एक कड़ी है। व्यवहार क्षेत्र में उन्होंने 'श्रणुत्रत' की नई व्याख्या करके माधना के मार्ग को सरल बनाया है। धर्म-पथ पर एक प्रणु के बरावर भी प्रगति की तो उसके भनेक हितकर प्रभाव होंगे, यह स्पष्ट है। गबसे बड़ा हित तो यही है कि भ्रधम से विमुख होने पर ही धर्म-पथ पर एक पर भी बढ़ा जा सकेगा, श्रनएथ हम श्रधोगित से पूर्णतः बच जायेंगे। दूसरे, साधना के पथ की लम्बाई या दुख्हता पर ध्यान लगने से जो आशंका व दुविधा हमें श्रीभभूत कर लेती है, उसके बजाय हम केवल भ्रान एक कदम की ही सोचें तो रास्ता सरलता से कटता जायेगा। बहुत चलना है, मुश्किल चलना है, इस भय के स्थान पर भ्रणुत्रत यह भावना सामने रखता है कि एक कदम तो चलो। महात्मा गांधी कहते थे, ''मेरे लिए एक कदम काफी है'' (One step enough for me)। संसार जानता है कि एक-एक करके वे कितने कदम चले और मनुष्य-मात्र के लिए साधना का कितना ऊँचा मानदण्ड स्थापित कर गए। यदि हम इस प्रकार एक-एक कदम भी चलें तो उस पश्चानाप के गर्त में न पढ़ेंगे, जिसके बारे में एक ईसाई संत ने कहा है—

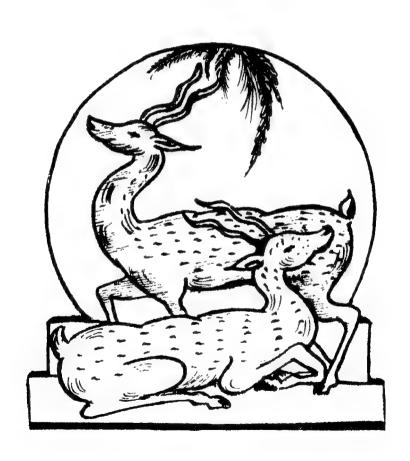
जिसे सन्मार्गं समका, उस पर चल न पाया। जिसे कुमार्गं समका, उससे टल न पाया।

श्रथका---

#### किमहं साधु नाकरवम् किमहं पापमकरविनिति ।

सत्य, ग्रहिंसा, ग्रस्तेय, ब्रह्मचर्य, ग्रपरिग्रह ग्रादि का उपदेश ग्राध्यात्मिक जीवन-दर्शन की मानी हुई ग्राधार-शिलाएं हैं। यह उपदेश धर्म के प्रारम्भकाल से दिया जाता रहा है। शाश्यत धर्म के इन मूल सिद्धान्तों को मानव-जीवन के प्रारम्भिक युग में ही तपस्या, चिन्तन एवं स्वानुभव के श्राधार पर प्रतिपादित किया गया था, किन्तु इसका यह ग्रथं नहीं कि इस कारण हम अण्जल-आन्दोलन के मूल्य को न समभें और कहें कि इसमें तो नवीनता नहीं है। जैसा कि पहले कहा गया है—जीवन-दर्शन के क्षेत्र में मौलिक नवीन सिद्धान्तों की खोज ने प्राचीनतम सिद्धान्तों की सत्यता को खंडित नहीं, पुष्ट ही किया है। यहाँ नई खोज, नये प्रयास का लक्ष्य पिछले सिद्धान्त का उखाड़ना नहीं, वर्तमान स्थितियों में उसकी व्यावहारिकता प्रतिपादित करके उसे नया-नया रूप देना होता है। इस दृष्टि से अणुवत-आन्दोलन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं उपयोगी कार्य कर रहा है। कालान्तर मे धर्म और व्यवहार में जो खाई पड़ गई है, जो ढैत उत्यन्त हो गया है, उसे मिटा कर धर्म को व्यावहारिक जीवन में सम्यक् प्रकार से स्थापित करने का यह नवीनतम प्रयास इस दृष्टि से अत्यन्त अभिनन्दनीय है।

इस पुनीत अवसर पर आचार्यक्षी के प्रति श्रद्धा प्रकट करने के हेतु से इन कुछ वाक्य-पुष्पों की अंजिल अपित है। सच्ची श्रद्धांजिल तो यही होगी कि आचार्यक्षी के उपदेशों की और हमारा व्यान जाये, हम उन पर विचार करें, उन्हें समभ्रें उन पर आचरण करें जिससे हममें मानवीचित आव्यात्मिकता फिर से जागे, हमारी धर्म में आस्था दृढ़ हो और धर्म-व्यवहार में उतरे।



## प्रथम दर्शन और उसके बाद

#### श्री सत्यदेव विद्यालंकार

वे प्रथम दर्शन में कभी भूल नहीं सकता । राजस्थान के कुछ स्थानों का दौरा करने के बाद में जयपुर पहुँचा । उन दिनों जयपुर के जैन समाज में कुछ सामाजिक संबर्ष चल रहा था । जयपुर पहुँचने पर उसके बारे में कुछ जानकारी प्राप्त करने की इच्छा स्वाभावित थी । जैन समाज के साथ मेरा बहुत पुराना सम्बन्ध था । प्रखिल भारतीय दिगम्बर जैन महासभा के प्रधानमंत्री लाला प्रसादीलालजी पाटनी, कई वर्ष हुए, 'जैन-दण्डनम्' नामक पुस्तक लेकर मेरे पास ग्राये । पुस्तक में जैन समाज पर कुछ गहित माक्षेप किये गए थे । उनके कारण वे उसको सरकार द्वारा जब्त करवाना चाहते थे । मेरे प्रयत्न मे उनका वह कार्य हो गया । इस नाधारण-सी घटना के कारण मेरा ग्रखिल भारतीय दिगम्बर महासभा के माध्यम मे जैन समाज के साथ सम्बन्ध स्थापित हुआ श्रीर पाटनीजी के अनुग्रह से वह निगन्तर बढ़ता ही चला गया । इसी कारण उस संघर्ष के बारे में मेरे हदय में जिज्ञासा पैदा हुई ।

मैंने एक मित्र से उसका कारण पूछा; वे कुछ उदासीन भाव में बोले कि झागको इसमें क्या दिलचस्पी है। मैंने विनोद में उत्तर दिया कि पत्रकार के लिए हर विषय में रुचि रखनी झावश्यक है। इस पर भी उन्होंने मुक्ते टालना ही चाहा। कुछ आग्रह करने पर उन्होंने कहा कि जैन समाज के विभिन्न सम्प्रदायों में बहुत पुराना संघर्ष चला झाता है। दिगम्बर और स्वेताम्बर सम्प्रदायों में तो फौजदारी तथा मुकदमेबाजी तक का लम्बा सिलमिला कई वर्षों तक जारी रहा। इसी प्रकार इन सम्प्रदायों का स्थानकवासियों तथा तेरापंथियों के साथ और उनका झापस में भी मेल नहीं बैठता। यहाँ तेरापंथ-सम्प्रदाय के झाचायंथी तुलसी का चातुर्मास चल रहा है और उनके प्रवचनों के प्रभाव के कारण दूसरे सम्प्रदायों के लोग उनके प्रति ईच्या करने लगे हैं। उनका आपस का प्राना बैर नये सिरे से जाग उठा है।

मेरी दिलचस्पी के कारण उन्होंने स्वयं ही यह प्रस्ताव किया कि क्या आप आचार्यश्री के दर्शन करने के लिए चल सकेंगे? मैंने कहा कि मुक्ते इसमें क्या आपत्ति हो सकती है! एक आचार्य महापुरुष के दर्शनों से कुछ लाम ही मिलेगा। उन्होंने कुछ समय बाद मुक्ते सुचना दी कि दोपहर को दो बजे बाद का समय ठीक रहेगा।

### प्रथम दर्शन

लगभग गढ़ाई बजे मैं उनके साथ उस पण्डाल में पहुँच गया, जिसमें श्राचार्यश्री के प्रवचन हुशा करते थे। मैं श्रपने मित्र के साथ ग्रजनबी-सा बना हुशा उपस्थित लोगों की पीछे की पंक्ति में एक कोने में जा बैठा। यदि मैं भूलता नहीं, तो पूज्य ग्राचार्यश्री उस समय उच्च न्यायालय के न्यायाधीश श्री दौलतमल भण्डारी के साथ बातचीत करने में संलग्न थे। ग्राचार्यश्री की निर्मल, स्वच्छ और पवित्र वेश-भूषा तथा उनके रौबीले चेहरे में कुछ ग्रद्भत-सा ग्राकर्षण दीख पड़ा। मैं चुपचाप २०-२५ मिनट बैठ कर चला ग्राया। मैंने कोई बातचीत उस समय नहीं की ग्रीर न करने की मुक्ते इच्छा ही हुई। कारण केवल यह था कि मैं उनकी बातचीत में खलल पैदा नहीं करना चाहता था। परन्तु जैसे ही उठ कर मैं चला, पूज्य ग्राचार्यश्री की दृष्टि मुक्त पर पड़ी ग्रीर मुक्ते ऐसा लगा जैसे कि उनकी ग्रांखों ने मुक्ते घेर लिया हो। फिर भी च्पचाप वहाँ से लौट ग्राया। वह थे पहले दर्शन, जिनका चित्र मेरे सामने ग्राज भी बैसा ही बना हगा है।

जयपुर से प्रवास करने के बाद भावार्यभी का दिल्ली में भागसन हुआ। अणुवत-भान्दोलन का सूत्रपात किया जा भुका था। नैतिक वरित्र-निर्माण के, भणुवत-भान्दोलन के सन्देश को लेकर भाचार्यक्षी भपने संघ के साथ राजधानी पधारे थे। इसी कारण ग्राचारंशी के पघारने की विशेष चर्चा थी। नई दिल्ली होते हुए ग्रपने संघ के साथ भाचारंशी ने जब दिल्ली-दरवाजे की भोर से राजधानी की पुरानी नगरी में प्रवेश किया ग्रीर दिरयागंज से चौदनी चौक होते हुए ग्राप नया-वाजार पहुँचे तो दर्शक वह दृष्य देख कर मुग्ध रह गये। ऐसा प्रतीत होता था जैसे कि महाकवि तुलसी के सन्त हंस गुण गहाँह पय परिहरि बारि विकार शब्दों के अनुसार क्षीर-नीर का मन्यैन करने के लिए मानसरोवर से राजहंसों की टोली राजधानी में श्रवतरित हुई हो। सचमुच अष्टाचार, चोरबाजारी, मुनाफाखोरी, मिलावट तथा ग्रनैतिकता के वातावरण को शुद्ध व पवित्र करने के लिए ग्राचारंशी के भणुवत-ग्रान्दोलन का नैतिक सन्देश दूध को दूध ग्रीर पानी को पानी कर देने वाला ही था।

#### तीन घोषणाएं

नयाबाजार में पदापंण करने के बाद जो पहला प्रवचन हुगा, उसके कारण मेरे लिए आचार्यश्री का राजधानी की ऐतिहासिक नगरी में शुभागमन एक अनोली ऐतिहासिक बटना थी। वह प्रवचन मेरे कानों में सदा ही गूँजता रहता है और उसके कुछ शब्द कितनी ही बार उद्घृत करने के कारण मेरे लिए शास्त्रीय वचन के समान महत्त्वपूर्ण बन गये हैं। आचार्यश्री की पहली घोषणा यह थी कि यह तेरापंथ किसी व्यक्ति-विशेष का नहीं है। यह प्रभु का पंथ है। इसीलिए इसके प्रवतंक आचार्यश्री भिखनजी ने यह कहा कि यह मेरा नहीं, प्रभु! तेरा पंथ है। इस घोषणा द्वारा आचार्यश्री ने यह व्यक्त किया कि वे किसी भी प्रकार की संकीण साम्प्रदायिक भावना से प्रेरित न होकर, राष्ट्र-कल्याण तथा मानव-हिन की भावना से प्रेरित होकर राजधानी आये हैं।

दूसरी घोषणा ग्राचार्यश्री की यह थी कि मैं ग्रणुवत-श्रान्दोलन द्वारा उन राष्ट्रीय नेताश्रों के उस श्रान्दोलन को बलशाली तथा प्रभावशाली बनाना चाहता हूँ, जो राष्ट्रीय जीवन को ऊँचा उठा कर उसमें पवित्रता का संचार करने में लगे हैं।

इसी प्रकार तीसरी घोषणा माचार्यश्री ने यह की थी कि मैं अपने समस्त साधु-संघ तथा साक्वी-संघ को राष्ट्र के नैतिक उत्थान के इस महान् कार्य में लगा देना चाहता हूँ।

इत घोषणाद्यों का स्पष्ट सभिप्राय यह था कि जिस नैतिक नव-निर्माण के महान् धान्दोलन का सूत्रपात राज-स्थान के सरदारशहर में किया गया था, उसको राष्ट्रव्यापी बना देने का शुभ संकल्प करके आचार्यश्री राजधानी पधारे थे। स्थानीय समाचारपत्रों में इसी कारण आचार्यश्री के शुभागमन का हार्दिक स्वागत एवं सभिनन्दन किया गया। मैं उन दिनों में दैनिक 'श्रमर-भारत' का सम्पादन करता था। इन घोषणाओं से प्रभावित होकर मैंने 'श्रमर भारत' को श्रणुवन-श्रान्दोलन का प्रमुख पत्र बना दिया और उसके लिए भारी-ने-भारी लोकापवाद को सहन करने हुए मैं श्रपने इस बन पर श्रविग रहा।

### उपेक्षा, उपहास ग्रीर विरोध

बेमांसि बहु विच्नानि की कहावत याचार्यश्री के इस गुभागमन और महान् नैतिक आन्दोलन पर भी चरितार्थं हुई। आन्दोलन का राजधानी में सूत्रपात होने के साथ ही विरोध का बवण्डर भी उठ खड़ा हुआ। ऐसे प्रत्येक आन्दोलन को उपेक्षा, उपहास, अम और विरोध का प्रारम्भ में सामना करना ही पड़ता है। फिर उसके लए सफलता की भौकी दीख पड़ती है। अणुद्रत-आन्दोलन को उपेक्षा और उपहास का इतना सामना नहीं करना पड़ा, जितना कि विरोध का। इस विरोधपूर्ण वातावरण में ही अणुद्रत-आन्दोलन के प्रथम अखिल भारतीय सम्मेलन का आयोजन दिल्ली में टाउन-हाल के सामने किया गया। न केवल राजधानी में, अपितु समस्त देश के कोने-कोने में उसकी प्रतिध्वनि गूँज उठी। कुछ प्रतिक्रिया विदेशों में भी हुई। हमारे देश का कदाचित् ही कोई ऐसा नगर बचा होगा, जिसके प्रमुख समाचारपत्रों में प्रणुद्रत-धान्दोलन और सम्मेलन की वर्चा प्रमुख रूप से नहीं की गई और उस पर मुख्य लेख नहीं लिखे गये। बम्बई, कलकत्ता, मद्रास तथा अन्य नगरों के समाचारपत्रों ने बड़ी-बड़ी आकार्यों से आन्दोलन एवं सम्मेलन का स्वागत किया। बात यह थी कि

भनैतिकता भीर भ्रष्टाचार दूसरे महायुद्ध की देन है भीर इन बुराइयों से सारे ही विश्व का मानव-समाज पीड़ित है। वह इनसे मुक्ति पाने के लिए वेचेन है। इससे भी कहीं भ्रधिक विभीषिका विश्व के मानव के सिर पर तीसरे सम्भावित महा-युद्ध की काली घटाभों के रूप में मँडरा रही है। तब ऐसा प्रतीत होता था, जैसे कि भाचार्यश्री ने भणुद्रत-भ्रान्दोलन द्वारा मानव की इस पीड़ा व वेचेनी को ही प्रकट किया हो और उसको दूर करने के लिए एक सुनिश्चित श्रभियान शुरू किया हो, इसीलिए उसका जो विश्वव्यापी स्वागत हुआ, वह सर्वेशा स्वाभाविक था।

### सबसे बड़ा आक्षेप

इस विश्व-व्यापी स्वागत के बावजूद राजधानी के भनेक क्षेत्रों में भ्रणुवत-श्रान्दोलन को सन्देह एवं ग्राशंका से वैस्ता जाता रहा श्रीर उसको अविश्वास तथा विरोध की धनी घाटियों में से गुजरना पड़ा। विरोधियों श्रीर ग्रालोचकों का सबसे बड़ा ग्राक्षेप यह था कि ग्राचार्यश्री एक पंथ-विशेष के ग्राचार्य हैं श्रीर वह पंथ संकीण साम्प्रदायिकता, अनुदारता तृथा भसहिष्णुता से भोत-प्रोत है। धान्दोलन का सूत्रपात उस सम्प्रदाय की प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिए किया गया है श्रीर उस सम्प्रदाय के अनुयायी अपने भाचार्य को पुजवाने के लिए उसमें लगे हुए हैं। यह भी कहा जाता था कि इस सम्प्रदाय की सारी व्यवस्था श्रीधनायकवाद पर श्राधारित है। उसके श्राचार्य उसके सर्वतन्त्र स्वतन्त्र श्रीधनायक हैं। वर्तमान प्रजातन्त्र-युग में ग्रीधनायकवाद पर श्राधित ग्रान्दोलन बड़ा खतरनाक है। इसी प्रकार के तरह-तरह के श्रारोप व ग्राक्षेप भान्दोलन पर किये जाते है। तरापंथी सम्प्रदाय की मान्यताओं व मर्यादाओं के सम्बन्ध में संकुचित व संकीण साम्प्रदायिक दृष्टिकोण से विचार व विरोध करने वाले इसी पक्षपातपूर्ण चश्मे से भ्रणुवत-श्रान्दोलन को देखते थे श्रीर उस पर मनमाने श्रारोप व ग्राक्षेप करने में तनिक भी संकीच न करते थे। तरह-तरह के हस्तपत्रक ख्राप कर बाँटे गए श्रीर दीवारों पर बड़े- वड़े पोस्टर भी छाप कर चिपकाये गए। विरोध करने वालों ने भरसक विरोध किया और ग्रान्दोलन को हानि पहुँचाने में कुछ भी कसर उठा न रखी।

इस बवण्डर का जो प्रभाव पड़ा, उसको प्रकट करने के लिए एक ही उदाहरण पर्याप्त होना चाहिए। कुछ साथियों का यह विचार हुमा कि मण्वत-मान्दोलन का परिचय राष्ट्रपति ढा० राजेन्द्रप्रसाद को देकर उनकी सहानभति प्राप्त करने का प्रयत्न किया जाना चाहिए। उनका यह अनुमान था कि राष्ट्रपतिजी नैतिक नव-निर्माण के महत्त्व को श्रनुभव करने वाले महानुभाव हैं । उनको यदि इस नैतिक श्रान्दोलन का परिचय दिया गया तो श्रवस्य ही उनकी सहानुभति प्राप्त की जा सकेगी। श्रीमान सेठ मोहनलालजी कठौतिया के साथ मैं राष्ट्रपति-भवन गया और उनके निजी सचिव से चर्चा-वार्ता हई, तो उसने स्पष्ट कह दिया कि यह मान्दोलन विश्व रूप में साम्प्रदायिक है और ऐसे किसी साम्प्रदायिक धान्दोलन के लिए राष्ट्रपति की सहानुभृति प्राप्त नहीं की जा सकती । मैंने यनुरोध किया कि राष्ट्रपतिजी से एक बार मिलते का भवसर तो भाप दें, परन्तू वे उसके लिए भी सहमत न हुए। यह एक ही उदाहरण पर्याप्त होना चाहिए: यह दिखाने के लिए कि श्राचार्यश्री को राजधानी में प्रारम्भिक दिनों में कैसे विरोध, श्रम, उदासीनता तथा प्रतिकृत परि-स्थितियों में मणब्रत-त्रान्दोल की नाव को खेना पड़ा। इसके विपरीत जिस धैर्य, संयम, साहस, उत्साह, विश्वास तथा निष्ठा से काम लिया गया, उसका परिचय इतने से ही मिल जाना चाहिए कि विरोधी श्रान्दोलन के उत्तर में एक भी हस्त-पत्रिका प्रकाशित नहीं की गई। एक भी बक्तव्य समाचारपत्रों को नहीं दिया गया और किसी भी कार्यकर्ता ने ध्रपने किसी भी व्याख्यान में उसका उल्लेख तक नहीं किया-प्रतिवाद करना तो बहुत दूर की बात थी। जबिक ग्राचार्यश्री के प्रभाव, निरीक्षण भ्रोर नियन्त्रण में इस अपूर्व धैर्य भीर भ्रपार संयम से कार्यकर्ता श्रान्दोलन के प्रति भ्रपने कर्तव्य-पालन में संलग्न थे, तब यह तो अपेक्षा ही नहीं की जा सकती थी कि पूज्यश्री के प्रवचनों में कभी कोई ऐसी चर्चा की जाती। म्रणवत-सम्मेलन के मधिवेशन में भी कुछ विष्न डालने का प्रयत्न किया गया, परन्त सम्पूर्ण अधिवेशन में विरोधियों की चर्चा तक नहीं की गई और प्रतिरोध अथवा असन्तोष का एक शब्द भी नहीं कहा गया। आन्दोलन अपने मृतिञ्चित मार्ग पर श्रम्पाहत गति से निरन्तर झागे बढ़ता गया।

#### ग्रधिकाधिक सफलता

श्राचार्यश्रो के उस प्रथम दिल्ली-प्रवास में राजधानी के कोने-कोने में श्रणवत-प्रान्दोलन का सन्देश पूज्यश्री के प्रवचनों द्वारा पहुँचाया गया भौर दिल्ली से प्रस्थान करने से पूर्व ही उसके प्रभाव के ग्रनुकल ग्रासार भी चारों ग्रीर दीखने लग गा। थे। राजधानी के अतिरिक्त आसपास के नगरों में आन्दोलन का सन्देश और भी प्रधिक तेजी से फैला। यह प्रकट हो गया कि तपस्या ग्रीर साधना निरर्थक नहीं जा सकती । विश्वास, निष्ठा भीर श्रद्धा श्रपना रंग दिखाये विना नहीं रह सकते । रचनात्मक ग्रौर नव-निर्माणात्मक प्रवित्तियों को ग्रमफल बनाने के लिए किनना भी प्रयत्न क्यों न किया जाये, वे धसफल नहीं हो सकतीं। अणवत-आन्दोलन का १०-१२ वर्ष का इतिहास इस नच्य का साक्षी है कि कोई भी लोक-कल्याणकारी श्रभ कार्य, प्रवृत्ति प्रयवा भ्रान्दोलन भ्रसफल नहीं हो सकता। राजधानी की ही दिष्ट से विचार किया जाये तो झाचार्यभी की प्रत्येक दिल्ली-यात्रा पहली की अपेक्षा दूसरी, दूसरी की अपेक्षा तीसरी और तीसरी की अपेक्षा चौथी ग्रधिकाधिक सफल, झाकर्षक और प्रभावकाली रही है। राष्ट्रपति-भवन, मन्त्रियों की कोठियों, प्रशासकीय कार्यालयो ग्रीर व्यापारिक तथा ग्रीग्रोगिक संस्थानों एवं शहर, के गली-कचों व महल्लों में ग्रणवत-प्रान्दोलन की गुँज ने एक-सरीखा प्रभाव पैदा किया। उसको साम्प्रदायिक बसा कर ग्रथवा किसो भी ग्रन्य कारण से उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकी ग्रीर उसके प्रभाव को दवाया नहीं जा सका। पिछले बारह वर्षों में पूज्य श्राचार्यथी ने दक्षिण के निवास प्रायः सारे ही भारत का पाद-विद्वार किया है भीर उसका एकमात्र लक्ष्य नगर-नगर, गाँव-गाँव तथा अन-जन तक अणुवत-म्रान्दोलन के सन्देश को पहुँचाना रहा है। राजस्थान से उठी हुई नैतिक निर्माण की पुकार पहले राजधानी में गुँजी और उसके बाद सारे देश में फैल गई। राजस्थान, पंजाब, मध्यभारत, मध्यप्रदेश, लानदेश, वस्त्रई और पूना; इसी प्रकार दूसरी दिशा में उत्तरप्रदेश बिहार तथा बंगाल और कलकत्ता की महानगरी में पधारने पर पूज्य ग्राचार्यथी का स्वागत तथा ग्रभिनन्दन जिस हार्दिक समारोह व धुमधाम से हुआ, वह सब अणुबत-आन्दोलन की लोकप्रियता, उपयोगिता और आकर्षण शक्ति का ही सूचक है।

मैंने बहुत ममीप से पूज्य ब्राचार्यथी के व्यक्तित्व की महानता को जानने व समक्षते का प्रयत्न किया है। ब्रण-द्रत-प्रान्दोलन के साथ भी मेरा बहुत निकट-सम्पर्क रहा है। मुभ्ने यह गर्व प्राप्त है कि पूज्यश्री मुभ्ने 'प्रथम ग्रणवती' कहते हैं। श्राचार्यश्री के प्रति मेरी भिवन और अणुवन-आन्दोलन के प्रति मेरी अनुरक्ति कभी भी क्षीण नहीं पड़ी। श्राचार्यश्री के प्रति श्रद्धा श्रीर अण्वत-श्रान्दोलन के प्रति विश्वास श्रीर निष्ठा में उत्तरोत्तर बृद्धि ही हुई है। महात्मा गांधी ने देश में नैतिक नव निर्माण का जो सिलसिला शुरू किया था, उसको ब्राचार्यश्री के ब्रणव्रत-ब्रान्दोलन ने निरन्तर भागे ही बढ़ाने का सफल प्रयत्न किया है। यह भी कुछ अत्यक्ति नहीं है कि नैतिक नव-निर्माण की दिष्ट से पूज्य श्राचार्यश्री ने उसे श्रीर भी श्राधिक तेजस्वी बनाया है। चरित्र-निर्माण हमारे राष्ट्र की सबसे बडी सहस्वपूर्ण समस्या है। उसको हल करने में मण्यत-मान्दोलन जैसी प्रवृत्तियाँ ही प्रभावधाली ढंग से सफल हो सकती हैं, यह एकमत से स्वीकार किया गया है। राष्ट्रीय नेताओं, सामाजिक कार्यकर्ताओं, त्रिभिन्न राजनैतिक दलों के प्रवक्ताओं और लोकमत का प्रति-निधित्व करने वाले समाचार-पत्रों ने एक स्वर से उसके महत्त्व और उपयोगिता को स्वीकार विया है। संत विनोबा का भूदान और पूज्य आचार्यश्री का अणुवत-मान्दोलन, दोनों का प्रवाह दोनों के पादविहार के साथ-साथ गंगा और जमूना की पुतीत घाराओं की तरह सारे देश में प्रवाहित हो रहा है। दोनों की अमृतवाणी सारे देश में एक जैसी गंज रही है और भौतिकवाद की घनी काली घटायों में विजली की रेखा की तरह चमक रही है। मानव-समाज ऐसे ही संत महा-पुरुषों के तब जीवन के आशामय सन्देशों के सहारे जीवित रहता है। वर्तमान वैज्ञानिक यूग में जब ग्रणवमी ग्रीर महा-विनाशकारी साधनों के रूप में उसके द्वार पर मृत्यु को खड़ा कर दिया गया है, तब ऐसे संत महापूरुपों के श्रमतमय सन्देश की भीर भी अधिक भावश्यकता है। भाचार्य प्रवर श्री तुलसी और संत-प्रवर श्री विनोबा इस विनाशकारी यस में नव जीवन के अमृतमय सन्देश के ही जीवन्त प्रतीक हैं। धन्य हैं हम, जिन्हें ऐसे मंत महापुरुषों के समकालीन होने और उनके नैतिक नव-निर्वाण के अमृत सन्देश सुनने का सौभाग्य प्राप्त है !

भणुक्त-मान्दोलन के पिछले ग्यारह-बारह वर्षों का जब में सिहावलोकन करता हूँ, तब मुक्ते सबसे अधिक

श्राशाजनक जो प्रासार दील पड़ते हैं, उनमें उल्लेखनीय है— श्राचार्यश्री के साधु-संघ का ग्राधुनिकीकरण। मेरा ग्राभिप्राय यह नहीं है कि साधु-संघ के अनुशासन, व्यवस्था ग्रथवा मर्यादाश्रों में कुछ अन्तर कर दिया गया है। वे तो मेरी दृष्टि में और भी ग्रधिक दृढ़ हुई हैं। उनकी दृढ़ता के विना तो सारा ही खेल बिगड़ सकता है; इसलिए शिथिलता की तो मैं कल्पना तक नहीं कर सकता। मेरा अभिप्राय यह है कि आचार्यश्री के साधु-मंघ में अपेक्षाकृत अन्य साधु संघों के सार्व-जिन्क भावना का अत्यधिक मात्रा में संचार हुआ है और उसकी प्रवृत्तियाँ अत्यधिक मात्रा में राष्ट्रोन्मुली बनी हैं। आचार्यश्री ने जो घोषणा पहली बार दिल्ली पधारने पर की थी, वह अक्षरशः सत्य सिद्ध हुई है। उन्होंने प्रपने साधु संघ को जन-सेवा तथा राष्ट्र-सेवा के लिए अपित कर दिया है। एक ही उदाहरण पर्याप्त होना चाहिए। वह यह कि जितने जनोपयोगी साहित्य का निर्माण पिछले दस-ग्यारह वर्षों में भ्राचार्यश्री के साधु-संघ द्वारा किया गया है और जन-जागृति तथा नैतिक चरित्र-निर्माण के लिए जितना प्रचार-कार्य हुआ है, वह प्रमाण है इस बात का कि समय की मांग को पूरा करने में भ्राचार्यश्री के साधु-संघ ने अभूतपूर्व कार्य कर दिखा से। युग की पुकार सुनने वाली संस्थाएं ही अपने अस्तित्व को सार्यक सिद्ध कर सकती हैं। इसमें तिनक भी सन्देह नहीं कि आचार्यश्री के तेरापंथ साधु-संघ ने अपने भ्रस्तित्व को पूरी तरह सफल एवं सार्थक सिद्ध कर दिया है।

**4** 

## तुभ्यं नमः श्रीतुलसीमुनीश!

### म्राशुकविरत्न पण्डित रघुनन्दन शर्मा, म्रायुर्वेदाचार्य

श्रणुत्रतैः शान्तिनितान्तशीलै रस्त्रै रमोघैः कलहं विजेतुम्। त्वं भारतोर्व्यां कृष्ये विहारं, तुभ्यं नमः श्रीतुलसीम्नीश ॥१॥ त्वं लोकवन्धोः सद्शो विभासि, लोकान्धकारस्य विनाशनाय। पापाधमधांसि विदग्धुमर्हः, प्राज्ञैः प्रतीतोऽस्यकशः कुशानुः॥२॥ चिन्ताग्निना प्रज्वलिताङ्गभाजां, शान्तं सुगीतं हृदयं करोषि । दोपैरशेपै रहितं बुवन्ति, विदावरा स्त्वामशशं शशाङ्कम् ॥३॥ रःनोपमानि प्रवरवतानि, दीनाय दारिद्रच-हताय दत्से। विद्वद्वरा स्त्वां मध्रं वदन्तमक्षारतीयं जलिंघ विदन्ति॥४॥ श्रहिसया निर्हात लोकद्ःखं, सद् ब्रह्मचर्यव्रतभूपिताङ्गम्। भ्रप्त्रभार्य विजहद् गृहं त्वां, मन्यामहे गान्धिमगाधबुद्धिम् ॥५॥ **अ**शोषशब्दाम्ब्**धिपार**यातं, सारस्वताः संप्रति सन्दिहन्ति । रवं पाणिन वा तुलसीमुनि वा, दाक्षी सुतं वा वदना सुतं वा ॥६॥ साघं स्त्वदीयान् सम भोज्यवस्त्रान्, एक त्रिया नेक गुरौ निवद्धान् । वीक्ष्य प्रवीणा इह निर्णयन्ति, न साम्यवादं न समाजवादम् ॥७॥ गीतामपि त्वां परितः पठन्तं, जैनागमान् पूर्णतया रटन्तम्। शौद्धोदने ग्रन्यवरान् भणन्तं, स्वं-स्वं विदुर्वेदिकजैनवौद्धाः।।५।।

### सम्प्रति वासवः

### मुनिश्री कानमलजी

सुरसभेव सभा तव राजित, सुरसभाव सभा नव राजित।
त्वमिष संसदसंप्रति वासवः, कुतुहलं मम बिभ्रति वासवः॥१॥
यमवलोक्य भवन्तमिवोज्ज्वलं, परिवृतं भगणैः रिव साधुभिः।
भ्रविकरन्तमिवामृतधारया, सितरुचं परमंचसिताम्बरे॥२॥
कुमुदिनी मुदिनी मुदिनीरिध रिधपितः स्वगृहं स्वगृहं प्रति।
सुभगवां भगवान् भगवांछया, सकल साध्यल साध्यल नाध्यय॥३॥

### Y

# निर्द्दा द्वन्द्वमाश्रितः

### मुनिश्री चन्दनमलजी

विनयेन वराविद्या, विवेको विद्यया सह। वकारत्रयमावाल्यात्, समगंस्त त्विय प्रभो ॥१॥ पाठकः पाठकालेयः, सेव्यमानीम सेवकः। तितीर्षुं स्तारकश्चापि, निर्द्धन्द्वो द्वन्द्वमाश्रितः ॥२॥ वृद्धिकृद् वर्द्धमानो यः, श्रमणः श्रमतत्परः। विरोधिषु महावीरः, संगताल्यात्रयी त्विय ॥३॥ पञ्चिवशितवर्षेषु, श्रामं श्रामं भुवस्तले। गुप्तं नैदंयुगीनैस्तद्, यन्वयोपकृतं गणं ॥४॥ पुत्रस्त्वमितजानोसि, देव! पुत्र चतुष्टये। वृत्ति सर्व जनीनां यत्, समाश्रित्य विराजसे ॥५॥ ध्वान्तं दुर्णयमंभूतं, दूरयन् धवलेश्वरः। धवलस्ते समारोहो, विश्वं धवलियप्यति ॥६॥ स्वयं प्रकाशमानोथो, स्रथंसार्थ प्रकाशयन्। भानुमानिव लोकेस्मिन्, जयतात्त्वमी प्रभः ॥७॥

# तुलसों वन्दे

श्री यतीन्द्र विमल चौधरी मन्त्री-बङ्गीय संस्कृत शिक्षा परिचद

स्राचार्यतुलसीं वन्दे जैनधर्मस्वरूपकम्। 'तेरापन्थि' महासङ्घ-मैत्रीबन्धनहेतुकम् ॥१॥ महावीर महाधर्म-सुधारसप्रदायकम् ॥ स्रणुव्रत-प्रचारेण विश्वशृद्धिविधायकम् ॥२॥

# विरं जयतु श्रीतुलसाम्नीन्द्रः

### मुनिश्री नवरत्नमलजी

ग्नर्हन त्वमेव भगवन्नुपकारकत्वात् सिद्धोपि विश्ववसुघातल ग्राश्रयत्वात् ग्राचारचिन्तनपटोरनुयोगकृच्चोपाध्याय ग्रार्य ! मुनि उज्ज्वलसाधकत्वात् ॥१॥ विद्यार्थिनोविनयशासनशीलयुक्तान् व्यापारिणः सरलसत्यपथप्रविष्टान् कर्माधिकारिमनुजान् नयनीति निष्ठान् कुर्वन् चिरं जयतु श्रीतुलसीमुनीन्द्रः॥२॥

# न मनुजोऽमनुजोऽईति तत्तुलम्

### मुनिश्री पुष्पराजजी

मु तुलसी भुवने स्त्यमरः प्रियो, न मनुजोऽमनुजोऽर्हति तत्तुलम् ।
हत विधि मुर्विधि शरणागनं, प्रकुरुते हरते च नदापदम् ॥१॥
तदमले कमले चलनेऽधुना, सुमनसं मनसोपहरन्नरम्,
सुमनसा प्रणमन्नऽहमुत्मुकः, सुसमये धवले ह्यभिनन्दनम् ॥२॥

## निर्मलात्मा यशस्वी

### मुनिश्री बत्सराजजी

लोकोद्धारं समयविदुरः कर्नु मुद्यद् वचस्वी.
स्वात्मोद्धारं समयविदुरो नित्यमीशो मनस्वी।
स्वान्योद्भासी गृहमणिनिभः सत्तपस्वी महस्वी,
चेतस्तल्पे लसनु तुलसी निर्मलात्मा यशस्वी।।१॥
को नो विद्यात् तरुणतर्राणं तीव्र तेजः प्रतापं,
भूम्याकाशंयदुदयवशाद् भासते सप्रकाशम्।
तोषं यातं निखिलभुवनं कान्तिशीलं निरीक्ष्य,
शोषं यातो जनपथ ततः केवलं पंकराशिः॥२॥
कल्याणाभं दिवि दिनमणि नित्य मुच्चैश्चरिष्णु,
मीर्ष्या-म्लाना तिरियतु मिमे वारिवाहा यतन्ते।
पातस्तेषां भवति तरसा वीक्षणीयो विपाकः,
श्रद्धा स्फीता भवति भुवने भास्वतां तद् विरोधात्॥३॥

### कोपि विलक्षणात्मा

### मुनिधी डूंगरमलजी

म्राचार्यवर्यपदमाप्य मुशास्त्रसिन्धुं, निर्मध्य तत्त्वसुमणीनुपगम्य पूज्य ।
श्रीमान् स्वयंसमभवत् कृतवांश्च सङ्घं, विष्णुर्भवानजिन कोपि विलक्षणात्मा ॥१॥
योगात्मवद् वंदिक ब्रह्मवत् किम्, व्याप्तं त्रिलोके सुयश स्त्वदीयम् ।
तेषां तु वाधाऽनुगलव्धिमात्रात्, प्रत्यक्षतस्ते सुयशः-प्रसिद्धिः ॥२॥
स्रस्तं कदा याति कदा ह्युदेति, न ज्ञानमाप्नोति जनस्तवान्तिके ।
वैशेषिकं मुक्तिपद समर्पयन्, वैशेषिकः कोपि विलक्षणां भवात् ॥३॥
प्रत्यक्षसिद्धान् सुगुणांस्त्वदीयान्, मीमांसका नैव विलोकयन्ति ।
गुणा न संतीति मतं मतं यत्, सत्येपि सूर्ये जनुषान्धका यथा ॥४।
प्रतिभया चिकतं जगतीतलं, मधुरया सुगिरा तृषिता नराः ।
तमभिनन्दितवान् धवलोत्सवे, गुरुवरं तुनसीं मुनि डुंगरः ॥६॥

## निरन्तरायं पद्माप्तुकामः

### मुनिश्री शुभकरणजी

कल्याणकांक्षिन् सृकृतिन् प्रयोगिन् कृतिन् प्रयोगिन् तुलसीमुनीश । सर्वान् सदा पाहि निरन्तरायं निरन्तरायं पदमाप्तुकामः ॥१॥ जीयाच्चिरं विश्वदिनेशतेजो, दिनेशतेजोपि भवेदणीयम् । गतागतिप्रज्ञ समागमज्ञ, समागमज्ञ स्थितिधन् मुमुक्षो ॥२॥

## वन्द्यो न केषां भवेत् ?

भी विद्याधर शास्त्री, एम० ए०

राष्ट्रे नित्यमणुद्रतादिषु जनान् संयोजयन् पावयन्,

भ्रष्टाचारतमः सदा स्वविषयात् सोन्मूलमुच्छेदयन् ।

तत्तच्छास्त्रनयादिशोधनपरः शिष्यप्रदेवागमः,

**ब्राचार्यस्तुलसी सभादिनकरो वन्द्यो न** केषां भवेत् ॥१॥

रत्नं भारतसंस्कृते मुंनिवरो मान्यो मनस्वी महान्,

नेता कोऽपि कृती स्वशुभ्रयशसा सर्वा दिश: पूरयन्।

भव्येऽस्मिन् धवले महोत्सवदिने विभ्राजमानोऽधिकम्,

श्राचार्यस्तुलसी विलक्षणमतिर्जातोऽभिनंद्योऽखिलै: ॥२"

•

## निष्ठाशील शिक्षक

### मुनिभो बुलीचन्दजी

भाचायंश्री तुलसी केवल भारत में ही नहीं, अन्तर्राष्ट्रीय जगत् में ख्याति प्राप्त महापुरुष है। इसमें उनके मीलिक विचार और उन पर पूर्ण निष्ठा ही मुख्य कारण है। जैन परम्परा में, एक बड़े संघ के अधिनायक होने के कारण उन्हें अपने मंघ में विद्या और प्रचार-कार्य में अनवरत रत रहना पड़ता है। जैन साधुओं के लिए नियमानुसार निरन्तर एक स्थान में रहना तो निषिद्ध है ही, फिर भी वे साधारणतः एक क्षेत्र में एक महीने तक और धानुर्मास की स्थिति हो तो एक क्षेत्र में चार महीने तक रह सकते हैं। इसके अतिरिक्त वे घूमते रहते हैं। किन्तु आनार्यक्षी इससे भी कुछ आगे बढ़े और उन्होंने एक देशव्यापी यात्रा प्रारम्भ की। इन कुछ वर्षों में उन्होंने करीब १५-१६ हजार मील की यात्राएं की हो तो कोई आइचर्य की बात नहीं। गुजरात, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश, राजस्थान, पंजाब, उत्तरप्रदेश, बिहार, बंगाल आदि अनेक प्रान्तों मे घूम- घूम कर उन्होंने जनता में नैतिकता की मशाल जगाई। यह सब कार्य चातुर्मास के अतिरिक्त निरन्तर विहार करते रहने पर ही बन पाया है। यदि एक-एक गाँव में महीने-महीने भर बैठे रहते तो इस प्रकार एक देशव्यापी यात्रा कभी सम्भव नहीं थी।

पैदल विहार करते हुए भी उन्होंने अपने संघ में विद्या की एक मन्दाकिनी बहायी है। यह उनकी एक निष्टा का फल है। प्रातः और सायं दोनों समय विहार करते रहना और उसके साथ-साथ अध्ययन-कायं भी चालू रखना, यह एक अनहोनी-सी बात लगती है। दिन-भर में १४-१६ मील चल लने के पश्चात् शरीर की क्या दशा होती है, यह तो सर्वविदित है ही। इसके उपरान्त भी आचार्यश्री अपनी शिष्य मण्डली को विश्वाम करने की बेला में अध्ययन रत रखते थे। साधु-मत भी इस समय अत्यन्त मनोयोग के साथ अध्ययन कार्य में गंलम्त रहते थे। कभी-कभी जब आचार्यश्री एकनिष्ठ होकर अपने शिष्य समुदाय को अध्ययन करवाते तो प्राचीन महर्षि-मुनियों की याद हो आती थी। आचार्यश्री अनेक कार्यों में व्यस्त होते हुए भी अपने शिष्यों को संस्कृत-व्याकरण, दर्शन, सिद्धान्त, साहित्य आदि अनेक कठिन विषयों का अध्ययन कराने में पूर्ण रुचि रखते है।

इस प्रकार श्राचार्य प्रवर ने अध्ययन-परम्परा को आगे बढ़ाने के लिए एक परीक्षाक्रम भी बनाया। योग्य, योग्यतर और योग्यतम यह एक परीक्षा कम है। योग्य में तीन वर्ष, योग्यतर में दो वर्ष और योग्यतम में दो वर्ष; इस प्रकार सात वर्ष का यह आध्यात्मक शिक्षा-कम है। इस परीक्षाक्रम में अध्ययनार्थ कुछ वैदिक, बौद्ध और जैनेतर धर्म के प्रन्थ भी लिए गए हैं। उदाहरणार्थ---गीना, महाभारत, धम्मपद आदि-आदि।

इस परीक्षा कम के ऊपर भी एक 'कल्प' नामक परीक्षा है जोकि दर्शन, सिद्धान्त, व्याकरण ग्रादि किसी भी विषय में विशेषक्ष होने की इच्छा रखने वाला दे सकता है। उपर्युक्त विहासदि की कठिनाइयों के बावजूद भी भ्रनेक साधु संतों ने इस परीक्षा कम में परीक्षा देकर सफलना प्राप्त की है।

वस्तुतः यह देवा जाये तो आचार्यश्री के सान्तिष्य में चलने वाला यह अध्ययन कार्य किसी भी विद्यालय से कम नहीं कहा जा सकता। इसको यदि हम एक चलता-फिरता विश्वविद्यालय भी कहें तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। एक स्थान पर रह कर अध्ययन-अध्यापन होना बड़ा सरल है, किन्तु इस प्रकार ग्रामानुग्राम घूमते हुए इस कार्य में दक्षता प्राप्त कर लेना, एक देवी खीर है। यह एक आचार्यश्री जैसी तपःपूत भात्मा की प्ररणा का ही सुफल है; अन्यथा आज हम देख रहे हैं कि अनेकानेक सुविधाओं व प्रलोभनों के बावजूद भी आज के विद्यार्थी कैसा अध्ययन करते हैं, यह किसी से

छिपा हुआ नहीं है। साधुओं ने जिस प्रकार आचार्य प्रवर के इस तात्त्विक अध्ययनक्रम को सफल बनाने के लिए प्राणप्रण में चेष्टा की, उसी प्रकार साध्वी समाज ने भी दत्तचित्त होकर ज्ञान प्राप्ति में कोई कमी नहीं रखी। फलतः उनके साधु संत संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी, बंगला, गुजराती, मराठी, कन्नड़, अंग्रेजी, मारवाड़ी आदि अनेकों भाषाओं के प्रभावशाली पंडित बने।

ग्राचार्यश्री के साधु समाज में ग्राज प्रनेक साधु संस्कृत व हिन्दी के ग्राधु कि हैं। श्रनेक साधु-साध्वियाँ कि विता निल्तने में सिद्धहस्त है। ग्रनेक साधु गद्य-पद्य के लेखक हैं। उनके कुछ साधुग्रों ने संस्कृत, हिन्दी व प्राकृत की नवीन व्याकरणों की भी रचना की है। उदाहरणार्थ — भिक्षुशब्दानुशासनमहाव्याकरण, कालूकीमुदी, तुलसी प्रभा, तुलसी मंजरी व जय हिन्दी व्याकरण भादि। भनेक साधु तात्विक ग्रन्थों के लेखक व श्रनुशीलक बने। श्रनेक साधु प्रवधान विद्या के पारंगत भी बने। जिनमें कुछ शतावधानी, पंचशतावधानी, सहस्रावधानी श्रीर सार्धसहस्रावधानी भी हैं। इस प्रकार श्राचार्य प्रवर की उत्साहदायिनी प्रेरणा पाकर श्रनेक साधु उच्चकोटि के विद्वान् वने। पारस लोहे को कंचन बनाता है, 'पारस' नहीं, किन्तु भाचार्यश्री श्रपने भनेक शिष्यों को अपने समकक्ष लाये। भाचार्यश्री में यह एक विशेष ध्यान देने की बात है कि वे विद्याध्ययन कराने के निए किसी के भी साथ संकीणेंता का बरताव नहीं करते। श्राचार्य प्रवर ने भपने कुछ शिष्यों को जैन-सिद्धान्तों के शोधकार्य में भी जोता। वह कार्य इतनी यात्राश्रों के होते हुए भी मुचार रूप से चल रहा है। जहाँ पर प्रचार, परंटन, जन-सम्पर्क, भाष्ययन, भाष्ययन श्रादि भनेक कार्य साथ-साथ चल रहे हों, वहाँ सब कार्यों की गति स्वभावतः ही मंद पड़ जाती है। किन्तु भाचार्यप्रवर के वचनों में न जाने कौन-सी भ्रद्भुत शक्ति भरी हुई है कि उनके सान्तिध्य में चलने वाले भनेक कार्य उसी तीव्र गति मे चल रहे हैं। भनेक कार्यक्रमों की व्यस्तना में भी उनका एक भी शिष्य पठन-पाठन के परिश्रम से पीछे नहीं हटता।

याचार्यश्री के कत्थों पर संघ के गुरुतर दायित्व का भार है, यतः उन्हें अत्यान्य कार्यों के लिए अवकाश मिल पाना आसान नहीं है, फिर भी वे व्याख्यान, प्रचार, बातचीत, चर्चा आदि अनेकानेक कार्यों में व्यस्त रहते हैं। तेरापंथ सम्प्रदाय की प्रणाली के अनुसार छोटे-से-छोटे और बड़े-से-बड़े सारे कार्य उन्हीं की आजा के अनुसार सम्पादित होते हैं। अतः इन छोटे-मोटे कार्यों में भी उन्हें ही ध्यान बटाना पड़ता है। इस प्रकार प्रत्येक समय में ये कार्यों में 'सावन भादों' में बादलों से नीले नभ की तरह धिरे रहते हैं। सुबह चार बजे से लेकर रात को नौ बजे तक वे अत्यन्त उत्साहपूर्वक अपने एक-एक कार्य के लिए सजग रहते हैं। यहाँ तक कि वे अपने नियोजित कार्यों के लिए कभी-कभी भोजन को भी गौज कर देते हैं। चर्चा, प्रश्नोत्तर, अध्ययन, अध्यापन आदि कार्य करते समय तो वे अपने-आपको भूल से ही जाते है। चर्चा, वार्ता व प्रश्नोत्तरों के कारण रात को कभी-कभी ग्यारह व बारह बजे तक जागते रहते हैं। उधर पश्चिम रात्रि में साधुओं को स्वाध्याय व पढ़ाने के लिए वे नियमित रूप से चार बजे उठते हैं। इस प्रकार उनकी एकनिच्छा ने साधु-समाज को जो विद्या की एक अमोच शक्त दी है, वह अनुलनीय है।

बिहार, बंगाल, उत्तरप्रदेश, राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र श्रादि अनेक देशों में शाचायंश्री के अनुयायी सोग रहते हैं। वे लोग सहस्रों ही नहीं, अपितु लाखों की संख्या में हैं। वे लोग भी तास्त्विक और सद्व्यवहारिक ज्ञान से वंचित न रह जाएं, इसको दृष्टिगत रखते हुए उन्होंने उपर्युक्त प्रत्येक प्रान्त के प्रत्येक गाँव व नगर में अपने साधु-साध्वीगण के दल भेज कर उन्हें भी ज्ञानार्जन करने का अवसर प्रदान किया। इस प्रकार लोगों को तास्त्विक ज्ञान की अवगति कराने के लिए आचार्यप्रवर ने एक नई दिशा दी। इसका भी एक परीक्षाक्रम निर्धारित किया गया। कलकत्ता तेरापंथी महासभा द्वारा प्रतिवर्ष इस परीक्षाक्रम में अध्ययन करने वालों की परीक्षा ली जाती है। सहस्रों बालक, बालिकाएं व तरुण इसमें अध्ययन कर अपने ज्ञानांकुर को विकसित करने में अग्रसर होते हैं।

स्राचार्यप्रवर भाजार के क्षेत्र में जितने निष्ठाशील आजारी, विजार के क्षेत्र में जितने निष्ठाशील विजारक, सद्व्यवहार के क्षेत्र में जितने सद्व्यवहारी श्रीर चर्चा के क्षेत्र में जितने चर्चावादी हैं, उतने ही शिक्षा क्षेत्र में एक निष्ठाशील शिक्षक भी हैं। तेरापंथ संघ में साज जो सप्रत्याशित शैक्षणिक प्रगति देख रहे हैं, उसका सारा श्रेय उसी एक उत्कट निष्ठाशील सात्मा को है, जिसने भ्रपना समूख्य समय देकर चतुर्विध संघ को साने लाने का प्रयत्न किया है।

## आञ्जनेय तुलसी

ग्राचार्य जुगलकिशोर शिक्षा-मंत्री, उत्तरप्रदेश सरकार

### संजीवन विद्या का रहस्य

मानव विचार, मनन भीर मन्यन में भनेकानेक शक्तियों का पुंज है। वह भपने जीवन को साधना द्वारा
- नितान्त उज्ज्वल बना सकता है। वैसे तो प्राणीमात्र में सिद्धत्त्व भीर बुद्धत्त्व जैसे गुणों की उपलब्धि की सम्भावनाएं हैं,
किन्तु वे भपनी शारीरिक एवं मानसिक दुर्बलताओं के कारण इसके महत्त्व को हृदयंगम करने में बहुत कम क्षमता रखते
हैं। मानव के भलावा श्रन्य प्राणियों का यह दुर्भाग्य है कि वे उसकी भांति श्रपने हिताहित व कृत्याकृत्य को परल नहीं
सकते। विवेकबुद्धि का उनमें भ्रभाव है। इस भांति केवल मानव ही एक ऐसा विचारशील एवं मननशील प्राणी है, जिसमें
भ्रपने हित-सहित भीर कृत्य-श्रकृत्य को परलने गी भव्भत क्षमता पायी जाती है। मानव ही भ्रपने जीवन की संजीवन
विद्या के रहस्य को समक्ष सकता है।

यह सब होते हुए भी ग्राज परिस्थित कुछ भिन्त-सी नजर ग्राती है। किसी कारणवश ग्राज मानव की वह केतना-शक्ति मन्द पड़ गई है। वही मूलभूत कारण है, जिससे वह स्वार्थ में श्रन्था होकर श्रनैतिकता की श्रोर ग्रग्नसर हो गया है। उसके जीवन में सास्विकता की कमी हो रही है श्रीर ग्रवांछनीय तस्व घर करने लगे हैं। मानव मानव में विश्वास की भावना का हास हो रहा है। वह दूसरों के श्रधिकारों की परवाह नहीं करता। ऐसी स्थिति में उसके विवेक को जगाने का कोई उपक्रम चाहिए। श्रनैतिकता की व्याधि को स्वाहा करने के लिए कोई ग्रमोध श्रोषधि चाहिए।

मानव की यह सुषुप्त चेतना तभी पुनर्जागृत हो सकती है जब उसमें चित्र का वल हो। उसके प्रत्येक कार्य में ग्रिहिसा व नैतिकता की पुट हो। जनवंद्य ग्राचार्यंश्री तुलसी द्वारा प्रवितित ग्रणुव्रत-ग्रान्दोलन इस दिशा में एक ग्रिभनव प्रयास कर रहा है। वह दिग्ञान्त मानव-समाज को नैतिकता की खुराक दे रहा है ग्रीर उसे एक दिशा-दर्शन देता है। ग्रणुव्रत-ग्रान्दोलन वास्तव में एक ऐसे समाज की रचना करना चाहता है जिसमें मिलावट, चोरबाजारी, दुराचार, भनाचार, बेई-मानी, ठगी, धूर्तता ग्रीर स्वार्थान्धता ग्रादि का पूर्ण रूप से श्रन्त हो जाये तथा मानव शोलवान्, सच्चरित्र व सद्गुण-सम्पन्त हो।

### एक रचनात्मक प्रमुख्यान

प्राचार्यश्री तुलसी ने समस्त मानव समाज को मैत्री, प्रेम ग्रौर सद्भावना का सन्देश ऐसे समय में दिया है जबिक उसे उसकी परम ग्रावश्यकता थी। भारतवर्ष के गाँव-गाँव में पैदल घूम-चूम कर ग्राचार्यश्री ने जनता को यह बताया कि उनके विचारों की यह त्रिवेणी किस प्रकार मानव-समाज का कल्याण कर सकती है। महात्मा गांधी ने जिस समय ग्रीहमा के बल पर स्वराज्य दिलाने का वचन दिया था, तब ग्रीधकांश लोगों ने यह सोचा था कि क्या गांधीजी ग्रपने सम्पूर्ण जीवन में भी यह कर दिखाने में सफल होंगे। उन्होंने ग्रालोचकों की परवाह न करते हुए ग्रपना प्रयास जारी रखा ग्रौर श्रन्त में परतन्त्रता की सदियों पुरानी बेड़ियाँ तोड़ फेंकी। जिस प्रकार स्वतन्त्रता-प्राप्ति के लिए ग्रीहंसा व सत्य का ग्राथय लिया गया, उसी प्रकार उसकी रक्षा के लिए भी ग्रीहसा भौर सत्य का ही ग्राथय लेना होगा। इन गुणों को विकसित करने की ग्रावश्यकता है। ग्रणुवत-ग्रान्दोलन इस दिशा में एक स्पृहणीय प्रयास है। यह हमारे सौभाग्य ग्रौर उज्ज्वल

भविष्य का सूचक है। राजस्थान की तपोभूमि से निःमृत आज यह आन्दोलन केवल भारतवर्ष की ही चार-दीवारी में सीमित नहीं रहा है, बल्क विदेशों में भी इसकी चर्चा होने लगी है। वास्तव में यह एक रचनात्मक अनुष्ठान है। अपने जीवन-काल के विगत लगभग बारह वर्षों में इस आन्दोलन के अन्तर्गत विभिन्न प्रवृत्तियों का विकास हुआ है और उनमें आशातीत सफलता भी मिली है। संक्षेप में यह आन्दोलन जन-जीवन का परिमार्जन चाहता है। जहाँ वह नैतिक गतन की ओर जाते हुए मानव को नैतिक नव-जागरण की प्रेरणा देता है, वहाँ वह मनोमालिन्य, वैमनस्य व संघर्ष की ओर जाते हुए मानव-समाज को मैत्री की बात भी कहता है। वास्तव में यह आन्दोलन एक विचार-कान्ति है। यह मनुष्य को आदि से अन्त तक जकख़ता नहीं। इसका काम विचारों में स्वच्छता ला देना है। निःसन्देह यह उपक्रम सभी अर्थों में विचार-उच्चता का पोपक है और इसके प्रवर्तक जनवंद्य आचार्यश्री तुलसी सब के लिए वन्दनीय हैं; क्योंकि उन्होंने एक सम्प्रदाय-विशेष के अधिशास्ता होते हुए भी साम्प्रदायिक भावनाओं ने परे रह मानव-मात्र को धर्म ग्रन्थों का नवनीत निकाल कर जीवन-संहिता के रूप में अणुवत-श्रान्दोलन का श्रनुपम पाथेय दिया है, जिसका उपभोग कर वह (मानव) अपने जीवन को तो सास्विक ढंग से बिता ही सकता है, पर साथ-ही-साथ दूसरों के लिए भी वह सुविधाशील बन सकता है।

ऐसे कल्याणकारी महापुरुष के चरणों में मानव का शोश स्वयं ही भुक जाता है श्रीर उसकी हुत्तश्री से स्वतः ही यह भावना मुखर हो उठती है कि ऐसा युगपुरुष सदियों तक मानय-मात्र का पथ-प्रदर्शन करता रहे श्रीर श्रपने श्राध्यात्मिक बल से मुक्कित नैतिकता में प्राण प्रतिष्ठित करने के लिए संजीवनी का श्रवतारण कर श्राञ्जनेय बने।

माचार्यश्री तुलसी के श्राचार्य काल एवं सार्वजितिक सेवाकाल के पच्चीस वर्ष पूर्ण होने पर उनके प्रति मैं भ्रपनी हादिक शुभकामनाएं प्रकट करता हूँ। इन पच्चीस वर्षों के सेवाकाल में भ्रणुवत-ग्रान्दोलन को जो बल प्राप्त हुआ है, वह किसी से छिपा नहीं है। इम सबकी यही कामना है कि उस बहुमुखी व्यक्तित्व एवं राष्ट्रीय चरित्र पुनिनर्माण के कार्य में उनका नेतृत्व हमें सर्वदा प्राप्त होता रहे। इस शुभ श्रवसर पर मै भ्रणुवत-भ्रान्दोलन के प्रवर्तक श्राचार्यश्री तुलमी को भ्रपनी विनम्न श्रद्धांजलि श्रपित करता हैं।



## तरुण तपस्वी ऋाचार्यश्री तुलसी

### श्रीमती दिनेशनन्दिनी डालमिया, एम० ए०

भाषायंश्री तुनसी भ्रभिनन्दन-ग्रन्थ में मुर्फ भी कुछ लिखने के लिए ग्रामन्त्रित किया गया, पर मैं क्या लिख्ं? जिनको हम इतनी निकटता में जानते हैं, उनके बारे में कुछ कहना उतना ही कठित है, जितना प्रसुप्त प्रजा के द्वारा शक्ति को सीमा-बद्ध करना।

मै उन्हें बचपन से जानती हूँ । कई बार सोचा भी था कि मैं सुविधा ने उनके बारे में अपनी अनुभूतियाँ लिर्ल्गी। उनके व्यक्तित्व को जितनी निकटता में देखा, उतना ही निखरा हुआ पाया। उस जमाने में वे इतने विख्यान न थे, किन्तु विलक्षण अवस्थ थे। उनकी तपत्रचर्या, मन और दारीर की अद्भुत शक्ति और आध्यात्मिकता के तन्त्रांकुर गृह की दिव्य-दृष्टि में छिप न सके और वे इस जैन संघ के उनराधिकारी चुन लिये गए। इन्होंने प्राचीन मर्यादाओं की रक्षा करते हुए, सम्पूर्ण व्यवस्था को, मौलिकता का एक नया रूप दिया। सारे संघ की बल-बृद्धि और शक्ति को इकट्टा कर तपश्चर्या और आतम-शुद्धि का मुगम मार्ग बनलाते हुए, संकीर्णता के बन्धनों को काटते हुए, शान्ति-स्थापना का संकल्प ने आगे बढ़े। जन-समूह ने इनका स्वागन किया और तब इनका मेवा-क्षेत्र द्वीपदी के चीर की तरह विस्तृत हो गया। आचार्यश्री गुलमी ने धार्मिक इतिहास की परम्पराओं पर ही बल नहीं दिया, बल्कि व्यक्ति और समय की आवश्यकताओं को गमभ उसके अनुरूप ही अपने उपदेशों को मोड़ा। सघ के स्वतन्त्र व्यक्तित्व और वैशिष्ट्य का निर्वाह करते हुए साम्प्र-दायिक भेदों को हटाने का भगीरथ प्रयन्त किया।

सत्य, प्रहिसा, प्रस्तेय, प्रह्मचयं और अपरिग्रह को जीवन-व्यवहार की मूल भिन्न मानने वाले इस सच के सूत्र-धार के उपदेशों से जनता ब्रियन्दन हुई। श्राज के विश्व की इस विषम परिस्थित में, जब सेवा का स्थान स्वार्थ ने, विश्वास का सन्देह ने, स्तेह और श्रद्धा का स्थान घृणा ने ले लिया है, तब इन्होंने भगवान् महावीर की ग्रहिसा-नीति का हर व्यक्ति में समन्वयं करते हुए नये दुष्टिकोण से एक नई पृष्टभूमि तैयार की।

मानव यो देव नहीं, मानव बनाने का इनका गम्भीर प्रयत्न, बिना किसी फल और कीर्ति की आकांशा के निरन्तर चलता है। इनको अपने जीवन अथवा सवा के लिए कोई आर्थिक माधन नहीं जुटाने पड़ते। बिना किसी प्रति- इन्द्रिता की भावना से प्रभावित हुए अपने कार्यों को रचनात्मक रूप देते रहते है। पद और प्रशसा की भावना से उपराम होकर ये मानव की असिहिष्णु हृदय-भूमि को नैतिक हल से जोतते हैं। प्रेम और धर्म के बीजों को बोते है। शास्त्रों के निचुड़े हुए अर्क से उन्हें सींचते हैं। क्षेत्रज्ञ की तरह उसकी रखवाली करते है, यही उनके अस्तित्व और सफलता की कुजी है। यही इस पंथ का गुह्यतम इतिवृत्त है कि इनने थोड़े काल में विज्ञान और विनाश की इस कसमसाती बेला में भी समाज में इन्होंने अपना स्थान सुरक्षित कर लिया है।

नगरों और ग्रामों में घूम कर, छाया, पानी, शीत, श्रातप श्रादि यातनाएं सहन कर लोक-कल्याण करते है। जीवन की सफलता के श्रचूक मन्त्र इस ग्रणुवत को इस ग्रहिंसा के देवदूत ने एक सरल जामा पहना कर लोगों के सामने रखा। सुगन्धित द्रव्यों के धूम्रसमूह-सायह श्रनन्त ग्रासमान में उठा और इहलोक और परलोक के द्वार पर प्रकाश डाला।

जब श्राचार्यश्री पद्मासन की तरह एक सुगम श्रासन में बैठते है तो उनके पारदर्शी ज्योति-विस्फारित नेत्रों से विशद श्रानन्द श्रीर नीरव शान्ति का स्रोत बहता है। उनकी वाणी में मिठास, मार्मिकता श्रौर सहज ज्ञान का एक प्रवाह-सा रहता है, जिसे सर्व-साधारण भी सहज ही ग्रहण कर सकता है। जीवन को सुन्दर बनाने के लिए इनके पास पर्याप्त सामग्री है।

मैं इतना कुछ जानते हुए भी इस धर्म के गूढ़ तत्त्वों को ग्राज तक हृदयंगम नहीं कर सकी हूँ, क्योंकि इन्होंने ग्रपने ग्रापको इतना विशाल बना लिया है कि इनको जान लेना ही इनके ग्रादशों को सटीक समक्र लेना है, क्योंकि ये ही इनकी सत्यता के साकार प्रतीक हैं। वैसे तो सारे ही धर्म-पंथ बड़े कठिन ग्रीर ऊबड़-खाबड़ हैं, परन्तु इस पंथ के पथिक तो साँड़े की तीखी धार पर ही चलते हैं। गुरु के प्रति शिष्यों का पूर्ण ग्रात्म-समर्पण ग्रीर उनके व्यक्तित्व इस तम्ण तपस्वी के ग्रादेशों में इस तरह समा जाते हैं, जैसे बृहतु साम का स्तुति-पाठ इन्द्र में समा जाता है।

त्याग की वेदी पर कमीं का होम करने के बाद भी ये बड़े कर्मठ हैं। सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त तक इनके क्षण बंधे हुए होते हैं। काल की अनन्तता में विश्वास करते हुए भी इनका पलार्धपल का हिसाब उसी तरह होता है, जैमा अवसान-वेला में विणक् की दूकान का। इनके जीवन की कोई मिसल या मसला दूसरे दिन के लिए नहीं छोड़ा जाता। सारे दिन की आलोचना करने के बाद इनका मानस-पटल उस गहरे जलाशय-सा मालूम देता है, जिसकी तरंगें विलीन हो गई हों—थाह हीन, शान्त!

इस घार्मिक फिरके के संतों ने अपने-आपको आधुनिक प्रलोभन से इतना ऊपर उठा रखा है कि आज के अपूर्ण युग में ये प्रपनी कठिन मर्यादाओं से बँधे हुए जीते कैसे हैं ?

त्याग और तप की प्रतिमूर्ति ये श्राचार्य और सूर्ड की श्रनी से ऊंट को निकालने वाला इनका धर्म श्रेय शौर प्रेय का ज्ञान कराने में समर्थ है।



### चरैवेति चरैवेति की साकार प्रतिमा

श्री श्रानन्द विद्यालंकार सहसम्पादक — नवभारत टाइम्स, दिल्ली

'चरैवेति' का धादि धौर सम्भवतः धन्तिम प्रयोग ऐतरेय ब्राह्मण के शुनःशेप उपाल्यान में हुम्रा है। उसमें इन्द्र के मुख से राजपुत्र रोहित को यह उपदेश दिलाया गया है कि पश्य सूर्यस्य भेमाण यो न तन्त्रयते चरन् । घरैवेति चरैवेति । इसका धर्थ है—'हे रोहित! तू सूर्य के श्रम को देख। वह चलते हुए कभी धालस्य नहीं करता। इसिलए तू चलता ही रह, चलता ही रह।' यहाँ 'चलता ही रह' का निगूढार्थ है कि 'तू जीवन में निरन्तर श्रम करता रह।' इन्द्र ने इस प्रकरण में सूर्य का जो उदाहरण प्रस्तुत किया है, उससे मुन्दर धौर सत्य धन्य कोई उदाहरण नहीं हो सकता। इस समस्त ब्रह्माण्ड में सूर्य ही सम्भवतः एक ऐसा भासमान एवं विश्व-कल्याणकर पिण्ड है, जिसने सृष्टि के धारम्भ से धपनी जिस धादि-धनन्त यात्रा का धारम्भ किया है, वह ब्राज भी निरन्तर जारी है। इस ब्रह्माण्ड में गतिमान पिण्ड श्रीर भी हैं; परन्तु जो गति पृथ्वी पर जीवन की जनक तथा प्राणिमात्र मे प्राण की सर्जय है, उसका स्रोत गूर्य ही है। वह सूर्य कभी नहीं थकता। धपने धन्तिन पथ पर धनालस-भाव से वह निरन्तर गतिमान है। श्रम का एक धतुलनीय प्रतीक है वह ! 'चरैवित' अपने सम्पूर्ण कर में उसी में माकार हुग्रा है।

#### जीवन की श्रेष्ठ उपलब्धि

सूर्य के लिए जो सत्य है, वह इस युग में इस पृथ्वी पर आचार्यश्री तुलसी के लिए भी मत्य है। जोधपुर-रिथत लाइनूँ नगर के एक मामान्य परिवार में जन्म-प्राप्त यह पुरुष शारीरिक दृष्टि से भले ही सूर्य की तरह विश्वाल एवं भास-मान न हो, परन्तु उसका जो अन्तर्मन और प्रखर बुद्धि है, उसकी तुलना सूर्य से सहज ही की जा सकती है। उसके मान-मिक ज्योति-पिण्ड ने अपने चैतन्य-काल से जनहितकारी किरणों का जो विकिरण आरम्भ किया है, उसका कोई अन्त नहीं है। वह अविराम जारी है। भौतिक शरीर जरा-मरण और क्लान्ति-धर्मा है, किन्तु आचार्यश्री तुलमी ने अविराम ध्रम से यह सिद्ध कर दिया है कि काल-कम के अनुसार जरा-मरण उन्हें भले ही आत्ममान कर ले, परन्तु क्लान्ति उन्हें यावज्जीवन स्पर्श नहीं करेगी। जीवन में यह कितनी बड़ी व श्रेष्ठ उपलब्धि है। कितना महान् आदर्श है उस मानव-समाज के लिए, जिसका भौतिक और आध्यात्मिक कल्याण भी इसमें ही निहित है—नावाश्वान्ताय श्रीरिसा।

भाग्य श्रीर श्रम दोनों ही मानव की अनमोल निधि हैं। इनमें से एक सहज प्राप्त है और दूसरी यन्त-साध्य। भाग्य की महिमा संसार में कितनी ही दृष्टिगोचर होती हो श्रीर भाग्य फिलित सर्वत्र पर मानव का कितना ही अवण्ड विश्वास हो, परन्तु श्रम की जो गरिमा है, उसकी तुलना उससे नहीं की जा सकती। भाग्य नो परोपजीवी है श्रीर श्रम भाग्य का निर्माता। यह श्रम का ही प्रताप है, जिससे घरनी सस्यश्यामला होती है श्रीर मनुज महिमा को प्राप्त होना है। संसार में जो कुछ मुख-समृद्धि दृष्टिगोचर है, उसके पीछे यदि कोई सर्जंक शक्ति है तो वह श्रम ही है। नितान्त वन्य जीवन से उन्ति श्रीर विकास के जिस स्वर्ण शिखर पर मानव श्राज खड़ा है, वह श्रम की महिमा का ही स्वयं-भाषी प्रतीक है। जिस श्रम में इतनी शक्ति हो श्रीर जो सूर्य की तरह उम शक्ति का मागर हो, उससे श्रिषक 'चरैवेति' की साकार प्रतिमा श्रन्य कीन हो सकता है? श्राचार्यश्री नुलसी ने श्रपने श्रव तक के जीवन से यह सिद्ध कर दिया है कि श्रम ही जीवन का मार है श्रीर श्रम में ही मानव की मुक्ति निहित है।

धाचार्यंश्री तुलसी ने घपने बाल्यकाल से जो घ्रथक श्रम किया है, उसके दो रूप हैं—कान-प्राप्ति घौर जन-कल्याण। बालक तुलसी जब दस वर्ष के भी नहीं थे, तभी से ज्ञानार्जन की दुर्दमनीय ध्रमिलाषा उनमें विद्यमान थी। ध्रमें बाल्यकाल के संस्मरणों में एक स्थल पर उन्होंने लिखा है—'श्रध्ययन में मेरी सदा से बड़ी रुचि रही। किसी भी पाठ को कण्ठस्थ कर लेने की मेरी धादत थी। धर्म-सम्बन्धी ग्रनेक पाठ मैंने बचपन में ही कण्ठाग्र कर लिये थे।' ध्रध्ययन के प्रति उनकी तीव लालगा और श्रम का ही यह परिणाम था कि ग्यारह वर्ष की श्रन्य वय में तेरापंथ में दीक्षित होने के बाद दो वर्ष की घ्रवधि में ही इतने पारंगत हो गए कि उन्होंने अन्य जैन साधुओं का ध्रध्यापन प्रारम्भ कर दिया। उनकी यह ज्ञान-यात्रा केवल घ्रपने लिए नहीं, ग्रपितु दूसरों के लिए भी थी। निरन्तर श्रम के परिणामस्वरूप वे स्वयं तो संस्कृत और प्राकृत के प्रकाण्ड पण्डित हो ही गए, श्रपितु उन्होंने एक ऐसी शिष्य-परस्परा की स्थापना भी की, जिन्होंने ज्ञान के विभिन्त क्षेत्रों में ग्रमाधारण उन्ति की है। उनमें से श्रनेक प्रसिद्ध दार्शनिक, ख्यातनामा लेखक, श्रेष्ठ किव तथा संस्कृत और प्राकृत के प्रकाण्ड उदमट विद्वान है।

श्राचार्यश्री की स्मृति-शक्ति तो अद्भृत एवं सहजग्राही है ही; परन्तु उनकी जिह्ना पर साक्षात् सरस्वती के रूप में जो बीम हजार श्लोक विद्यमान हैं, वे उठते-बैठने निरन्तर उनके श्रम-साध्य पारायण का ही परिणाम है। उनमें जो कवित्व भीर कुशल बक्तृत्व प्रकट हुआ है, उसके पीछे श्रम की कितनी शिंग छिपी है, इसका अनुमान सहज ही नहीं लगाया जा सकता। ब्रह्म सृहनं से लेकर रात्रि के दस बजे तक का उनका समस्त समय जानार्जन और जान-दान में ही बीतता है। भगवान् महाबीर के 'एक क्षण को भी ब्यथं न गैंबाओं के आदर्श को उन्होंने साक्षात् अपने जीवन में उतारा है। स्वयं की जिन्ता न कर सदा दूसरों की विन्ता की है। वे प्रायः कहा करने हैं कि 'दूसरों को समय देना अपने को समय देने के समान है। मैं अपने को दूसरों से भिन्न नहीं मानता।' जिस पृथ्व की समय और श्रम के प्रति यह भावना हो और जो स्वयं जान का गोम्ख होकर जान की जाह्मथी बहा रहा हो; उसने अधिक 'चरैबेति' को सार्थक करने बाला कौन है ? उपदेष्टा इन्द्र को कभी स्वयन भी नहीं हुआ होगा कि किसी काल में एक ऐसा महापुरुष इस पृथ्वी पर जन्म लेगा जो उसका मूर्तिसन्त उपदेश होगा।

#### सर्वतः ग्रग्रणी सम्प्रदाय

श्राचार्यश्री तुलसी के तेरापंथ का श्राचार्यत्व ग्रहण करने से पूर्व, श्रिधकांश साध्वयाँ बहुत श्रिधक शिक्षित नहीं थीं। यह श्राचार्यश्री तुलसी ही थे, जिन्होंने उनके अन्दर जान का दीप जगाया। जिस समय उन्होंने साध्वयों का विद्यारम्भ किया था तो केवल तेरह शिष्याएं थीं; परन्तु श्राज उनकी संख्या दो सौ से श्रिधक है श्रीर वे विभिन्न विषयों का अध्ययन वःर रही है। इतना ही नहीं, उन्होंने शिक्षा-पद्धति में भी संशोधन किये। पाठचकम को उन्होंने तीन भागों में बाँट दिया—प्रथम में उन्होंने दर्शन, साहित्य, व्याकरण, शब्दकोष, इतिहास, फलित ज्योतिष तथा विभिन्न कला एवं भाषाओं के ज्ञान की व्यवस्था की; दूसरे में जैन धर्म की शिक्षा की तथा तीसरे में धर्म-प्रन्थों के ज्ञान की। साधु-साध्वयों के बौढिक एवं मानसिक स्तर को उन्नन करने के उद्देश्य से प्रबन्ध-लेखन, कविता-पाठ श्रीर धार्मिक एवं दार्शनिक वाद-विवादों की व्यवस्था भी की। ग्यारह वर्ष तफ वे निरन्तर ज्ञानार्जन श्रीर ज्ञान-दान की पवित्र प्रवृत्तियों में संजग्न रहे। इस श्रद्भत श्रम का ही यह फल है कि नेरापंथ श्राज भारत के सर्वतः अग्रणी सम्प्रदायों मे से एक है।

ज्ञान के क्षेत्र में श्राचार्यश्री तुलसी ने जो महान् कार्य किया है, उसका एक महत्त्वपूर्ण ग्रंग श्रीर भी है ग्रीर वह है—जैन धर्म-ग्रन्थों —ग्रागमों पर उनका अनुसन्धान। ये श्रागम भगवान् महावीर के उपदेशों का संग्रह हैं। वे ज्ञान के भण्डार हैं; परन्तु भगवान् महावीर के निर्वाण के उत्तरकालीन पच्चीस सौ वर्ष के समय-प्रवाह ने इन श्रागमों में श्रनेक स्थलों पर दुर्वोध्यता उत्पन्न कर दी है। श्राचार्यश्री तुलसी के पथ-प्रदर्शन में श्रव इन श्रागमों का हिन्दी-अनुवाद तथा शब्दकोप तैयार किया जा रहा है। जिस दिन यह कार्य पूर्णतः सम्पन्न हो जायेगा, उस दिन संसार यह जान सकेगा कि तपःपूत इस व्यक्ति में श्रम के प्रति कैसी श्रदूट भिवत है! यह कहना श्रतिशयोक्तिपूर्ण न होगा कि श्रपनी ज्ञान-साधना मे श्राचार्यश्री तुलसी ने यह सिद्ध कर दिया है कि वे श्रम के ही दूसरे रूप हैं।

प्राचार्यश्री तुलसी की दिनचर्या भी प्रविराम श्रम का एक उदाहरण है। वे बहा मुहूर्त में ही शय्या छोड़ देते हैं। एक-दो चण्टे तक प्रात्म-चिन्तन ग्रीर स्वाध्याय के अनन्तर प्रतिक्रमण—सब नियमों ग्रीर प्रतिक्षाग्रों का पारायण करते हैं। हलासन, सर्वांगासन, पद्मासन उनका प्रिय एवं नियमित व्यायाम है। इसके पश्चात एक घण्टे से अधिक का समय वे जनता को उपदेश तथा उनकी जिज्ञासाग्रों को सान्त करने में व्यतीत करते हैं। भोजनानन्तर विश्राम-काल में हल्का-फुल्का साहित्य पढ़ते हैं। उसके बाद दो से ढाई घण्टे तक का उनका समय साधुग्रों ग्रीर साध्वयों के प्रध्यापन में बीतता है। विभिन्न विषयों पर विभिन्न लोगों से बार्ता के बाद वे दी घण्टे तक मौन घारण करते हैं ग्रीर इस काल में वे पुस्तक-लेखन और प्रध्ययन करते हैं। सूर्यास्त से पूर्व ही रात्रि का भोजन प्रहण करने के ग्रनन्तर प्रतिक्रमण ग्रीर प्रार्थना का कार्यक्रम रहता है। एक घण्टे तक पुनः स्वाध्याय ग्रथवा ज्ञान-गोष्ठी के बाद ग्राचार्यश्री शय्या ग्रहण कर लेते हैं। उनका यह कार्य-क्रम घड़ी की सुई की तरह चलता है ग्रीर उसमें कभी व्याघात नहीं होता। जब तक किसी व्यक्ति में श्रम ग्रीर वह भी परार्थ के निएश्रम करने की हार्दिक भावना न हो, तब तक उक्त प्रकार का ग्रंवित जीवन ग्रसम्भव है।

भावार्यश्री के श्रम का दूसरा रूप है—जन-कल्याण। वैसे तो जो जानार्जन और ज्ञान-दान वे करते हैं, वह सब ही जन-कल्याण के उद्देश्य से हैं; किन्तु मानव को अपने हिरण्यसय पाश में बॉधने वाले पापों से मुक्ति के लिए उन्होंने जो देशव्यापी यात्राएं की हैं और अपने शिष्यों से कराई हैं, उनका जन-कल्याण के क्षेत्र में एक विशिष्ट महस्व है। इन यात्राओं से आज से पच्चीस सौ वर्ष पूर्व भगयान् बुद्ध के शिष्यों हारा की गई वे यात्राएं स्मरण हो आती हैं जो उन्होंने मानवमात्र के कल्याण के लिए की थीं। जिस प्रकार भगवान् बुद्ध ने इस यात्रारम्भ से पूर्व अपने साठ शिष्यों को पंचशील का सन्देश प्रसारित करने का आदेश दिया था, ठीक उसी प्रकार आचार्यश्री तुलसी ने आज से वारह वर्ष पूर्व अपने छः सौ पचाम शिष्यों को सम्बोधित करते हुए कहा था—"माधुओं और साध्यियों! तुम्हारे जीवन आत्म-मृक्ति और जन-कल्याण के लिए समर्पित है। समीप और मुदूर-स्थित गाँवों, कस्बों और शहरों को गँदन जाओ। जनता में नैतिक पुनरुत्थान का मन्देश पहुँचाओं।" तेरापंथ का जो व्यावहारिक रूप हैं, उसके तीन अंग है—१ पिवत्र एवं साधुतापूर्ण आचरण, २ भ्रष्टाचार से मुक्त व्यवहार और ३ सत्य में निष्ठा एवं अहिसक अवृत्ति। आचार्यश्री तुलसी ने अपने शिष्यों को जो उक्त आदेश दिया था, उसका उद्देश्य तेरापंथ के इसी हप की जनता-जनादन के जीवन में भवतारणा थी।

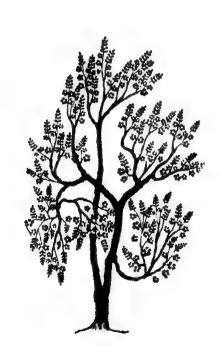
### म्रणुव्रत चक्र प्रवर्तन

वर्तमान में भारतीय समाज की जो दशा है, वह किसी से छिपी नहीं है। प्रानीन ब्राध्यात्मिकता का स्थान नितान्त भौतिकता ने ले लिया है। अन्तर्मृत होने के स्थान पर व्यक्ति सर्वथा विहर्मृख हो गया है। विलासिता संयम पर आरूढ़ हो गई है और सर्वत्र भोग और अप्टाचार का ही वातावरण दृष्टिगोचर होता है। यह स्थिति किसी भी समाज के लिए बड़ी दयनीय है। इस दुरवस्था से मुक्ति के लिए ही ब्राचार्यश्री ने जनता में अणुवत चक्र प्रवर्तन का निरुच्य किया। यह अणुवत ही वस्तुत: तेरापंथ का व्यावहारिक रूप है। इस 'अणुवत' शब्द में अणु का अर्थ है— रावसे छोटा और व्रत का अर्थ है— वचन— दृढ़ संकल्प। जब व्यक्ति इस वर्त को यहण करेगा तो उससे यही अभिप्रेत होगा कि उसने अन्तिम मंजिल पर पहुँचने के लिए पहली सीढ़ी पर पर रख दिया है। इस अणुवत के विभिन्न रूप हो सकते हैं और ये सब रूप पूर्णता के ही शारम्भक बिन्दु हैं। श्राचार्यश्री तुलसी ने इसी अणुवत को देश के सुदूर भागों तक पहुँचाने के लिए अपने शिष्यों को आज मे बारह वर्ष पूर्व आदेश दिया था। तब में लेकर अब तक ये शिष्य शिमला से मद्रास तथा बंगाल से कच्छ तक सैकड़ों गाँवों और शहरों में पैदल पहुँचकर अणुवत की दुन्दुभी बजा चुके हैं। इस अविध में आचार्यश्री ने भी प्रणुवत के सन्देश को जन-जन तक पहुँचाने के लिए जो अत्यन्त आयासकर एवं दीर्घ यात्राएं की है, वे उनके सूर्य की तरह अविराम अम की जानदार एवं अविस्मरणीय प्रतीक हैं। राजस्थान के छापर गाँव से उन्होंने प्रतनी अणुवत-यात्रा का शारम्भ किया। उसके बाद वे जयपुर बाये और बहाँ से राजधानी दिल्ली। दिल्ली से उन्होंने प्रतनी अणुवत-यात्रा को शारम्भ किया। उसके बाद वे जयपुर बाये कीर अम्बाला की यात्रा की। इसके बाद राजस्थान होते हुए वे बम्बई, पूना और हैदराबाद के समीप तक गयै। वहाँ से लौटकर उन्होंने मध्यभारत के विभिन्त स्थानों तथा राजस्थान की पुन: यात्रा की। इसी प्रकार की विभिन्त स्थानों तथा राजस्थान की पुन: यात्रा की। इसी प्रकार

उन्होंने उत्तरप्रदेश, बिहार धीर बंगाल के लम्बे यात्रा-पथ तय किये।

#### भारत के ग्राध्यात्मिक स्रोत

प्राचारंश्री तुलसी की ये यात्राएं चरित्र-निर्माण के क्षेत्र में प्रपना अभूतपूर्व स्थान रखती हैं। उनकी तुलना प्रनितिकता के विरुद्ध निरन्तर जारी धर्मयुद्धों से की जा सकती है। अपने शिष्यों समेत स्वयं यह महान् एवं प्रविराम श्रम करके श्राचारंश्री तुलसी ने समस्त देश में शान्ति एवं कत्याण का एक ऐसा पवन प्रवाहित किया है, जिसकी शीतलता जन-मानस को स्पर्श कर रही है और जो श्रपने में सागर सागरोपमः की तरह अनुपम है। जो श्राष्यात्मिक सन्तोष और धात्म-विश्वास की भावना इन यात्राओं के परिणामस्वरूप जनता को प्राप्त हुई, उसने समाज को चरित्र के चार, किन्तु कठिन पथ पर चलने के लिए नवीन प्रेरणा प्रदान की है। घव तक लगभग एक करोड़ व्यक्ति श्रणुवत-धान्दोलन के सम्पर्क में धा चुके हैं और एक लाख से श्रिक व्यक्तियों ने उससे प्रभावित होकर बुरी श्रादतों का परित्याग कर दिया है। श्राचार्यश्री तुलसी सूर्य की तरह ही न केवल दिव्यांग हैं, श्रपितु सूर्य की तरह ही उनकी समस्त दिनचर्या है। वे भारत के श्राध्यात्मिक स्रोत हैं। उन्होंने श्रपने चैतन्य काल से घव तक जो कार्य किया है, उस सब पर उनके श्रान्तिहीन श्रम की छाप विश्वमान है। वह जनता-जनार्दन का एक ऐसा इतिहास है जिसकी तुलना धर्म-संस्थानों के इतिहास से की जा सकती है। इस सकाम संसार में वह निष्काम दीप की तरह जल रहा है। जीवन का एक पल भी उनका ऐसा नहीं है, जिसमें उन्होंने श्रपनी ज्योति का दान दूसरों को न दिया हो। वह 'चरैंवेति' की तरह एक ऐसी साक्षात् श्रतिमा है जिसके सम्मुख सिर सहज ही श्रद्धा से नत हो जाता है।



# नवोत्थान के सन्देश-वाहक

#### श्री समरनाथ विद्यालंकार शिक्षामंत्री, पंत्राब सरकार

प्राचार्य तुलसी का प्रणुद्रत-प्रान्दोलन बस्तुतः देश में नैतिकता और निमन्त्रण के प्रचार का ग्रान्दोलन है।
महात्मा गांधी ने प्रपनी पचास वर्ष की कठोर तपस्या द्वारा देश के नैतिक स्तर को ऊँचा उठाया, जिससे हम खून का एक
कतरा बहाये बिना ही प्राजाद हो गये। इतिहास में ग्रहिंसा और नैतिकता की इतनी बड़ी विजय इतने बड़े विशाल राजनैतिक क्षेत्र में प्रथम बार ही प्राप्त हुई। ग्राज जब मानव समाज को संगठित तथा व्यवस्थित करने के लिए इतने प्रकार
सोचे जा रहे हैं और मानव स्वभाव तथा भावनाधों के विकारों को बाह्य भौतिक उपायों द्वारा शान्त करने के नये-नये
प्रकार उपस्थित किये जा रहे हैं; इस बान की नितान्त भावस्थकता है कि नैतिक तथा ग्राध्यात्मिक उपायों की यथार्थता
तथा श्रेष्ठता व्यावहारिक रूप से सिद्ध की जाये। भारतीय विचारधारा के ग्रनुसार इतिहास में ग्रनेक बार क्षात्र मावनाधों
पर बहात्व की श्रेष्ठता व्यावहारिक रूप से सिद्ध की जा चुकी है।

महात्मा गांधी के पश्चात् श्राचार्य विनोबा श्रीर श्राचार्यश्री तुलमी ने नैतिकता के सन्देशवाहक का कठिन भार श्रपने कन्धों पर लिया है। श्रीर हमें उनका श्रनुसरण करना चाहिए।

ब्राचार्यश्री तुलसी की गणना उन महान् धर्म-नायकों भीर संतों में है, जो केवल धर्मोपदेश देने ही में अपने कर्नव्य की इतिश्री नहीं करते, श्रिपतु जन-कल्याण की भावना से स्रोत-प्रोत होकर अपने समस्त किया-कलाप को जनसेवा की साधना में सम्पित कर देते हैं। हमारे देश में बहुत थोड़े ऐसे धर्म-गुरु हैं जो स्वयं विद्वान् तथा ज्ञानवान् होते हुए भी धपनी विद्वता तथा पाण्डित्य पर सन्तुष्ट होकर नहीं बैठे रहते, अपितु लोकषणाधों से निलिप्त रह कर ही जन साधारण के साथ उठते-बैठते, चलते-फिरते हैं भीर इस प्रकार भपने सदाचरणों के माध्यम से सामान्य जनों का मार्ग-दर्शन करने हैं।

श्राचार्यश्री तुलसी ने जैन मुनियों और धेरो के परम्परागत महान् दर्शन शास्त्र को जीवन दर्शन की भाषा में श्रम्-दित किया और उसे 'श्रणुद्रत-श्रान्दोलन' का रूप दिया। श्राचीन दर्शन नवोत्थान का सन्देश लेकर भारतीय जन-साधारण को नव युग की प्रेरणा देने लगा।

समाज व्यवस्था के बिना क्षण-भर भी जीवित नहीं रह सकता। विश्वांखल व्यक्तियों को परस्पर जोड़ कर समाज के रूप में सुसंगठित करने वाली कड़ियाँ कानून की तलवारों से गढ़ी नहीं जा सकती। मानव को मानव से जोड़ने वाली कड़ियाँ मावनात्मक होती हैं। लाठी से हाँके जाने वाले मेड़ों के रेवड़ की मांति इन्सान भी मजमे के रूप में इकट्ठे भले ही किये जा सकते हैं, परन्तु जब तक उनकी हृदयतन्त्री के तार सम्मिलित होकर एक सुर में बज नहीं उठते, तब तक समाज नहीं बनता।

में जानता हूँ, माचार्यश्री तुलसी के संवेदनशील व्यक्तित्व तथा नैष्ठिक नैतिकतापूर्ण सदाचरण ने प्रभावित होकर भ्रमेक बतर दूनियादार भौतिक सफलता के उपासकों ने नैतिकतापूर्ण जीवन का प्रसाद पाया है ।

आचार्यप्रवर का सार्वजनिक अभिनन्दन किया जा रहा है, इस अवसर पर शुद्ध प्रसूनों की यह तुच्छ भेंट उनके चरणों में समर्पित करते हुए मैं अपने-आपको चन्य मानता हूँ।

# कुराल विद्यार्थी

### मुनिश्री मीठालालजी

वस्तुतः कुशल विद्यार्थी ही कुशल ग्रध्यापक होता है और कुशल ग्रध्यापक ही औरों को प्रशिक्षित कर सकता है। जो बहुत ग्रभिक्र होने पर भी जिज्ञामु भाव को संजोये रन्ने ग्रीर सत्य के श्रनुसन्धान में 'मम-तव' के भेद में न उलभे वही व्यक्ति कुशल विद्यार्थी एवं ग्रध्यापक होता है। विद्यालय विशेष से उसका लाग-लगाव नहीं होता। वह जहाँ होता है, वही उसके लिए विद्यालय बन जाता है भीर निरवकाश उसका कार्य मुचारु रूप से चालू रहता है। मेरा यह कहना सम्भवतः लोगों को ग्रचरज में डालेगा कि भ्राचार्यश्री तुलसी एक विद्यार्थी हैं।

मैं क्या कहूँ, वे स्त्रयं अपने को ऐसा मानते हैं और ऐसा बने रहने में ही उन्हें अपना और संसार का भावी विकास-दर्शन होता है। वे बहुत बार दूसरों को परामर्श भी यही देते हैं कि साहित्य की तह तक पहुँचने के लिए सदा प्रत्येक व्यक्ति को वयोवृद्ध और ज्ञान-वृद्ध हो जाने पर विद्यार्थी ही बना रहना चाहिए। ज्ञान की जब इयत्ता नहीं तब थोड़ा-सा ज्ञान पाकर अपने को इयत्ता-प्राप्त या सत्य के अन्तिम छोर तक पहुँचा मान लेना निरा प्रज्ञान है। वैचारिक दुराग्रह भी इसी स्थिति में पनपता है और बही व्यक्ति को सत्य से बहुत परे ढकेल देता है। सत्य का ग्राग्रह ग्रवच्य उपा-देय है, किन्तु सत्य वही नहीं है जो व्यक्ति ने जाना, माना या अपना लिया। तो सत्य को पाने के लिए प्रत्येक व्यक्ति को ग्रथ से इति तक विद्यार्थी बने रहना भावव्यक ही नहीं, ग्रनिवार्य है।

#### सत्य को उपलब्ध करने की कुंजी

विद्यार्थी दुराग्रही या स्वमताग्रही नहीं होता और जो दुराग्रही या स्वमताग्रही होता है, वह विद्यार्थी भी नहीं होता। विद्यार्थी में निकेवल सत्य का आग्रह होता है। वह अपने अभिमत को ही सत्य नहीं, किन्तु सत्य को ही अपना श्रमिमत मानता है। वह किसी भी अभिमत को अपना तब तक ही मानता है, जब तक उसे वह सत्य लगता है। असत्य लगने के पश्चात् उसके परित्याग में उसे तिनक भी संकोच नहीं होता। आचार्यश्री ने एक चिन्तन गोष्ठी में अपना चिन्तन नवनीत प्रस्तुत करते हुए कहा था—'हमें जो समीचीन लगे उसे निःसंकोच भाव से आत्मसात् करना है। हम अनुकरण प्रिय नहीं, सत्य-प्रिय और सत्य-पवेषक हैं। सत्य पर आधारित बड़े ने-बड़ा परिवर्तन हमारे लिए अपेक्षणीय है और असन्य पर आधारित बड़े ने-बड़ा परिवर्तन हमारे लिए अपेक्षणीय है और असन्य पर आधारित छोटे-से-छोटा परिवर्तन हमारे लिए उपेक्षणीय है, हेय है। कोरी अनुकरण-प्रियता में सत्य ओक्षल रहता है। नवीन चिन्तन के लिए अपने मस्तिष्क को सदा उन्मुक्त रखना चाहिए। किसी भी समय सत्य का कोई पहलू स्पष्ट हो सकता है जो अतीत में हमारे लिये अस्पष्ट रहा हो। चिन्तन का द्वार बन्द करने में विकास की इतिश्री हो जाती है।' यह है सत्य को उपलब्ध करने की आचार्यश्री की कंजी।

श्राचार्यश्री प्राचीन परम्परा को श्रावष्यक और उचित महत्त्व प्रदान करते हैं, किन्तु प्राचीनता के साथ सत्य का गठ-बन्धन है और श्रवचिनता के साथ नहीं, ऐसा उन्हें स्वीकार्य नहीं।

वे सर्वथा न प्राचीनता के समुत्थापक हैं श्रीर न सर्वथा अर्वाचीनता के सम्पोषक। वे प्राचीनता धौर धर्वा-चीनता दोनों को तुल्य महत्त्व देते हैं, इक्तें कि उसमें सचाई और औचित्य हो। सच्चाई से रिक्त न प्राचीनता उनके लिए उपादेय है और न अर्वाचीनता। सच्चाई प्राचीनता में भी हो सकती है भीर अर्वाचीनता में भी। प्राचीनता मात्र हेय नहीं और अर्वाचीनता मात्र उपादेय नहीं। दोनों में हेय अंक भी है और उपादेय अंकभी। ये हैं उनके एक और एक दो जैसे स्पष्ट विचार । प्राचीनता के हेय अंश को छोडने में और अर्वाचीनता के उपादेय अंश को स्वीकार करने में वे कभी भी नहीं सकुचाते । यह उनकी स्पष्ट और मुलभूत रीति है। यही तो उनकी कुशल विद्यार्थिता है। विद्यार्थी पारखी होता है। उसका लगाव सत्य के सिवाय दूसरे के साथ हो भी कैसे सकता है !

### तटस्य वृष्टि

विद्यार्थी की दृष्टि तटस्य होती है और उसके खालोक में वह सबको पढ़ता है। खाचार्यश्री ने तटस्य दृष्टि के आलोक में भारतीय दर्शनों का अध्ययन किया। दर्शनों में जहाँ अतटस्य दृष्टिवाले लोगों को पूर्व-पश्चिम का विभेद दीखता है, वहाँ भ्राचार्यश्री को अभेद अधिक दीखा। वे कहते हैं - "सभी श्रास्तिक दर्शनों के मूलभूत उद्देश्य में साम्य है. उपासना या साधना पद्धति में थोडा-बहुत विभेद अवश्य है। सभी दर्शनों में हमें एक्य के बीज अधिक उपलब्ध होंगे और भनैक्य के कम । थोडे से अनैक्य के भाधार पर लडना, भगडना और राग-द्वेष को उत्तेजना देना धर्म के नाम पर श्रवर्म का सम्पोषण करना है। उचित यह है कि हम अनैक्य के प्रति, सहिष्णु बनें भौर एक स्वर से एक्य के प्रसार में दत्तवित्त बने।

यह सही है कि तटस्य दिंद रखे बिना किसी भी दर्शन के हृदय को छम्रा नहीं जा सकता। किसी भी दर्शन के प्रति गलत धारणा को लेकर उसे पढना उसके प्रति अन्याय करना है। ग्रतः दर्शन के विद्यार्थी के लिए तटस्य दिष्ट ही स्पृहणीय है, जिसका कि म्राचार्यश्री में स्पष्ट प्रतिभास होता है।

ग्राचार्यश्री समन्वय की भाषा में बोलते हैं, समन्वय की दृष्टि से सोचते हैं और लिखते हैं। समन्वयमुलक वित ने ही उन्हें जनप्रिय बनाया है। वे जो बात कहते है, वह सीधी लोगों के गले उतर जाती है। उनकी वाणी में स्रोज, हृदय में पवित्रता और साधना में उत्कर्ष है। उत्साह उनका अनुचर है। अत्यधिक कार्य व्यस्तता भी उनके सतत प्रसन्न स्वभाव को खिन्त बनाने में सर्वथा ग्रक्षम्य ही रहती है। जन-जन के जीवन को नैतिकता से प्रशिक्षित करना ही उनका व्यसन है। उनका जीवन एक प्रेरक जीवन है, इसलिए वे नैसर्गिक कुशल अध्यापक हैं। उनके जीवन से लोगों को जो विश्व-बन्धता भौर नैतिकता की प्रवल प्रेरणाएं उपलब्ध हुई है, वे सतन श्रविरमरणीय है।

भारत के कोने-कोने से समायोज्यमान धवल समारोह आचार्यथी की अविस्मरणीय सेवाओं की स्मित मात्र है। इस प्रवसर पर मैं भी ग्रपने को ग्राचार्यथी के ग्रभिनन्दन से बंचित रख़ें, यह मुक्ते ग्रभीष्ट नहीं।



# महान् धर्माचार्यों की परम्परा में

श्री पी० एस० कुमारस्वामी भूतपूर्व राज्यपाल, उडीसा

जब मैं यह सोचता हूँ कि मानव जन्म कितना दुर्लभ है और वह भी भारत जैसी पुण्य भूमि में, तो मेरा मस्तिष्क महान् विचारों से भर उठता है। यह हमारे देश का सौभाग्य है कि समय-समय पर इसमें महान् विवेकी पुरुषों ने जन्म तिया है और उन्होंने हमारे धमं पर चढ़े हुए मैल को घोया है तथा लोगों को सही मार्ग दिखाया है। वास्तव में ऐसे पुरुषों ने देश की गीति को आलोकित किया है और उनके विचारों ने सभी के हृदय को प्रभावित किया है। यह भव्य परम्परा वैदिक युग से प्रारम्भ हुई। जैन और बौद्ध धमंं के संस्थापकों ने भी हमको ज्ञान का प्रकाश प्रदान किया है भीर उनके बाद भी ऐसे सुप्रसिद्ध महापुरुष हुए हैं, जिन्होंने इस देश की आध्यात्मिक शक्ति में वृद्धि की है। आज भारत के लिए यह समभा जाता है कि वह मानव-कल्याण के लिए अपना नैतिक योग दान देने में समर्थ है तो इसका कारण यही है कि भूत-काल में संतों और ऋषि-मनियों ने भारत के लोगों को आध्यात्मिक शक्ति सम्पन्न बनाया था।

इस परस्परागत ज्ञान और विवेक का आधार यह विचार है कि सब् विचार, सब्जान और सबाचार से सुख की प्राप्ति होती है। मुक्ते यह जानकर बड़ी प्रसन्तता हुई है कि यही शाश्वत और प्रेरक सन्देश अणुव्रत-आन्दोलन का भी मूलाधार है जिससे जीवन की शुद्धि होती है और दैनिक मानव-व्यवहार में नैतिकता और सत्य का समावेश होता है। वर्तमान समय में जब मानव मन भौतिकवाद के जाल में जस रहा है, हमें अपना पथ आलोकित करने के लिए एक व्याव-हारिक और प्रेरक धर्म की आवश्यकता है। आचार्मश्री तुलसी उपयुक्त अवसर पर अवतरित हुए हैं। वे हमारे महान् धर्माचार्यों की परस्परा में है। वे हमें सद्विचार और सदाचार का मार्ग दिखा रहे है।

बाज जगत की क्या अवस्था है, यह किसी से छुपा हुआ नहीं है। हमारे देश ने भी यदि वर्तमान अमंस्कारी विकारभाराओं को अपनाया होता तो वह बुरे मार्ग पर चल पड़ता। किन्तु सौभाग्य से महात्मा गांधी ने हमारी समाजनीति को अभावित किया। उन्होंने हमारी राजनीति को आध्यात्मिक रूप देने का प्रयास किया और हमें गहित भौतिकवाद से बचा लिया। मुक्ते विश्वास है कि अणुव्रत-आस्दोलन भी अहिंसा, सत्य, स्वावलस्वन और स्वार्थ-त्याग पर बल दे कर राष्ट्र का कल्याण सिद्ध करने के लिए कठोर परिश्रम करेगा। ये सिद्धान्त किसी एक धर्म की बपौती नहीं हैं, मभी धर्म उनको मान्यता देते हैं। यह हो सकता है कि कोई धर्म उनके पालन पर न्यूनाधिक बल देता हो।

मुक्ते यह ज्ञात हुआ है कि आवार्यश्री तुलसी जैन श्वेताम्बर तेरापंथ सम्प्रदाय के नवम आवार्य हैं। इससे मुक्ते रुयाल आता है कि जैन धर्म का कितना व्यापक प्रचार रहा है। उसके प्राचीन और उदात्त सिद्धान्तों ने अकबर जैसे महा-पृश्वों को और प्राधुनिक काल में महात्मा गांधी को भी प्रेरणा दी है। जैन जीवन-दृष्टि राष्ट्रीय दृष्टिकोण का श्रंग ही बन गई है। श्रतः यह कोई शाष्ट्रवर्ष की बात नहीं है कि जैन साहित्य और उसकी कलात्मक परम्परा भारतीय संस्कृति के समकक्ष बन गई है।

यह मैं इसलिए कहता हूँ कि दक्षिण भारत में भी जैन ग्रन्थकारों ने तमिल साहित्य को समृद्ध बनाया है। इससे प्रकट होता है कि उन्होंने इस क्षेत्र की भाषा को अपने धर्म की महत्ता और सन्देश का माध्यम बनाने में कोई हानि नही समभी। कला और नैतिकता के क्षेत्र में जैनों की उपलब्धियाँ और जीवन के इस क्षेत्र में जैन समाज की उल्लेखनीय सफलताएं महत्त्वपूर्ण रही हैं। यह भी सर्वविदित है कि गांधीवाद पर जैन धर्म का कितना भारी प्रभाव पडा था।

मैं श्राशा करता हूँ कि श्राचार्यश्री तुलसी उत्तम श्रीर व्यवहारिक नागरिकता का विकास करने का श्रपना पावन कार्य निरन्तर करते रहेंगे श्रीर सभी सत्य-कोधकों के लिए समान मंच उपलब्ध करेगे । मेरी कामना है कि वह लोगों को सही मार्ग बताएं श्रीर उनमें सरल श्रीर साहसी जीवन एवं सदाचार की नई चेतना उत्पन्न करके राष्ट्र का नैतिक कल्याण सिद्ध करने में यशस्वी हों।

# अभिनन्द्न गीत

श्री मतवाला मंगल

हे ! युग-स्रष्टा, युग-द्रष्टा, युग के नृतन पंथ-प्रवर्तक हे ! विश्व-शान्ति के अग्रदूत, हे, नृतन विश्व-प्रदर्शक षट्-शत करोड़ भयभीत हस्त भौन्तिक प्रवाह में पड़े पस्त तव ग्रभय-पंथ लखते प्रशस्त कर रहे तुम्हारा वन्दन, हे, लोक-वन्छ! तव वन्दन तव कोटि-कोटि भ्रभिनन्दन। तुम म्रति उदार, उन्नत, विशाल, जाज्वल्यमान शुभदायक युग के चिन्तन-मन्थन-दर्शन के तुम प्रकाण्ड विधायक उद्भव तुम से लख झणु-प्रकीर्ण हो रहा रुद्ध तिमिरावतीर्ण भर रहे पत्र सब जीर्ण-शीर्ण बन रहा इन्द्रवन मरुवन, हे लोक-दीप ! तव वन्दन तव कोटि-कोटि अभिनन्दन। भीतिक सुष्पित में लीन लोक-नेत्रों के तुम उन्मेषक अध्यातम-प्रात के नवल सूर्य, अणुत्रत के तुम अन्वेषक तुमने उच्चारा दिव्य मन्त्र हर व्यक्ति धरा का है स्वतन्त्र है मैत्रि-भाव सुशस्त्र-ग्रस्त्र है ताज्य ग्राज रण-ग्रर्चन, हे लोक-देव तव ग्रर्चन



तव कोटि-कोटि ग्रभिनन्दन।

# तुलसी आया ले 'चरैवेति' का नव सन्देश

श्री कीर्तिनारायण मिश्र, एम० ए०

फैला जब चारों मोर तिमिर का भ्रन्थ जाल भ्रन्याय-भ्रनय-हिंसा का नित दंशन कराल, शोषण-मर्दन की पीड़ा से जब त्रस्त देश तुलसी भ्राया ले 'चरैवेति' का नव सन्देश।

> इसकी वाणी में नवयुग का नूतन प्रकाश संस्कृति-दर्शन का तेज म्रमित जीवन-विकास, म्रादर्श-समुज्ज्वल शान्त-स्निग्ध-शुचि-सौम्य-रूप गढ़ता विकृतियों में मानव-म्राकृति म्रनूप।

यह तुम्हें न कोई नयी बात कहने जाता या तर्क-वितर्कों में न तुम्हें यह उलभाता; जो भूल चुके तुम मार्ग उसे फिर अपनाश्रो सात्विक जीवन के तत्त्वों से परिचय पाश्रो।

> संयमित बनालो भाज कि अपने जीवन को परिग्रह की भोर न ले जाओ अपने मन को, संकल्प-वरण कर जीवन को पावन कर लो श्रन्तर ज्योतित करने का व्रत धारण कर लो।

तुम भूल चुके उस तीर्थंकर का शुभ सन्देश जिसकी किरणों से ज्योतित होता था स्वदेश, यह भ्राज उसी का गान सुनाने भ्राया है जागो-जागो यह तुम्हें जगाने श्राया है।

> तुलसी का 'म्रणुवत' जागृति का म्रभिनव प्रतीक मध्यात्मवाद का परिपोषक, सद्धर्म-लीक; दिग्भ्रान्तों का वह करता है पथ-निर्देशन सभ्यता-संस्कृति के तत्त्वों का मनुशीलन।

यह अनाचार की आज रहा दीवार तोड़ जागरण के लिए नीति-भीति को रहा जोड़; अज्ञान तिमिर को चीर, ज्ञान का भर प्रकाश कर रहा आज वह मानव का अन्तिविकास।

> करता न कभी श्रामर्थ-कलह की एक बात या धर्मभेद की इसके सम्मुख क्या विसात? बस एक लक्ष्य इसका—'जीवन मंगलमय हो श्रन्याय-श्रनय श्री' कल्मबका क्षण में लय हो।

हो गये ग्राज तुम हो ग्रातिशय ग्राचरण-भ्रष्ट कर रहे ग्राज तुम स्वयं ग्रात्म-बल को विनष्ट; ग्रपनी ग्रांखें खोलो,यदि तुम कुछ सको देख तो देखो ग्रपने धर्मदूत की ज्योति-रेख।

> व्रत करते हैं कुछ लोग स्वार्थ की सिद्धि-हेनु व्रत करते हैं कुछ लोग, बनाने स्वर्ग-सेतु; लेकिन यह 'ग्रणुव्रत' कैसा जिसमें नहीं स्वार्थ निष्काम कर्म यह है नैतिकता प्रचारार्थ।



# भगवान् महावीर और बुद्ध की परम्परा में

### मुनिधी मुखलालजी

भगवान् महावीर और बुद्ध का नाम उन श्रात्यल्प व्यक्तियों में से है, जिन्होंने भारतीय संस्कृति को एक नई वेतना दी है। वैसे रत्नगर्भा वसुन्धरा पर न जाने कितने महावीर और बुद्ध उतरे होंगे, पर उनकी प्रपनी यह एक विशेषता रही है कि अपने पीछे वे एक पुष्ट-परम्परा-प्रवाह को छोड़ गये हैं। निश्चय ही परम्परा में अविरल चैतन्य नहीं रहता। कभी-कभी उसे मन्दता का प्रकोप भी सहना पड़ता है, पर सततवाहिता की यह एक सहज उपलब्धि है कि उसमें समय-समय पर कुछ ऐसे उन्मेष आते रहते हैं जो उसकी अतीत की मन्दता को भी कुछ होने से बचा देते है। यहीं कारण है कि ढाई हजार वर्षों के बाद भी हम महावीर और बुद्ध को भूल नहीं पाये हैं। श्रमण-संस्कृति के क्षितिज पर आज एक ऐसे तेज-पुंज का उदय हो रहा है, जो भगवान् महाबीर और बुद्ध को एक बार पुनः अभिव्यक्ति देने का प्रयास कर रहा है।

हमारा संसार प्रतिध्वनियों का एक स्रोत है। युग-युग में यहाँ सदा कोई-न-कोई महामहिम मानव प्रतिध्वनित होता ही रहता है। पर भारत की प्रतिध्वनि-पंक्ति में भगवान् महावीर धौर बुद्ध का विशेष प्रभाव रहा है। उन्होंने न जाने कितने महापुरुषों को पैदा कर धध्यात्म के अंकुर को प्रकाशसिक्त किया है। निश्चय ही भगवान् महावीर और बुद्ध भी अपने आपमें किसी ध्वनि की ही प्रतिध्वनि रहे होंगे। पर उनकी प्रतिध्वनि अपने आपमें इतनी दूरगामी थी कि वर्तमान में भी हम उसे आचार्यश्री तुलसी के रूप में सुन रहे हैं।

महाबीर श्रीर बुद्ध श्राज हमारे बीच साहित्य के रूप में उपस्थित हैं। यद्यपि इतिहास की यह दुवंलता है कि वह सब स्थितियों को अपने में प्रतिबिध्वित नहीं कर पाता। पर इसके बाद भी श्राज उनके विषय में जो कुछ, श्रयशेष रह गया है, वह उनके महत्त्व को अच्छी प्रकार से व्यक्त कर देता है। कालक्रम से उन पर बहुत से श्रावरण भी चढाये गये हैं, इसलिए हमें उनका वास्तविक स्वरूप समभने में कठिनाई भी हो सकती है। पर भगवान् के महत्त्व को भक्त ही बढ़ाता है, यह भी हमें भूल नहीं जाना चाहिए। इस प्रकार कुल मिला कर उनका स्वरूप जो हम।रे सामने है, वह अत्यन्त श्राकष्क है।

अपने समय में महावीर और बुद्ध को कितना महत्त्व मिला था, यह एक विवादास्पद विषय है। उस समय भी एक साथ छः तीर्थंकरों का अस्तित्व जैन और बौद्ध दोनों साहित्य स्वीकार करते हैं। पर परिस्थिति के आघात-प्रत्याघातों से बच कर हम तक कैवल वे दो ही पहुँच पाये हैं। यह तथ्य पूर्ण अनावृत है; अतः उनके साहित्य को पढ़ कर आचार्यश्री तुलसी के जीवन पर दृष्टिपात किया आये तो बहुत-सी घटनाएं उनमें एक अलम्य-साम्य रेखा हमारे सामने खींच देती हैं। अतः कुछ घटनाओं को मैं यहाँ अंकित करना चाहता हूँ, जिनको मैंने अपनी आंखों से देखा है। क्योंकि विचारों का हिम ही पिघल कर घटनाओं के सिल्स-प्रवाह के रूप में हमारे सामने बहुता है। निश्चय ही आचार्यश्री तुलसी के सामने वे ही आदर्श हैं जो अमण संस्कृति के उद्भावकों के सामने रहे थे। अतः विचार-साम्य तो उनमें होगा ही, पर आचार्यश्री ने उन पर अपने अपनत्व की जो मुद्रा लगाई है, वह निश्चय ही उनके अपने अयक्तिगत व्यवहार की देन है।

महावीर और बुद्ध के जीवन को पढ़ते समय ऐसा लगता है कि हम किसी ऐसी मूर्ति के सामने बैठे हैं जो चारों भोर से श्रद्धामय है। सचमुच श्रद्धा जीवन का एक विशेष गुण है। कुछ लोग उसे भन्धी कह कर उससे परहेज कर सकते हैं, पर व्यवहार में उससे किसी भी प्रकार से बचा जा सकता हैं; ऐसा नहीं लगता। विल्क प्रत्येक सरस व्यक्तित्व में श्रद्धा का अपूर्व स्थान रहेगा ही। श्रद्धेय स्वयं श्रद्धाकील बन कर ही अपने पद तक पहुँच पाता है। जिसने श्रद्धा का अनुगमन नहीं किया, वह कभी श्रद्धेय नहीं बन सकता। भगवान् महावीर और बुद्ध भी श्रद्धा के श्रादान-प्रदान में पूर्ण प्रवीण थे। यही कारण है कि हम उन्हें सदा श्रद्धालुओं से चिरा पाते हैं। उनके चारों और लिपटा श्रद्धा-सिचय कभी-कभी इनना अपारदर्शी हो जाता है कि वे स्वयं भी उसमें खिप जाते हैं। पर श्रद्धा में इतनी श्रकस्य शक्ति होती है कि कभी-कभी तर्क उसका साथ ही नहीं दे पाता।

#### महापुरुष का पुष्य प्रसाव

मुसे कलकत्ते की वह घटना याद है। उस दिन आचार्यश्री कलकत्ता के विवेकानन्द रोड़ पर आस्थित चोपड़ों के मकान में ठहरे हुए थे। लोगों का आवागमन भरपूर था। उसी के बीच एक बंगाली दम्पति ने आचार्यश्री के कक्ष में प्रवेश किया। बंगाल की भिवत-भावना तो भारत विश्वत है ही, अतः भाते ही उस युगल ने प्रणिपात किया और एक और हट कर खड़ा हो गया। आचार्यश्री ने अपनी दृष्टि उनकी ओर उठाई तो पति कहने लगा—गुरुदेव! सच-मुच आप हमारे लिए भगवान् हैं। आचार्यश्री के लिए यह शब्द प्रयोग नया नहीं था, अतः उनकी प्रशस्ति सुन शान्त हो गए। पर पति ने किर दोहराया—गुरुदेव! आप सचमुच हमारे लिए भगवान् ही हैं। उसकी मुख-मुद्रा में इतनी स्वाभाविकता थी कि इस बार आचार्यश्री के चेहरे पर एक प्रश्न चिह्न उभर आया।

पित अपनी पत्नी की भोर सकेत कर कहने लगा—यह मेरी पत्नी है। कई वर्षों से क्षय-ग्रस्त थी। अनेक उप-चार करवाने पर भी कोई लाभ नहीं हुआ। आखिर बढ़ते-बढ़ते यह मन्तिम किनारे पर आ गई और हम लोगों ने मोच लिया, वस अब यह ठीक होने की नहीं है, अतः दवा बन्द कर दी और शान्तिपूर्वक आयु शेष की प्रतीक्षा करने लगे। पर इमी बीच एक दिन मैंने 'अणुवत-पण्डाल' में आपका प्रवचन मुना। तो मुक्ते उसमें कुछ दिव्य-व्वित-सी अनुभव हुई। मैं आपकी मुखाकृति से अपरिचित होकर ही तो पण्डाल में आया था और जब आपकी बीणा-वाणी के स्वरालापों को सुना तो मन में आया—जहर यह बोई दिव्य पुरुष है।

उस दिन मैं फिर भापके दर्शन की भावना लेकर अपने घर लौट गया। पर दूसरी बार जब मैं प्रवचन-पण्डाल से लौटा तो खाली हाथ नहीं लौटा। उस दिन मेरे साथ भापकी चरण-धूलि भी थी। घर माकर मैंने उसे स्वच्छ बर्तन में रख दिया और पत्नी से नियमित रूप से थोड़ी-थोड़ी करके इस पुण्य-प्रसाद को खाते रहने का स्रादेश दे दिया। मैंने इसे यह भी बता दिया कि यह एक महापुरुष की चरण-रेणु है। पत्नी ने श्रद्धा में इस कम को निभाया और इसी का यह परिणाम है कि साज यह बिल्कुल स्वस्थ होकर आपके सामने खड़ी है।

सुनने वालों को थोड़ा विस्मय हुआ, पर श्रद्धा में अपरिमित शक्ति होती है, यह जान कर मैंने मन-ही-मन श्राचार्य चरणों में सिर भुका दिया। मैं नहीं जानता स्वास्थ्य-विज्ञान इस प्रसग को कैसे मुलभायेगा? पर इतना निश्चित है कि श्रद्धा से बड़े-बड़े श्रकल्प्य कार्य गुगम हो जाते है। श्राचार्यश्री ने वैसा स्थान पाया है, यह न केवल यही घटना बता रही है, श्रिपितु इस प्रकार की श्रनेकों घटनाएं लिखी जा सकती हैं। हो सकता है, यह सब स्वाभाविक ही होता हो, पर यदि कोई व्यक्ति इतनी श्रद्धा श्रिजित कर सकता है, उसे महापुरुष कहने में शब्दों का दुरुपयोग नहीं है, ऐसा मेरा विश्वास है।

#### समान श्रद्धेय

कुछ लोगों का विश्वास है कि श्रद्धा श्रज्ञान की सहचारिणी है, पर ग्राचार्यश्री ने अपने व्यक्तित्व-बल से जहाँ साधारण जन की श्रद्धा का ग्रजंन किया है, वहाँ देश-विदेश के शिक्षित मानस को भी भ्रपनी श्रोर लींचा है। यह सच है कि ज्ञान-विज्ञान में भ्राज बहुत लेजी से प्रगति हो रही है और इस युग में किसी को पुरानी बातें नहीं सुहाती हैं, पर रुचि श्रीर भ्रचि के प्रश्न को मेरे विचार से नये और पुराने के साथ नहीं जोड़ना चाहिए; क्योंकि ज्यों-ज्यों नई बातें पुरानी होती जा रही हैं, त्यों-त्यों पुरानी वातें भी नवीनता भारण करती जा रही हैं। उसमें ग्रावस्थकता केवल उचित माध्यम की है।

यदि उसे संप्रसारित करने वाला व्यक्तित्व प्रबुद्ध होगा तो पुरामी बातें भी नवता का ग्राकार ग्रहण करने लगेंगी। यही कारण है, ग्राचार्यश्री के व्यक्तित्व ने बीसवीं सदी के इस विज्ञान बहुत युग में भी पदयात्रा के महत्त्व को ध्वनित किया है। संयम और साधना के प्रति युग में एक अनुराग भावना संप्रसारित हुई है। भगवान् महावीर और बुद्ध को जिस प्रकार फोंपड़ी से लेकर राजप्रसादों की श्रद्धा समान रूप से मिलती थी, उसी प्रकार ग्राचार्यश्री ने भी भोंपड़ियों से लेकर राजप्रसादों तक का समान सम्मान पाया है। राष्ट्रपति भवन में भी उन्हें जिस प्रकार एक संत के रूप में देखा गया था; उसी प्रकार गरीबों को भोंपड़ी में भी उन्हें एक संत के समान ही समक्ता गया। राष्ट्रपति ने उनसे राष्ट्र के सुधार के लिए अणुव्रत-ग्रान्दोलन की ग्रावश्यकता बताई तो उसे हरिजन-दम्पित की घटना भी उनके महत्त्व पर कम प्रकाश नहीं डाल रही है।

श्राचार्यश्री जयपुर से श्रागे श्री माधोपुर की श्रोर जा रहे थे। बीच के एक गांव में विश्वाम के लिए ठहरेतो उनके चारों श्रोर लोग एकत्रित हो गए। श्राचार्यश्री ने उन्हें व्यसन-मुक्ति का उपदेश दिया श्रीर श्रागे चल पड़े। बीच मार्ग में एक हरिजन महिला श्राई श्रौर बोली—बाबाजी! क्या भाप मेरे घर में भी श्रा सकते है? श्राचार्यश्री ने तत्क्षण श्रपने चरण उसके घर की श्रोर बढ़ा दिए। महिला के हर्ष का पारावार नहीं रहा। श्रपने घर में श्रावार्यश्री को पाकर कहने लगी—बाबाजी! यह मेरा पित तमाखू बहुत खाता है। मैंने इसे बहुत समक्षाया, पर यह मेरी बात मानता ही नहीं है। मैं इससे कहती हूँ—तू कोई कमाई न कर सके तो मत कर; घर का कार्य मैं चला लूंगी, पर कम-से-कम व्यसनों से तो पैसों को बर्बाद मत कर। श्रव श्रापने श्राज हमारे श्रांगण को पित्रत्र कर दिया है तो इसकी तमाखू भी छुड़वा दीजिये।

ग्राचार्यश्री ने ग्रपनी बड़ी श्रांखे उस हरिजन पर गड़ाई श्रीर बोले — तूतमाखु नहीं छोड़ सकता ?

एक क्षण के लिए उसके हृदय में इन्ड हुआ और फिर वह बोला—श्रच्छा बाबा ! श्राज से नहीं खाऊँगा, प्रतिज्ञा करवा दीजिये। ग्राचार्यश्री यह भिक्षा पाकर प्रसन्न मुख वापस लौट ग्राये, मानो कहना चाहते हों, मेरा परिश्रम व्यथं नहीं गया है।

### पुष्करजी जा रहा हूँ !

श्राचार्यश्री जब ग्रामीणों से बात करते हैं तो ऐसा लगता है जैसे उनसे उनका गाढ़ परिचय रहा है। एक बार लाडमूं में मध्याह्न के समय ग्राचार्यश्री भाई-बहिनों के बीच बैठे थे कि दो किसान भाई जल्दी से ग्राये श्रीर बंदना कर जाने लगे। ग्राचार्यश्री ने उन्हें पूछा — कौन हो ? कहाँ से ग्राये हो भाई ? जाने की इतनी क्या जल्दी है ? उनमें से एक ने कहा — महाराज हम किसान हैं। यह ग्राज इसी गाड़ी से पुष्करजी जा रहा है; ग्रतः जल्दी है।

माचार्यश्री — म्रच्छा ! पुष्करजी जा रहे हो ? क्यों जाते हो वहाँ ?

किसान-वहाँ स्नान करेगे। भगवान् के दर्शन करेगे, साधुश्रों के भी दर्शन होगे।

श्राचार्यश्री—स्नान करने से क्या होगा ?

किसान-सब पाप धुल जायेंगे।

भाचार्यश्री-तब तो वहाँ तालाब में रहने वाली मछलियों के पाप सबसे पहले धुलेंगे ?

बात कुछ चमकाने वाली थी। किसान बोला-नहाँ हमारे साधुओं के दर्शन होंगे।

श्राचार्यश्री—तो क्या साधुओं में भी हमारे और तुम्हारे दो होते हैं ? साधु तो सभी के होते हैं, बशतें कि वे वास्तव में ही साधु हों और समभो कि सच्चे साघु वे ही होते हैं जो श्रपने पास पैसा नहीं रखते । श्रम्छा तो तुम वहाँ साघुओं को कुछ भेंट कहाश्रोगे ?

किसान-जरूर (भावाज में दृढ़ता थी)।

ब्राचार्यश्री-तो तुम साधु के पास झाये हो, क्या कोई भेंट लाये हो ?

श्रपनी जेब टटोल कर उसने एक रूपया निकाला और श्राचार्यश्री को देने लगा। श्राचार्यश्री ने उसे हाथ में लिया और कहने लगे—अरे ! एक रूपये से क्या होगा ?

किसान---बस, महाराज ! हम तो एक रुपया ही चढ़ाते हैं और आपके पास तो अनेक भक्त लोग आते हैं, एक-एक रुपया देंगे तो भी बहुत हो जायेंगे।

भ्राचार्यश्री-पर बताम्रो रूपये का हम करें क्या ?

किसान-किसी धर्मार्थ काम में लगा देना।

श्राचार्यश्री-पर धर्म के लिए पैसे की जरूरत नहीं होती। वह तो श्रात्मा से ही होता है। तब फिर साधुमी के पास पैसा किस काम का ? हम तो पैसा नहीं लेते। यह लो तुम्हारा रुपया।

किसान को बड़ा भारवर्ष हुआ। कहने लगा—महाराज! हमने तो भाज तक ऐसा साधु नहीं देखा जो पैसा नहीं लेता हो। वह कुछ दुविधा में पड़ गया। सोचने लगा पुष्करजी में नहाने से पाप नहीं उतरते भीर उन संतों के दर्शन करने से कोई कल्याण नहीं हो सकता जो पैसा रखते हैं, तब फिर पुष्करजी जाऊँ या नहीं जाऊँ?

श्राचार्यश्री - भाई ! वह तुम तुम्हारी जानो । हमने तुम्हें रास्ता बता दिया है। करने में तुम स्वतन्त्र हो ।

िकिसान कुछ विचार कर बोला—श्रच्छा महाराज ! भ्रब पुष्कर जी नही जाऊँगा । त्रापके पास ही ब्राऊँगा ।

भाचार्यशी-पर यहाँ भाने मात्र से कन्याण नहीं होने वाला है, कुछ नियम करोगे तो कल्याण होगा।

किसान-क्या नियम महाराज !

श्राचार्यश्री ने उसे प्रवेशक अणुक्रती के नियम बताये और वह उसी समय सोच-समक्र कर अणुक्रती बन गया। भगवान् महावीर और बुद्ध के हाथ में कोई राज्य सत्ता नहीं थी, पर उन्होंने देश के मानस को बदलने के लिए जो प्रयास किया है, वह सम्भवतः कोई भी राज्य-सत्ता नहीं कर सकती। आचार्यश्री ने भी यही कार्य करने का प्रयास किया है।

#### सला भीर उपवेश

एक बार श्राचार्यश्री महाराष्ट्र में विहार कर रहे थे। बीच में एक गाँव में सड़क पर ही भ्रानेक लोग इकट्ठे हो गये। कहने लगे—साचार्य जी! हमें भी कुछ उपदेश देते जायं। श्रपनी शिष्य मंडली के साथ भ्राचार्यश्री वहीं वृक्ष की छाया में बैठ गये श्रीर पूछने लगे—क्यों भाई! शराब पीते हो? श्रामीण एक-दूसरे का मुँह देखने लगे।

म्राचार्यभी - तुम्हारे यहाँ तो शराबबन्दी का कानृन है न ?

ग्रामीण-हाँ महाराज ! है तो सही।

भावार्यश्री—तब फिर तुम शराब तो कैसे पीते होंगे ? कोई नहीं बोला। चारों भ्रोर मौन था। फिर भ्राचार्यश्री कहने लगे—देखो भाई ! हम सरकार के श्रादमी नहीं हैं, हम तो साधु हैं। तुम हमसे डरो मत। सच्ची-सच्ची बात बता दो। भीरे-भीरे लोग खुलने शुरू हुए और कहने लगे—महाराज ! कानून है तो बाहर है। घर में तो नहीं है न ? अतः लुक-छिप कर पीने से कौन गवाह करने वाला है।

धाचार्यश्री -- पर सरकार के प्रादमी तो देख-रेख करने प्राते होंगे ?

ग्रामीण-देख-रेख कौन करता है महाराज ! वे तो उल्टे हमारे घर पीकर जाते हैं।

ग्राचार्यश्री ने हम साधुद्यों से कहा—यह है कानून की विडम्बना । पर उपस्थित समुदाय की ग्रोर उन्मुख होकर कहने लगे—देखो भाई ! शराब पीना ग्रच्छा नहीं है । इससे मनुष्य पागल बन जाता है ।

ग्रामीण-बात तो ठीक है महाराज ! पर हमारे से तो यह छूटती नहीं है।

श्राचार्यश्री - देखो त्म मन्त्य हो । मन्त्य शराब के वश हो जाये, यह अच्छा नही, छोड़ दो इसे ।

ग्रामीण-पर महाराज ! यह हमें बहुत प्यारी हो गई है।

ग्राचार्यश्री—ग्रच्छा तो तुम ऐसा करो, एकदम नहीं छोड़ सकते तो कुछ दिनों के लिए तो छोड़ दो। उपस्थित जनसमुदाय में से ग्रनेक लोगों ने यथाशक्य मद्य पीने का त्थाग कर दिया। कुछ ने ग्रपनी मर्यादा कर ली कुछ व्यक्तियों ने बिल्कुल भी त्याग नहीं किया। एक नौजवान भाई पास में खड़ा था। श्राचार्यश्री ने उसका नाम पूछा, तो वह भाग सड़ा हुन्ना। लोग उसे समका-बुक्ता कर वापस लाये। माचार्यश्री ने उससे पूछा—क्यों भाई ! तुम भाग क्यों गये ? कहने लगा मैं नहीं छोड़ सकता। म्राप सरकार में कहीं रिपोर्ट कर दें तो ?

भाषायंश्री—हम किसी की रिपोर्ट नहीं करते ! हम साबु है । हम तो उपदेश के द्वारा ही समभाते हैं । तुम सोचो, यह श्रव्छी नहीं है । बहुत समभाने-बुभाने के बाद उसने महीने में केवल चार दिन शराब पीने का त्याग किया । यह है कानून भौर हृदय-परिवर्तन का एक चित्र ।

### हमने प्रापको नहीं पहिचाना

पहले परिचय में झाचार्यश्री को समकता जरा किठन होता है। क्योंकि भाज साधु-वेष में जो अन्याय पल रहे हैं, उन्हें देखते यह सम्भव भी नहीं है। पर ज्यों ही उन्होंने झाचार्य भी का परिचय पाया, उन्हें अपने-आप पर पश्चासाप हुआ है।

भावार्यश्री जब सौराष्ट्र के समीप से गुजर रहे थे, रास्ते में एक गाँव श्राया। हमारा वहाँ जाने का पहला ही अवसर या। एक साथ इतने बड़े संघ को देख कर वहाँ के लोग दहल गये और हमारे विषय में तरह-तरह की बातें करने लगे। कई लोग कहते—ये कांग्रेसी हैं, भतः वोटों के लिए श्राये हैं। कई लोग कहते—ये साधु का वेष बनाये डाब् हैं। कई लोग कहते—में अपने धर्म का प्रचार करने घाये हैं। इस प्रकार अनेक प्रकार की ग्राशंकाओं के कारण लोगों ने हमें वहाँ रहने को स्थान भी बड़ी मुक्किल से दिया। एक ट्टा-फूटा मन्दिर था। उसी में हम सब जाकर टहर गये। अनेक प्रकार के कुत्हल लेकर कुछ लोग श्राये तो भावार्यश्री ने प्रवचन करना शुरू कर दिया। लोग बैठ गये और प्रवचन मुनने लगे। प्रवचन मुन कर उन लोगों के सारे संजय उच्छित्न हो गये। फिर हम भिक्षा के लिए गये। हमारी भिक्षा विधि को देख कर तो वे और भी प्रभावित हुए। दोपहर को अनेक लोग मिल कर आये। बातचीत की, प्रवचन मुना तो उनकी धांखें खुल गई। श्राचार्यश्री वहाँ में विहार कर शाम को जाने वाले थे, धतः उनमें में एक बूढा आदमी आगे खाया और कहने लगा—''वापू! ब्राज-श्राज तो श्रापको यहाँ कना पड़ेगा। श्रांखों में श्रांसू भरकर वह बोला—मैं श्रापको मच बतार्ज, हमने श्रापको पहचाना नहीं। हमने समभा ये कोई डाकू हैं। इसलिए न तो हम श्रापकी भिक्त कर पाये और न श्रापमें कुछ लाभ ही उठा सके। श्राप तो महान् हैं, हमें क्षमा करें और श्राज रात-रात यहाँ जहर ठहरें। पर श्राचार्यश्री को ध्रागे जाने की जल्दी थी, धतः ठहर नहीं सके और चल पड़े। लोगों ने श्रांसू भरे चेहरे से श्राचार्यश्री को बिदाई दी।

महापुरुषों का क्षणमात्र जीवन में सकल्प्य परिवर्तन कर देता है, उसी का एक चित्र है। उलते दिन उलती सवस्था का एक जर्जर देह हरिजन साचार्यश्री के पास साया और कहने लगा—महाराज! स्रापके दर्शन करने साया हूँ। पिछली बार जब स्राप यहाँ भाये थे तो मैंने श्रापमे तमाखू नहीं पीने का बत लिया था। याद है न सापको ? साचार्यश्री के उस समय मौन था, सतः बोले नहीं। कुछ संकेत ही किये; वृद्ध ने स्रपना कहना जारी रखा। क्यों याद नहीं महाराज प्रापके सामने ही तो मैंने अपनी चिलम तोड़ी थी। अब तक पूरा पालन करता हूँ उस नियम का। साचार्यश्री को भी घटना याद हो साई। स्रपनी गर्दन हिलाकर उन्होंने उसकी स्वीकृति दी और इशारे में बताया—स्रभी मेरे मौन है। वृद्ध ने फिर कहना प्रारम्भ किया—महाराज! वह नियम तो मैंने पूरा निभाया है, पर मेरी एक बुरी सादत और है। मैं सफीम खाता हूँ। विना उसके रहा नहीं जाता। पर सोचता हूँ, साज अपने पास स्राया हूँ तो उसे भी छोड़ता जाऊँ। मैं खुद तो छोड़ नहीं सकता, पर सापके पास त्याग करने पर किसी प्रकार मैं उसे निभा ही लूँगा। सतः स्राज मुक्ते स्रफीम-सेवन करने का त्याग दिलवा दीजिए और सचमुच उसने स्रफीम-सेवन का त्याग कर दिया।

### झात्म-विश्वास का जीता-जागता चित्रण

एक छोटा-सा गाँव। पाठशाला का मकान। सायंकालीन प्रार्थना से थोड़े समय पहले का समय। एक प्रौढ़ किसान प्राचार्यश्री के सामने कर-बद्ध खड़ा है। प्राचार्यश्रीने पूछा—कहाँ से श्राये हो माई! कहने लगा—यहीं थोड़ी दूर पर एक गाँव है, वहाँ से श्राया हैं।

शा**वार्यभी**---इतनी देर से कैसे आये ?

किसान—दिन में मेरा लड़का तथा स्त्री झा गये थे। उन्होंने कहा—तुम भी जा बाबो। सो खेत मे सीधा ही ब्रापके दर्शन करने ब्राया हैं महाराज !

ग्राचार्यश्री-पर केवल दर्शन करने से क्या होगा ? क्या तमाखू पीते हो ?

किसान-पीता हूँ महाराज ! बचपन से ही पीता हूँ।

श्राचार्यश्री हाथ दिखाश्रों तो तुम्हारे? देखों इनमें तमाखू के दाग बैठ गये। धोने से भी नहीं उतरते, तो क्या पेट में ऐसे दाग नहीं बैठेंगे? श्रीर सच तो यह है कि तमाखू में जीवन में भी दाग बैठ जाता है। यह ग्रच्छी नहीं है भाई!

किसान—तो नया छोड़ दूँ इसे ? म्राचार्यशी—हौ, जरूर छोड़ दो।

किसान-तो लो भाज से ही तमाख़ पीने का त्याग है।

श्राचार्यश्री-पर निभाना पड़ेगा इसे ? केवल त्याग करने से ही कुछ नहीं हो जाता।

किसान-इसमें क्या शक है। प्राण चले जायें, पर प्रण नहीं जायेगा :

मानव के ब्रात्स-विश्वास का यह एक जीना-जागता वित्रण है।

इतना सब कुछ होते हुए भी स्नाचारंश्री प्रपने-स्नापको एक स्निक्तन भिक्ष मानते हैं। उस समय जेठ का महीना था। जोधपुर से लाइन की स्नोर विहार हो जुका था। स्नीधर्यां चलने लगी थीं, स्नतः स्नाचारंश्री का सारा शरीर स्नला- इयों से भर गया था। बार-बार खुजली स्नाती थी। एक साधु 'हैजलीन' लाये और निवेदन किया इसे लगाने से स्नापको स्नाराम रहेगा। स्नाचारंश्री ने कहा—भाई! यह तो समीर लोगों की दवा है। हम तो स्निक्तन फकीर हैं; हमारे ऐसी दवाइयां काम नहीं सा सकतीं? हमारी दवाई तो जब वर्षा सायेगी स्नीर ठण्डी-ठण्डी हवा चलेगी तो सपने-साप हो जायेगी।

भाचार्यश्री ने जहाँ लाखों लोगों की श्रद्धा पाई है, वहाँ भनेक लोगों के विरोध को भी उन्हें सहन करना पड़ा है। पर उन्होंने इसे इस प्रकार हँस कर टाल दिया जैसे मानो भगवान् महाबीर भौर बुद्ध की भात्मा ही उनमें बोल रही हो।

यह जोधपुर की घटना है। दीक्षा प्रशंग को लेकर विरोध बातूल प्रबल वेग से बह रहा था। कुछ लोगों ने विरोध में कोई कमी नहीं रखी थी। श्रतः उन्होंने एक दिन उस सड़क को, जिससे होकर साचार्यश्री जंगल जाते थे, पोस्टरों से पाट दिया। थोड़े-थोड़े फासलों पर पोस्टर चिपके हुए थे। उस विरोध-बेला में भी ग्राचार्यश्री के अधरों से स्मित फूट रहा था। बोले-इन लोगों ने कितने पोस्टर चिपकाएं है; पर एक कमी इन्होंने रख दी। यदि पोस्टर नजदीक-नजदीक लगाये होते तो हमारे पर तारकोल से गन्दे होने ने बच जाते। सचमुच ऐसी बात कोई महापुरुष ही कह सकता है।



# जैसा मैंने देखा

#### श्री कैलाशप्रकाश, एम० एस-सी० स्वायत्त शासनमंत्री, उत्तर प्रदेश सरकार

युग आये और चले गये। अनेकों उसके काल-प्रवाह में वह गये। उनका अस्तित्व के रूप में नाम-निशान तक नहीं रहा। अस्तित्व उसी का रहता है जो कुछ कर-गुजरता है। व्यक्ति की महानृता इसी में है कि वह युग के अनुस्रोत में नहीं बहे, बिल्क मानव-कन्याणकारक कार्य-कलापों से युग के प्रवाह को अपनी और मोड़ ले। इस रत्नगर्भा वसुन्धरा ने समय-समय पर ऐसे नररत्न पैदा किये हैं जो कि युग के अनुस्रोत में नहीं बहे, बिल्क स्व-साधना के साथ-साथ उन्होंने मानव मात्र का कल्याण किया। स्वनामधन्य आवार्यश्री तुलसी भी उसी गगन के एक उज्ज्वल नक्षत्र हैं जो कि अपनी साधना में निरत रहते हुए भी आज के युग में परिज्याप्त अवांछनीय तत्र्वों का निवारण करने के हेतु मानव-समाज में नैतिकता का उद्घोषण कर रहे हैं।

वर्षों के प्रयास के बाद हमें विदेशी दासता में मुक्ति मिली। अपनी सरकार बनी, जनता के प्रतिनिधि शासक बने। यद्यपि हम राजनैतिक दृष्टि से पूर्णरूपेण स्वतन्त्रत हैं, लेकिन अनैतिकता की दासता से मानव-समाज आज भी जकड़ा है; अतएव सही स्वतन्त्रता का आनन्द हम तब तक अनुभव नहीं कर सकते, जब तक जन-मानम में अनैतिकता की जगह नैतिकता घर न कर ने, पारस्परिक द्वेष-भावना मिटाकर उसका स्थान मैत्री न ले ले। वास्तव में, हमारे राष्ट्र की नींव तभी मजबूत हो सकती है, जबिक वह नैतिकता पर आधारित हो, वरना वह धूल के टीले की तरह हवा के भोंके मात्र से हिल जायेगी। किर भी हमारे बीच एक आशा की किरण है। जनवन्द्य आचार्यश्री तुलसी इस दिशा में अभिनव प्रयास कर रहे हैं और जन-जन में आध्यात्मिकता का पाञ्चजन्य फूँक रहे हैं। उनके द्वारा प्रवित्त अणुव्रत-आन्दोलन एक प्रकाश-स्नम्भ है जो मंतनव के लिए एक दिशा-दर्शन है तथा उसके लिए क्या हेय, ज्ञेय या उपादेय है, यह मार्ग बनाता है।

वैसे तो 'श्रणुवत' कोई नवीन वस्तु नहीं । युगों से उनकी चर्चा घर्मशास्त्रों में श्राती है । श्राहंसा, सन्य, श्रस्तेय, ब्रह्मचर्य श्रोर श्रपरिग्रह इन पांच महावतों को श्रनेकों नामों से श्रीभिहित किया गया है, जिनका उद्देश्य लगभग एक-सा है; मरन्तु जहाँ तक श्रणुवत-श्रान्दोलन का सम्बन्ध है, उनमें एक नवीनता है । इसके नियमोपिनयम बनाते समय श्राचार्यश्री ने निस्सन्देह बहुत ही दूरदिशता से काम लिया है । जहाँ तक मैं समभा हूँ, उन्होंने प्रमुख रूप से यही प्रयास किया है कि मानव-समाज में बहुलता से बुराइयाँ व्याप्त हैं, पहले उन्हों पर प्रहार किया जाये । वे यह भी जानते हैं कि श्राज का मानव श्राधिभौतिकता की चकाचौंध में चुंधिया गया है, श्राधारभूत नैतिक मान्यताश्रो के प्रति उसकी श्रद्धा कम होती जा रही है, शास्त्रों में प्रतिपादित सिद्धान्तों का पालन नहीं किया जा रहा है; श्रतएव इस श्रान्दोलन के रूप में श्रापने मानव-समाज को एक व्यावहारिक संहिता दी है, जिस पर श्राचरण कर कम-से-कम वह दूसरों के श्रिधकारों को न हड़प, श्रनैतिकता से दूर रहकर, चरित्रवान् बनने की श्रोर श्रग्रसर हो ।

मेरा श्रान्दोलन से कुछ सम्बन्ध रहा है। इसके साहित्य को पढ़ा, उस पर मनन किया और इस निषकर्ष पर पहुँचा हूँ कि वास्तव में यह एक ग्रान्दोलन है, जिसमे मानव-कल्याण सम्भव है। इस ग्रान्दोलन की विशेषता यह पाई कि इसके प्रवर्तक ग्राचार्यश्री तुलीसी या इसके प्रचारक उनके ग्रन्तेवासी जितना स्वयं करते हैं, उससे कहीं कम करने का उपदेश देते हैं। वास्तव में प्रमाव भी ऐसे ही पुरुषों का पड़ता है, जो स्वयं साधना-रत हैं और जिनका जीवन त्याग व तपस्या मे मँजा है, जिनके जीवन में सास्विकता है। ग्राचार्यश्री में संयम का तेज है, उनकी वाणी में ग्रोज है, मुख-मण्डल

पर भव्भृत भाष्यात्मिक भाकर्षण है। ऐसे सत्युज्य जब इस प्रकार के भान्दोलनों का संचालन करते है तो उसकी सफलता में तनिक भी संशय नहीं रह जाता।

श्राचार्यश्री तुलसी ने इस झान्दोलन का प्रवर्तन कर मानव-समाज का हिन किया है। वे सबके वन्दनीय हैं, पूज-नीय हैं, झादरणीय हैं। उनके झाचार्य-काल के इस धवल समारोह के पृष्य अवसर पर मैं भी इन शब्दों के साथ झपनी भाव-भरी श्रद्धांजिल श्रापित करता हूँ तथा यह कामना करता हूँ कि वे युगों-युगों तक इसी प्रकार मानव-जाति का कल्याण और झाध्यात्मिकता का प्रसार करते रहें!

# शत-शत अभिवन्दन

### मुनिश्री मोहनलालजी 'शार्वूल'

म्रार्ग ! तुम्हारे चरणों में शत-शत म्रभिवन्दन दीर्घ दृष्टि तुम; इसीलिए यह जगत तुम्हारे पद विन्यासों का करता म्राया म्रभिनन्दन मानव उच्च रहा है सदा तुम्हारी मित में श्रोर उसी पर टिका म्रटल विश्वास तुम्हारा कब माना उसको नृशंस, विषयान्ध, विगहित क्योंकि हृदय का स्वच्छ सदा म्राकाश तुम्हारा वाहर सतत वही लोचन पथ में माता है जो होता है निहित निगोपित म्रंतरंग में जैसा सिलल पयोनिधि में रहना बहता है वैसा ही उभरा करता चंचल तरंग में तुम मानवता के उन्नायक बने प्रतिक्षण काट-काट कर युग के सब जड़ता मय बन्धन श्रार्थ ! तुम्हारे चरणों में शत-शत स्रभिवन्दन ।

प्राण तुम्हारे सदा सत्य के लिए निछावर प्राप्य सत्य से बढ़ कर कोई है न तुम्हारा राग, रोष के सारे निमिर तिरोहिन होते सत्य प्रचल है विमल विभास्वर वह उजियारा जहाँ ग्रसत्य का पोषण होता, दुख ही दुख है इसीलिए बस सत्य-साधना तुम बतलाते छात्मोदय की उस प्रशस्त पद्धति का गौरव ग्रपने मुख से गाते गाते नहीं प्रधाते ताप शमन का कार्य सहा करते रहते हो मिटा रहे हो प्रतिपल वितथ जनित ग्राकन्दन ग्रायं! तुम्हारे चरणों में शत-शत ग्रभिवन्दन।

# श्रणुव्रत, आचार्यश्री तुलसी और विश्व-शांति

भी ग्रनन्त मिश्र सन्पादक-सरमार्व, कलकत्ता

#### नागासाकी के खण्डहरों से प्रश्न

विश्व के क्षितिज पर इस समय युद्ध और विनाण के बादल मँडरा रहे हैं। अन्तरिक्ष-यान और आणिवक विस्फोटों की गड़गड़ाहट से सम्पूर्ण संसार हिल उठा है। हिंसा, हेंव और घृणा की भट्टी सर्वत्र मुलग रही है। संसार के विचारजील और जान्तिप्रिय व्यक्ति आणिवक युद्धों की कल्पना मात्र से आतंतित हैं। क्रिटेन के विख्यात दार्शनिक बर्टेण्ड रमेल आणिवक परीक्षण-विस्फोटों पर प्रतिबन्ध लगाने के लिए ६६ वर्ष की आयु में सत्याग्रह कर रहे हैं। प्रशान्त महा-सागर, सहारा का रेगिस्तान, साइवेरिया का मैदान और अमेरिका का दिश्णी तट भयंकर अणुवमों के विस्फोट से अभिगृंजित हो रहे हैं। सोवियत रूस ने ५० से १०० मेगान्टन के अणुवमों के विस्फोट की घोषणा की है तो अमेरिका ५०० मेगान्टन के बमों के विस्फोट के लिए प्रस्तुत है। सोवियत रूस और अमेरिका हारा निर्मित यान सैकड़ों मील ऊँचे अन्तरिक्ष के पर्वे को फाड़ते हुए चन्द्रलोक तक पहुँचने की तैयारी कर रहे हैं। छोटे-छोटे देगों की स्वतन्त्रता बड़े राष्ट्रों की कृपा पर आशित है। ऐसे संकट के समय स्वभावतः यह प्रश्न उठता है कि संसार में वह कौन-सी ऐसी शक्ति है जो अणुवमों के प्रहार में विष्व को बचा सकती है। जिन लोगों ने हितीय युद्ध के उत्तरार्द्ध में जापान, नागासाकी और हिरोशिमा जैसे शहरों पर प्रणुवमों का प्रहार होते देखा है, वे उन नगरों के खण्डहरों से यह पूछ सकते हैं कि मनुष्य कितना कूर और पैशाचिक होता है।

निस्सन्देह मानव की कूरता श्रीर पैशाचिकता के शमन की क्षमता एकमात्र श्राहिसा में है। सत्य श्रीर श्राहिसा में जो शक्ति निहित है, वह अणु श्रीर उद्जन बमों में कहाँ! भारतवर्ष के लोग सत्य श्रीर श्राहिसा की श्रमोध शक्ति से परिचित हैं; क्योंकि इसी देश में तथागत बुद श्रीर श्रमण महाबीर जैसे श्राहिसा-त्रती हुए हैं। बुद श्रीर महाबीर ने जिस सत्य व श्राहिसा का उपदेश दिया, उसी का प्रचार महात्मा गांधी ने किया। ब्रिटिश साम्राज्य को समाप्त करने के लिए गांधीजी ने श्राहिसा का ही प्रयोग किया था। सत्य श्रीर श्राहिसा के सहारे गांधीजी ने सदियों से परतन्त्र देश को राजनीतिक स्वतन्त्रता श्रीर चैतना का पथ प्रदिशित किया। श्रतः भारतवर्ष के लोग श्राहिसा की श्रमोघ शक्ति से परिचित हैं। सत्य, श्राहिसा, दया श्रीर मैत्री के सहारे जो लड़ाई जीती जा सकती है, वह श्रणुबमों के सहारे नहीं जीती जा सकती।

वर्तमान युग में सत्य, श्राहिसा, दया और मैत्री के सन्देश को यदि किसी ने श्रिष्ठिक समभने का यत्न किया है तो नि:संकोच श्रणुव्रत-श्रान्दोलन के प्रवर्तक के नाम का उल्लेख किया जा सकता है। श्रणुव्रम के मुकाबले श्राचार्यश्री तुलसी का श्रणुव्रत श्रिष्ठिक शक्तिशाली माना जा सकता है। श्रणुव्रत से केवल बड़ी-बड़ी लड़ाइयाँ ही नहीं जीती जा सकती, बल्कि हृदय की दुर्भावनाश्रों पर भी विजय प्राप्त की जा सकती है।

#### युद्ध के कारण का उन्मूलक

जैन-सम्प्रदाय के भाषायंत्री तुलसी का भगुन्नत-भान्दोलन नैतिक भम्भुत्थान के लिए किया गया बहुत बढ़ा भ्रभियान है। मनुष्य के चरित्र के विकास के लिए इस भान्दोलन का बहुत बढ़ा महत्त्व है। चोरबाजारी, भ्रष्टाचार, हिसा, द्वेष, घृणा और अनैतिकता के विरुद्ध शाचार्यश्री तुलसी ने जो आग्दोलन प्रारम्भ किया है, वह अब सम्पूर्ण देश में व्याप्त है। अगवत का अभिप्राय है उन छोटे-छोटे वतों का धारण करना, जिनसे मनुष्य का चरित्र उन्नत होता है। सरकारी कर्म-चारी, किसान, व्यापारी, उद्योगपित, अपराधी और अनीति के पोषक लोगों ने भी अणुवत को धारण कर अपने जीवन को स्वच्छ बनाने का यस्न किया है। कठोर कारादण्ड भोगने के बाद भी जिन अपराधियों के चरित्र में सुधार नहीं हुआ, वे अणुवती बनने के बाद सच्चरित्र और नीतिवान हुए। इस प्रकार अणुवत भानव-हृदय की उन बुराइयों का उन्मूलन करता है जो युद्ध का कारण बनती हैं। आचार्यश्री तुलसी का मैत्री-दिवस छान्ति और सद्भावना का सन्देश देता है।

स्रमेरिका के भूतपूर्व राष्ट्रपति स्राइजन होवर और सोवियत प्रधानमंत्री श्री निकिता स्रृश्चेव के मिलन के स्रवसर पर प्राचार्यश्री तुलसी ने शान्ति और मैत्री का जो सन्देश दिया था, उसे विस्मृत नहीं किया जा सकता। सन्तर्राष्ट्रीय तनाव भीर संघर्ष को रोकने की दिशा में अणुवत-म्रान्दोलन के प्रवर्तक स्राचार्यश्री तुलसी को उल्लेखनीय सफलता मिली है। उन्होंने विभिन्न धर्मों और विश्वासों के मध्य समन्वय स्थापित कराने का प्रयास किया है। यही साचार्यश्री तुलसी के अणुवत-म्रान्दोलन की सबसे बड़ी विशेषता है।

#### विश्व-शान्ति के प्रसार में उल्लेखनीय योग-वान

अन्तर्राष्ट्रीय विचारकों के मत में आचार्यश्री तुलसी ने अणुव्रत के माध्यम से विश्व-शान्ति श्रीर सद्भावना के प्रसार में उल्लेखनीय योग-दान किया है। हिसा की दहकती हुई ज्वाला पर वे अहिंसा का शीसल जल ख़िड़क रहे हैं। आचार्यश्री तुलसी का अणुव्रत-आन्दोलन अब केवल भारत तक ही सीमित नहीं है, बल्कि उसका प्रसार विदेशों में भी हो गया है। हिमालय से कन्याकुमारी तक सम्पूर्ण भारत का पैदल अभण करके आचार्यश्री तुलसी ने अणुव्रत का जो मन्देश दिया है, उसमे राष्ट्र के चारित्रिक उत्थान में मूल्यवान सहयोग मिला है। अगर संमार के सभी भागों में लोग अणुव्रतों को ग्रहण करें तो युद्ध की सम्भावना बहुत अंशों तक समाप्त हो जायेगी। विश्व-युद्ध को रोकने के लिए आचार्यश्री तुलमी का अणुव्रत एक अमोध अस्त्र है। यूरोप में चलने वाले 'नैतिक पुतक्त्यान आन्दोलन' की तुलना में अणुव्रत-आन्दोलन का महस्य अधिक है। अगर संसार के विशिष्ट राजनीतिज अणुव्रतों के प्रति अपनी आस्था प्रकट करें तो युद्ध का निवारण करना आसान हो सकता है। केनेडी, मैकमिलन, दगाल और का इन्चेव जैमे राजनीतिज्ञ जिस दिन अणुव्रत ग्रहण कर लेंगे, उमी दिन युद्ध की सम्भावना समाप्त हो जायेगी।



# सन्तुलित व्यक्तित्व

#### साह शान्तिप्रसाद जैन

थी ब्राचार्य तुलसीओ महाराज ने लगभग दो वर्ष पूर्व जब एक पुरा चातुर्मास कलकत्ते में व्यतीत किया तो मुभी अनेक बार उनके निकट सम्पर्क में आने का शव-सर मिला। दो दिन उनका बास मेरे निवास-स्थान पर भी रहा । उनका संयम उनकी साधु-वित्त के अनुरूप तो है ही, मुझे सबसे अधिक प्रभावित किया उनके सन्तलित व्यक्तिरव की उस पावन मध्रता ने जो संयम का अलंकार है। उनका तस्बश्रद्धान जिनना परम्परागत है, उससे अधिक उसमें वे अंश है जो उनके अपने चिन्तन, मनन और धात्मानुभाव से उपजे हैं। उनकी जीवनचर्या का परम्परावद्व मार्ग कितना कठिन और कष्टसाध्य है। मैंने पाया है कि साचार्यश्री दूसरों के सामहों को जनौती नही देते, जनौतियों को आमंत्रित करते हैं और वृष्टि का सामंजस्य खोजते हैं। तत्त्वचर्चा श्रौर धार्मिक प्रवचन को उन्होंने मन्ष्य के दैनिक जीवन की समस्याओं से जोड़ कर धर्म को जीवन की गति और हृदय का स्पन्दन दिया है। अणबतों की व्यवस्था जिन आचार्यों ने की थी, उनके लिए ये व्रत समाज के नैतिक संगठन और निराकुल संरक्षण के माधारभूत मिखान्त थे। ज्यों-ज्यों धर्म जीवन स विच्छिन्न होकर रूढ होना गया, अणुवत की महत्ता उसी अनुपात में भास्त्रगत ग्रधिक ग्रीर जीवनगत कम हो गयी। ग्रणवत-चर्चा की सार्थकता ग्रान्दोलन के इप में जो भी हो, ब्राचार्यश्री तुलसी को इस बात का श्रेय प्राप्त है कि उन्होंने ग्रगद्वतों का प्रतिपादन यूग के संदर्भ में किया ग्रौर व्यापक स्तर पर समाज का ध्यान केन्द्रित किया।

भ्राचार्यश्री तुलगी धवल समारोह के भ्रवसर पर मैं भ्रपनी श्रद्धांजलि भ्रपित करता हूँ।



# आशा की मलक

श्री त्रिलोकोसिह नेता, विरोधी दल, उ० प्र० विधान सभा

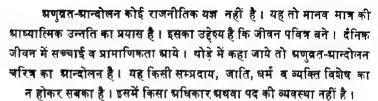
आचार्यश्री तुलसी त्राधुनिक युग के उन लोगों में में है, जिन्होंने समाज के उन्थान के लिए महान प्रयत्न किया है। उनके द्वारा संचालित प्रणुवत-श्रान्दोलत दरश्रसल गिरते हुए मानव को उठाने के लिए महान प्रयत्न है। कहने को तो वह छोटे-छोटे बत हैं, किन्तु उनके श्रपनाने के बाद कोई ऐसी बात नहीं रह जाती जो मनुष्य के विकास में बाधा पहुँचाये।

सच बात तो यह है कि वे समय के खिलाफ चल रहे हैं। इस समय ऐसा वाता-वरण है कि चारों और ढील-ढाल नजर आती है। समाज बजाय जाति-विहीन होने के मर्यादा विहीन होता जा रहा है। ऐसे समय में किसी का यह प्रयत्न कि नई मर्यादा कायम हो, साधारण बात नहीं है। ग्राचार्यजी जो कार्य कर रहे हैं, उससे इस देश में आशा की भलक निकलती मालूम होती है। मुभे इसमें सन्देह नहीं है कि समाज का कल्याण इनके बताये हुए रास्ते से हो सकता है। मुभे इसमें भी सन्देह नहीं कि जिस प्रकार वे इस ग्रान्दोलन का संचालन कर रहे हैं, उसमें अवस्थ सफल होंगे।



# महावीर व बुद्ध के सन्देश प्रतिध्वनित

श्री करणसिंहजी, सदस्य लोकसभा महाराजा, बीकानेर



भाज के युग में जब हम भपने चारों भीर देखते हैं तो बड़े दुःख के साथ श्रनु-भव करते हैं कि देश में सर्वत्र भ्रष्टाचार, जातिवाद, क्षेत्रवाद ग्रादि श्रनेक विषैले कीटाणु हमारे समाज को नष्ट करने में व्यस्त हैं। ऐसी दशा में उसका उद्घार केवल श्रणुत्रत जैसे भान्दोलनों द्वारा ही हो सकता है।

इसके साथ-ही-साथ प्रत्येक आन्दोलन के संचालन में उसके प्रमुख कार्यकर्ताओं में उस आन्दोलन की मर्यादानुसार कार्य करने की क्षमता का होना भी उतना ही आवश्यक है जितना कि उसका उद्देश। यह कितनी प्रसन्तना की बात है कि अण्वत-आन्दोलन को आचार्यश्री तृलमी का आशीर्वाद प्राप्त है।

म्राज से लगभग २५०० वर्ष पूर्व देश के पूर्वी मंत्रल से भगवान् श्री महावीर श्रीर गीतम बुद्ध के स्राध्यात्मिक सन्देश समग्र भारतवर्ष में गूँजे थे। भगवान् श्री महावीर का सन्देश पच अणुव्रत के रूप में था श्रीर गीतम बुद्ध का मन्देश पंचशील के रूप में। भावायंश्री तुलसी का त्रणवृत सन्देश पश्चिम में पूर्व की स्रोर प्रति-ध्वनित हुन्ना है। यह इस ग्रंचल का सौभाग्य है। उनके धवल समारोह के अवसर पर उनके कार्यों के प्रति श्रद्धा प्रकट करना प्रत्येक विचारशील स्रपना कर्नव्य समसना है।



# विकास के साथ धार्मिक भावना

श्री वीपनारायणसिंह सिचाई मंत्री, बिहार सरकार

धाचार्यश्री तुलसी के दर्शन प्रथम बार कई साल पहले मुक्ते जयपुर में हुए। तब से धनेकों बार उनके दर्शन का धवसर मुक्ते मिला है। जन-समाज के नैतिक बल को बढ़ाने के लिए उनका प्रवचन धसरदार होता है। बराबर पैदल यात्रा कर समाज के कल्याण के लिए बे रास्ता बताते हैं। उनका सरल जीवन तथा सुन्दर स्वास्थ्य बहुत ही प्रभावशाली है।

भारतवर्ष भाज स्वतन्त्र है। विकास का काम जोरों से चल रहा है। ऐसे समय में घार्मिक भावनाओं का समुचित विकास होता रहे और समाज नैतिकता के रास्ते पर चले, इसकी बड़ी भावश्यकता है। ऐसे कार्यों के लिए भाचार्यश्री तुलसी जैसे मार्ग-दर्शक की भावश्यकता है। मेरी शुभ कामना है कि भाचार्यश्री तुलसी स्वस्थ रहकर सदा समाज का मार्ग-दर्शन कराते रहें।



## आध्यात्मिकता के धनी

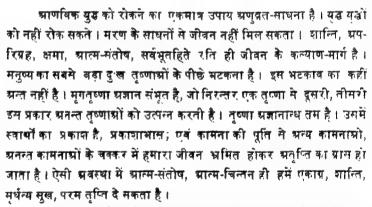
श्री प्रकुल्लचन्द्रसेन, बाग्र मंत्री, बंगाल

याचार्यश्री तुलसी ने अणुव्रत-आन्दोलन का प्रवर्तन कर मारत के धर्म गुरुष्ठों के लिए एक अनुकरणीय उदाहरण उपस्थित किया है। आज जबकि जाति, प्रान्त, भाषा व धर्म के नाम पर अनेकानेक भगड़े खड़े हो रहे हैं, स्वार्थ-भावना की प्रबलता है, साम्प्रदायिकता निष्कारण ही पनप रही है, आचार्यश्री तुलसी द्वारा नैतिक कान्ति का आह्वान सचमुच ही उनके दूरदर्शी चिन्तन का परिणाम है। शाचार्यजी विशुद्ध मानवतावादी हैं और प्रत्येक वर्ग में ब्याप्त बुराई का निराकरण करना चाहते है। मुभे उनके दर्शन करने का अनेक्षाः सौभाग्य मिला है और निकट बठ कर उनके पवित्र उपदेश मुनने का भी। वे आध्यात्मिकता के धनी हैं और उनमें साधना का प्रखर तेज है। वे मारतीत ऋषि-परम्परा के वाहक हैं, अतः भारतीय जनता को उन्हें अपने बीच में पाकर गौरव की अनुभूति भी है। उनके प्रति श्रद्धा अभिव्यक्त करना प्रत्येक देशवामी का अपना कर्तव्य है।



# आप्त-जीवन में अमृत सीकर

श्री उदयशंकर भट्ट

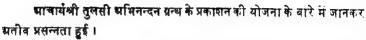


श्राचार्यश्री तुलसी ने हमें इस दिशा में श्राप्त-जीवन में श्रमृत सीकर की तरह नई दृष्टि दी है। श्राहिसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह, क्षमा, दया के शक्षय अस्त्र देकर श्राजीवनीय तत्त्वों से संघर्ष करके जीवन का प्रतिष्ठा-प्रण दान किया है। श्रहिसा सार्वकालिक अस्त्र है। अले ही वह कुछ काल के लिए निर्वेत दिखाई दे, किन्तु उससे युगयुगान्तर प्रकाशित होते हैं श्रीर इससे पारस्परिक जीवन की चरम एवं परम प्राणमयी धाराएं गतिमान होती रहती है। सत्य श्राचरण, सत्य के प्रति निष्ठा श्रीर स्वयं सन्यात्मा के दर्शन होते हैं, जो हमारे जीवन का चरम उल्लास है। मेरी कामना है, श्राचार्यश्री तुलसी के जीवन चिन्तन से निकले 'श्रण्यत' के उद्गार निरन्तर हमारे लिए विर सुख के कारण बनें। हम अपने में श्रपने सुख को लोज-कर शास्त्र-प्रकाशा हों। मेरा श्राचार्य तुलसी को शत-शत श्रीभवन्दन।



## नैतिकता का वातावरण

श्री मोहनलाल गौतम भूतपूर्व सामुदायिक विकासमंत्री, उत्तरप्रदेश सरकार



श्राचारंशी तुलसी स्वयं श्रपने जीवन से तथा श्रपने श्रणुवत-श्रान्दोलन के द्वारा जिस नैतिकता का वातावरण उत्पन्त कर रहे हैं, वह श्राज के युग में भारतीय जीवन को सजीव श्रीर सशक्त रखने के लिए श्रावश्यक ही नहीं, श्रपितु श्रनिवार्य भी है। श्रान्तरिक शोध के श्रमाव में बाह्य प्रगति कल्याणप्रद के रथान पर हानि-कर होगी, यह निविवाद है।

मुक्ते विश्वास है कि इस मिनन्दन ग्रन्थ द्वारा बाचार्यश्री तुलसी के जीवन, विचार पद्धति भौर कार्यप्रणाली पर जो बहुमुखी प्रकाश पड़ेगा, वह हमारे जन जीवन को बालोकित कर सही मार्ग की घोर उन्मूख करने में सहायक होगा।



1

1

# प्राचीन सभ्यता का पुनरुज्जीवन

महाशय बनारसीदास गुप्ता उपमन्त्री, जेल विभाग, पंजाद सरकार

प्राचार्यश्री तुल्सी जैसे उस महान् तपस्वी के दर्शन मैंने उम समय किये थे, जब कि वे हजारों मील की पद-यात्रा करते हुए हाँमी (पंजाव) पधारे थे। मैंने भी प्राप्तका पंजाब सरकार और पंजाब की जनता की और से, हजारों नर-नारी जो भारत के सभी शान्तों से वहाँ थाये हुए थे, उनकी विशाल उपस्थित में अभिनन्दन और स्वागत किया था। धाचार्यश्री तुलसी का यह परिश्रम भारत की प्राचीन सभ्यता को पुनरुज्जीवित करने में सफल हो रहा है और रहेगा। देश की स्वतन्त्रता के भरण-पोषण के लिए जहाँ तमाम साधन जुटाने की आवव्यकता है, वहाँ इस देश में चरित्र-निर्माण का महान् कार्य चलाने की भी महती धावश्यकता है। आपके पुनीत प्रयत्न के फलस्वरूप लाखों प्राणी इस महान् कार्य में जुटे हुए हैं। परन्तु इसना ही काफी नहीं है। यह देश तो बड़ा महान् है। इसका भूतकाल बड़ा महान् रहा है। आधी! मिल कर इसके भविष्य को भी उज्ज्वल बनाए।

मैंने पिछले चार सालों में धाचार्यश्री तुलसी के चरण-जिल्लों पर चलने का थोड़ा-सा प्रयास किया है। पदयात्राएं की ग्रीर गाँव-गाँव में जाकर सांस्कृतिक जीवन का संदेश दिया। इससे मुक्ते यह ग्रनुभव हुगा कि यह रास्ता महान् कल्याण-कारी है। भारतवर्ष को भाप जैसे हजारों तपस्वी साधुओं की परम भावश्यकता है ताकि यह देश फिर से धर्मपरायण होकर ऊँचे भादशों, अपनी सम्यता भीर संस्कृति की रक्षा के लिए भापके बताये हुए मार्ग पर चल सके और संसार में फिर विख्यात होकर माध्यास्मिकता के प्रति भाक्षण उत्पन्न कर सके। मैं इस ग्रुभ अवसर पर भापका ग्राभनन्दन करता हूँ।



# सर्वोत्कृष्ट उपचार श्री बन्दावनलाल वर्मा, शाँसी

मुभे आचार्यश्री तुलसी के दर्शनों का सीभाग्य तो कभी प्राप्त नहीं हुआ, परन्त मैं पत्रों में प्रकाशित उनकी बाणी को नत-मस्तक होकर पढ़ा करता है।

हमारे देश के लिए इस समय ऐसे महान सत्पुरुष की परम भावश्यकता है। समाज धीर राष्ट्र का ही वह हित नहीं कर रहे है, प्रत्युत मानव भर का भी। राष्ट्र में कुछ प्रवृत्तियाँ विघटन की ओर हैं। आचार्यश्री पृणा और द्वेष की तिरो-हित करवाकर समाज को संगठित-सच्चे और कल्याणकारी रूप में संगठित करने का शभ कार्य कर रहे हैं। साथ ही वे व्यक्ति के विकास भौर उत्थान पर भी ध्यान दिये हुए हैं। तभी तो उन्होंने कहा है कि प्रत्येक व्यक्ति कम-से-कम पन्द्रह मिनट प्रतिदिन स्वाध्याय करे ग्रीर एकाग्र मन होकर किसी स्वस्थ विषय का चिन्तन करे। भ्राजकल जहाँ देखिये वहाँ जीवन पर तरह-तरह का बोभ बढता जा रहा है। व्यक्ति में बेचैनी बढ़ रही है। इसके कारण समाज में खटपट ग्रीर व्यक्तियों में नाना प्रकार के रोग फील रहे हैं। आचार्यश्री का बनलाया हम्रन उपचार सर्वोत्कृष्ट है। जो जिस प्रकार इसे अपना सके, अवश्य अपनाये और उसका श्चम्यास करे। मुभे रत्तीभर भी सन्देह नहीं कि इसमे व्यक्ति को मन्नुलन प्राप्त होगा श्रोर साथ ही समाज को सगठन एवं उत्थान।





# आध्यात्मिक जागृति सवाई मानसिंहजी

W

महाराजा, जयपुर

श्राचार्यश्री तुलसी द्वारा प्रवर्तित अणवत-आन्दोलन ने गत बारह वर्षों में जो प्रगति की है,वह बादाातीत व सन्तोषप्रद है। इस भीषण संघर्ष के यूग में जनता को अध्यात्म मार्ग-प्रदर्शन की आवश्यकता है। भौतिक जागृति से अधिक महत्त्व-पूर्ण हमारी बाध्यात्मिक जागृति है, जिसके ब्रभाव में जीवन सुखी नहीं बन सकता। संसार का वास्तविक कल्याण तभी हो सकता है, जबकि जन-साधारण के चरित्र की म्रोर घ्यान दिया जाये। माचार्यश्री तुलसी ने इस दिशा में चारित्रिक जागति का एक ठोस कदम रखा है। सबसे बड़ी विशेषता इस म्रान्दोलन की यह है कि बिना किसी जाति, सम्प्रदाय ग्रीर वर्ग-भेद के जनता इसमें भाग लेकर लामान्वित हो रही है। राष्ट्रव्यापी इस पूनीत कार्य की प्रगति में जिन महानुभावों ने प्रपता योग दिया है, वे भी बधाई के पात्र हैं।

मेरी हार्दिक कामना है कि नैतिक निर्माणकारी व जन-जीवन की शुद्धि का यह उपक्रम पूर्ण सफलता प्राप्त करे एवं अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति की दिशा में एक महत्त्व-पूर्ण प्रयास सिद्ध हो ।

श्राचार्यश्री तुलसी का तपःपूत जीवन सूष्ट्रत मानवता को उदबुद्ध करने में संजीवनी का कार्य कर रहा है। अज्ञान्ति और हिसा से प्रताड़ित समाज को उनके उपदेशों से राहत की अनुभृति होगी, इसमें सन्देह नहीं है।



### उत्कट साधक श्री मिश्रीलाल गंगवाल वित्तमन्त्री, मध्यप्रदेश सरकार

प्रकाशित हो रहा है। धाचार्यश्री तुलसी अहिंसा और सत्य के उपासक तथा भारतीय संस्कृति और दर्शन के उत्कट साधक हैं। वे सरल, मृदुभाषी 'साधु शब्द को वास्तविक रूप में चरितार्थ करने वाले धादर्श पुरुष हैं। उनके समक्ष किसी भी बुद्धिजीवी का मस्तक श्रद्धा से नत हो जाता है। उनकी गणना देश के गणमान्य साहित्य सेवियों और संस्कृत तथा दर्शन के गिन-चुने विद्वानों में की जाती है। उनसे अनेक व्यक्तियों को साहित्य और दर्शन में रुचि रखने की प्रेरणा मिली तथा उनके सान्निच्य में बैठ कर अनेक जनोपयोगी पुस्तकों का सुलन करने का अनेकों को अवसर मिला। उन्होंने केवल समाज का ही मार्ग-दर्शन नहीं किया वरन साधु-समाज में फली अनेक बुराइयों का उन्मूलन करने के लिए संस्कृति, दर्शन और नैतिकता को नया मोड़ देकर अध्यात्म का सही मार्ग प्रशस्त किया। उनका व्यक्तित्व तथा उनके द्वारा जन हित में किये गए अनेक कार्य दोनों ही एक-दूसरे के पूरक होकर जन-मानस के लिए श्रद्धा की वस्तु बने हैं। ऐसे महान् व्यक्ति का अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित कर निश्चित ही समाज के लिए एक वडा उपादेय कार्य

किया जा रहा है। मभे पूर्ण विश्वास है कि इससे जन-मानस को श्रात्मीय बोध

प्राप्त होगा । मैं ग्रभिनन्दन ग्रन्थ की हृदय से सफलता चाहता हूं।

यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि भाचार्यश्री तुलसी अभिनन्दन ग्रन्थ



## महान् आत्मा

डा० कामताप्रसाद जैन, पी-एच० डी०, एम० ग्रार० ए० एस० संवासक—श्रुब्रिस विश्व भैन मिशन

मुवासित फुलों की स्गन्धि भ्रनायास ही सर्वत्र फैलती है। तदनुरूप जो महान धात्मा प्रपता समय ज्ञानोपयोग रूप धात्मानुभूति-चर्या में बिलाता है उसका यश भी दिगदिगन्त में फैल जाता है। कहा भी है---णाणीपयोग जो कालगमइ तस् तिणय किलि भुवणयला भमइ । श्रद्धेय ग्राचार्य तुलसीजी इसी श्रेणी के संत है, महान श्रात्मा हैं। गत बुद्ध जयन्ती समारोह के श्रवसर पर जब दिल्ली में जैनों ने जो साँस्कृतिक सम्मेलन किया था, उसी में हमें उनके दर्शन करने का सीभाग्य प्राप्त हम्रा। मंच पर ब्वेत वस्त्रों में सज्जित वे बड़े ही सौम्य ग्रौर शान्त दिखाई पड़ रहे थे। उनके हृदय की शभ्र उज्जवलता मानो उनके वस्त्रों को चमका रही थी । उनका ज्ञान, उनकी लोकहित भावना ग्रीर धर्म-प्रसार का उत्साह ग्रपूर्व ग्रीर श्रनुकरणीय है। प्रणुत्रत-श्रान्दोलन के द्वारा वे सर्वधर्म का प्रचार सभी वर्गों में करने में सफल हो रहे हैं। एक श्रोर जहाँ वे महामना राष्ट्रपति श्रीर प्रधानमंत्री नेहरू को सम्बोधित करते हैं तो दूसरी भोर गाँव भीर खेतों के किसानों भीर मज-दूरों को भी सन्मार्ग दिखाते हैं । उनका संगठन देखते ही बनता है ? वे सच्चे श्रमण हैं। उनका धभिनन्दन सार्थक तभी हो, जब हम सब उनकी शिक्षा को जीवन में उतारें। इन शब्दों में मैं अपनी श्रद्धा के फूल उनको भाषित करता हुआ उनके दीर्घ-श्रायु की मंगल कामना करता हैं।



# प्रभावशाली चारित्रिक पुनर्निर्माण

डा० जवाहरलाल रोहतगी

उपमंत्री, उत्तरप्रदेश सरकार

हमारे देश की पुरातन परम्परा रही है कि जब कभी राष्ट्र पर काई संकट आया, ऋषि-मुनियों ने अपनी साधना और तपोबल को लोकोपकार की दिशा में उन्मुख किया और जन-साधारण में आत्म-विश्वास पैदा किया, जिसके फलस्वरूप दुरूह कार्य भी सरल और सुगम हो गये। यह परम्परा आज भी किसी-न-किसी रूप में विद्यमान है।

आचार्यभी तुलसी सरीसे विरले लोग हमारे बीच मे हैं जो न केवल राष्ट्र के नैतिक उत्थान में लगे हुए हैं, वरन् उसकी छोटी-से-छीटी शक्ति के यथेष्ट उपयोग की चेष्टा कर रहे हैं। साथ ही आचार्य प्रवर के नेतृत्व में प्रभावशाली साधुसमाज जन-सम्पर्क द्वारा चारित्रिक पुनर्निर्माण के कार्य में लगा हुआ है।

सच पूछा जाये तो भाज के युग में जब हम भाषिक एवं सामाजिक पुनस्त्थान के लिए योजनाबद्ध कार्य कर रहे हैं, भ्रणुक्त जैसे भ्रान्दोलन का विशेष महत्त्व है। इससे हमारे उद्देश्यों को पूरा करने में बड़ा सम्बल मिलता है।

(मुफ्ते प्रसन्तता है कि घाचार्यश्री तुलसी के सार्वजनिक सेवा-काल के पञ्चीस वर्ष पूरे होने के उपलक्ष में घभिनन्दन का धायोजन किया गया है। मैं आपके प्रयास की सफलता की कामना करता हूँ।



# तपोधन महर्षि

स्राचार्यश्री तुलसी वर्तमान स्रशान्ति के युग में शोक-सन्तप्त स्रशान्त मानव को जीवन की शान्तिमय रूपरेखा के मार्गदर्शक, तपोधन एवं महर्षि के रूप में झाज भारत में विद्यमान हैं। प्राचार्य तुलसीजी ने सपूर्व साधना से न केवल श्रपना ही जीवन धन्य किया है, बल्कि धपने प्रभावशाली साधु-संघ को भी एक विशेष गति-विधि देकर जन-कल्याण के लिए श्रपित किया है, जो बड़ा ही श्रेयस्कर कार्य है। वह केवल जैन-समाज के निमित्त ही नहीं, वरन् समस्त मानव-जाति के लिए एक ध्येय के रूप में रहेगा।

मेरी म्राचार्य तुलसी के प्रति म्रटूट श्रद्धा है। जो पावन कार्य वे कर रहे हैं, वह दिग्दिगन्त में उनके नाम को सदा म्रमर रखेगा।

धवल समारोह मनाने के कार्यक्रम एवं प्रिमनन्दन ग्रन्थ की रूपरेखा का जो निर्माण हुमा है, तदर्थ हार्दिक बधाई देता हूँ और चाहता हूँ कि ये कार्य खूब ही समारोहपूर्वक सम्पन्न हों और श्राचार्यश्री तुलसीजी महाराज के तप, ज्ञान एवं सदुपदेश मानव की श्रशान्ति मिटाकर उन्हें शान्ति प्राप्त कराने में सहायक हों, यही मेरी हार्दिक कामना है।

मेरी बहुत दिनों से इच्छा हो रही है कि आकर महामहिम श्री तुलसीजी महाराज के दर्शन कर अपने को धन्य समर्भू, किन्तु कार्याधिक्य की उलक्षतों के कारण यह इच्छा पूर्ण नहीं हो पा रही है और मन की भन में ही गीते खाती रहती है। आशा है कि यह शुभ दिन भी अवस्य ही प्राप्त होगा।



## अनेक विशेषताओं के धनी

डा० पंजाबराब देशमुख कृषिमंत्री, भारत सरकार

यह जानकर मुक्ते प्रसन्नता हुई कि प्राचार्यश्री तुलसी जी के महान् कार्यों के प्रति श्रद्धांजलि श्रप्तित करने के उद्देश्य से उन्हें श्रीभनन्दन ग्रन्थ मेंट करने का निश्चय किया गया है। यों तो श्राचार्यजी अनेक गुणों श्रीर विशेषताश्रों के धनी है—हिन्दी साहित्य, दर्शन श्रीर शिक्षा भी उनके श्रिष्ठित क्षेत्र हैं। संस्कृत श्रीर हिन्दी भाषा के विकास में उनका व्यापक योग है, फिर भी उनकी सबसे बड़ी विशेषता तो यह है कि उन्होंने अपने-आपको श्रीर श्रपने प्रभावशाली साधु-संघ को जन-कल्याण के लिए श्रपित किया है।

मुक्ते भाशा है कि अधिक-से-अधिक लोग उनके महान कार्यों तथा भादशों का नुसरण करते हुए लोक-कल्याण की भावना को अपनार्येगे।

## वास्तविक उन्नति

虁

भी गुरमुख निहालसिंह राज्यपाल, राजस्थान

धाचार्य तुलसी के जीवन व कार्य से हमें सदा प्रेरणा मिलती रहेगी और हमारा यह प्रयस्त होना चाहिए कि जो सिद्धान्त उन्होंने हमारे सामने रखे हैं उनको ग्रहण करे। देश का वास्तविक उन्नति तभी हो सकती है जब कि सामाजिक भीर ग्राधिक उन्नति के साथ-साथ ग्राध्यात्मिक उत्थान भी हो।



## सफल बनें

सरसंघचालक मा० स० गोलवलकर

याचार्यजी को यहाँ के सभी की बोर से एवं प० पू० श्री गुक्जी की घोर से विनम्न प्रणाम प्रेषित करने की कृपा करें। उनको परम कृपालु परमात्मा सुदीर्घ एवं निरामय बायु प्रदान करे ताकि दुःख से भरे हुए, शोषित, पीड़ित, मार्गदर्शन के लिए इधर-उधर भटकने वाले त्रस्त मानव समाज को पथ-प्रदर्शन करने में वे सफल वनें।

---मृ० कृ० चौथाईबाले



# समाज के मूल्यों का पुनरुत्थान

श्री मोहनलाल सुखाड़िया मुख्यमंत्री, राजस्यान सरकार

मुभ्रे यह जान कर प्रसन्तता है कि बाचार्यश्री तुलसी घवल समारोह समिति की बोर से एक ब्रभिनन्दन ग्रन्थ मेंट किया जा रहा है।

द्याचार्यश्री तुलसी देश के एक साधु-संघ के नेता तथा श्रणव्रत-श्रान्दोलन के प्रणेता है, जिसका उद्देश्य समाज के मूल्यों का पुनक्त्थान तथा समाज का नैतिक विकास है। ग्रिभनन्दन ग्रन्थ में नैतिक तथा सामाजिक विषयों पर प्रेरणाप्रद तथा उपादेय सामग्री का संकलन होगा, ऐसा मेरा विश्वास है।

मैं इस धवसर पर ग्राचार्यप्रवर के दीर्घ जीवन के लिए शुभकामना करते हुए ग्रन्थ की सफलता चाहता हुँ।



### आचार-प्रधान महापुरुष

श्री धलगूराय शास्त्री बनमंत्री, उत्तर प्रदेश सरकार



श्री तुलसीजी वर्तमान युग के सदाचार प्रचारको तथा ग्राचार-प्रधान महा-पुरुषों में सूर्य समान देदीप्यमान व्यक्ति है। उनकी प्रेरणाश्चों ने जन-मानस में उच्च ग्राचरण के लिए उथल-पुथल उत्पन्न हो जाती है। मुभे इनके दर्शन का सीभाग्य प्राप्त हुन्ना है। श्री तुलसीजी दीर्घ ग्रायु प्राप्त करें ग्रीर मानव समाज को ग्राचार-शिक्तर पर ले जाकर उन्हें सिद्धशिला का ग्राधिकारी बनावें, यही कामना है, ईव्वर से यही याचना है।

## अपना हो परिशोधन

डा० हरिवंशराय 'बच्चन' एम० ए०, पी-एच० डी०

मुक्ते यह जानकर प्रसन्नता है कि शाचार्यश्री तुलसी के श्रमिनन्दन का श्रायोजन किया गया है। संत का श्रभिनन्दन क्या? हम श्रपना ही परिशोधन कर रहे हैं। योजना की सफलता के लिए मेरी हार्दिक शुभकामना। सब कुछ श्राचार्य के श्रनुरूप हो।

उनके कार्य से कौन अपरिचित है। मुक्त-जैसे अपरार्थ को भी उनकी करूणा का प्रसाद मिल चुका है। एक दिन उन्होंने स्वयं पाद-विहार से आकर मेरे घर पर मुक्ते दर्शन दिये ये और मेरे घर को पवित्र किया था।

्रमुक्ते उनके विषय में कहने का अधिकार नहीं। मेरा प्रणाम उनके चरणों में निवेदित कर दें।



# एक अनोखा व्यक्तित्व

#### मुनिश्री धनराजजी

मेरे दीक्षक, शिक्षक व गुरु होने के कारण मैं उन्हें असाधारण प्रतिभा सम्पन्न, साहित्य जगत् के उज्जवल नक्षत्र, अमित आत्मबली, कुशल अनुशासक व अनुत्तर आचार-निधि आदि उपमाओं से अलंकृत कहाँ, ऐसी बात नहीं है। जिस प्रकार सूर्य का प्रकाश, चन्द्रमा की शीतलता और जलिध का गाम्भीयं प्रमाणित करने की आवश्यकता नहीं, उसी प्रकार महापुरुषों के व्यक्तित्व को निखारने की आवश्यकता नहीं होती; वह स्वतः निखरित होता है। महापुरुष जिस और चरण बढ़ाते हैं, वही मार्ग; जो कहते हैं, वही शास्त्र और जो कुछ करते हैं, वही कर्तव्य बन जाता है। महापुरुष तीन कोटि के माने गये हैं, १. जन्मजात, २. श्रम व योग्यता के बल पर और ३. कृत्रिम, जिन पर महानता थोषी जाती है।

श्राचार्यश्री तुलसी को जन्मजात महापुरुष कहने में कोई श्रापत्ति नहीं, किन्तु तो भी श्रम श्रौर योग्यता से बने इस स्वीकरण में भी दो मत नहीं होंगे।

कर-कंकण को दर्पण की नरह ही प्रत्यक्ष को प्रमाण की अपेक्षा नहीं होती। इतिहास कहना है—पूर्वजात महा-पुरुषों का ग्रमर व्यक्तित्व स्वतः धरा के कण में जमत्कृत हुन्ना है तो फिर वर्तमान में हो तो भादचर्य व नवीनता क्या हो सकती है ?

श्राचार्यश्री तुलसी के व्यक्तित्व का श्ररुण श्रालोक मजदूर की भोंपड़ों से लेकर राष्ट्रपति भवन तक फैल चुका है; इसकी श्रमुभूत यथार्थता को स्पष्ट करके ही मैं श्रागे लिखना चाहुँगा।

घटना जुलाई सन् १६५६ की है। राजस्थान की राजधानी जयपुर की यातायात संकुल मिर्जा इस्माइल रोड स्थित दूगड़ विल्डिंग की दूमरी मंजिल में मैं ठहरा हुआ था। एक युवक पारिवारिक कलह में ऊब कर मेरे पास भ्राया। कहने लगा मुभे मंगल पाठ मुनाओ। मैंने मुना दिया। वह उसी समय वहाँ में नीचे मड़क पर कूद पड़ा। मैं भ्रवाक रह गया। उसके चोट भी लगी। जोरों से चिल्लाने लगा। मैंकड़ों लाग इकट्ठे हो गये। वातावरण कुछ कलुषित हो गया। उसे थाने में ले जाया गया। वहाँ उसने कह दिया—उस मकान में तीन साधु भी ठहरे हुए हैं। उन्होंने किसी के कहने में निष्कारण ही मुभे पकड़ कर नीचे गिरा दिया। थानेदार ने पूछा—वे साधु कौन हैं? उसने कहा—आचार्यश्री तुलसी के जिष्य तेरापंथी साधु हैं। थानेदार श्राचार्यश्री के सम्पर्क में भा चुका था। उसने कहा—तुम भूठ बोलते हो। धाचार्य तुलसी व उनके शिष्य ऐसा काम कभी नहीं कर सकते। मैं उनमे अच्छी तरह परिचित हूँ। आखिर दो-चार डण्डे लगने पर युवक ने सच्ची घटना रख दी और कहा मैं स्वयं ही नीचे गिरा था। साधुओं का कोई दोष नहीं। मैंने बहकावे में आकर भूठ ही उनका नाम लिया है। अस्तु! यह है आपके बहुमुखी व्यक्तित्व की परिचायिका एक छोटी-सी घटना।

श्राज ग्रापका व्यक्तित्व एक राष्ट्रीय परिधि में सीमित न रहकर अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कर चुका है। बम्बई में श्री वेरन ग्रादि कित्तपय श्रमेरिकनों ने ग्राचार्यश्री से कहा—''हम ग्रापके माध्यम से श्रणुद्धतों का प्रचार श्रपने देश में करना चाहते हैं, क्योंकि वहाँ इनकी ग्रावश्यकता है।''

सन् १६५४ में जापान में हुए सर्व धर्म सम्मेलन के प्रतिनिधियों ने यह निरुचय किया कि ग्रणुव्रतों का प्रचार यहाँ भी होना चाहिए।

द्वितीय महायुद्ध की लपटों से भुलसे हुए संसार को 'श्रशान्त विश्व को शान्तिका सन्देश' नाम से श्रापने एक सन्देश दिया, जिस पर टिप्पणी करते हुए महात्मा गांधी ने लिखा, "क्या ही श्रच्छा होता, दुनिया इस महापुरुष के बताये हुए मार्ग पर चलती।"

#### सास्त्रिक विचारघारा की सपेक्षा

भाज स्रनेक व्यक्ति भापके सम्पर्क के लिए उत्सुक रहते है। उसका मूल कारण है— प्रापका प्रसरणशील व्यक्तित्व। लाखों व्यक्तियों ने श्रापका साक्षात् सम्पर्क किया है। आपके नाम और नैतिक उपक्रमों से तो करोड़ों व्यक्ति परिचित हैं। श्रापके प्रति जन-मानस की जो श्रद्धा और भावना है, उसका सही चित्रण इस लघुकाय निवन्ध में ससम्भव है, किन्तु यह कहने का लोभ भी संवृत नहीं कर सकता कि प्राचीन और सर्वाचीन युगल विचारधाराएं श्रापके प्रति भाशं-सोपचित है। यद्यपि आप किसी को भौतिक समृद्धि अथवा स्वराज्य-प्रदान नहीं करते, किन्तु श्रापके प्रेरणा पीयूष सं मानव सहज उन्मार्ग को छोड़ कर सन्मार्ग को ग्रहण कर जीवन का वास्तविक लक्ष्य प्राप्त करने में समर्थ हो सकता है। विविध समस्याधों को जड़ प्राप विचार-दारिद्वच को ही मानते हैं। मनुष्य का वर्तमान भौर भविष्य दोनों विचारों पर ही स्वक्तित है। शुद्ध और सात्विक विचारधारा की प्रपेक्षा है। इसके श्रमाव में सनेक समस्याधों का उद्गमन होता है।

आपके विशाल व्यक्तित्व के अनेक कारणों में मैं भाषार को प्राथमिकता देता हूँ। जिसका आषार आकाश की तरह विशद और सुस्थिर है, उसका व्यक्तित्व भी अनन्त व असीम है। आषारहीन व्यक्तित्व विना नींव के प्रासाद तुल्य होता है। किसी का व्यक्तित्व प्रायोगिक होता है और किसी का नैसर्गिक। भापका व्यक्तित्व द्विधारमक है। आचार की अपेक्षा नैसर्गिक और विचार-दारिद्वध को मिटाने की अपेक्षा प्रायोगिक। धतः आपके व्यक्तित्व के आगे भनोखा विशेषण युक्तिसंगत ही है।



## मानवता के उन्नायक

श्री यशपाल जैन सम्पादक—जीवन साहित्य

श्राचार्यश्री तुलसी का नाम मैंने बहुत दिनों से सुन रख था, लेकिन उनसे पहले-पहल साक्षात्कार उस समय हुन्ना जबिक वे प्रथम बार दिल्ली माये थे भौर कुछ दिन राजधानी में ठहरे थे। उनके साथ उनके भन्तेवासी साधु-साध्वियों का विज्ञाल समुदाय था भौर देश के विभिन्न भागों से उनके सम्प्रदाय के लोग भी बहुत बड़ी संख्या में एकत्र हुए थे।

#### विभिन्न प्रालोचनाएं

श्राचार्यश्री को लेकर जैन समाज तथा कुछ जैनेनर लोगों में उस समय तरह-तरह की बातें कही जाती थी। कुछ लोग कहते थे कि वह बहुन ही सच्चे श्रीर लगन के श्रादमी हैं श्रीर घर्म एवं समाज की सेवा दिल से कर रहे हैं। इस के विपरीत कुछ लोगों का कहना था कि उनमें नाम की बड़ी भूख है श्रीर वह जो कुछ कर रहे हैं, उसके पीछे तेरापंथी सम्प्रदाय के प्रचार की तीव लालमा है। मैं दोनों पक्षों की वानें सुनना था। उन सबको सुन-सुन कर मेरे मन पर कुछ श्रजीब-सा चित्र बना। मैं उनमे मिलना टालता रहा।

श्रचानक एक दिन किसी ने घर श्राकर सूचना दी कि श्राचार्यश्री हमारे मुहल्ले मे आये हुए हैं और मेरी याद कर रहे हैं। मेरी याद ? मुक्ते विस्मय हुआ। मैं गया। उनके चारों श्रोर बड़ी भीड़ थी और लीग उनके चरण स्पर्ध करने के लिए एक-दूसरे को ठेल कर श्रागे श्राने का प्रयत्न कर रहे थे। जैसे-तैसे उस भीड़ में से रास्ता बना कर मुक्ते श्राचार्यश्री जी के पास ले जाया गया। उस भीड़-भाड़ और कोलाहल में ज्यादा बातचीत होना तो कहाँ सम्भव था, लेकिन चर्चा मे श्रीधक जिस चीज की मेरे दिल पर छाप पड़ी, वह था श्राचार्यश्री का सजीव व्यक्तित्व, मधुर व्यवहार और उन्मुक्तना। हम लोग पहली बार मिले थे, लेकिन ऐसा लगा मानो हमारा पारस्परिक परिचय बहुत पुराना हो।

उसके उपरान्त माचार्यश्री से मनेक बार मिलना हुआ। मिलना ही नहीं, उनसे दिल खोल कर चर्चाएं करने के अवसर भी प्राप्त हुए। ज्यों-ज्यों में उन्हें नजदीक से देखता गया, उनके विचारों से मवगत होता गया, उनके प्रति मेरा मृतुराग बढ़ता गया। हमारे देश में साधु-सन्तों की परम्परा प्राचीन काल से ही चली था रही है। भाज भी साधु लाखों की संख्या में विद्यमान हैं; लेकिन जो सन्चे साधु हैं, उनमें से मधिकांश निवृत्ति-मार्गी हैं। वे दुनिया से बचते हैं भौर प्रप्नी मातिमक उन्नति के लिए जन-रब से दूर निजंत स्थान में जाकर बसते हैं। मात्म-कल्याण की उनकी भावना भौर एकान्त में उनकी तपस्या नि सन्देह सराहृतीय है, पर मुफे लगता है कि समाज को जो प्रस्यक्ष लाभ उनसे मिलना चाहिए, वह नहीं मिल पाता।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने लिखा है, "मेरे लिए मुक्ति सब कुछ त्याग देने में नहीं है। सृष्टि-कर्ता ने मुफे अगणित बन्धनों में दुनिया के साथ बाँध रखा है।"

श्रावार्यश्री तुलसी इसी मान्यता के पोषक हैं। यद्यपि उनके सामने त्याग का ऊँवा घादर्श रहता है श्रीर वे उसकी श्रीर उत्तरोत्तर ग्रग्नसर होते रहते हैं, तथापि वे समाज श्रीर उसके सुख-दु:ख के बीच रहते हैं श्रीर उनका महिनश प्रयस्त रहता है कि मानव का नैतिक स्तर ऊँवा उठे, मानव सुखी हो भीर समूची मानव-जाति मिल-जुल कर प्रेम से रहे। वह एक सम्प्रदाय-विदोष के ग्रावार्य ग्रवस्य हैं; लेकिन उनकी दृष्टि श्रीर उनकी करणा संकीण परिधि से ग्रावृत नहीं है।

वे सबके हित का जिन्तन करते हैं भीर समाज-सेवा उनकी साधना का मुख्य भंग है।

गांधीजी कहा करते थे कि समाज की इकाई मनुष्य है और यदि मनुष्य का जीवन शुद्ध हो जाए तो समाज अपने-आप मुधर जायेगा। इसलिए उनका ओर हमेशा मानव की शुचिता पर रहता था। यही बात आचार्यश्री तुलसी के साथ है। वे बार-बार कहते हैं कि हर आदमी को अपनी ओर देखन। चाहिए, अपनी दुर्बलताओं को जीतना चाहिए। बर्नमान युग की अशान्ति को देख कर एक बार एक छात्र ने उनमे पूछा—'दुनिया में शान्ति कब होगी?' आचार्यश्री ने उत्तर दिया — 'जिस दिन मनुष्य में मनुष्यता था जायेगी।' अपने एक प्रवचन में उन्होंने कहा—'रोटी, मकान, कपड़े की समस्या से अधिक महत्त्वपूर्ण समस्या मानव में मानवता के अभाव की है।'

#### मानव-हित के चिन्तक

मानव-हित के चिन्तक के लिए आवश्यक है कि वह मानव की समस्याओं से परिचित रहे। आचार्यश्री उस दिशा में अत्यन्त सजग हैं। भारतीय समाज के सामने क्या-क्या किनाइयाँ हैं, राष्ट्र किस संकट से गुजर रहा है, अन्तर्राष्ट्रीय जगत के क्या-क्या मुख्य मसले हैं, इनकी जानकारी उन्हें रहती है। वस्तुतः बचपन से ही उनका फुकाव प्रध्ययन और स्वाध्याय की ओर रहा है और जीवन को वे सदा खुली आँखों से देखने के अभिलाघी रहे हैं। अपने उसी अम्यास के कारण आज उनकी वृष्टि बहुत ही जागरूक रहती है और कोई भी छोटी-बड़ी समस्या उनकी तेज आँखों से बची नहीं रहती।

जैन-धर्मावलस्वी होने के कारण ग्रहिंसा पर उनका विश्वास होना स्वाभाविक है। लेकिन मानवता के प्रेमी के नाते उनका वह विश्वास उनके जीवन की ज्वास बन गया है। हिंसा के युग में लोग जब उनसे कहते हैं कि ग्राणिवक ग्रस्त्रों के सामने ग्रहिंसा कैंमे सफल हो सकती है तो वे साफ जवाब देते हैं, "लोगों का ऐसा कहना उनका मानसिक अम है। ग्राज तक मानव-जानि ने एक स्वर से जैसा हिंसा का प्रचार किया है, वैसा यदि ग्रहिंसा का करनी नो स्वर्ग भ्रयती पर उनर ग्राता। ऐसा नहीं किया गया, फिर ग्रहिंसा की सफलता में सन्देह क्यों ?"

श्रागे वे कहते हैं—"विश्व शान्ति के लिए श्रणबम श्रावश्यक है, ऐसा कहने वालों ने यह नहीं सोचा कि यदि वह उनके शत्रु के पास होता तो ।"

#### धर्म पुरुष

श्राचार्यश्री की भूमिका मुख्यतः श्राध्यात्मिक है। वे धर्म-पुरुष है। धर्म के प्रति श्राज की बढ़ती विमुखता को देख कर वे कहते हैं, ''धर्म से कुछ लोग चिढ़ते हैं, किन्तु वे भूल पर हैं। धर्म के नाम पर फैली हुई ब्राइयो को मिटाना ग्रायब्यक है, न कि धर्म को। धर्म जन-कल्याण का एकमात्र साधन है।''

इसी बात को आगे समकाते हुए वे कहते हैं— "जो लोग धर्म त्याग देने की बात कहते हैं, वे अनुचित करते हैं। एक आदमी गन्दे विषैले पानी से बीमार हो गया। श्रव वह प्रचार करने लगा कि पानी मत पीओ, पानी पीने से बीमारी होती है। क्या यह उचित है ? उचित यह होता कि वह अपनी भूल को पकड़ लेता और गन्दा पानी न पीने को कहता। धर्म का त्याग करने की बात कहने वालों को चाहिए कि वे जनता को धर्म के नाम पर फैले हुए विकारों को छोड़ना सिखाएं, धर्म छोड़ने की सीख न दें।"

धर्म क्या है, इसकी बड़े सरल मुबोध ढंग से उन्होंने इन शब्दों में व्यास्या की है—"धर्म क्या है? सत्य की खोज, झात्मा की जानकारी, अपने स्वरूप की पहचान, यही तो धर्म है। सही अर्थ मे यदि धर्म है तो वह यह नहीं सिखलाता कि मनुष्य मनुष्य से लड़े। धर्म नहीं सिखलाता कि पूँजी के मापदण्ड से मनुष्य छोटा या बड़ा है। धर्म नहीं सिखलाता कि कोई किसी का शोषण करे। धर्म यह भी नहीं कहता कि बाह्य आडम्बर अपना कर मनुष्य अपनी चेतना को खो बैठे। किसी के प्रति दुर्भावना रखना भी यदि धर्म में शुमार हो तो वह धर्म किस काम का। बैसे धर्म मे कोसों दूर रहना बुद्धिमनापूर्ण होगा।" श्राज राजनीति का बोलबाला है। ऐसा प्रतीत होता है कि 'राज' को केन्द्र में 'रख कर सारी नीतियाँ बन श्रीर चल रही हैं; जबिक चाहिए यह कि केन्द्र में मन्ष्य रहे श्रीर सारी नीतियाँ उसी को लक्ष्य में रख कर मंचालित हों। उस ग्रवस्था में प्रमुखता मानव को होगी और वह तथा मानव-नीति राज श्रीर राजनीति के नीचे नहीं, ऊपर होगी। ग्राज सबसे श्रीधक कठिनाइयाँ श्रीर गन्दगी इस कारण फैली है कि राजनीति जिसका दूसरा श्रथं है सत्ता, पद, लोगों के जीवन का चरम लक्ष्य वन गई है श्रीर वे सारी समस्याश्रों का समाधान उसी में खोजते हैं। कहा जाता है कि सर्वोत्तम सरकार वह होती है जो लोगों पर कम-से-कम शासन करती है; लेकिन इस सच्चाई को जैसे भुला दिया गया है। इस सम्बन्ध में ग्राचार्यश्री का रपष्ट मत है—"राजनीति लोगों के जरूरत की वस्तु होती होगी। किन्तु सबका हल उसी में ढूंढ़ना भयं-कर मूल है। श्राज राजनीति सत्ता श्रीर श्रीधकारों को हथियाने की नीति बन रही है। इसीलिए उस पर हिमा हावी हो रही है। इसमे संसार सुखी नही होगा। संसार मुखी तब होगा, जब ऐसी राजनीति घटेगी श्रीर प्रेम, समता तथा भाईचारा बढेगा।"

वे नाहते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति को विकास का पूरा अवसर मिले; लेकिन यह तभी सम्भव हो सकता है, जबिक मनप्य स्वतन्त्र हो। स्वतन्त्रता से उनका अभिप्राय यह नहीं है कि उसके ऊपर कोई अंकुश ही न हो और वह मनमानी करे। ऐसी स्वतन्त्रता तो अराजकता पैदा करनी है और उससे समाज संगठित नहीं, खिन्न-भिन्न होता है। उनके कथनानुसार—"स्वतन्त्र वह है, जो न्याय के पीछे चलता है। स्वतन्त्र वह है, जो अपने स्वार्थ के पीछे नहीं चलता। जिसे अपने स्वार्थ और गट में ही ईश्वर-दर्शन होता है, वह परनन्त्र है।"

श्रागे वे किर कहते हैं—"मैं किसी एक के लिए नहीं कहता। चाहे साम्यवादी, समाजवादी या दूसरा कोई भी हो; उन्हें समभ लेना चाहिए कि दूसरों का इस शर्त पर समर्थन करना कि वे उनके पैरों तले. चिपटे रहें, स्वतन्त्रता का समर्थन नहीं है।"

#### कुशल ग्रनुशासक

वे किसी भी बाद के पक्षपाती नहीं हैं। वे नहीं चाहते कि सानव पर कोई भी ऐसा बाह्य बन्धन रहे, जो उसके मार्ग को अवगढ़ और विकास को कुण्ठित करें। पर इससे यह न समक्षा गांगे कि संगठन अथवा अनुशासन में उनका विश्वास नहीं है। वे स्वयं एक सम्प्रदाय के आचार्य हैं और हजारों साधु-साध्वियों के सम्प्रदाय और शिष्य मण्डली के मृिल्या हैं। उनके अनुशासन को देख कर विस्सय होता है। उनके साधु-साध्वियों में कुछ तो बहुत ही प्रतिभागानी और कृशाप्रबुद्धि के हैं: लेकिन क्या मजल कि वे कभी अनुशासन से बाहर हों। जब किसी क्षुद्र स्वार्थ के लिए लोग मिलते हैं तो उनके गृह बनते हैं और गहबन्दी कवापि श्रेयरकर नहीं होती। इसी प्रकार बाद का अर्थ है, आंखों पर ऐसा चहमा चढ़ा लेना कि सब बीजें एक ही रंग की दिखाई दें। कोई भी स्वाधीनचेता और विकासशील व्यक्ति न गृहबन्दी के चक्कर में पड़ सकता है और न बाद के। मनुष्य अपने व्यक्तिस्व के दीपक को लेकर भले ही वह कितना ही छोटा क्यों न हो, अपने मार्ग को प्रकाशान करना रहे, जीवन को ऊर्ध्वामी बनाता रहे, यही उसके लिए अभीष्ट है।

वास्तविक स्वतन्त्रता का मानन्द वही ले सकता है, जो परिग्रह से मुक्त हो। ग्रंपरिग्रह की गणना पंच महाव्रतों में होती है। ग्राचार्यश्री ग्रंपरिग्रह के बती हैं। वे पैदल चलते हैं; यहां तक कि पैरों में कुछ भी नहीं पहनते। उनके पास केवल सीमित वस्त्र, एकाध पात्र ग्रीर कुछ पुस्तकों हैं। समाज में व्याप्त ग्राधिक विषमता को देख कर वे कहते हैं—"लोग कहते हैं कि जरूरत की जीज कम हैं। रोटी नहीं मिलती, कपड़ा नहीं मिलता। यह नहीं मिलता, वह नहीं मिलता, ग्रादि ग्रादि। मेरा स्थाल कुछ ग्रीर है। मैं मानता हैं कि जरूरत की जीज कम नहीं, जरूरतें वहुत बढ़ गई हैं, संघर्ष यह है। इसमें से ग्रंशान्ति की जिनगारियाँ निकलती हैं।"

श्रपनी ग्रान्तरिक भावना को व्यक्त करते हुए वे श्रागे कहते हैं—''एक व्यक्ति महल में बैठा मौज करे श्रीर एक को खाने तक को न मिले, ऐसी ग्राधिक विषमता जनता से सहन न हो सकेगी।''

"प्रकृति के साथ खिलवाड़ करने वाले इस वैज्ञानिक युग के लिए शर्म की बात है कि वह रोटी की समस्या को

नहीं सुलभा सकता।"

ब्राज का युग भौतिकता का उपासक बन रहा है। वह जीवन की चरम सिद्धि भौतिक उपलब्धियों में देखता है। परिणाम यह है कि ब्राज उसकी निगाह घन पर टिकी है और परिग्रह के प्रति उसकी भ्रासिक्त निरन्तर बढ़ती जा रही है। वह भूल गया कि यदि सुख परिग्रह में होता तो महाबीर और बुद्ध क्यों राजपाट और दुनिया के बैभव को त्यागते और क्यों गांघी स्वेच्छा मे प्रक्रिचन बनते। सुख भोग में नहीं है, त्याग में है भीर गौरीशंकर की चौटी पर वहीं चढ़ सकता है जिसके सिर पर बोभ की भारी गठरी नहीं होती। भ्राचार्यश्री मानते हैं कि यदि भ्राज का मनुष्य भगरिग्रह की उपयोगिता को जान ले और उस रास्ते चल पड़े तो दुनिया के बहुत से मंकट भ्रपने ग्राप दूर हो जायेंगे।

मानव के वैयक्तिक और सामाजिक जीवन को गुद्ध बनाने के लिए ग्राचारंश्री ने कई वर्ष पूर्व प्रणुव्रत-भान्यो-लन का सूत्रपान किया था और वह ग्रान्दोलन ग्रव देश व्यापी बन गया है। उस नैतिक कान्ति का मूल उद्देश्य यह है कि मनुष्य ग्रपने कथायों को देखे और उन्हें दूर करें। इसके साथ-साथ जो भी काम उसके हाथ में हो, उसके करने में नैतिकता का पूरा-पूरा ग्राग्रह रखे। इस ग्रान्दोलन को प्रधिक-से-ग्रिथिक व्यापक और सिक्रय बनाने के लिए ग्राचार्यश्री ने बड़े परिश्रम और लगन से कार्य किया है और ग्राज भी कर रहे हैं, चूँकि इस ग्रान्दोलन का ग्रन्तिम लक्ष्य मानव जाति को सुखी बनाना है, इसलिए उसका द्वार सब के लिए खुला है। उसमें किसी भी धर्म, मत ग्रथवा सम्प्रदाय का व्यक्ति भाग ने मकता है। ग्रणवृत के वृतियों में बहुत में जैनेतर स्त्री-पुरुष भी हैं।

इसी ब्रान्दोलन के ब्रन्तर्गत प्रति वर्ष ब्रहिसा तथा मैत्री-दिवस भी देश भर में मनाये जाते हैं। जिससे तनाव का यातावरण सुधरे और यह इच्छा सामुहिक रूप से व्यक्त हो कि वास्तविक सुख और ब्रान्ति हिंसा एवं वैर से नहीं, बस्कि ब्रहिसा और माईनारे से स्थापित हो नकती है।

#### प्रभावशाली वक्ता ग्रौर साहित्यकार

श्राचार्यश्री प्रभावशाली वक्ता तथा श्रच्छे साहित्यकार भी हैं। उनके प्रवचनों में शब्दों का श्राडम्बर श्रथवा कला की छटा नहीं रहती। वे जो बोलते हैं, वह न केवल सरल-सुबोध होता है, श्रपितु उसमें विचारों की स्पष्टता भी रहती है। जटिल-से-जटिल बात को वे बहुत ही सीधे-सादे शब्दों में कह देते है। कभी-कभी वे श्रपनी बात को समभाने के लिए कथा-कहानियों का श्राश्रय लेते हैं। वे कहानियों वास्तव में बड़ी रोचक एवं शिक्षाप्रद होती हैं।

श्राचार्यश्री प्रायः कविताएं भी लिखते रहते हैं। जब उन कविताश्रों का सामूहिक रूप में सस्वर पाठ होता है तो बडा ही मनोहारी वायमण्डल उत्पन्त हो जाता है।

लेकिन वे प्रवचन करते हों अधवा गद्य-पद्य लिखते हों, उनके सामने मानव की मूर्ति सदा विद्यमान रहती है और मानवता के उत्कर्ष की उदात्त भावना उनके हृदय में हिलोरें लेगी रहती है।

श्राचार्य विनोवा कहा करते हैं कि भूदान यज के सिलसिले में उन्होंने सारे देश का भ्रमण किया है; लेकिन उन्हें एक भी दुर्जन व्यक्ति नहीं मिला। मानव के प्रति उनकी यह श्रास्था उनका बहुत बड़ा सम्बल है। यथार्थत: प्रत्येक व्यक्ति में सद् श्रौर श्रसद् दोनों प्रकार की वृत्तियाँ रहती हैं। भ्रावश्यकता इस बात की है कि सद्वृत्तियाँ सदा जागृत रहें श्रौर श्रसद वित्यों को मनुष्य पर हावी होने का श्रवसर न मिले।

श्राचार्यश्री तुलसी भी इसी विश्वास को लेकर चल रहे हैं। वे लोगों को श्रपने श्रन्दर श्रात्म-विश्वास पैदा करने की प्रेरणा देते हैं श्रौर कहते हैं कि इस दुनिया में कोई भी बुरा नहीं है। श्रच्छा काम करने की क्षमता हर किसी में विद्यमान है।

श्राचार्यश्री के सामने वास्तव में बड़ा ऊँचा ध्येय है, पर मानना होगा कि कुछ मर्यादाएं उनके कार्य की उपयोगिता को सीमित करती हैं। वे एक सम्प्रदाय विशेष के हैं; अतः श्रन्य सम्प्रदायों को श्रवसर है कि वे मानें कि वे उनके उतने निकट नहीं हैं। फिर वे श्राचार्य के पद पर बैठे हैं, जो सामान्य जनों के बराबर नहीं, बल्कि ऊँचाई पर है। इसके श्रतिरिक्त उनके सम्प्रदाय की परम्पराएं भी हैं। यद्यपि उनके विकासशील व्यक्तित्व ने बहुत-सी श्रनुपयोगी परम्पराग्नों को छोड़ देने का साहस दिखाया है। तथापि भाज भी भनेक ऐसी चीजें हैं जो उन पर बन्धन लाती हैं।

### सहिष्णुता का मादर्श

जो हो, इन किनाइयों के होते हुए भी उनकी जीवन-यात्रा बराबर अपने चरम लक्ष्य की सिद्धि की श्रोर ही रही है। उनमें सबसे बड़ा गुण यह है कि वे बहुत ही सहिष्णु हैं। जिस तरह वे अपनी बात बड़ी शान्ति से कहते हैं, उसी तरह वे दूसरे की बात भी उतनी ही शान्ति से सुनते हैं। अपने से मतभेद रखने वाले अथवा विरोधी व्यक्ति से भी बात करने में वे कभी उद्धिग्न नहीं होते। मैंने स्वयं कई बार उनके सम्प्रदाय की कुछ प्रवृत्तियों की, जिनमें उनका अपना भी बड़ा हाथ रहता है, उनके सामने शालोचना की है; लेकिन उन्होंने हमेशा बड़ी आत्मीयता से समक्ताने की कोशिश की है। एक प्रसंग यहाँ मुक्ते याद शाता है कि एक जैन विद्धान् उनके बहुत ही आलोचक थे। हम लोग वम्बई में मिले। संयोग से आचार्यश्री भी उन दिनों वहीं थे। मैंने उन सज्जन से कहा कि आपको जो शंकाएं हैं और जिन बातों से आपका मतभेद हैं, उनकी चर्चा शाप स्वयं आचार्यश्री से क्यों न कर लें? वे तैयार हो गये। हम लोग गये काफी देर तक बातचीत होती रही। लौटते में उन सज्जन ने मुक्तसे कहा—"यशपालजी, तुलसी महाराज की एक बात की मुक्त पर बड़ी श्रच्छी छाप पड़ी है।" मैंने पूछा—"किस बात की?" बोले, "देखिये, मैं बराबर अपने मतभेद की बात उनसे कहता रहा, लेकिन उनके चहरे पर शिकन तक नहीं शाई। एक शब्द भी उन्होंने जोर मे नहीं कहा। दूसरे के विरोध को इतनी सहनशीलता मे मुनना और सहना श्रासान बात नहीं है।"

अपने इस गुण के कारण माचार्यश्री ने बहुत से ऐसे व्यक्तियों को श्रपनी श्रोर माकृष्ट कर लिया है, जो उनके सम्प्रदाय के नहीं हैं।

श्रपनी पहली भेंट से लेकर श्रव तक के अपने संसर्ग का स्मरण करता हूँ तो बहुत से चित्र श्राँखों के सामने धूम जाते हैं। उनसे श्रनेक बार लम्बी चर्चाएं हुई हैं, उनके प्रवचन सुने हैं, वेकिन उनका वास्तविक रूप तब दिखाई देता है, जब वे दूसरों के दुःख की बात सुनते हैं। उनका मंवेदनशील हृदय तब मानों स्वयं व्यथित हो उठता है शौर यह उनके चहरे पर उभरते भावों से स्पष्ट देखा जा सकता है।

पिछली बार जब वे कलकत्ता गये थे तो वहाँ के कितपय लोगों ने उनके तथा उनके साधु-साध्वी वर्ग के विरुद्ध एक प्रवार का भयानक तूफान खड़ा किया था। उन्ही दिनों जब मैं कलकता गया और मैंने विरोध की बात सुनी तो ग्राचार्यश्री से मिला। उनसे चर्चा की। ग्राचार्यश्री ने बड़े बिह्नल होकर कहा—''हम साधु लोग बराबर इस बात के लिए प्रयत्नशील रहते हैं कि हमारे कारण किसी को कोई प्रसुविधा न हो। '''स्थान पर हमारी साध्वियाँ ठहरी थी। लोगों ने हम से ग्राकर कहा कि उनके कारण उन्हें थोड़ी कठिनाई होती है। हम ने तत्काल साध्वियों को वहाँ से हटाकर दूसरी जगह भेज दिया। यवि हमें यह मालूम हो जाये कि हमारे कारण यहाँ के लोगों को परेशानी या ग्रमुविधा होती है तो हम इस नगर को छोड़ कर चले जायेंगे।''

ग्राचार्यश्री ने जो कहा, वह उनके ग्रन्तर से उठकर भाया था।

भारत-भूमि सदा से आध्यात्मिक भूमि रही है और भारतीय संस्कृति की गूँज किसी जमाने में सारे संसार में मुनाई देती थी। प्राचार्यश्री की ग्राँखों के सामने अपनी संस्कृति तथा सम्यता के चरम शिखर पर खड़े भारत का चित्र रहता है। श्रपने देश से, उसकी भूमि से और उस भूमि पर बसने वाले जन से, उन्हें बड़ी श्राशा है और तभी गहरे विश्वास के साथ कहा करते हैं—"वह दिन श्राने वाला है, जब कि पशु बल मे उकताई दुनिया भारतीय जीवन से श्रहिंसा और शान्ति की भीख माँगेगी।"

श्राचार्यश्री शत जीवी हों भौर उनके हाथों मानवता की श्रिधिकाधिक सेवा होती रहे, ऐसी हमारी कामना है।

# महामानव तुलसी

### प्रो॰ मूलचन्द सेठिया, एम॰ ए॰ बिरला प्राहुँ स कालेज, पिलानी

प्राचार्यश्री तुलसी का नाम भारत में नैतिक पुनरुत्थान के प्रान्दोलन का एक प्रतीक बन गया है। जीवन के विभिन्त क्षेत्रों में ब्याप्त अध्यादार के विरुद्ध माचार्यश्री तुलसी द्वारा प्रवर्तित अणुवत-प्रान्दोलन श्रन्थकार में दीप-शिक्षा की तरह सबका ध्यान झाकुष्ट कर रहा है। एक मुग्ध विस्मय के साथ युग देख रहा है कि एक सम्प्रदाय के श्राचार्य में इतनी ब्यापक संवेदनशीलता, दूरदिशता और अपने सम्प्रदाय की परिधि से ऊपर उठ कर जन-जीवन की नैतिक-समस्याओं में उलमने भीर उन्हें सुलभाने की प्रवृत्ति कैसे उत्यन्त हुई? आवार्यश्री तुलसी को निकट से देखने वाले यह जानते हैं कि इसका रहस्य उनकी महामानवता में छिपा है। मानवीय संवेदना से प्रेरित होकर ही उन्होंने अनैतिकता के विरुद्ध ग्रणु-व्रत-आन्दोलन श्रारम्भ किया। आज के युग में, जब कि प्रत्येक वर्ग एक-दूसरे को अप्याचार के लिए उत्तरदायी सिद्ध करने का प्रयत्न कर रहा है और स्वयं अपने को निर्दोष घोषित करता है, आचार्यश्री तुलसी अपने निर्लेष व्यक्तित्व के कारण ही यह अनुभव कर सके कि अप्याचार एक वर्ग-विशेष की समस्या न होकर निखिल मानव-समाज की समस्या है। जितनी व्यापक समस्या हो, उसका समाधान भी उतना हो मूलप्राही होना चाहिए। आचार्यश्री तुलसी ने इस मानवीय समस्या का मानवीय समाधान ही प्रस्तुन किया है। उनका मन्देश है कि जन-जीवन के ब्यापक क्षेत्र में, जो ब्यक्ति जहां पर खडा है, वह अपने बिन्दु के केन्द्र से वृत्त बनाते हुए समाज के अधिकाधिक भाग को पिरशुद्ध करने का प्रयत्न करे। यही कारण है कि जब अन्यान्य विचारक विवाद और वितर्क के डारा प्याज के खिलके उतारते ही रह गये, आचार्यश्री तुलसी अपनी हुक निष्ठा और अपार मानवीय संवेदना के मन्दल को लेकर अध्याचार की समस्या के व्यावहारिक समाधान में संलग्न हो गये।

#### पवित्रता का वृत्त

यह बस्बोकार नहीं विया जा सकता कि किसी भी समस्या को उसके व्यापक सामाजिक परिप्रेक्ष्य में ही समभा ब्रौर सुलक्षाया जा सकता है; परन्तु जब तक सामाजिक वातावरण में परिवर्तन नहीं हो, तब तक हाथ-पर-हाथ घर कर बैठे रहना भी तो एक प्रकार की पराजित मनोवृत्ति का परिचायक है। जो समाज-तंत्र की भाषा में सोचते हैं, वे बड़े-बड़े श्रौकड़ों के माया-जाल में उलके हुए निकट मिवष्य में ही किसी चमत्कार के घटित होने की खाणा में निश्चेष्ट बैठे रहते हैं, परन्तु जो मानव को व्यक्ति-रूप में जानते हैं और नित्यप्रति सैकड़ों व्यक्तियों के सजीव सम्पर्क में द्याते हैं, उनके लिए कार्य-क्षेत्र सदैव खुला रहना है। बाचार्यश्री नुलसी के लिए व्यक्ति समाज की एक इकाई नहीं; प्रत्युत समाज ही व्यक्तियों की समिष्ट है। वे समाज से होकर व्यक्ति के पास नहीं पहुँचते, वरन् व्यक्ति से होकर समाज के निकट पहुँचने का प्रयत्न करते हैं। समाज तो एक कल्पना है, जिसकी सत्यता व्यक्तियों की समष्टि पर निर्भर है, परन्तु व्यक्ति ग्रयनियाप में ही सत्य है, हालांकि उसकी मार्थकता समाज की मुखापेक्षिणी होती है। श्राचार्यश्री तुलसी का श्रणुवत-श्रान्दोलन इसी व्यक्ति को लेकर चलता है, समाज तो उसका दूरगामी लक्ष्य है। वे व्यक्ति को सुधार कर समाज के सुधार को चरम परिणति के रूप में प्राप्त करना चाहते हैं; समाज के मुखार की सनिवार्य परिणति व्यक्ति का सुधार नहीं मानते। इसलिए उनका प्रयत्न श्रपने प्रारम्भिक रूप में कुछ स्वल्प-सा, नगण्य-सा प्रतीत हो सकता है; परन्तु उसमें महानु सम्भावनाएं छिपी उनका प्रयत्न श्रपने प्रारम्भिक रूप में कुछ स्वल्प-सा, नगण्य-सा प्रतीत हो सकता है; परन्तु उसमें महानु सम्भावनाएं छिपी

हुई हैं। कुछ निष्ठावान् व्यक्ति समाज में एक ऐसा पवित्रता का वृत्त तो बना ही सकते हैं, जो उत्तरोत्तर विस्तृत होते हुए कभी सम्पूर्ण समाज को अपने वेरे के अन्दर ले सकता है। बेद है कि अणुवत-आन्दोलन की इस महती सम्मावना की ओर विचारकों का ध्यान बहुत कम आकृष्ट हुआ है।

#### मित्र, बार्शनिक और मार्ग-वर्शक

दस-बारह वर्षों के सीमित काल में घाचायंत्री तुलसी ने अपने धणुव्रत-झान्दौलन को एक नैतिक शिनत का हप प्रदान कर दिया है। इस झान्दोलन का मूलाधार कोई राजनैतिक या आर्थिक संगठन नहीं, बल्कि श्राचार्यंश्री तुलसी का महान् मानवीय व्यक्तित्व ही है। एक सम्प्रदाय के मान्य झाचार्यं होते हुए भी झाचार्यप्रवर ने अपने व्यक्तित्व को साम्प्र-दायिक से अधिक मानवीय ही बनाये रखा है। आचार्यप्रवर अणुव्रतियों के लिए केवल संघ-प्रमुख ही नहीं, उनके मित्र, दार्शनिक और मार्ग-दर्शक (Friend, Philosopher and Guide) भी हैं। वे अपने जीवन की किठनाइयों, उलक्षनों और सुख-दु:ख की सैकड़ों वात आचार्यंश्री तुलसी के सम्मुख रखते हैं और उनको अपने संघ-प्रमुख द्वारा जो समाधान प्राप्त होता है, वह उनकी सामयिक समस्याओं को सुलक्षाने के साथ ही उन्हें वह नैतिक बल भी प्रदान करता है जो अन्ततः ग्राध्या-त्मिकता की और अग्रसर करता है। आचार्यंश्री तुलसी की दृष्टि में हल है हलकापन जीवन का। श्राचार्यप्रवर मनुष्य के जीवन को भौतिकता के भार से हलका देखना चाहते हैं, उसके मन को राग-विराग के भार से हलका देखना चाहते हैं और अन्ततः उसकी आत्मा को कर्मों के भार से हलका देखना चाहते हैं। उनकी दृष्टि धुव-तारे की तरह इसी जीव-मुक्ति की ग्रोर लगी हुई है; परन्तु वे लघु मानव को अँगुली पकड़ कर धीरे-धीर उस लक्ष्य की भीर आगे बढ़ाना चाहते हैं। मेरी दृष्टि में घाचार्यंश्री तुलसी आज भी समाज-मुधारक नहीं, एक आत्म-साधक ही हैं और उनका समाज-मुधार का लक्ष्य आत्म-साधन के लिए उपयुक्त पृष्ठभूमि का निर्माण करना ही है।

श्राज के युग में जबकि प्रत्येक व्यक्ति पर कोई-न-कोई 'लिवल' लगा हुशा है और दलों के दलदल में धँसे हुए मानवता के पैर मुक्त होने के लिए छटपटा रहे है, किसी व्यक्ति में मानव का हृदय और मानवता का प्रकाश देखकर चिन्न में श्राह्माद का श्रनुभव होता है। हमारा यह श्राह्माद शाश्चर्य में बदल जाता है, जब कि हम यह श्रनुभव करते हैं कि एक बृहत् एवं गौरवशाली सम्प्रदाय के श्राचार्य होने पर भी उनकी निविशेष मानवता श्राज भी श्रक्षुण्ण है। निस्सन्देह श्राचार्यश्री नुलमी एक महान् साधक हैं, सहस्रों साधकों के एकमात्र मार्ग-निर्देशक है। एक धर्म-संघ के व्यवस्थापक हैं और एक नैतिक श्रान्दोलन के प्रवर्तक हैं; परन्तु और कुछ भी होने के पूर्व वे एक महामानव हैं। वे एक महान् मंत और महान् श्राचार्य भी इसी लिए बन सके हैं कि उनमें मानवता का जो मूल द्रव्य है, वह कसौटी पर कसे हुए सोने के समान शुद्ध हैं।

भाचार्यश्री तुलसी ने अपने भाचार्यस्य के पच्चीस वर्ष पूरे किये हैं भीर इसी उपलक्ष में धवल-समारोह मनाया जा रहा है। सम्भवतः रजत-समारोह इमलिए नहीं मनाया जा रहा है कि वह तो उनके लिए मिट्टी है। हाँ, देवेताम्बर-परम्परा के आचार्य होने के नाते धवल का, उनके लिए कुछ भाकर्षण हो सकता है। उनकी सम्पूर्ण साधना धवलता की ही तो साधना है—वस्त्र की धवलता, जित्त की धवलता,वृत्तियों की धवलता और अन्ततः आत्मा की अमल धवलता। आचार्यश्री तुलसी अपने को धवल बना कर ही सन्तुष्ट नहीं हुए, वे युगकी कालिमा को भी धो-पोंछकर धवल बना देने पर तुले हुए हैं। इसीलिए तो आज उनके धवल-समारोह में एक विचार और एक लक्ष्य में विद्वास रखने वाले सभी सम्प्रदायों और दलों के व्यक्ति सम्मिलत हो रहे हैं। इस धवल-समारोह के उज्ज्वल क्षणों में उन अमल-धवल चरणों में मेरा भी प्रणत प्रणाम ! क्या मेरा यह प्रणाम भी उम महामानव के चरणों में जाकर धवल बन सकेगा ?

हे गौरब-गिरि उत्तुंन काय ! पर-पूजन का भी क्या उपाय ?



# भारतीय संत-परम्परा के एक संत

डा० युद्धबीर सिंह श्रम्यक्ष, श्रीक्रोगिक सलाहकार परिवर्ष, दिल्ली प्रशासन

भाषायं प्रवर श्री तुलसी से मेरा सम्पर्क ग्राज से लगभग कोई ग्राठ-दश वर्ष पूर्व स्थापित हुआ। उसके बाद उनके दर्शन और उनके भाषण सुनने का लगातार अवसर मिलता रहा। उनकी कृपा मे मैंने तेरापंथ, जिसके वे ग्राचार्य हैं, उसक कुछ साहित्य ग्रादि और ग्राचार्यश्री भिक्ष का जीवन-चरित्र भी पढ़ा।

श्राचार्यश्री तुलसी भारत के सन्तों की परस्परा में एक सन्त तुल्य हैं। श्रापकी वाणी में रस है, श्रापके सस्पर्क में मनुष्य श्रपनी श्रात्मा का उत्थान होते हुए अनुभव करता है। श्रापका जीवन तपस्वी जीवन है श्रीर श्रापका व्यक्तित्व श्राक- र्षक है। एक छोटी-सी सम्प्रदाय के नेता होते हुए भी श्रापने हर मजहब श्रीर हर प्रान्त के श्रच्छे-श्रच्छे लोगों को श्राक्षित किया है। श्रापके श्राचार्य-काल के पच्चीम वर्ष पूर्ण होने के इस ग्रुभ श्रवसर पर मैं श्रापके चरणों में श्रपनी हार्दिक श्रद्धांजिल समिपित करना हूँ।

श्रापने नैतिकता की म्रोर विशेष घ्यान दिया और उसी के लिए भ्रण्कृत-आग्दोलन चलाया। आग्दोलन में बहुत से लोग सम्मिलित हुए भीर निःसन्देह उसका असर भी लोगों पर पड़ा है। मेरी कुछ ऐसी धारण है कि यदि भ्राचार्य-प्रवर एक साम्प्रद्रायिक भ्राचार्य न होकर मुक्त होते हुए ऐसा भ्रान्डोलन चलाते तो उसका व्यापक असर होता। भ्रापक एक सम्प्रदाय के भ्राचार्य होने के कारण जनता का ध्यान सम्भवतः इतना उस और श्राकपित न हुमा हो, जितना होना चाहिए था। फिर भी श्रापके त्याग, तपस्या और व्यक्तिगत प्रभाव ने प्रभावित होकर बहुत से लोगों का नैतिक उत्थान हुमा है भ्रीर होगा।

मेरी ईश्वर से हार्दिक प्रार्थना है कि आचार्य प्रवर दीर्घायु हो और उनको जो शिष्य मिले, वे उनके कार्य को आगे बढ़ाएं और वे शिष्य न केवल उनके पंथ में बिल्क उनके बाहर भी मिले, जिससे उनका अन्युपयोगी और अत्यावश्यक अणुवत-आन्दोलन देश में व्यापक रूप धारण करके देश की आचार-हीनता और गिरती हुई नैतिकता को रोकने में समर्थ हो; क्योंकि स्वतन्त्र भारन सर्वथा उन्तत तभी होगा, जब त्याग और तपस्या एवं सत्य और अहिंसा के मूल सिद्धान्तों को धारण करके उसका आचार ऊँचा होगा। आचार्यजी को मैं एक बार फिर नमस्कार करता हूँ और उनके प्रयत्नों की सफलता के लिए प्रार्थना करता हूँ।



## आचार्यश्री का व्यक्तित्वः एक अध्ययन

#### मुनिश्री रूपचन्दजी

जीवन स्नन्त गुणात्मक है। उसका विकास ही ब्यक्तित्व की महत्ता का स्राधार बनता है। महान् स्रौर साधारण; ये दोनों शब्द गुणात्मक तारतम्य ही लिये हुए हैं, जो कि ब्यक्ति-व्यक्ति के व्यक्तित्व का विभाजन करते हैं। सन्यथा हम एक व्यक्ति के लिए महान् सौर दूसरे व्यक्ति के लिए साधारण शब्द का प्रयोग नहीं कर सकते। सावार्यश्री महान् हैं; क्योंकि उनका व्यक्तित्व महान् है। उनका व्यक्तित्व महान् इसलिए है कि वे साधारण की भूमिका को विशिष्ट बनाते हुए चलते हैं। कोई भी व्यक्ति साधारण से सस्पृष्ट रह कर महान् नहीं बनता है। किन्तु वह साधारण को विशिष्ट बनने का विवेक देता है, इसलिए महान् बनता है। मेरा विवेक सब पर छा जाये, यह चेतना का सहं है। महत्ता उससे स्रतीत है। वह प्रत्येक सुपुष्त विवेक को जगाने के लिए पर्याप्त स्ववाश भी देती है। जहाँ इसका सभाव होता है, वहाँ व्यक्ति सनुशास्ता बन सकता है, महान् नहीं। सीधे शब्दों में कहे तो उसका प्रधिकार केवल कलेवर तक पहुँच सकता है, प्राण उसके लिए सदैव ही स्रगम्य रहते है। साचार्यश्री का व्यक्तित्व महान् इसलिए है कि प्राण उनके लिए गम्य ही नहीं बने, किन्तु प्राणों ने उनका स्रनुगमन कर उनका लक्ष्य भी पाया।

म्राचार्यश्री का व्यक्तित्व बहुमुली है। वे एक भौर जहाँ भ्रष्यात्म-साधना में तल्लीन हैं, वहाँ दूसरी भोर एक वृहत् संघ के अनुशास्ता भी। तीसरी भोर वे व्यक्ति-व्यक्ति की समस्याओं को समाहित करने में तत्पर हैं तो चौथी भोर सध्ययन, स्वाध्याय भौर शिक्षा-प्रसार के लिए अधक प्रयास करते दिलाई देते हैं। प्राचीन भागमिक साहित्य की शोध के लिए जहां वे अहर्तिश जुटे हुए है तो इसके साथ ही जीवन की प्राचीन कृदता के उन्मूलन में भी वे बद्ध परिकर है। इस प्रकार उनके जीवन का प्रत्येक क्षण अदम्य उत्साह भौर सतत गतिशीलता से भोत-प्रोन है। जीवन की डोर को हाथ में थामें जो उसको जितना अधिक विस्तार दे सकता है, वही व्यक्तित्व-विकास की समग्रता पा सकता है। व्यक्ति-व्यक्ति में अपनत्व की पृट विखेर देना व्यक्तित्व की सबसे वड़ी सफलता है। यह तभो सम्भव है, जबकि व्यक्ति अपने 'व्यक्ति' से ऊपर उठ कर अपना सब कुछ उत्सर्ग कर दे। जीवन अनन्त नृष्णाओं का संगम-स्थल है। यह प्रत्येक जीवधारी की सामान्य अवस्थिति थी। किन्तु चिन्तन की उदात्तता यहीं विश्राम लेना नहीं चाहती। वह भौर श्रागे बढ़ती है और वहां तक बढ़ती है, जहाँ कि नृष्णाएं छिछ्जली बनती हुई तृष्ति का भी पार पाने का यत्न करती है। तृष्णा भौर तृष्ति हमारी मानसिक कल्पनाओं की ही तो कलनाएं हैं। वे कलनाएं जब उनका पार पा लें. तब व्यक्ति देहातीत वन जाता है। वैसी स्थिति में उसके लिए श्रागत श्रीर अनगतत, दृश्य और श्रदृश्य की सभी सीमाएं होने पर उनसे वह वाधित नहीं हो सकता। क्योंकि उन्हें वह उत्साहपूर्वक भात्म-सान् करने का प्रण लिये चलता है; उत्सुकता और उद्धिनता जैसा कोई भी तत्त्व उसके लिए अवशेष नहीं रह जाता।

#### जीवन की दो सबस्थाएं

व्यक्ति भीर देवत्व जीवन की ये दो भवस्थाएं हैं। व्यक्तित्व वह है जो कि व्यक्ति का स्व होता है भीर देवत्व वह है जो कि व्यक्तित्व को कुछ विशिष्ट ऐश्वर्य में समारोपित करता है। व्यक्तित्व लौकिक होता है भीर देवत्व भ्रली-किक। भ्रलीकिक हमारे व्यवहार को नहीं साथ सकता। वह व्यवहार के लिए सदा भादर्श भीर भगम्य ही बना रहता है, इसलिए उसकी दृष्टि में उस (देवत्य) का कोई मूल्य भी नहीं। श्राचार्यश्री एक मानव हैं। इसलिए उनका श्रंकन भी उनके श्रपने व्यक्तित्व से करना श्रधिक समुचित होगा। वे मानव हैं, इसलिए सभी मानव विवशताएं भी उनमें उसी रूप में विद्यमान हैं, जिस रूप में प्रत्येक सामान्य जीवन के समक्ष श्राती रहतीं है। फिर भी उनका व्यक्तित्व श्रन्य से विशिष्ट इसलिए है कि उन्होंने सामान्य की भूमिका पार कर विवशताश्रों को परास्त ही नहीं किया, किन्तु उसे सहयोगी गुणों के रूप में परिवर्तित भी कर दिया। तिमिर को मिटाना उनके जीवन का लक्ष्य नहीं, किन्तु उसको श्रालोक में परिवर्तित कर देना, यही उनका श्रात्म-घोष रहा है। विरोधी के साथ भी मित्रता का व्यवहार करना श्रहिसा का विकास है। किन्तु श्राहिसा की पराकाष्टा वह है, जहाँ शत्रु नाम की कोई चीज रह ही न जाये, सब कुछ मित्र में परिणत हो जाये।

व्यक्ति की प्रत्येक प्रवृत्ति अपने आस-पास के वातावरण की अनुकूलता पाकर फले-फूले यह स्वयं एक निष्क्रियता है। सिकियता वह है, जहां व्यक्ति जीवन भर स्थूल दृष्टि से निष्क्रिय रह कर भी गितदीलता के लिए जूभता रहे। गित-शिलता कभी भी वातावरण की अनुकूलता सहन नहीं कर सकती। प्रतिकूल परिस्थिति में भी अपना धैर्य न खोये यह व्यक्ति की महत्ता का परिचायक है, किन्तु व्यक्ति की महत्ता वहां दुगुनी हो जाती है, जब कि वह पथ में ग्राने वाले प्रत्येक रोड़ों को भी लक्ष्य का महत्त्व समभा कर उसमें गित-प्रेरकता भर दे। इसमें ग्राचार्यश्री सिद्धहस्त हैं। वे चलते हैं, प्रतिकूल परिस्थिति में भी चलते रहे है, किन्तु अकेले ही नहीं, समूह को साथ लेकर चलते है। वे प्रत्येक व्यक्ति को महत्त्व देते हैं ग्रीर उसकी योग्यता का मंकन भी करते हैं। उनकी गित का कम भी यही है कि जो गित से अनजान हैं, उन्हें गित का भान कराना; जो जानते हैं, किन्तु फिर भी प्रमादवश रुद्ध हैं, उन्हें प्रेरणा देना ग्रीर गित करने वालों को निरन्तर ग्रागे यदते रहने के लिए समुचित अवकाश देना। योग्यता का मृत्यांकन जहाँ नहीं होता, वहाँ नई प्रतिभाएं तो विकसित हो हो नहीं सकती। किन्तु विकसित प्रतिभाएं भी मुरभा जाती है; ग्रतः उसका समुचित रूप से नियोजन करना गितमत्ता के लिए अत्यन्त आवश्यक होता है।

#### कुशल अनुशासक

भावायंश्री एक कुशल भनुशासक हैं। भनुशास्ता बनना सहज है, किन्तु उसमें कुशलता निखर धाये, यह अनुशासक की सफलता है। शासक शासितों के साथ घुल-मिल जाये, यह कुशलता की कसीटी है। उस पर खरा उतरने वाला ही संघ को विकास व विस्तार दे सकता है; क्योंकि वहाँ अनुशासकत्व भी त्याग और बिलदान की परिधि में रह कर धपना कार्य साधता है। भाज जहाँ अनुशासन करने की व्यक्ति-व्यक्ति में भूख लगी है, वहाँ उसके दायित्व को समफने का प्रयास कहाँ है? भाजायंश्री ने एक बार अपने प्रवचन में कहा— 'मनुशासक बनने की अपेक्ष्य अनुशासन का पालन करना अधिक सहज होता है। अनुशासन-पालन में व्यक्ति को केवल अपनी ही जिन्ता होती है, किन्तु अनुशासकत्व में न जाने कितने अनजानों की भी जिन्ता रखनी पड़ती है। अनुशासकत्व का दायित्व क्या लेना है, मानो कार्टी का ताज धारण करना है।' किन्तु इस गुक्तर मार का महत्त्व तभी है, जब अनुशासक उसके दायित्व को समफे। वस्तु तत्य हमें बताता है कि अनुशासन करना एक पृथक् कमें है और उसके दायित्व को समफना एक पृथक् कमें। दायित्व के अभाव में ही अनुशासन लड़खड़ाता है, अन्यथा अनुशासन में उच्छृ खलता पनप ही नहीं सकती। वर्तमान राज्यतंत्र विकास नहीं पा रहा है, समाज-व्यवस्था भी अस्त-व्यक्त है और कह देना चाहिए कि बीते हुए 'कल' के माप-दण्ड 'आज' के समक्ष लड़खड़ा रहे हैं और शाने वाले 'कल' के समक्ष 'भाज'। ऐसा क्यों है ? इसलिए कि दायित्व का संकन नहीं हो रहा है। अनुशासकत्व अनुशासन को विबेक देता है कि वह अपना कर्तव्य समभे। किन्तु उसके साथ ही यह प्रशन भी उभरता है कि उसका अपना भी कोई दायित्व होता होगा ? जहाँ यह जिन्तन नहीं होता, वहीं शासन कान्ति का रूप लेता है।

तेरापंथ शासन एकतंत्रीय परम्परा पर आधारित है, इसलिए यह अधिक अपेक्षित होता है कि उसका शास्ता योग्यता सम्पन्न हो। अंघ के प्रत्येक व्यक्ति को नियन्ता के रूप में वह तभी स्वीकार्य हो सकता है जबिक शास्ता के प्रति प्रत्येक हृदय समान रूप से श्रद्धा और समर्पण से अन्वित हो और श्रद्धा व समर्पण को शास्ता तभी प्राप्त कर सकता है जब कि उसके समस्त व्यवहार एक इस प्रकार की कसौटी पर कसे हों, जो सर्वमान्य हैं। प्रजातंत्र में इसके लिए सम्भवत: इतना महस्वपूर्ण स्थान नहीं। किन्तु एकर्तव में इसका सर्वोपिर स्थान है। एकतंत्र का प्रयोग वहीं ग्रसफल रहा है, जहां कि शास्ता के व्यवहारों पर ग्रहंता ने ग्रपना स्थान जमा लिया। एक्तंत्र की यही सबसे बड़ी दुर्बलता है भीर यदि वह कुशल अनुशास्ता द्वारा पाट दी जाती है तो वह समाज सम्भवतः ग्रन्य किसी समाज से उन्नित ग्रीर विकास की घुड़दौड़ में पिछड़ नहीं सकता। मुक्ते एक घटना याद था रही है। एक बार की बात है कि ग्राचार्यश्री के समक्ष एक विवादास्पद प्रसंग उपस्थित हुगा। दोनों पक्षों ने ग्रपने-ग्रपने पक्ष सबलता पूर्वक रखे। ग्राचार्यश्री सुनते रहे ग्रीर सुनते रहे किन्तु एक शब्द भी उत्तर में नहीं कहा। बात की समाप्ति पर दोनों ही पक्ष निर्णय सुनने को ग्रातुर थे। पर ग्राचार्यश्री ने निर्णय की ग्रपेक्षा उसी दिन से एकासन (एक समय भोजन) करना ग्रारम्भ कर दिया। एकासन का पहला दिन बीता, दूसरा दिन बीता ग्रीर तीसरा दिन भी बीत गया। दोनों पक्षों के ग्राग्रह पर यह निर्मम प्रहार था जो उसे सहन नहीं कर सका। उसके बन्धन ढीले पड़े ग्रीर विवाद स्वयं समाहित हो गया। तब सभी ने माना कि विवाद के ग्रन्त के लिए यह निर्णय उस निर्णय की ग्रपेक्षा कहीं ग्रिक ग्रमोष व सहज था। ऐसे एक नहीं, ग्रनेकों ग्रवसर शास्ता के समक्ष ग्राते हैं जाकि संग्र की सुचारता बनी रहे। ग्राचार्यश्री इसमें कितने कुशल ग्रीर कहाँ तक सफल रहे हैं, इसके लिए तेरापंथ संगठन का सर्वांगीण विकास एक ज्यलन्त प्रमाण लिये हमारे कितने हुशल ग्रीर कहाँ तक सफल रहे हैं, इसके लिए तेरापंथ संगठन का सर्वांगीण विकास एक ज्यलन्त प्रमाण लिये हमारे सामने है।

प्रत्येक चेतना का यह स्वभाव होता है कि वह अपने से भिन्न चेतना में कुछ वैशिष्टच खोजना चाहती है। जहाँ से वह मिल जाता है, उसे वह सहवंतया अपना समर्पण भी कर देती है, किन्तू समर्पण भी अपना स्थायित्व नहीं गाइता है, जहाँ उसे नित नई स्फुरणाएं और उसे सँवारने वाली साज-सज्जा मिलती रहे । अन्यथा वह अस्थायी नही बन सकता। वैशिष्टच भी जब दूसरी चेतना को देने का उपक्रम करने लगता है तब कृत्रिमता पनपने लगती है और वह उस दुर्बलता को अवसर पाकर प्रकट कर ही देती है। सच तो यह है कि वैशिष्टच से चेतना का समर्पण जब तक स्वय कुछ न कुछ प्रहण करता रहेगा, तब तक ही वह निभ सकेगा। क्वित्रमता भले ही कुछ समय के लिए उसे भलावे में रख सकती है, किन्तु ममपंण उससे प्रेरणा नही पा सकता । इस दृष्टि से भी श्रद्धेय का व्यक्तित्व उस रूप में निखर यह अपेक्षित होता है, जिसमे कि वह सबकी श्रद्धा समान रूप से पचा सके। क्षण-स्थायी श्रास्था को प्रतिपत भटकने का भय बना रहता है तो उमे अन्त तक निभाने में श्रद्धेय भी सफल नहीं हो सकता। यह एक ऐसा सम्बन्ध है जिसमें कि मस्तिष्क की अपेक्षा हृदय का प्राधान्य होता है। यही कारण है कि तर्क उसे सिद्ध करने में सदा ही ग्रसफल रहा है। वस्तुवृत्त्या तेरापथ संगठन मे शासक-शासित की भावना के प्राधान्य की अपेक्षा उसमें गुरु-शिष्य भाव रहे, इस और विशेष ध्यान दिया गया है। नेतृत्व-पालन करने वालों में नेता की श्रनिवार्यता का भान हो, तभी शिष्यत्व का भाव उभरता है। वहाँ हृदय का आधान्य रहता है, मस्तिष्क का नहीं। यही कारण है कि एक अकिचन संगठन जिसके संचालन में अर्थ का कोई प्रश्न ही नहीं, आज दो सी वर्षों से भी श्रक्षणण श्रीर गतिशीलता लिये अपने लक्ष्य की श्रोर श्रग्रसर होता रहा है। मैं नहीं समभता कि विश्व के इति-हास में ऐसा एक भी उदाहरण मिलता हो जिसमें कि बिना किसी प्रकार के भौतिक मुख्यों के ग्राधारित कोई भी संगठन का स्थायित्व इतने लम्बे समय तक भीर वह भी भपनी उत्तरोत्तर उज्ज्वनता भीर विकास को भपने में समेटे चला हो। प्रसिद्ध विचारक जैनेन्द्रजी से एक बार तेरापंथ के बारे में उनके विचार पूछे गये तो उन्होंने बताया कि "जो कुछ मैं जानता हैं, उससे इस संगठन के प्रति मुक्कमें विस्मय का भाव होता है। कारण कि उसके केन्द्र में सत्ता नहीं है। सत्ता को श्रधिकार, हथियार और सम्पत्ति से सुरक्षित भीर समर्थ बनाया जाता है।'' तो क्या तेरापंथ को एक ऐसे रूप में स्वीकार किया जा सकता है जो कि सत्ता भीर सम्पत्ति से दूर कुछ परम तत्त्वों से ही अपनी मौलिकता संचित करता हो। यह प्रछने पर उन्होंने बताया कि मैं इससे सहमत हैं। कारण कि मैं ब्रास्तिक हैं। ब्रास्तिक का मतलब मैं समप्टि को चित्-केन्द्रित ब्रीर चित-संचालित मानता हैं। यह चित्-प्रस्तित्व का संसार है। "भेरी श्रद्धा है कि जहाँ संगठन के केन्द्र में यह चित् तत्त्व है, वही संगठन का जीवन है ग्रीर शुभ है। ग्रन्यथा संगठन में संविग्ध का मेल होता है श्रीर उससे फिर जीवन का श्रहित होने लगता है। मानव संगठन के सम्बन्ध में यह श्रद्धा माज खत्म हुई-सी जा रही है कि बिना सत्ता ग्रीर सम्पदा के वह उदय में ग्रा सकता या कायम रह सकता है। "इस भनास्था को टूटना चाहिए ग्रीर मालूम होना चाहिए कि कुछ ग्रीर

भी तत्त्व है—ि विन्मय तत्त्व, भ्राघ्यात्मिक तत्त्व, नैतिक तत्त्व भ्रादि; जिस के चारों श्रोर मानव-संघटना हो सकती है श्रीर होनी चाहिए। यदि ऐसा हो तो मेरा विश्वास है, हम देख पायेगें कि यह संघटना काल को भेदती हुई स्थायी बनती है, उसमें उगने भीर बढ़ने के बीज रहते हैं।

### सप्राण नेतृत्व

व्यक्ति और संगठन इतने संश्लिष्ट और एकात्मक होते हैं कि हम उनमें विभेद देख ही नहीं सकते। यह तभी सम्भव है, जब उसका नेता संघटनात्मक प्रवृत्तियों में अनुपायी वर्ग को एक-रस कर दे। एक-रसात्मकता व्यक्ति संठन के बीच में ग्रिभन्नता ही स्थापित नहीं करती, किन्तू वह उसमे ग्रपनी प्रनिवार्यता भी ग्रारोपित कर देती है। वहाँ न व्यक्ति संघ के लिए भारभूत बनता है भीर न व्यक्ति के लिए संगठन ही स्वतंत्रता-भ्रपहरण की स्थिति उपस्थित करता है। जैनेन्द्र जी के शब्दों में---"मैं स्वतंत्रता शब्द को बहुत ऊँचा नहीं मानता। मेरे निकट स्वतंत्रता की सार्थकता सर्वथा देने में हैं, लेने में तनिक भी नहीं, अर्थात मुक्ते प्रेम प्रिय है। अपनी स्वतंत्रता उस नाते मुक्ते अप्रिय भी हो सकती है। आचार्य तो, मान लो, एक के बजाय धनेक भी हो सकते है। लेकिन क्या ग्राइमी में ग्रन्त:करण ग्रीर विवेक भी दो हो सकते हैं। क्या विवेक के ग्राधिपत्य को स्वतंत्रता का घातक कहना होगा ? यदि श्राचार्य सत्ता भोगी नहीं है: उस समाज या संघ के भ्रन्तःकरण का प्रतीक है तो उसमें मैं पूरा-पूरा श्रीचित्य देखता हूँ।'' किन्तु यह सब तभी सम्भव है जबकि श्राचार्य या संघ-संचालक उसमें सजीवता भर दे। मानव की प्रत्येक कृति अपने में एक अकल्पित सम्भार लिए हुए है। पर वह सम्भार तभी खलता है, जब वह प्राण-शून्य बन जाता है। प्रत्येक कला में अमरत्व वहीं निखरता है, जब वह सजीव श्रीर जीवन्त हो। निष्प्राण तो यह रारीर भी मारभूत बन जाता है। श्राचार्यश्री की यह सर्वाधिक विशेषता रही है कि उन्होंने भपने नेतृत्व को सप्राण बनाये रखा है। इसे नेता की ही सफलता मानना चाहिए। धनुपालक वर्ग तो उसे रूढ़ व निष्प्राण बनाने को प्रतिपल तत्पर दिखाई देता है। वह संघ की प्रत्येक पद्धति को शरीर से ही पकड़ने का प्रयत्न करता है। उसके साथ चेतना कहीं छट न जाये, यह कार्य उसके नेता से ही सम्भव होता है। यही कारण है कि तेरापंथ प्रपनी उज्ज्वलतर धारा लिए प्रविरल गति से आगे बढ़ रहा है।

#### सफल कलाकार

उनके जीवन का कलात्मक पक्ष श्रिषक प्रभाव भीर प्रवाह पूर्ण रहा है। सत्यं, शिवं, सुन्दरं मनुष्य का स्वभाव है। वह उसे प्रपने जीवन में साकार देखना वाहता है। किन्तु वह तभी सम्भव है जबिक वह अपनी प्रत्येक हृति में कलात्मकता भर दे। हम सत्यं, शिवं, सुन्दरं का रचनात्मक रूप कला को मान ले तो कोई ग्रसंगत नहीं होगा। इस प्रकार प्रवृत्ति की प्राणवत्ता के लिए यह श्रावश्यक है कि उसमें कला का रूप निखरे। प्रत्येक वस्तु में जो सरसता और सौन्दर्य का दर्शन होता है, वह कला का ही परिणाम है। कलाकार उममें जितनी ग्रिषक कलात्मकता भर पाता है, उसमें सौन्दर्य उतना ही ग्रिषक चमत्कार लिये अवतरित होता है। धरती का प्रत्येक ग्रण ग्रपने में सौन्दर्य समेटे हुए है। परन्तु उसका प्रक्रियात्मक भीर प्रयोगात्मक रूप केवल कलाकार के हाथों से ही सम्भव होता है। उसकी कुशलता प्रत्येक नीरसता में सरसता उंडेल देती है। संस्कृत व्याकरण की दुरूहता से उसके छात्र अनिभन्न नहीं हैं। सम्भवतः व्याकरण की इस दुरूहता के कारण संस्कृत लोक-भाषा बनने में ग्रभी तक सफल नहीं हो रही है। किन्तु यही विषय जब श्राचार्यश्री के द्वारा विद्यार्थी गण पढ़ते हैं तो सचमुच ही यह अनुभव होता है कि यह विषय श्रन्य विषयों से कम रसात्मक नही। पर यह श्रनुभूति व्याकरण की सुगमता सिद्ध नहीं कर सकती। यह तो अध्यापक की विलक्षणता है जो कि श्रपने अध्यापन में वह कलात्मकता भर देता है जिससे विद्यार्थी उसे काव्य की-सी सरसता प्राप्त कर सके। इसका यह परिणाम है कि वे व्याकरण, दर्शन, तर्क-शास्त्र और आगमिक जान जैसे दुर्गम विषयों को भी सफलतापूर्वेक प्रसारित करते रहे हैं। उन्होंने संस्कृत का सांगोपांग अध्ययन स्वयं तो किया ही, किन्तु संघ के शिक्षा-पाठचकम में प्रमुख स्थान देकर मृत-भाषा कही जाने वाली संस्कृत-भाषा को जीवन्तता दी है। ठीक इसी प्रकार उन्होंने अपने प्रत्येक क्रिया-कलापों में कला की पुट का ग्रारोपण किया

है या उनकी प्रत्येक प्रवृत्ति में कला का स्फुरण सहज रूप से हुग्रा है; क्योंकि वे सफल कलाकार जो उहरे।

#### घ्रपनी घात्म-साधना

श्राचार्यश्री के व्यक्तित्व का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पक्ष जिसे कि मैं मानता हूँ, उनकी अपनी श्रात्म-साधना है। प्रत्येक व्यक्तित्व अपनी दुर्बनताओं से अधिक सर्माहत होता है। यह श्राघात भी ऐसा होता है जिसका कि कोई उपचार नहीं। व्यक्तित्व की सबसे बड़ी असफलता वह होती है, जहाँ व्यक्ति स्वयं अपने से ही कतरा जाता है। इसका श्रभाव प्रत्येक किया में कुण्टा भरता है और श्रन्तनः श्रसफलता और निराशा के श्रतिरिक्त कुछ भी हाथ नहीं श्राता।

सामान्यतया साधना और संसार दोनों के क्षेत्र सर्वथा पृथक्-पृथक् होते हैं। साधना के प्रस्यास काल के लिए यह प्रावश्यक भी होता है। सन्यथा संसार की टेड़ी-मेड़ी पगडंडियों में वह कभी ही भटक जाये। किन्तु साधना की परिप्यवता में संसार जसने सस्पृष्ट नहीं रहता है। साधक के लिए समूचा ब्रह्माण्ड साधनामय हो जाता है। वह साधना के उत्कर्ष का फल है। उसके लिए यह सावश्यक होता है कि साधक अपने किया-कलापों में साधना का समारोहण कर दे। वह अपनी प्रवृत्ति और साधना के बीच विलगता न पनपने दे। प्रायः साधक वहीं फिसलता है जबिक वह साधना और प्रवृत्ति के बीच सामंजस्य नहीं रख पाता। जो इस पर विजयी बना, वह अध्यात्म की भाषा में जीवन-मुक्त बना। साचार्यश्री अपनी वर्तमान ग्रवस्था में साधना की कीन-सी भूमिका पार कर रहे हैं, यह प्रश्न सम्भवतः उनके लिए नहीं है, किन्तु हसारे लिये अवश्य है जो कि बुद्धि के कठघरे में बंधे हुए हैं। वे अपने में जो कुछ बनना चाहते हैं या जो कुछ हैं, वह उनके लिए कुछ भी विदेश नहीं। क्योंकि वे अपने में एक-रस है। एक-रमता में कुछ भी मिन्त नहीं रह जाना और उमी एक-रसता में वे साधना और समार को घुला-मिला देखना चाहते है। व्यक्ति और साधनाक बीच में समय की रेखाएं खिच जायें, यह उनको विल्कुल मान्य नहीं। उनके अपने दाब्दों में "विचार प्रवाहमान रहते हैं, तब तक उनमें स्वच्छता रहतीं है। उसका प्रवाह हकता है, वे पंकिल बन जाते हैं। रूबिया श्रनावश्यक नहीं होतीं। व्यक्ति या समाज को जीवित रखने के लिए देश-काल के अनुरूप रूढ़ि का आलम्बन लेना होता है। यहां पर किंद्रवाद नहीं है। रूढ़िवाद वह है, जो देश-काल के बदले जाने पर भी देश-काल-जितत स्थिति को न वदलने का आग्रह करे।" इसी भावना को लिक्त करते हुए कहा गया:

इस काल पुरुष की रेखा में सिमदे जीवन को उस ग्रसीम की ग्रीर बढ़ाना चाहते हो, व्यवहार जहाँ पर तरल रूप ले बह जाता उस चरम सत्य को व्यक्त बनाना चाहते हो।

सच तो यह है कि श्राचार्यश्री जो कुछ है, हमारे समक्ष है भीर जो कुछ बनना चाहते है, वह भी दृष्टि में श्रोफल नहीं है । फिर हमारे श्रन्तर-चक्षु या चर्म-चक्षु उन्हें कहाँ तक परखते हैं, यह श्रपनी-श्रपनी योग्यनाश्रों पर भी श्रवलम्बित है ।



## द्वितीय संत तुलसी

सन् १६४४ की बात है, जब अणुवत-भान्दोलन के प्रवर्तक आजायंश्री तुलसी बम्बई में थे और कुछ दिनों के लिए वे मुलुण्ड (बम्बई का एक उपनगर) में किसी विशिष्ट समारोह के सिलिसिले में पथारे हुए थे। यहीं पर एक प्रवचन का भायाजन भी हुआ था। सार्वजिनक स्थान पर सार्वजिनक प्रवचन होने के नाते मैं भी उसका लाभ उठाने के उद्देश्य से पहुँचा हुआ था।

प्रवचन में कुछ मनिच्छा से ही सुनने गया था, क्योंकि इससे पूर्व मेरी धारणा साधुमी तथा उपदेशकों के प्रति, विशेषतया धर्मोपदेशकों के प्रति कोई बहुत अच्छी न थी धौर ऐसे प्रसंगों में प्रायः महात्मा तुलसीदास की उस पंक्ति को दोहराने लगता था जिसमें उन्होंने पर उपदेश कुशल बहुतेरे, वे शासरीह ते नर न धनेरे कहकर पाखंडी धर्मोपदेशकों की अच्छी खबर ली है। परन्तु भाषायंश्री तुलसी के प्रवचन के बाद जब मैंने उनकी और उनके शिष्यों की जीवनचर्या का निकट से निरीक्षण कियातब तो मैं स्वयं अपनी लघुता से बरंबस इनना दब-सा गया कि मात्म-ग्लानि एक अभिशाप बन कर मेरे पिछे पड़ गई भौर भावायंश्री तुलसी जैसे निरीह संत के प्रति भनजाने ही अश्रद्धा का भाव मन में लाने के कारण बड़ा पदचालाप हुआ। मारे लज्जा के मैं कई दिनों तक फिर किसी ऐसे समारोह में गया ही नहीं।

## मुनिश्री से भेंट

कुछ दिन बाद मुनिश्री नगराजजी की सेवा में मुर्भ उपस्थित होने का सौभाग्य मिला। धापने मुर्भ प्रणुद्रत पर कुछ साहित्य तैयार करने की प्रेरणा दी। मैंने अपनी असमर्थता के साथ धपनी हीनता का भी स्पष्टतः निवेदन किया धौर बताया कि अणुद्रत-धान्दोलन के किसी भी नियम की कसौटी पर मैं खरा नहीं उतर सकता; तब, ऐसी स्थिति में इस विषय पर लिखने का मुर्भ क्या ग्रधिकार है,? मुनिश्री ने कहा कि अणुद्रत का मूलाधार सत्य है और सत्य-भाषण कर आपने एक नियम का पालन तो कर ही लिया। इसी प्रकार आप अन्य नियमों का भी निर्वाह कर सकेंगे। मुर्भ कुछ प्रोत्सा-हन मिला और मैंने अणुद्रत तथा आचार्यथी तुलसी के कित्यय ग्रन्थों का अध्ययन कर कुछ सममने की वेच्टा की और एक छोटा-सा लेख मुनिश्री की सेवा में प्रस्तुत कर दिया। लेख अत्यन्त साधारण था, तो भी मुनिश्री की विशाल सहृदयता ने उसे अपना लिया। तब से अणुद्रत की महत्ता को कुछ आंकने का मुर्भ सौभाग्य मिला और मेरी यह आन्ति भी मिट गई कि सभी धर्मोपदेशक तथा संत निरे परोपदेशक ही होते हैं। सच तो यह है कि गोस्वामी तुलसी की वाणी की वास्त-विक सार्थकता मैंने आचार्यश्री तुलसी के प्रवचन में प्राप्त की।

### जीवन भौर मृत्यू

गोस्वामी तुलसी ने नैतिकता का पाठ सर्वप्रथम अपने गृहस्य जीवन में और स्वयं अपनी गृहिणी से प्राप्त किया था; किन्तु आचार्यश्री तुलसी ने तो आरम्भ से ही साधु-वृक्ति अपनाकर अपनी साधना को नैतिकता के उस सोपान पर पहुँचा दिया है कि गृहस्थ और संन्यासी, दोनों ही उससे कृतार्थ हो सकते हैं। तुलसी-कृत रामचरितमानस की सृष्टि गोस्वामी तुलसी ने 'स्वान्तः मुखाय' के उद्देश्य से की, किन्तु वह 'सर्वान्तः सुखाय' सिद्ध हुआ; क्योंकि संतों की सभी विभू-

तियाँ भीर सभी कार्य धन्यों के लिए ही होते भाए हैं। परोपकाराय सतां विभूतयः। फिर भाचार्यश्री तुलसी ने तो भारम्भ से ही भपने सभी कृत्य परार्थ ही किए हैं भीर परार्थ को ही स्वार्थ मान लिया है। यही कारण है कि उनके भणुव्रत-भान्दोलन में वह शक्ति समायी हुई है जो परमाणु शक्ति-सम्पन्न बम में भी नहीं हो सकती; वयों कि प्रणुव्रत का लक्ष्य रचनात्मक एवं विश्वकल्याण है भीर भाणविक शस्त्रों का तो निर्माण ही विश्व-संहार के लिए किया जाता है। एक जीवन है तो दूसरा मृत्यु। तो भी जीवन मृत्यु से सदा ही बड़ा सिद्ध हुआ है और पराजय मृत्यु की होती है, जीवन की नहीं। नागासाकी तथा हिरोशिमा में इतने बड़े विनाश के बाद भी जीवन हिलोरें ले रहा है भीर मृत्यु पर श्रृट्टहास कर रहा है।

### बास्तविक मृत्यु

मानव की वास्तविक मृत्यु नैतिक हास होने पर होती है। नैतिक ग्राचरण में हीन होते पर वस्तुतः मनुष्य मृतक से भी बुरा हो जाता है, क्योंकि साधारण मृत्यु होने पर 'ग्रात्मा' ग्रमर बनी रहती है। न हन्यते हन्यमाने शरीरे (गीता)। किन्तु नैतिक पतन हो जाने पर तो शरीर के जीवित रहने पर भी 'ग्रात्मा' मर चुकती है ग्रीर लोग ऐसे व्यक्ति को 'हृदयहीन', 'ग्रनात्मवादी', 'मानवता के लिए कलक' कहकर पुकार उठते हैं। इसी प्रकार नैतिकता से हीन राष्ट्र चाहे जैसा भी श्रेष्ठ शासनतन्त्र क्यों न ग्रगीकार करे, वह जनता की ग्रात्मा को मुखी तथा सम्पन्न नहीं बना सकता। ऐसे राष्ट्र के कानून तथा समस्त सुधार-कार्य प्रभावकारी सिद्ध नहीं होते ग्रीर न उसकी कृतियों में स्थायित्व ही ग्राने पाता है; क्योंकि इन कृतियों का श्राधार सत्य ग्रीर नैतिकता नहीं होती, ग्रापतु एक प्रकार की ग्रवसरवादिता ग्रथवा ग्रवसरसाधिका वृत्ति ही होती है। नैतिक संबल के बिना भौतिक मुख-साधनों का वस्तुनः कोई मूल्य नहीं होता।

### भ्रणु और भ्रणुवत-म्रान्दोलन

प्राज के युग में आणिवक शक्ति का प्राधान्य है श्रीर इसीलिए इसे अणु युग की संज्ञा देना सर्वथा उपयुक्त प्रतीत होता है। विज्ञान श्राज श्रपनी चरम सीमा पर है श्रीर उसने अणुमात्र में भी ऐसी शक्ति खोज निकाली है, जो श्रिक्ति विव्व का संहार कुछ मिनटों में ही कर डालने में समर्थ है। इस सर्वसहारकारी शक्ति से सभी भयभीत हैं श्रीर तृतीय विश्वअपापी युद्ध के निवारणार्थ जो भी प्रयास प्रकारान्तर में आज किये जा रहे है, उनके पीछे भी भय की यही भावना समायी हुई है।

पिक्चमी राष्ट्रों की संगठित शांध्य मे भयभीत होकर रूस ने पुनः स्राणविक शस्त्रास्त्रों के परीक्षण की घोषणा ही नहीं कर दी है, वस्तुतः वह दो-चार परीक्षण कर भी चुका है। रूस के इस स्राचरण की स्वाभाविक प्रतिक्रिया स्रमरीका पर हुई है स्रीर स्रमरीका ने भूमिगत स्राणविक परीक्षण स्रारम्भ कर दिये है।

ग्रमरीका प्रक्षेपास्त्रों की होड़ में एस से पहले से ही पिछड़ा हुआ है और इसोलिए रूस को उस दिशा में ग्रीर धिक बढ़ने का मौका वह कदापि नहीं दे नकता। साथ ही, विश्व के ग्रन्य देशों पर भी इसकी प्रतिक्रिया हुई है ग्रीर बेल्प्रेड में ग्रायोजित तटस्थ देशों का सम्मेलन इस घटना से कदाचित् ग्रत्यधिक प्रभावित हुग्रा है; क्योंकि सम्मेलन ग्रुरू होने के दिन ही रूस ने ग्रपनी यह ग्रानंककारी घोषणा की है। इस प्रकार ग्राज का विश्व ग्राणविक शक्ति के विनाश-कारी परिणाम से बुरी तरह त्रस्त है। मभी ग्रोर 'त्राहि-त्राहि'-सी मची हुई है; क्योंकि युद्ध ग्रुरू हो चुकने पर कदाचित् कोई 'त्राहि-त्राहि' पुकारने के लिए भी शेष न रह जायेगा। इस विषम स्थित का रहस्य है कि शान्ति के ग्रावरण में युद्ध की विभीषिका सर्वत्र दिखाई पढ़ रही है ?

## परिग्रह और शोषण की जनयित्री

जब मानव भौतिक तथा शारीरिक सुखों की प्राप्ति के लिए पाशिवकता पर उतर भाता है और अपनी भ्रात्मा की भान्तरिक पुकार का उसके समक्ष कोई महत्त्व नहीं रहता, तब उसकी महत्त्वाकांक्षा परिग्रह और शोषण को जन्म देती है, जिसका स्वामाविक परिणाम साम्राज्य अथवा प्रभुत्व-विस्तार के रूप में प्रकट होता है। अपने लिए जब हम आवश्यकता से अधिक पाने का प्रयास करते हैं, तब निश्चय ही हम दूसरों के स्वत्व के अपहरण की कामना कर उठते हैं; क्योंकि औरों की वस्तु का अपहरण किये बिना परिग्रह की भावना तृष्त नहीं की जा सकती। यही भावना औरों की स्वतन्त्रता का अपहरण कर स्वच्छन्दता की प्रवृत्ति को जन्म देती है, जिसका व्यवहारिक रूप हम 'उपनिवेशवाद' में देखते हैं। शोषण की चरम स्थित कान्ति को जन्म देती है, जैसा कि फांस और रूस में हुआ और अन्ततः हिंसा को ही हम मुक्ति का साधन मानने लगते हैं तथा साम्यवाद के सबस साधन के रूप में उसका प्रयोग कर शान्ति पाने की लालसा करते हैं, किन्तु शान्ति फिर भी मृग-मरीचिका बनी रहती है। यदि ऐसा न होता तो रूस शान्ति के लिए आणविक परीक्षणों का सहारा क्यों लेता और किसी भी समभौता-वार्ता की पृष्ठभूमि में शक्ति-सन्तुलन का प्रश्न क्यों सर्वाधिक महत्त्व पाता रहता ?

#### मिध्याचरण

भारत के प्राचीन एवं अर्वाचीन महात्माओं ने सत्य और अहिंसा पर जो अत्यधिक बल दिया है, उसका मुक्य कारण मानव को मुख का वह सोपान प्राप्त कराना ही रहा है, जहाँ तृष्णा और वितृष्णा का कोई चिह्न शेष नहीं रह जाता। सभी धर्मों ने अपरिग्रह और त्याग पर अत्यधिक बल दिया है, जो मूलतः संत्य और अहिंसा के ही रूपान्तर हैं। सत्य की प्राप्ति के लिए सत्य का श्राचरण अनिवायं बनाया गया है—सच्चं लोगस्मि सारभ्यं (जैन) यिन्ह सच्चं च विमा च सो सुची (बीद) अहमन्तात् सत्यमुपेमि (वैदिक)।

वास्तविक धर्म मनमा, वाचा और कर्मणा शुद्धाचरण माना गया है और मन मे भी प्रतिकृल प्राचरण करने वाले को 'पाखण्डी' तथा 'मिथ्याचारी' बताया गया है—

### कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य ब्रास्ते मनसा स्मरन्। इन्द्रियार्थान्यमूढात्मा मिध्याचारः स उच्यते॥ ---गीता

मिथ्याचरण स्वयं अपने में एक छलना है, तब औरों में भी अविश्वास उत्पन्न करे, तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ? विश्व की महान् शक्तियाँ शान्ति के नाम पर युद्ध की गुप्त रूप से जो तैयारियाँ कर रही हैं, यह मिथ्याचरण का ही खोतक है और इसीलिए पूर्व तथा पश्चिम में पारस्परिक विश्वास का नितान्त ह्नाम होकर भय की भावना उद्दीप्त हो उठी है।

भारत में आज सर्वोत्कृष्ट प्रजातन्त्र विद्यमान होते हुए भी प्रजा (जनता) सुखी एवं सन्तुष्ट क्यों नहीं है? मद्यनिषेध के लिए इतने कड़े कानून लागू होने पर और केन्द्र द्वारा इतना अधिक प्रोत्साहन दिये जाने पर भी वह कारगर होता क्यों दिखाई नहीं पड़ता? अष्टाचार रोकने के लिए प्रशासन की ओर से इतना अधिक प्रयास किये जाने पर भी वह कम होने के स्थान में बढ़ क्यों रहा है? इन सबका मूल कारण मिथ्याचरण नहीं तो और क्या है? ग्रान्तरिक प्रथवा आत्मिक विकास किये बिना केवल बाह्य-विकास बन्धन-मुक्ति का साधन नहीं हो सकता। विज्ञान तथा प्रणु शक्ति का विकासमात्र ही उत्थान का एकमात्र साधन नहीं है।

श्रणुशक्ति (विज्ञान) के साथ-साथ आज अणुत्रत (नैतिक आचरण) को अपनाना भी उतना ही, अपिनु उससे कहीं अधिक, महत्त्व रखता है, जितना महत्त्व हम विज्ञान के विकास को देते हैं और जिसे राजनीतिक स्वतन्त्रता के बाद आर्थिक स्वतन्त्रता का मूलाधार भी मान बैठे हैं।

श्रणुवत के प्रवर्तक भाजार्यश्री तुलसी के शब्दों में भारतीय परम्परा में महान् वह है जो त्यागी है। यहाँ का साहित्य त्याग के भादशों का साहित्य है। जीवन के चरम भाग में निर्म्नय या संन्यासी बन जाना तो सहज वृत्ति है ही, जीवन के आदि भाग में भी प्रवण्या आदेय मानी जाती रही है: यदहरेब विरजेस् तदहरेब प्रवजेत्।

त्यागपूर्ण जीवन महाव्रत की भूमिका या निर्ग्रन्थ वृत्ति है। यह निरपवाद संयम-मार्ग है, जिसके लिए ग्रन्यन्त विरक्ति की ग्रपेक्षा है। जो व्यक्ति ग्रन्यन्त विरक्ति ग्रीर ग्रस्यन्त ग्रविरक्ति के बीच की स्थिति में होता है, वह ग्रणुव्रती बनता है। भानन्द गायापित भगवान् महावीर से प्रार्थना करता है—'भगवन् ! ग्रापके पास बहुत सारे व्यक्ति निग्नैन्य बनते हैं, किन्तु मुक्तमें ऐसी शक्ति नहीं कि मैं निर्ग्रन्थ बन् । इसलिए मैं ग्रापके पास पाँच श्रणुवत श्रीर मात शिक्षावत; हादश व्रतरूप गृही धर्म स्वीकार करूँगा ।

यहाँ शक्ति का अर्थ है विरिक्त । संसार के प्रति, पदार्थों के प्रति, भोग-उपभोग के प्रति जिसमें विरिक्ति का प्राबल्य होता है, वह निर्मन्य बन सकता है । यह वस्तु सबके लिए सम्भव नहीं । वत का अणु-रूप मध्यम मार्ग है । यवती जीवन शोषण और हिंसा का प्रतीक होता है और महा-व्रती जीवन दुःशक्य । इस दशा में अणुवती जीवन का विकल्प ही शेष रहता है ।

श्रणुत्रत का विधान दतों का समीकरण या संयम और श्रसंयम, सत्य श्रीर श्रमत्य, ग्रहिसा श्रीर हिंसा, श्रपरिग्रह श्रीर परिग्रह का मिश्रण नहीं, ग्रपित जीवन की न्यूननम भर्यादा का स्वीकरण है।

#### चारित्रिक ग्रान्दोलन

प्रणुव्रत-प्रान्दोलन मूलतः चारित्रिक प्रान्दोलन है। नैतिकता ग्रीर सत्याचरण ही इसके मूलमंत्र हैं। ग्रात्म-विवेचन ग्रीर ग्रात्म-परीक्षण इसके साधन हैं। ग्राचार्यश्री तुलसी के प्रमुसार यह ग्रान्दोलन किसी सम्प्रदाय या धर्म-विशेष के लिए नहीं है। यह तो सबके लिए ग्रीर सार्वजनीन है। ग्रणुव्रत जीवन की वह न्यूनतम मर्यादा है जो सभी के लिए ग्राह्म एवं शक्य है। वाहे ग्रात्मवादी हों या ग्रान्तमवादी, बड़े धर्मज हों या मामान्य सदावारी, जीवन की न्यूनतम मर्यादा के बिना जीवन का निर्वाह सम्भव नही है। ग्रान्तमवादी पूर्ण ग्रहिमा में विश्वास न भी करें, किन्तु हिसा ग्रच्छी है, ऐसा तो नहीं कहने। राजनीति या क्ट्नीति को ग्रान्वार्य मानने वाले भी यह तो नहीं नाहने कि उनकी पत्नियाँ उनसे छलनापूर्ण व्यवहार करे। ग्रामत्य ग्रीर ग्राप्माणिकता बरनने वाले भी दूसरों से सच्चाई ग्रीर ग्रामाणिकता की ग्राह्म करते है। बुराई मानव की दुलबंता है, उसकी स्थित नहीं। कल्याण ही जीवन का चरम सत्य है जिसकी साधना वत (श्राचरण) है। ग्रणुव्रत-ग्रान्दोलन उमी की भूमिका है।

### भ्रणुद्रत-विभाग

भ्रणुवत पाँच हैं --- प्रहिसा, सत्य, अचीयं, ब्रह्मचर्य या स्वदार संतोष और अपरिग्रह या इच्छा-परिमाण।

- १. श्राहिसा—ग्रहिसा-ग्रणुवत का तात्पर्य है—प्रनर्थ हिंसा से अनावश्यकता शृत्य केवल प्रमाद या प्रज्ञानजनित हिंसा में बचना । हिंसा केवल कायिक ही नही, मानसिक भी होती है और वह अधिक घातक सिद्ध होती है । मानसिक हिंसा में सभी प्रकार के घोषणों का समावेग हो जाता है और इसीलिए प्रहिंसा में छोटे-बड़े अपने-बिराने, स्पृष्य-ग्रस्पृष्य प्रादि विभेदों की परिकल्पना का निषेध अपेक्षित होता है ।
- २. सत्य—जीवन की सभी स्थितियों में नौकरी, व्यापार, घरेलू या राज्य श्रथवा समाज के प्रति व्यवहार में सत्य का श्राचरण श्रणुवती की मुख्य साधना होती है।
- ३. श्रवीर्य लोभाविले श्राययद श्रदसम् (जैन) लोके श्रविन्तं नादियति तमहं कृमि बाह्मणं (बीड) अचीर्य में मेरी निष्ठा है। चोरी को मैं त्याज्य मानता हूँ। गृहस्थ-जीवन में सम्पूर्णं चोरी से बचना सम्भव न मानते हुए श्रणुवती प्रतिज्ञा करता है—१. मैं दूसरों की वस्तु को चोर-वृत्ति से नहीं लूँगा, २. जानबूभकर चोरी की वस्तु नहीं खरीदूँगा श्रीर न चोरी में सहायक बनूँगा, ३. राज्यनिषद्ध वस्तु का व्यापार व श्रायात-निर्यात नहीं करूँगा, ४. व्यापार में श्रप्रमा-णिकता नहीं बरतूँगा।
  - ४. बह्मचर्य-१. तबेसु वा उसमं बंभचेरं (जैन), २. माते कामगुणे रमस्सु चिसं (बीद्ध) ३. बह्मवर्येग

१ मो सलु आहं तहा संवार्गन मुण्डे जाव पम्बद्दलए। श्रहणां वेवाणृष्पियाणं शन्तिए पंचाणुब्दयं सलसिक्वाबदयं ढ़ाइस विहं गिहिष्यस्मं पडिवण्जिस्सामि— उपासकवर्शाग ॥ १ ॥

तपसा बेबा मृत्युमुपाच्यत (वेद) ।

ब्रह्म वर्य अहिंसा का स्वास्मरमणात्मक पक्ष है। पूर्ण ब्रह्मचारी न बन सकने की स्थिति में एक पत्नीवृत का पालन प्रणुवती के लिए श्रनिवार्य ठहराया गया है।

५. अपरिग्रह — १. 'इच्छाहु आगाससम अणातया' (जैन), २. तम्हन्सयो सम्ब दुक्तं जिनाति (बौढ), ३. मागृधः कस्यस्विद्धनम् (वैदिक) परिग्रह से तात्पर्यं संग्रह से हैं। किसी भी सद्गृहस्य के लिए संग्रह की भावना से पूर्णत्या विरत रहना प्रसम्भव है। अतः अणुद्रत में अपरिग्रह से संग्रह का पूर्ण निषेष का तात्पर्यं न लेते हुए अमर्यादित संग्रह के रूप में गृहीत है। अणुद्रती प्रतिज्ञा करता है कि वह मर्यादित परिणाम ने अधिक परिग्रह नहीं करेगा। वह पूस नहीं लेगा। लोभवश रोगी की चिकत्सा में अनुचित समय नहीं लगायेगा। विवाह आदि प्रमंगों के सिलसिले में दहेज नहीं लेगा, आदि।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अणुवत विशुद्ध रूप में एक नैतिक सदाचरण है और यदि इस अभियान का सफल परिणाम निकल सका तो वह एक सहस्र कानूनों से कहीं अधिक कारगर सिद्ध होगा और भारत या अन्य किसी भी देश में ऐसे आचरण से प्रजातन्त्र की सार्थकता चरितार्थ हो सकेगी। प्रजातन्त्र धर्मनिरपेक्ष भले ही रहे, किन्तु जब तक उसमें नैतिकता के किसी मर्यादित मापदण्ड की व्यवस्था की गुंजाइश नहीं रखी जाती, तब तक वह वास्तविक स्वतन्त्रता की सृष्टि नहीं कर सकता और नहीं जनसाधारण के आधिक स्तर को ऊँचा उठा सकता है। स्वतन्त्रता की ओट में स्वच्छन्द्रता और आधिक उत्थान के रूप में परिग्रह तथा शोषण को ही खुनकर खेलने का मौका तब तक निस्संदेह बना रहेगा, जब तक इस आणिवक युग में विज्ञान की महत्ता के साथ-साथ अणुवत-जैमे किसी नैतिक बन्धन की महत्ता को भी मली-भाति आका नहीं जाता। विश्व-शान्ति की कुञ्जी भी इसी नैतिक बन्धन में निहित है। बस्तुतः पंचशील, सह-अस्तित्व, धार्मिक सहिष्णुना अणुवन के अंगों गंग गैमे ही है। अनः आचार्यश्री तुलमी का अणुवत-आन्दोलन आज के अणुव्या की एक विजिष्ट देन ही समभा जाना चाहिए।

भारत विश्व में यदि प्राचीन अथवा अर्वाचीन काल में किसी कारण सम्मानित रहा अथवा आज भी है तो अपने सत्य, त्याग, अहिंमा, परोपकार (अपरिग्रह) आदि नैतिक गुणों के कारण ही, न कि अपनी सैन्य जिस्त अथवा भौतिक शिक्त के कारण। किन्तु, आज देश में जो अष्टाचार व्याप्त है और नैतिक पतन जिस सीमा तक पहुँचा चुका है, उसे एक 'नेहरू का आवरण' कब तक ढँके रहेगा? एक दिन तो विश्व में हमारी कलई खुन कर ही रहेगी और तब विश्व हमारी वास्तविक हीनता को जान कर हमारा निरादर किये बिना न रहेगा। अतः भारतवासियों के लिए आणविक शिक्त के स्थान में आज अणुव्रत-आन्दोलन को शिक्तिशाली बनाना कहीं अधिक हितकारी सिद्ध होगा और मानव, राष्ट्र तथा विश्व का बास्तविक कल्याण भी इसी में निहित है।

श्राचार्यश्री तुलसी का वह कथन, जो उन्होंने उस दिन अपने प्रवचन में कहा था, मुक्ते भाज भी याद है कि "एक स्थान पर जब हम मिट्टी का बहुत बड़ा और ऊँचा ढेर देखते हैं तब हमें सहज ही यह ध्यान हो जाना चाहिए, किसी भ्रन्य स्थान पर इतना ही बढ़ा और गहरा गड़ढा खोदा गया है।"

शोषण के बिना संग्रह श्रसम्भव है। एक को नीचे गिराकर दूसरा उन्नति करता है। किन्तु जहाँ बिना किसी का शोषण किये, बिना किसी को नीचे गिराये सभी एक साथ श्रात्मोन्नति करते हैं, वही है जीवन का सच्चा और शास्त्रत मार्ग।

'म्रणुव्रत' नैतिकता का ही पर्याय है भौर उसके प्रवर्तक भाचार्यश्री तुलसी महात्मा तुलसी के पर्याय कहे जा सकते हैं।



# युवा स्त्राचार्य और वृद्ध मन्त्री

#### मुनिधी विनयवर्धनजी

माचार्यश्री तुलसी ने बाईस वर्ष की घल्पतम आयु में आवार्य-पद का भार सम्भाला। उनके मन्त्री मनिश्री मगनलालजी उस समय लगभग उनसे तिग्नी आयू में थे। यूवा आचार्य भीर वृद्ध मन्त्री का यह एक धनीला मेल था। योग्य सेवक का मिल जाना भी स्वामी के सौभाग्य का विषय होता है। योग्य मन्त्री का मिल जाना राजा का प्रपता सौमान्य है ही । मन्त्रीमृति एक तपे हुए राजसेवक ये । इससे पूर्व वे कमशः चार बाचार्यों को धपनी बसाधारण सेवाएं दे कुके थे। श्राचार्यश्री तुलसी ने उन्हें मन्त्री-पद से विभूषित किया, पर इससे पूर्व भी वे अपनी कार्य-क्षमता से संत्रीमृनि कहलाने लगे थे। उनका मन्त्रीत्व सर्वसाधारण से उदभूत हुमा और यथासमय माचार्यश्री तुलसी के द्वारा मण्डित हुमा। भावार्यश्री के शासनकाल में लगभग तेईस वर्ष की सेवाएं उन्होंने टी। उनके जीवन की उपलब्धियाँ ग्रगली पीढी के लिए एक खोज का विषय बन गई है। प्रत्येक उपलब्धि के पीछे उनका नीति-कौशल ही साधारभूत था। एक-एक करके पांच श्रावार्यों से वे सम्मानित होते रहे । यह एक विलक्षण बात थी । इसके मुख्य कारण दो थे : एक तो यह कि प्रत्येक श्राचार्य के पास समर्पित होकर रहे । अपनी योग्यता भौर प्रभाव का उपयोग उन्होंने उनके लिए किया । वे नितान्त निष्काम सेवी थे। **सदैवापद्गती राजा भोग्यो भवति मंत्रिकां** का विचार उनको छु तक नहीं गया था। आचार्यश्री तुलसी जब संघ के नृतन ग्रधिनायक बने तो उन्होंने अपना सारा कौशल चतुर्विध संघ का घ्यान उनमें केन्द्रित करने के लिए लगाया । उन्होंने ब्राचार्यश्री को बन्तरंग रूप से सुकाया-बाप समय-समय पर साध-साध्वयों के बीच मसे. कोई न कोई उलाहना दिया करें, इससे प्रन्य सभी लोग प्रनुशासन में चलना तीलंगे । प्राचार्यवर ने ऐसे प्रयोग अनेकों बार किये भी । एक बार की घटना है-कुछ एक प्रमुख श्रावक किसी बात के लिए बनुरोध कर रहे थे। मन्त्रीमृति ने भी उनके बनुरोध का समर्थन किया। श्रावकों ने कहा - अब तो आप फरमा ही दीजिये; मंत्रीमुनि ने भी हमारा समर्थन कर दिया है। प्राचार्यश्री ने श्रोजस्वी शब्दों में कहा—क्या मैं सब बातें मगनलालजी स्वामी के निर्देश पर ही करता हैं। सब श्रावक सन्न रह गए। युवक झालायं ने अपने वृद्ध मन्त्री को कितना अवगणित कर दिया। पर विशेषता तो यह थी कि संत्रीमृति का नुर जरा भी बिगड़ा नहीं। वे भ्राचार्यों के लिए विनन्न परामर्शदाता ये। स्पष्टवादिता व सिद्धान्तवादिता का हौन्ना उनके सिर पर नहीं था। लोग उन्हें कभी-कभी 'जी हुजूर' भी बतलाते, पर बाचार्यों के साथ बरतने की उनकी बपनी निश्चित नीति थी। यही कारण था कि विभिन्न नीति-प्रधान बाचायों के शासन-काल में समान रूप से रहे। नाना संभावात उनके ऊपर से गुजरे, जिनमें भनेकों के चरण डगमगा गए, पर वे अपनी नीति पर श्रटल रहे और उनका मुन्दर परिणाम जीवन भर उन्होंने भोगा।

वे प्रपत्ते जीवन में सदैव लोकप्रिय रहे। जीवन के उत्तराई में तो मानो वे सर्वथा प्रनालोच्य ही हो गए। इसका कारण था, विरोध का प्रतिकार उन्होंने विरोध से नहीं किया। 'अतृणे पतितो बिद्धः स्वयमेवोपशास्यति' की कहावत चिरतार्थं हुई। प्रतिस्पर्धी भी निःसन्तान होकर समाप्त होते गए। लोकप्रियता का एक प्रन्य कारण था कि वे दायित्व-मुक्त रहना पसन्द करते थे। बहुत थोड़े ही काम उन्होंने अपने जिम्मे ले रखे थे। ग्राचार्य ही सब काम निबटाते रहे, यह उनकी प्रवृत्ति थी। किसी को प्रनृगृहीत कर प्रपना प्रभाव बढ़ाने का शौक उनमें नहीं था। उनका विश्वास था—भलाई प्रसन्दिग्ध नहीं होती, उसमें किसी की बुराई भी बहुधा फलित हो जाती है। इसलिए निलप्तता ही व्यक्ति के लिए सुखद मार्ग है। इस विश्वास में सब लोग भले ही सहमत न हों, पर उनकी लोकप्रियत्व का तो यह एक प्रमुख कारण था ही।

उनके जीवन में नित नये उन्नेष धाते रहते थे। बहुधा अवकाश प्राप्त व्यक्ति बहुत दिनों तकलीफ कर प्रयना प्रभाव सीमित करता है। मंत्रीमुनि ६० वर्ष तक जीए। वर्षों तक वे वार्षक्य और रुग्णावस्था से पूरी तरह प्रसित रहे, पर उनके जीवन की यह विलक्षण बात थे। कि परिस्थितियौ स्वयं बदलकर उनके लिए किसी न किसी प्रकार से श्रेय बटोर कर ले धातीं। टाला गया भी श्रेय उन्हें चतुर्गृणित होकर मिलता। इस प्रकार ये अपने जीवन के श्रन्तिम क्षण तक नूतन ही बने रहे। उनके जीवन का एक उन्लेखनीय श्रानन्द था—घोर तपस्वी मुनिश्री सुखलालजी और विद्या वारिधि मुनिश्री सोहनलालजी जैसे धारम साथ मुनियों का योग।

वे झत्यन्त मित-भाषी थे। उनके मुख से सदैव नपी-तुली बात निकलती। दूसरों को देने के लिए उनकी प्रमुख शिक्षा थी----

#### ''वचन रतन मुक्तकोट है, होट कपाट क्रणाय। सम्भल-सम्भल हरफ काढ़िये, नहीं परवश पढ़ जाय।

यही दोहा बचपन में उन्होंने मुक्ते याद करवाया था।

हो सकता है उनकी वाणी का संयम ही उनके लिए वाक्सिद्धि बन गया हो। अनेकानेक लोग आज भी उनके वचन-सिद्धि की गाया गाते हैं। सरदारशहर की घटना है। मुनिश्री नगराजजी व मुनिश्री महेन्द्रकुमारजी दिल्ली की ओर विहार करा रहे थे। मंत्रीमुनि पहुँचाने के लिए कुछ दूर पधारे। वन्दन और क्षमायाचना की वेला में मंत्रीमुनि ने मुनिश्री नगराजजी के कान में कहा—"देखो, दिल्ली जाओ हो, जवाहरलाल नेहरू स्यूं भी बात करनी पड़ें तो भी मन में संकोच नहीं राखणो। शासण रो बात बताने में कोई डर नहीं।" मुनिश्री वहाँ से विहार कर गये। प्रधानमन्त्री नेहरू से मुनिजनों का तब तक कोई सम्पर्क नहीं था। कोई आसार भी सामने नहीं थे। उसी वर्ष प्रथम बार मुनिश्री से प्रधानमन्त्री की ४० मिनट बातचीत हुई। मुनिश्री ने जिस निस्संकोच भाव से अणुवत-प्रान्दोलन का कार्यक्रम सामने रखा वे अत्यन्त प्रभावित हुए। उन्होंने मुनिश्री से प्राचार्यश्री को दिल्ली बुलवाने का भी आमन्त्रण करवाया। अणुवत-सभा में भाग लेने की बात भी उसी समय निध्वत कर दी। यह वही वर्ष था जिस वर्ष आचार्यवर सरदारशहर चतुर्मास कराकर केवल ग्यारह दिनों में दिल्ली पधारे। राष्ट्रपति तथा नेहरूजी ने प्रथम बार अणुवत आयोजनों में भाग लिया। इस प्रकार मंत्री-मुनि मगनलालजी स्वामी की वाक्सिद्धि के उदाहरणों को संजीया जाये तो एक बहुत बड़ा ग्रन्थ बन सकता है।

उनकी सेवाएं तेरापंथ साधु-संघ के लिए महान् थीं। कौन जानता था भेदपाट की पथरीली भूमि में जन्मा यह बालक महान् धर्म-संघ का मन्त्री बनेगा। कौन जानता था, केवल बारह झाने की विद्या पढ़ने वाला बालक इतना असा-धारण, दूरदर्शी और अनुपम मेघावी होगा। पर यह कहावत भी सत्य है—"होनहार विरवान के होत चीकने पात"। जब ये पाठशाला में पढ़ते थे तो गुरु ने बुद्ध-परीक्षा की दृष्टि से सभी छात्रों से पूछा—यज्ञोपवीत की खूँटी कौनसी है? उपस्थित छात्र एक-दूसरे का मुँह ताकने लगे। गुरु ने इनकी और देखा तो उन्होंने अट से उत्तर दे डाल(—यज्ञोपवीन की खूँटी कान है। गुरु और छात्र सभी इस उत्तर से आनन्द-विभोर हुए।

यह है संक्षेप में युवा स्नाचार्य के वृद्ध मंत्री की जीवन गाथा।



# संत-फकीरों के ऋगुऋा

बेगम झलीजहीर अध्यक्षा, समाज कल्याण बोर्ड, उलरप्रदेश

यह जानकर निहायत खुशी हुई कि आचार्यश्री तुलसी घवल समारोह सिमिति अणुव्रत-आन्दोलन के रहनुमा आचार्यश्री तुलसीजी का अभिनन्दन समारोह मनाने जा रही है और उनकी शान में एक अभिनन्दन ब्रन्थ भी तैयार कर रही है।

आचार्यश्री तुलसी हमारे देश के उन संत-फकीरों के अगुधा हैं, जिन्होंने इस बात को सहसूस किया कि देश की आजादी को कायम रखने के लिए यह बहुत जरूरी है कि हमारे देश के रहने वालों का नैतिक और चारित्रिक स्तर अंचा हो। इसके बिना किसी तरह से हमारी असली तरक्की मुमिकिन नहीं है। इसलिए उन्होंने अपने साढ़े छः सौ शिष्य साधुओं और साध्वियों का रुआन इस और खींचा कि सारे देश का ध्यान अणुबत-आन्दोलन के असूलों की ओर खींचने में जुट जाओ। इतना ही नहीं, उन्होंने अपने तेरापंथ समाज के साथ सारे देश को यह महसूस कराया कि अणुबत के असूलों पर चलना हमारे लिए बहुत जरूरी है।

एक बार जब अणुब्रत-मान्दोलन का सालाना जलसा सन् १६५७ में सुजानगढ़ (राजस्थान) में हुआ तो उत्तर-प्रदेशीय अणुब्रत समिति के संयोजक ने हमें भी उसमें भाग लेने की दावत दी। यह पहला मौका था जब हमने नजदीक से आचार्यश्री तुलसी और उनके बिढ़ान् व बहुत-सी विद्याओं व हुनरों में माहिर शिष्यों, साधुओं और साध्वियों को देखा। ये सभी अच्छे-अच्छे घरों के थे धीर सारे दुनियावी सुखों को छोड़ कर इस नये मुख की दुनिया में आ चुके थे, जिसे हम रूहानी जिन्दगी का सुख कहते हैं।

श्राचार्यश्री तुलशी से मिलने पर हमने देखा कि वे सही माने में एक फकीर की जिन्दगी बसर करते हुए इस बात की कोशिश में जुटे हुए हैं कि हमारी तरक्की के साथ-साथ सारी दुनिया की तरक्की हो। यही वजह है कि हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, ईसाई सभी लोग उनके बताये हुए श्रणुव्वत के श्रसूलों को पसन्द करते हैं।

आज के जमाने में हम इन्सान का आर्थिक स्तर तो ऊंचा करने में जुटे हुए हैं; लेकिन उसके मुकाबले में उसके जीवन का स्तर ऊंचा करने की कितनी कोशिश हम कर रहे हैं, यह सोचने की बात है। हम अपने देश की तरकशी के लिए पंचवर्षीय योजना चला रहे हैं, लेकिन पंचवर्षीय योजनाओं की कामयाबी के लिए जरूरी है कि देश में रहने वालों का नैतिक और चारित्रिक स्तर काफी ऊंचा हो। इसके बिना देश में राष्ट्रीय चेतना नहीं जाग सकती है।

यह तो सभी लोग जानते हैं कि सच बोलना चाहिए, किसी को सताना नहीं चाहिए, दुनिया भर की दौलत बटो-रने की कोशिश नहीं करनी चाहिए; लेकिन सवाल यह है कि कितने लोग इस बात पर धमल करते हैं? धाचार्यश्री तुलसी का धान्दोलन महज लैक्चर देने का या नसीहत देने का धान्दोलन नहीं है, बल्कि यह उन बातों पर धमल करने का धान्दोलन है। धाचार्यश्री तुलसी और उनके शिष्य खुद महाबतों का पालन करते हुए हरएक को इस बात के लिए राजी करने की कोशिश करते हैं कि कम-से-कम लोग अणुवतों पर चलने का धहद करें। इसके लिए वे, जो लोग इन धसूलों को पसन्द करते हैं, उनसे प्रतिज्ञा-पत्र भरवाते हैं कि कम-से-कम एक साल वे इन धसूलों पर जरूर चलेंगे। इस तरह से यह महज कहने की नहीं, बल्कि करने की तहरीक़ है, जगने और जगाने की तहरीक़ है, नामुमिकन को मुमिकन बना देने की तहरीक़ है। धाचार्यश्री तुलसी ने मरीज इंसान की नब्ब को धच्छी तरह से समक्ता है। उसे इंसानियत का पेग़ाम किस तरह सुनाया जाये भीर उस पर चलने के लिए किस तरह जोश पैदा किया जाये, यहाँभाज के जमाने में भीर लोगों की बिन-स्पत ज्यादा ग्रम्छी तरह समका है।

आज सबसे ज्यादा कमी चरित्र की है। आज इस चरित्र की कमी की वजह से एक इंसान दूसरे इंसान का ऐत-बार खो चुका है, एक जमात दूसरी जमात का ऐतबार खो चुकी है और एक मुल्क दूसरे मुल्क का ऐतबार खो चुका है। इस बे-ऐतबार (अविश्वास) के जमाने में हरएक को एक-दूसरे से खतरा पैदा हो गया है और इस खंतरे का सामना करने के लिए दुनिया के मुल्क अणुवम और उद्जन वम आदि का सहारा ले रहे हैं; जिनके इस्तेमाल से न सिर्फ एक मोहल्ला या एक शहर, बल्कि सूबे-के-सूबे, देश-के-देश साफ हो जायेंगे। ऐसे नाजुक जमाने में अणुवम के मुकाबले में अणुवत-आन्दो-लन चला कर आचार्यश्री तुलसी ने दुःख और निराशा के अन्धकार में भटकती हुई दुनिया को सुख-शान्ति की एक नई रोशनी दी है।

यह ठीक है कि ग्रणुव्रत-भ्रान्दोलन के बलाने वाले आचार्यश्री तुलसी जैन-श्वेताम्बर तेरापंथ-समाज के नवें भ्राचार्य हैं, परन्तु मेरी दृष्टि में भ्राचार्यश्री तुलसी दुनिया को मानवता का वही सन्देश सुना रहे हैं जिसे कभी योगिराज कृष्ण ने सुनाया, महावीर स्वामी ने सुनाया, महात्मा गौतम बुद्ध ने मुनाया, जिसके लिए हजरत मुहम्मद साहव ने हिज-रत किया भ्रीर हमारे देश के राष्ट्रपिता महात्मा गांधीजी शहीद हुए। भ्राज उसी मानवता का सन्देश, इंसानियन का पैग्राम म्राचार्यश्री तुलसी भ्रीर म्राचार्यश्री तुलसी भ्रीर म्राचार्यश्री तुलसी भ्रीर म्राचार्य विनोबा भावे हमें सुना रहे हैं।

हमारा यह फर्ज है कि तन, मन और जी-जान से जहाँ तक मुमकिन हो, उनके इस आन्दोलन को कामयाब बनाने की हम पूरी कोशिश करे। इसी में हम सबकी मलाई है, हमारे देश की मलाई है और हमारी इस दुनिया की भी भलाई है।

श्राज ऐसे महात्मा श्राचार्यश्री तुलसी का धवल समारोह मनाया जा रहा है। समक्ष में नहीं श्राता, किन शब्दों में भ्रपने जजबात का इजहार कहाँ, किन शब्दों में श्रपनी भावनांजिल पेश कहाँ। फिर भी इन चन्द शब्दों में में श्रपनी स्वाहिण का इजहार करती हूँ कि वे चिरायु हों श्रीर सब लोगों की इसी तरह श्रणुवत-श्रान्दोलन श्रीर मैत्री-दिवस श्रादि के जरिये रहनुमाई करें जिससे कि हमारी यह दुनिया श्राज की फैली हुई मुसीबतों से नजात पा सके, छटकारा पा सके। श्रादमी सच्चे माने में श्रादमी बन कर एक-दूसरे का मान करना सीख सके। सब लोग मिल-जुलकर सुख से रह सकें श्रीर इंमान की खुशहाली के लिए किन वातों की जरूरत है श्रीर किन बानों की नहीं है, यह समक्ष सकें, एक जौहरी की तरह हीरे श्रीर पत्थर की पहचान कर सकें।



## भारतीय दर्शन के अधिकृत व्याख्याता

### सरवार ज्ञानसिंह राडेवाला सिंबाई ग्रीर विजली मंत्री, पंजाब सरकार

संत भीर गुरु का महस्य भारतवर्ष में सदा से रहा है। गुरु नानक ने भी संत-सेवा भीर गुरु-भिन्त पर अधिक-से-भ्रधिक बल दिया। भाषायंश्री तुलसी केवल संत ही नहीं; वे संत-नायक हैं। उनकी वाणी साढ़े छ: सौ साधु-साध्वयों की वाणी है। भ्रणुवत-भान्दोलन का प्रवर्तन कर भापने सारे देश को नैतिक उद्बोध दिया है। देश में इसकी सबसे बड़ी भावश्यकता थी। देश भाजाद हुआ और बड़ी-बड़ी योजनाएं यहाँ कियान्वित हो रही हैं। पर देशवानियों का चारित्र यदि ऊँचा नहीं हो जाता तो वह भौतिक निर्माण केवल बिना रूह का शरीर रह जाता है। रोटी भौर कपड़े से भी श्रधिक जरूरी मनुष्य का अपना चरित्र है, पर आज हम जो महत्त्व रोटी और कपड़े को दे रहे हैं वह चरित्र को नहीं। रोटी और कपड़े की समस्या भी तभी बनती है, जब मनुष्य का चरित्र ऊँचा नहीं रहता। मनुष्य जो अपने बारे में सोचता है, वह पड़ोसी के बारे में नहीं सोचता। छोटे स्वार्थों के लिए बड़े स्वार्थों का हनन करता है।

भारतवर्षं धार्मिक देश कहलाता है। हम बात-बात में धर्म की दुहाई भी देते हैं, पर धर्म का जो स्वरूप हमारे जीवन-व्यवहार में मिलना चाहिए, वह नहीं मिल रहा है। धाज धर्म केवल मठों, मन्दिरों, गुरुद्वारों तक ही मीमित कर दिया गया है। धर्म का सम्बन्ध जीवन व्यवहार के प्रत्येक क्षण से रहना चाहिए। बाजारों और आफिसों में जब तक धर्म नहीं पहुँचता, तब तक देश का कल्याण नहीं है। धर्म के ध्रभाव में ही भूठा तौत-माप, चोरबाजारी और रिष्वत श्राद्य चल रहे हैं। जहाँ तक मैं समक्ष पाया हूँ, अणुवत-श्रान्दोलन का जन्म धर्म के इसी दवे पहलू को उठाने के लिए हुआ है। अणुवत-श्रान्दोलन धर्म को बाजारों, श्राफिसों और राजनैतिक व सामाजिक क्षेत्रों में लाना चाहता है। अणुवतों का हार्द है – किसी भी क्षेत्र में कार्य करता हुआ व्यक्ति अपने धर्म-कर्म को न खोये। इन्सानियत का खयाल रखे। कोई भी अनैतिक कर्म न करे। अणुवत-श्रान्दोलन का जितना विस्तार हमारे देश में होगा, उतना ही देश हर माने में ऊँचा होगा।

मुक्ते यह जान कर बहुत ही प्रसन्नता हुई कि आचार्यश्री के नेतृत्व में साढ़े छः सौ साधु-साध्वजन व्यवस्थित कृप से सारे देश में नैतिक जागृति का कार्य कर रहे हैं। मैंने दिल्ली में मुनिश्री नगराजजी के पास वह तालिका भी देखी, जिसमें श्रणुवत केन्द्रों का और वहाँ कार्य करने वाले साधुजनों का पूरा ब्यौरा था। सचमुच यह कार्य साधु-संतों से ही होने का है। भारतवर्ष के कोटि-कोटि लोग जिस श्रद्धा से उनकी बात मुनते हैं, उतनी और किसी की नहीं। उसका एक कारण भी है और वह यह है कि वे जो कहते हैं, उसका अपने जीवन में पालन करते हैं। वे शिक्षा प्रणुवत की देते हैं और स्वयं महाव्रतों पर चलते हैं। दूसरे सभी लोगों में कथनी भौर करनी का वह श्रादर्श नहीं मिलता, श्रतः उनकी कही बात जतनी कारगर नहीं होती।

किसी भी देश की महत्ता और सफलताओं का मृत्याकंन केवल भौतिक उपलब्धियों से ही नहीं किया जाता, बिल्क नैतिक धरातल से ही लगाया जाता है। भारतीय संस्कृति का चिरकाल से यही दृष्टिकोण रहा है और स्वाधीनता के उपरान्त इसी लक्ष्य को मूर्त रूप देने की आवश्यकता थी। इस दिशा में मनोयोग से काम करने वाले महानुभावों में श्राचार्यश्री तुलसी तथा इनके द्वारा प्रवर्तित अणुव्रत-आन्दोलन ने ग्रन्य संस्थाओं के लिए एक ग्रादर्श स्थापित किया है। ग्रतः ऐसे समाज सुधारक भारतीय संस्कृति के महान् विज्ञान और भारतीय दर्शन के श्रिकृत क्याख्याता के ग्राचार्यत्व के पच्चीस वसन्त पूरे हो जाने के उपलक्ष में जो श्रीमनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित किया जा रहा है, वह न केवल ग्राभार प्रदर्शन मात्र ही है, श्रिपतु इससे हमें सतत कमरत रहने ग्रीर राष्ट्र में भावनात्मक ऐक्य स्थापित करने की प्रेरणा भी प्राप्त होगी।

## परम साधक तुलसीजी

श्री रिषभदास रांका सम्पादक, जैन जगत्

बारह साल पहले मैं ग्राचार्यश्री तुलसीजी से जयपुर में मिला था। तभी से परस्पर में श्राकर्षण श्रीर श्रात्मीयना बराबर बढ़ती रही है। यद्यपि पिछले कुछ वर्षों से इच्छा रहते हुए भी मैं जल्दी-जल्दी नहीं मिल पा रहा हूँ, फिर भी निक-टता का सदा श्रनुभव होता रहता है श्रीर श्राज भी उस श्रनुभव का श्रानन्द पा रहा हूँ।

धवल समारोह उन पर माचार्य-पद का उत्तरदायित्व प्राप्त होकर पच्चीस वर्ष बीतने के निमित्त से मनाया जा रहा है, यही इसकी विशेषता है। व्यक्ति का जन्म कब हुमा भौर उसकी कितने साल की उम्र हुई, यह कोई महत्त्व की बात नहीं है। पर उसने भपने जीवन में जो कुछ वैशिष्ट्य प्राप्त किया, कोई विशेष कार्य किया हो, वही महत्त्वपूर्ण बात है।

इस जिम्मेदारी को सौंपते समय उनकी प्रायु बहुत बड़ी नहीं थी। उनके सम्प्रदाय में उनसे वयोवृद्ध दूसरे संत भी थे; परन्तु उनके गुरु कालूगणीजी ने योग्य चुनाव किया; यह नुलसीजी ने ग्राचार्य-पद के उत्तरदायित्व को उत्तम प्रकार से निभाया; इससे सिद्ध हो गया।

#### कुछ म्राशंकाएं

बैसे किसी तीर्थंकर, प्रवतार, पंगण्वर, मसीहा ने जो उपदेश दिया हो उसकी समयानुमार व्याख्या करने का कार्य ग्राचार्य का होता है। उसे तुलसीजी ने बहुत ही उत्तम प्रकार में किया, यह कहना ही होगा। कुछ लोग उन्हें प्राचीन परम्परा के उपासक मानते हैं और कुछ उस परम्परा में कान्ति करने वाले भी। पर हम कहते हैं कि वे दोनों भी जो कहते हैं, उसमें कुछ न कुछ सत्य जरूर है, पर पूर्ण सत्य नहीं है। तुलसीजी पुरानी परम्परा या परिपाटी चलाते है, यह ठीक है; पर शादवत सनातन धर्म को नये शब्दों में कहते हैं, यह भी ग्रास्त्य नहीं है। कई लोगों को इसमें छल दिखाई देता है तो कई यों को दम्भ। उनका कहना है कि यह सब ग्रपना सम्प्रदाय बढ़ाने के लिए है। लेकिन तुलसीजी छल या माया का ग्राश्रय लेकर अपने सम्प्रदाय को बढ़ाने का प्रयत्न कर रहे हों, ऐसा हमें नहीं लगता। क्योंकि उनमें हमें इम समभ के दर्शन हुए हैं कि कुछ व्यक्तियों को तेरापंथी या जैन बनाने की ग्रपेक्षा जैन धर्म की विशेषता का व्यापक प्रचार करना ही श्रेयस्कर है। उनमें इच्छा जरूर है कि ग्रधिक लोग नीतिवान् चरित्रशील व सद्गुणी बनें। यदि व्यापक क्षेत्र में काम करना हो तो सम्प्रदाय-वृद्धि का मोह बाधक ही होता है।

यदि भाज कोई किसी को अपने सम्प्रदाय में लींचने की कोशिश करता है तो हमें उस पर तरम ग्राता है। लगता है कि वह कितना बेसमक्त है और तस्त्रों के प्रचार की एवज में परम्परा से चली ग्राई रूढ़ियों के पालन में धर्म-प्रचार मानता है। हमें उनमें ऐसी संकुचित दृष्टि के दर्शन नहीं हुए। इसलिए हम मानते हैं कि उनमें छल सम्भव नहीं है।

दंभ या प्रतिष्ठा-मोह के बारे में भी कभी-कभी चर्चा होती है। उनके प्रतिकूल विचार रखने वाले कहते हैं कि वे जैसा जो ग्रादमी हो, वैसी बात करते हैं। मन में एक बात हो भीर दूसरा भाव प्रकट करना दंभ ही तो है। यदि इतने साल परिश्रम कर यही साधना की हो तो रल को चन्द रुपयों में बेचने जैसा है ही। जब साधना के मार्ग में दंभ से बढ़ कर कोई दूसरा बाधक दुर्गुण न हो,तब क्या तुलसी जी जैसा साधक—विकास मार्ग का प्रतीक—इसी दंभ में उलक जायेगा,विश्वास नहीं

होता। हमने देखा है कि उनसे वर्षा करने के लिए आने बालों में कई बहुत उत्तेजित होकर ऐसी बातें भी कह बैठते हैं जो सहसा सम्य और संस्कारी व्यक्ति के मुँह से नहीं निकल सकतीं, फिर भी वे गरम नहीं होते, उन्हें उत्तेजित होते हमने नहीं देखा। यह शान्ति साधना द्वारा प्राप्त है वा दिखावा? हमारी यह हिम्मत नहीं कि हम उसे दिखावा कहें।

रही प्रतिष्ठा या बड़प्पन की मूख की बात, सो इस विषय में कई ग्रच्छे लोगों के मन में गलतफहमी है कि उनके शिष्य बड़े-बड़े लोगों को लाकर उनका इतना प्रधिक प्रचार क्यों करते हैं ? क्या यह बात प्रात्म-विकास में लगे हुए साधक के लिए उचित है ? इस प्रध्न का उत्तर देना ग्रासान नहीं है। ग्रांग विज्ञापन का मुग है। श्रच्छी बात भी बिना प्रचार के ग्रांग नहीं बढ़ती। यदि श्रपनी श्रच्छी प्रवृत्तियों या श्रान्दोलन के प्रचार के हेतु यह सब किया जाता हो तो क्या उमे श्रयोग्य या त्याज्य माना जा सकता है ?

प्रतिष्ठा का मोह ऐसा है, जिसका त्याग करता हुआ दिखने वाला कई बार उसका त्याग उससे प्रधिक पाने की आशा से करता है। दूसरे पर आक्षेप करते समय हम अपना आत्म-निरीक्षण करें, तो पता लगेगा कि हमारी कहनी ग्रीर करनी में कितना अन्तर है। हमें कई बार अपने-आपको समभने में किठनाई होती है। लोकेवणा को त्यागने का प्रयत्न करने वाले ही जानते हैं कि ज्यों-ज्यों बाह्य त्याग का प्रयत्न होता है,त्यों-त्यों वह अन्तर में जड़ जमाता है। यह बात अपना मानसिक विश्लेषण,अपनी वृत्तियों का निरीक्षण-परीक्षण करने वाला ही जानता है। कई बार त्याग किये हुए ऐसा दिलाई देने वाले के हृदय में भी उसकी कामना होती है तो कई बार बाहर से दी हुई प्रतिष्ठा का भी जिसके हृदय पर असर न हुआ हो ऐसे साधक भी पाये जाते हैं। इसलिए नुलसीजी के हृदय में प्रतिष्ठा का मोह है या धर्म-प्रसार की चाह, इसका निर्णय हम जैसों को करना कठिन है, इसलिए इस वात को उन्हीं पर छोड़ दे, यही श्रेष्ठ है।

#### कर्मठ जीवन

उन्होंने जो धवल समारोह के निमित्त से वक्तव्य दिया, वह हमने देखा। वह भाषा दिखावे की नहीं लगती, हृदय के उद्गार लगते हैं। हमारी जब-जब बात हुई, हमने जो चर्चा की, वह आन्तरिक भीर साधना से सम्बन्धित हो रही है। हाँ, कुछ समाज से सम्बन्धित होने से सामाजिक चर्चा भी हुई, पर अधिकांश से साधना सम्बन्धित होती रही है। इसलिए हम उन्हें 'परम साधक' मानते याये हैं और कोई धव तक ऐसा प्रसंग उपस्थित नहीं हुआ कि हमें अपने मत को वदलना पड़ा हो। हमें उनमें कई गुणों के दर्शन हुए। ऐसी मंगठन-चातुरी, गुगग्राहकता, जिज्ञासावृत्ति, परिश्रमशीलता, प्रध्यवसाय व शान्ति बहुत कम लोगों में पाई। हमने प्रत्यक्ष में उन्हें बारह-बारह, जौदह-बौदह घण्टे परिश्रम करते देखा है। कई बार हमने उनके भक्तों से कहा कि इस प्रकार वे उन पर अत्याचार न करें। वे सबरे चार बजे उठ कर रात को ग्यारह बजे तक बरावर काम करते हैं, लोगों से चर्चा या वार्ता होती रहती है। हमने देखा न तो दिन को वे आराम करते हैं और न अपने साधुशों को करने देते हैं। ध्यान, चिन्तन, प्रध्ययन, व्याख्यान, चर्चा चलनी ही रहती है। किर जैन साधुशों की चर्या ऐसी होती है जिसमें स्वावलस्वन ही अधिक रहता है। सभी धार्मिक कियाएं चलती रहती है। इतने परिश्रम के वाद भी सन्तुलन न खोना कोई आसान बात नहीं है। कोई उनके साथ दो-चार रोज रहकर देखे तभी पता चल सकेगा कि वे कितने परिश्रमी है और यह विना साधना के संभव नहीं है।

उन्होंने भ्रपने साधुओं तथा साध्वयों को पठन-पाठन, भध्ययन तथा लेखन में निपृण बनाने में काफी परिश्रम भीर प्रयत्न किये। उनके साधु केवल भ्रपने सम्प्रदाय या भर्म ग्रन्थों या तस्वों से ही परिचित नहीं, पर सभी धर्मों और वादों से परिचित हैं। उन्होंने कई ग्रन्थे व्याख्याता, लेखक, किन, कलाकार तथा विद्वानों का निर्माण किया है। केवल साधुमों को ही नहीं, श्रावक तथा श्राविकाओं को भी प्रेरणा देकर मागे बढ़ाया है।

#### श्राचार्य का कार्य

राजस्थान और राजस्थान में भी थली जैसा प्रदेश, ऐसा समका जाता है, जहाँ पुराने रीति-रिवाज और रूढ़ियों का ही प्रावस्य है। उस राजस्थान में पर्दा तथा सामाजिक रीति-रिवाजों को बदलने की प्रेरणा देना सामान्य बात नहीं है, पर भत्यन्त किंत कार्य है। उन्होंने पर्दा प्रथा तथा सामाजिक क्रीतियों के प्रति समाज को सजग कर नया मोड़ दिया है। जैसे प्रगतिशील युवकों को लगता है कि वही पुरानी दवाई नई बोतल में अरकर दे रहे हैं, उसी तरह परम्परावादियों को लगता है कि साधुओं का यह क्षेत्र नहीं, यह तो श्रावकों का — गृहस्थिं का काम है। उनका क्षेत्र तो धार्मिक है। वे इस संभट में क्यों पड़ते हैं। पर प्रगतिशील तथा परम्परावादियों के सिवा एक वर्ग ऐसे लोगों का भी है जो प्राचीन संस्कृति में विश्वास या निष्ठा रखते हुए भी अच्छी बात जहाँ से भी प्राप्त हो, लेना या ग्रहण करना श्रेयस्कर मानता है। उन्हें ऐसा लगता है कि तुलसीजी श्राचार्य है और ग्राचार्य का कार्य है, धर्म की समयोपयोगी व्याख्या करने का, सो वे कर रहे हैं।

उन्होंने केवल जैनियों के लिए ही किया है, सो बात नहीं है। वे राष्ट्रीय दृष्टि से ही नहीं, प्रिप्तु मानव-समाज की दृष्टि से ही कार्य कर रहे हैं। अणुव्रत-प्रान्दोलन उसीका परिणाम है। अणुव्रत-प्रान्दोलन मानव-समाज जिन जीवन-मूल्यों को भुला रहा था, उसे स्थापित करता है। मानव का प्रारम्भ से सुख-प्राप्ति का प्रयत्न रहा है। ऋषि-मुनि, संत-साधक धौर मार्ग-द्रष्टा तीर्थंकर यह बताते आये हैं कि मनुष्य सद्गुणों को अपनाने से ही सुखी हो सकता है। सुख के भौतिक या बाह्य साधनों से वह सुखी होने का प्रयत्न करता तो है, लेकिन वे उसे सुखी नहीं बना सकते। सुखी बना जा सकता है, सद्गुणों को अपनाने से। अणुव्रत उसे सच्ची दृष्टि देता है। केवल किसी बात की जानकारी होने मात्र से काम नहीं चलता, पर जो ठीक बात हो, उसे जीवन में उतारने का प्रयत्न हो, विचारों को आचार की जोड़ मिले, तभी उसका उचित फल प्राप्त होता है। अणुव्रत केवल जीवन की सही दिशा नहीं बताता, पर सही दिशा में प्रयाण करने का संकल्प करवाता है और प्रयत्नपूर्वक प्रयाण करनाता है।

#### शुभ की घोर प्रयाण

भारत में सदा से जीवन-ध्येय बहुत उच्च रहा है, पर ध्येय उच्च रहने पर यदि उसका ब्राचार संभव न रहे तो बह ध्येय जीवनोपयोगी न रह कर केवल बन्दनीय रह जाता है। पर ब्रण्ड्वत केवल उच्च ध्येय, जिसका पालन न हो सके, ऐसा करने को नहीं कहता। पर वह कहता है, उसकी जितनी पात्रता हो, जो जितना ग्रहण कर सके, उतना करे। प्रारम्भ भले ही ग्रणु से हो, पर जो निश्चिय किया जाये, उसके पालन में दृढ़ता होनी चाहिए। इस दृष्टि से श्रणुवत शुभ की सोर प्रयाण कर दृढ़तापूर्वक उठाया हुन्ना पहला कदम है।

मनीवैज्ञानिक जानते हैं कि संकल्प पूरा करने पर झात्म-विश्वास बढ़ता है और विकास की गति में तेजी झाती है। इसलिए झणुद्रत भले ही छोटा दिखाई पड़े, लेकिन जीवन-साधना के मागं में महत्त्वपूणं कदम है। इस दृष्टि से झाचायंश्री तुलसीजी ने अणुद्रत को नये रूप में समाज के सन्मुख रख कर उसके प्रचार में अपनी तथा अपने शिष्य-समुदाय और झनु-यायियों की शक्ति लगाई। यह झाज के जीवन के सदी मूल्य भुलाये जाने वाले जमाने में अत्यन्त महत्त्वपूणं बात है। यदि इस झान्दोलन पर वे सारी शक्ति केन्द्रित कर इसे सफल कर सके तो केवल भपने धर्म या सम्प्रदाय का ही नहीं, अपितु मानव-जाति का बहुत बड़ा कल्याण कर सकते हैं। किन्तु हमने देखा है कि झान्दोलन को जन्म देने वाले या शुरू करने वाले जब विभिन्न प्रवृत्तियों में शक्ति को बाँट देते हैं, तब वह कार्य चलता हुआ दिखाई देने पर भी वह प्राणरहित, परम्परा से चलने वाली रूढ़ियों की तरह जड़ बन जाता है।

#### भारत का महान् ग्रभियान

यदि अणुद्रत-आन्दोलन को सजीव तथा सफल बनाने के उद्देश्य से आचार्यंशी अपना सारा ध्यान उस पर केन्द्रित कर पूरी शक्ति से इस कार्य को करेंगे तो वह भारत का महान् अभियान होगा, जो अशान्त संसार को शान्त करने का महान् सामर्थ्य रखता है।

हमारा तुलसीजी की शक्ति में सम्पूर्ण विश्वास है। वे इस महान् श्रभियान को गतिशील बनाने का प्रयास करें, जिससे ग्रशान्त मानव शान्ति की ग्रोर प्रस्थान कर सके।

हम भगवान् से प्रार्थना करते हैं कि श्राचार्य तुलसीजी को दीर्घायु तथा स्वास्थ्य प्रदान कर, ऐसी शक्ति दें, जिससे उनके द्वारा भ्रपने विकास के साथ-साथ समाज का भिकाषिक कल्याण हो।

## जन-जन के प्रिय

### मुनिश्री मांगीलालजी 'मधुकर'

ग्राचार्य तुलसी भी यात्रा का इतिहास ग्रणुवत-ग्रान्दोलन के ग्रारम्भ से होता है। यों तो ग्राचार्यश्री की पद-यात्रा जीवन-भर ही चलती है, परन्तु यह यात्रा उससे कुछ भिन्न थी। पूर्ववर्ती यात्रा में स्व-साधन का ही विशेष स्थान था, पर इसमें 'स्व' के ग्रागे 'पर' ग्रीर जुड़ गया। इसलिए जनता की दृष्टि में इसका विशेष महत्त्व हो गया।

इसके पीछे बारह वर्ष का लम्बा इतिहास है । प्रस्तुत निबन्ध में कुछ ऐसी घटनाभों का उल्लेख करना चाहूँगा, जिनसे म्राचार्यश्रो तुलसी तेरापंथ के ही नहीं, बल्कि जन-जन के म्राराध्य ग्रीर पूज्य बन गये हैं ।

स्राचार्यश्री यात्रा प्रारम्भ करने के बाद राजस्थान, बम्बई, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश, बिहार, बंगाल तथा पंजाब ग्रादि देश के ग्रनेक भागों में करीब पन्द्रह-सोलह हजार मील घूम चुके है। प्रतिवर्ष भारत के ही नही, ग्रिपितृ विदेशों के भी ग्रनेक पर्यटक यहाँ पर ग्राते हैं। उनके सामने पथवर्ती हरे-मरे लहलहाते लेत, कलकल वाहिनी स्रोलिय-नियाँ, गगनचुम्बी पर्वत श्रेणियाँ, प्राकृतिक दृश्यों की बहारें ग्रीर ग्रनेक दर्शनीय स्थलों की मनोरमता का ग्रनिर्वचनीय ग्रानन्द लूटने का ही प्रमुख ध्येय होता है, परन्तु ग्राचार्यश्री के लिए यह सब गौण है। वे इन सब बाहरी दृश्यों की ग्रपेक्षा मानव के ग्रन्त:स्थल में छिपे सौन्दर्य-दर्शन को मुख्य स्थान देते हैं। दस भील चले या पन्द्रह मील, स्थान पर पहुँचते ही बिना विश्वाम स्थानीय लोगों की समस्याग्रों का ग्रध्ययन कर, उचित समाधान देना उन्हें विशेष रुचिकर है। वे थोड़े समय में ग्राधिक कार्य करना चाहते हैं, ग्रतः कहीं एक दिन, कहीं दो दिन ग्रीर कहीं-कहीं तो एक ही दिन में तीन-चार ग्रीर पाँच-पाँच स्थानों पर पहुँच जाते हैं। लोग ग्रधिक रहने के लिए ग्राग्रह करते हैं; पर उनका उत्तर होता है—जो कुछ करना है, वह इतने समय में ही कर लो। दर्शक को ग्राश्चर्य हुए बिना नही रहता, जब वे ग्रपनी प्रभावोत्पादक शैली से ग्रनेक विकट समस्याग्रों का बहुत थोड़े समय में ही समाधान दे देते हैं।

#### मामला एक दिन में सुलझ गया

श्राचार्यश्री 'सेमड़' (मेवाड़) गाँव में पधारे। उन्होंने सुना उम छोटे-से गाँव में अनेक विग्रह हैं। वे भी दस-दस और पन्द्रह वर्षों से चल रहे हैं। भाई-भाई के साथ मन-मुटाव, चाचा-भनीजे, बाप-बेटे, दवमुर-जमाई और सास-बहुओं में भगड़ा है। वे इस कलह को दूर करने के लिए कटिबढ़ हो गये। उम दिन आचार्यश्री के प्रतिश्याय का प्रकोप था। कण्ठ भी कुछ भारी थे, फिर भी उसकी परवाह किये बिना उस कार्य में जुट गये। एक-एक पक्ष की राम-कहानी सुनी, कोमल-कटोर शिक्षाएं दीं और भविष्य में क्या करना है, यह दिख्दर्शन किया। वादी-प्रतिवादियों का हृदय बदला। आचार्यप्रवर ने दोनों पक्षों को सोचने के लिए अवसर दिया। सायंकालीन प्रतिक्रमण के बाद पुनः दोनों पक्ष उपस्थित हुए और आचार्यश्री की साक्षी से परस्पर क्षमायाचना करने लगे। कल तक जो ३६ के अंक की तरह पूर्व-पश्चिम थे और जिनकी आँखें ही नहीं मिलती थीं, वे आज गले मिल रहे थे। अनेक पंच व न्यायाधीश जिन मामलों को वर्षों तक नहीं सुलभा सके थे, वे एक दिन में सुलभ गये। क्या वे परिवार इस उपकार को जीवन-भर भूल सकेंगे ?

## यह वर्म स्थान है

श्राचार्यश्री के व्यक्तित्व में एक सहज ग्राकर्षण है। वे जहाँ-कहीं भी चले जायें सहस्रों व्यक्तियों की उपस्थिति

सहजतया हो जाती है। गाँव चाहे छोटा हो था बड़ा, प्रवचन के समय स्थान पूर्ण न भरे, ऐसे अवसर कम ही आते हैं। आचार्यश्री के शब्दों में "कहाँ से आ जाते हैं इतने लोग। न घूप की परवाह है और न वर्षा की। पता लगते ही पन्द्रह-पन्द्रह मील से पैदल चले आते हैं। कितनी श्रद्धा है इन ग्रामीणों में। मैं बहुत सुनता हूँ कि आजकल लोगों में धार्मिक भावना नहीं रही, पर यह बात मैं कमे मान लें कि यह बात सही है।"

एक समय था जब कुछ पुराणपन्थियों ने कहा—स्त्री और शूढ़ को धर्म-श्रवण का ग्रिषकार नहीं! ग्राचार्यश्री की दृष्टि में यह गलत है। धर्म पर किसी व्यक्ति या जाति विशेष की मुहर छाप नहीं है। वह तो जाति-पाँति भीर वर्ग के मेदभावों से ऊपर उठा हुआ है। क्या वृक्षों की छाया, चन्द्रमा की चांदनी और सरिता का शीतल जल सामान्य रूप से सभी के लिए उपयोगी नहीं होता? उसी तरह धर्म भी किसी कठघरे में क्यों बँघा रहे। जितना ग्रिषकार एक महाजन को है, उतना ही ग्रीधकार एक हरिजन को भी है।

भ्रभी-भ्रभी मारवाड़ यात्रा के दौरान में भ्राचार्यश्री 'सणया' नामक गाँव में थे। प्रवचन स्थल पर स्थानीय लोगों ने एक जाजम विछाई। भ्राचार्यप्रवर परीक्षार्थी साधु-साध्वियों को अध्ययन करवा रहे थे, भ्रतः एक साधु ने प्रवचन भारम्भ किया। सभी वर्गों के लोग भ्रा-म्राकर जमने लगे। एक मेघवाल भाई भी भ्राया और उस जाजम पर बैठ गया। तथाकथित धार्मिकों को यह कैसे सह्य होता। वे उठे, धाँखें लाल करते हुए उस भाई के पास पहुँचे भौर बुरा-भला कहते हुए वहाँ से उठने के लिए उसे बाध्य करने लगे। इस हरकत से उस माई की भ्रांखों में भाँसू भ्रा गये। ग्राचार्यप्रवर सामने से सारा दृश्य देख रहे थे। उनका कोमल हृदय पसीज उठा। अध्यापन में मन नहीं लगा। तत्काल प्रवचन स्थल पर पहुँचे भौर कहने लगे—भाइयो, यह क्या है? एक व्यक्ति को भस्पृश्य मान कर उसका भ्रपमान करना कहाँ तक उचित है। धर्मस्थान में इस प्रकार का भ्रमुचित बर्ताव, यह तो साधुभों का भ्रपमान है। यह कोई भ्रापकी साज-सज्जा देखने नहीं भ्राया है भिष्तु संतों का प्रवचन भौर भ्राध्यात्मिक बातें सुनने के लिए भ्राया है। उसे नहीं सुनने देना कितना बड़ा भ्रपराघ है!

एक स्थानीय पंच बोला---पर यह जाजम तो आगन्तुक भाइयों के लिए बिछाई थी। यह बैठा ही क्यों। इसे क्या अधिकार था?

भावार्यश्री—िकसने कहा तुम इसे बिछात्रो । यह भापको है, भाप चाहे जिसे बिठाएं, किन्तु सार्वजनिक स्थान पर बिछा कर किसी व्यक्ति विशेष को जातीयता के भाषार पर बंचित करना, शान्ति से बैठे हुए को अनुचित तरीके से उठाना, बिल्कुल गलत है । यहाँ भापके पंचायत भी तो होगी ? उसमें जितने पंच हैं, क्या सारे महाजन ही हैं ?

पंच--नहीं, एक हरिजन भी है।

भावार्यश्री -तो क्या पंचायत के समय उसके बैठने की मलग व्यवस्था होती है ?

पंच-नहीं महाराज ! वहाँ तो सभी साथ में ही बैठते हैं।

भ्राचार्यश्री--तो फिर इस बेचारे ने भ्रापका क्या बिगाड़ा है। इसके साथ इतना भेदभाव क्यों? याद रखो, यह धर्म-स्थान है।

इस प्रकार श्राचार्यथी ने अनेक तर्क-वितर्कों से अस्पृष्ट्यता की ओट में होने वाली घृणा की भावना को दूर करने पर बल दिया। प्रवचन समाप्ति पर घटना से सम्बन्धित व्यक्ति आये और इस बात के लिए माफी माँगने लगे। वह मेघ-बाल माई तो गद्गद् हो रहा था।

## में निहाल हो गया

बहुषा सुना जाता है कि आजकल लोगों पर धार्मिक उपदेशों का असर नहीं होता। ठीक है,हो भी कैसे जब तक उपदेश के पीछे वक्ता का जीवन न बोले। वन्ता में अगर आस्था हो तो श्रोता का जीवन तो पल भर में बदल जाये। क्या दयाराम की घटना इस तथ्य को अभिन्यक्त नहीं करती। दयाराम की उस्र साठ वर्ष से ऊपर होगी। पर अब भी पति-पत्नी मिलकर हाथों से एक कुर्धां सोदने में व्यस्त हैं। लम्बा कद, गठीला बदन, बड़ी-बड़ी डरावनी आंखों व बिखरे हुए बाल देश कर हरेक व्यक्ति तो उसे बतलाने का भी सम्भवतः साहस न करे। वह अपने जीवन में अनेक लोगों की तिजीरियाँ

उदा चुका था। यही उसका प्रमुख धन्धा है।

घपने पार्श्ववर्ती गाँव में भावार्यश्री का ग्रुभागमन सुन कर वर्षनों भी उत्कच्छा जगी तो चल पड़ा। उपदेश सुना, भ्रम्छा लगा। रात्रिभर चिन्तन चला। सबेरे भ्राचार्यश्री उसी की ढाणी के पास से गुजरे। पैर पकड़ लिये भ्रीर कहने लगा—थोड़ा-सा दूध तो लेना ही पड़ेगा। भ्राप मेरे गुरु हैं। मैं भ्रापकी साक्षी से भ्राज प्रतिज्ञा करता हूँ कि भ्रव से चोरी नहीं करूँगा, चाहे सौ मन सोना भी क्यों न हो, मेरे लिए हराम है। भ्राचार्यप्रवर ने नियम दिलाते हुए दूध लिया तो वह हर्ष विद्वल हो गया। उसके मुँह से निकले शब्द 'मैं निहाल हो गया' श्रव भी मेरे कानों में युनगुना रहे हैं।

#### बाबा तो बोलता-वेखता है

आचार्यश्री'पदराडे'में थे। इधर-उधर की बस्तियों के भीलों को पता लगा कि एक बड़े बाबा आये हैं, तो करीब पचास भाई इकट्ठे होकर आये और बाहर से ही आचार्यश्री को देखने लगे। वे कुछ सकुचा रहे थे। सम्भवतः सोच रहे थे कि बाबा हमारे से बात करे या न करे। आचार्यश्री ने उन्हें देखा तो उनका परिचय पूछने लगे। आचार्यश्री की मृदु-बाणी से वे इतने मुख्य बने कि वहीं पर जम गये और कहने लगे—बाबा, हमें भी कुछ रास्ता बतलाइये।

आवार्यश्री ने बुराइयों के बारे में कहा, जो उनके जीवन में ब्याप्त थीं तो एक बूढ़ा भील खड़ा होकर कहने लगा— 'बाह! बाह! बाबा तो बोलता-देखता है।' तत्रस्थ श्रोताओं को झादचर्य हुआ, जब उन भीलों ने परस्पर विचार-विमर्श कर वर्षों से पलने वाली बुराइयों को तिलांजिल देते हुए शिकार, शराब और महीने में एक दिन से अधिक मांस खाने का त्याग कर दिया और यह विश्वास दिलाया कि हम हमारी जाति के झन्य व्यक्तियों को भी इन उपदेशों पर चलने के लिए प्रेरित करेंगे।

## साहित्य झौर सेठ

बच्चों में ग्रच्छे संस्कार भाएं, यह सभी को काम्य है, पर वे कैसे भाएं, यह कोई नहीं सोचता । वे क्या करते हैं, कहाँ रहते हैं, क्या पढ़ते हैं, इस पर ध्यान दिये बिना इस स्थिति में परिवर्तन भा जाये, यह कम सम्भव है। इस कार्य को सम्पादित करने में ग्राभिभावकों का भादेश-निर्देश तो मुख्य है ही, सत्साहित्य भी कम महत्त्व नहीं रखता। पर व्यापारी समाज का साहित्य से क्या वास्ता! इन वर्षों में भ्राचार्यश्री की वरद प्रेरणा पाकर जहाँ भनेक बालक व युवक इस भोर रुचि लेने लगे हैं, बहाँ भ्रनेक प्रीढ़ भी इस भोर श्राकश्रित हुए हैं।

भाचार्यप्रवर 'भिक्षु ग्रन्थ रत्नाकर' पढ़ा रहे थे। एक भरे-पूरे परिवार वाले सेठजी भागे। वे भ्रच्छे तत्त्वज्ञ भौर समभदार श्रावक हैं। पुस्तक को देख कर पूछने लगे—कौनसी पुस्तक है ?

श्राचार्यश्री—'भिक्षु ग्रन्थ रत्नाकर' । स्वामीजी का समग्र साहित्य ऐसे तीन भागो में द्विशताब्दी के ग्रवसर पर प्रकाशित हुन्ना है । पढ़ा है या नहीं ? घर पर तो होगा ?

सेठ-नहीं, गुरुदेव । मैं पोते-स्वयं तो पढ़ ही नहीं सकता, क्या करूँ मैंगा कर !

भाचार्यंश्री ने पोते शब्द को दूसरे अर्थ में प्रयुक्त करते हुए कहा—पोते, स्वयं नहीं पढ़ सकते तो क्या हुआ पोते (पौत्र) तो पढ़ सकते हैं?पर कौन ध्यान दें। हजारों रुपये के गहने व अन्य भाडम्बर की चीजें मँगा देंगे, पर साहित्य नहीं। घर पर रहने से कहीं कोई पढ़ ले तो ? कहते हैं, बच्चों में संस्कार नहीं पड़ते। कहाँ से आये संस्कार ? उन्हें अपने घर के साहित्य का ही पता नहीं है।

सेठ—गुरुदेव ! ग्राप ठीक फरमाते हैं। ऐसी ही बात है। घर पर रहने से तो कोई पढ़ेगा ही। इस छोटी-सी घटना से उसमें साहित्य के प्रति काफी रुचि जागृत हो गई। श्रव वे बहुषा वाचन के समय श्रनुपस्थित नहीं रहते भौर साहित्य भी श्रपने पास रखने लगे हैं।

### चपना बहोभाग्य समभूंगा

महता जी अच्छे पढ़े-लिसे और प्रत्येक बात को तर्क की कसौटी पर कस कर मानने वाले व्यक्ति हैं। वे अणुव्रत-

आन्दोलन के माध्यम से आचार्यश्री के सम्पर्क में आये, एक बार नहीं अनेक बार। सूक्ष्मता से आचार-विचारों का अध्य-यन किया और अणुव्रती बन गये। उन पर अणुव्रतों की गहरी छाप है। ब्राहक को ब्राहचर्य हुए विना नहीं रहता, जब वह उनकी दुकान पर पैर धरते ही निम्नोक्त हिदायतें पढ़ता है:

- १. भाव सबके लिए एक है जो कि प्राइस काई पर लिसे हुए हैं।
- २. भाव में फर्क माने पर तीन दिन के दरम्यान कपड़ा वापस लेकर पूरे दाम लौटाने का नियम है।
- ३. खरीद कर जाने के बाद मी मित्र-गण नापसन्द कर दें तो कपड़ा वापस लेकर दाम लौटाने की सुविधा है।

ऐसा केवल लिखा ही नहीं गया है, इसे अक्षरशः क्रियान्वित किया जाता है। यही कारण है कि उनकी दुकान की प्रतिष्ठा प्रतिदिन वृद्धिगत है। इस बार उन्होंने अधार्यश्री की पद-यात्रा में साथ रहने का कार्यक्रम बनाया। वे केवल १५ दिवस साथ में रहे, पर इस दौरान में आचार्यश्री द्वारा प्रतिपादिन तस्त्रों का खूब सूक्ष्मता से अध्ययन किया। अणु- अतों का प्रचार तो उनका मुख्य ध्येय ही बन गया है। वे जाने लगे तो उनका जी भर आया, पर जाना जरूरीथा, अतः विवश थे। दो दिन बाद अपनी इस यात्रा की चर्चा करते हुए अपने एक मित्र को पत्र लिखा उसमें उनके मानसिक भावों की प्रतिध्वनि स्पष्ट सुनाई देती है। कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—मैं यह अनुभव कर रहा हूँ कि सारी जिन्दगी में सिर्फ ये १५ दिन ही काम के रहे हैं, बाकी सब निकम्मे। जो कुपा गुरुदेव की मुक्त पर इन दिनों रही, उसको जन्म-जन्मान्तर भी भूल नहीं सकता। मेरी तरफ से गुरुदेव के चरणों में प्रतिक्षा पत्र अर्ज कर देना कि मैं तेरापंथ तस्त्व, अणुवत-आन्दो-लन, नया मोड़ व भविष्य में आपके किसी भी आदेश पर अपना सब कुछ अर्पण करने में अपने आपका अहोभाग्य समभूंगा।

श्रापका

चन्दनमल महता

## लो बाबा इसे ही स्वीकार करो

श्राचार्यप्रवर जहाँ कहीं भी जायें, अपने कार्य को गौण नहीं करते। उनका यह ध्येय रहता है कि कोई भी व्यक्ति उनके पास न तो खाली हाथ आये और न खाली हाथ जाये। इसका मतलब यह नहीं कि उन्हें कोई अर्थ चाहिए। उसे तो वे छूते भी नहीं। जब उन्होंने मेवाड़ यात्रा के दौरान में श्रादिवासी क्षेत्र में प्रवेश किया तो बहुत से गरासियों (भीलों) ने उनका स्वागत किया। ग्राचार्यश्री ने मन्द-मन्द मुस्कराहते हुए पूछा—अरे भाई! खाली हाथ ही ग्राये हो या भेंट के लिए भी कुछ लाये हो?

सब एक-दूसरे का मुँह ताकने लगे। एक भाई कुछ पैसे लेकर स्रागे झाया और कहने लगा--वाबा मेरे पास तो इतने ही पैसे हैं। श्राप स्वीकार कीजिये।

स्मितवदन म्राचार्यश्री ने कहा—बस इतने ही ? इस छोटी-सी भंट से क्या होगा ? मैं तो ऐसी भंट चाहता हूँ जो तुम्हें सबसे मधिक प्रिय हो।

वह वेचारा मसमंजस में पड़ गया। श्राखिर जब श्राचार्यश्री ने सारा भेद खोला तो वह प्रसन्न होकर बोला— बाबा! श्रीर तो कोई लत नहीं है एक शराब जरूर पीता हूँ।

भाचार्यश्री-कितनी पीते हो।

व्यक्ति—बाबा! कितनी का मत पूछिये, वर्ष में पाँचसी, सातसी, हजार का कुछ भी पता नहीं है।

ग्राचार्यश्री—भाई, शराब तो बहुत खराब है, अनेक बुराइयों की जड़ है। इसको तुम इतना प्रश्रय क्यों देते हो? जिस ग्रथं को प्राप्त करने के लिए दिन-भर कड़ी मेहनत कर खून-पसीना एक करते हो, उसे यों बरबाद करो, क्या यह उचित है? क्या मैं तूमसे यह भेंट माँग लूं?

कुछ देर तो वह सोचता रहा। म्राब्तिर पौरुष जागा, मागे म्राया भौर बोला—लो बाबा! इसे ही स्वीकार करो। मैं भ्रापके चरण छूकर कहता हूँ कि म्रब इसकी भोर भौंख उठा कर भी नहीं देखूँगा।

## में तो मनुष्य हूँ

माचार्यश्री के जीवन में जहा पुण्णस्स करवई, तहा तुच्छस्स करवई, जहा तुच्छस्स करवई, तहा पुण्णस्स करवई यह महावीर की वाणी पूर्ण रूप से चरितार्थ होती है। वे किसी व्यक्ति को, वह छोटा या हीन है, इस दृष्टि से नहीं धाँकते, किन्तु उसकी मनुष्यता का झंकन करते हैं। उनके सामने भन्य भेद भतात्त्विक हैं। वे मानवता को विभक्त देखना नहीं चाहते।

एक व्यक्ति ने प्रश्न किया-आप हिन्दू है या मुसलमान ।

श्राचार्यश्री--भाई न तो मैं हिन्दू हूँ और न मुसलमान । क्योंकि श्रगर मुक्ते हिन्दू कहें तो मेरे सिर पर चोटी नहीं है भीर प्रगर मुसलमान कहें तो दाढ़ी नहीं है । अतः मैं तो मनुष्य हुँ और मनुष्यता का ही विकास चाहता हूँ ।

## जन-प्रियता के तीन सूत्र

व्यक्ति साधना का फल पाना चाहता है, क्योंकि वह उसे प्रिय है पर साधना के क्षेत्र में उतरते हुए सकुचाता है, क्योंकि उसमें कुछ बलिदान करना पड़ता है, वह उसे अभिप्रेत नहीं है। आचार्यश्री का घटल विश्वास है कि हमें कुछ कार्य करना है तो बाधाओं को पार करते हुए भी चलना होगा। याद रहे हीरे में तभी चमक आती है, जब वह खरसाण पर चढ़ता है। अतः आज की परिस्थितियों को देखते हुए आचारात्मक बर्म के साथ-साथ विचारात्मक धर्म को भी विकसित किया जाना चाहिए। हमारा है इसलिए सत्य है, यह आग्रह व्यक्ति की बुढि को कुठित कर देता है। उसमें नये-नये भ्रन्वे-षणों की भाशा आकाश कुमुम ही सिद्ध होगी। जो व्यक्ति चिन्तन के द्वार खुले रख कर सत्य का भन्वेषण करता है, उसके सामने कठिनाइयाँ टिक नहीं सकतीं, वे स्वयं कपूर हो जाती है। आचार्यश्री इसी के मूर्त रूप हैं। भगर संक्षेप में कहा जाये तो आचार्यश्री की जन-प्रियता के तीन सूत्र हैं:

- १. श्राचार व विचारों में उच्चता।
- २. भनाग्रह बुद्धि ।
- ३. दूसरों के विवारों को सहने की क्षमता।

इस वर्ष उन्हें श्राचार्य पद प्राप्त किये पूरे २५ वर्ष सम्पन्न हो रहे हैं। इस बीच में उन्होंने सहस्रों व्यक्तियों का नेतृत्व किया है, लाखों व्यक्तियों को मार्ग-दर्शन दिया है व करोड़ों व्यक्तियों को अपने विचारों से लाभान्तित किया है। श्राज भारत में ही नहीं, विदेशी व्यक्तियों की जवान पर भी उनका नाम है। जनता के लिए उनके चरण-चिह्न मार्ग-दर्शन का कार्य कर रहे हैं, इसलिए वे श्राज जन-जन के प्रिय बन गये है।



## त्रमुशासक, साहित्यकार व आन्दोलन-संचालक

थी माईदयाल जैन, बी० ए० (झानर्स), बी० टी०

द्धस युग को ज्ञान-विज्ञान का युग कहते हैं और आज के साधारण से शिक्षित स्त्री-पुरुष का यह दावा है कि वह सु-सूचित (Well-informed) भी है, पर वास्तविकता इसके विपरीत ही है। इस बात. का मुभे तब पता लगा जविक अप्रैल सन् १६४० में आचार्यश्री तुलसी अपनी शिष्य-मण्डली सहित दिल्ली पधारे और मैंने उनके आने की बात जैन जनता से सुनी। वे बातें विपक्षीय आलोचना से पूर्ण थी। पर मैं मानूं कि जैन-समाज की प्रवृत्तियों में तीस वर्ष तक माग लेने पर भी मैंने क्वेतास्वर तेरापंथ या आचार्यश्री तुलसी का नाम नहीं सुना था। उनके सम्बन्ध में कुछ ज्ञान न था। इस अज्ञान से मुभे दु:ख ही हुआ।

भीर यदि मैं यहाँ यह कह दूं कि जैन-समाज के भिन्न-भिन्न सम्प्रदाय वालों में आज भी इतनी विलगता है कि वे एक-दूसरे के बारे में बहुत कम जानते हैं, तो कोई अतिशयोक्ति न होगी। हमारे ज्ञान की यही स्थिति दूसरे धर्मों के सम्बन्ध में है। यह है हमारे ज्ञान की सीमा! इस स्थिति को बदलने के लिए परस्पर प्रधिक मेल-जोल बढ़ाना होगा।

भीर मैं ठहरा उम्र गुषारक, बुद्धिवादी तथा लेखक। पर श्रद्धा, धर्म-प्रेम तथा जिज्ञासा की मुक्तमें न तब कमी थी, न मब है। इसलिए मैं उनके भाषण में गया। पास ही बैठा— बिल्कुल मनजान-सा, मजात-सा। उनके भाषण की मोर तो मेरा ध्यान था ही, पर मेरी मौलें — पैनी ग्रांखें — उनके व्यक्तित्व तथा उनके हृदय को जाँचने-पड़तालने की कोशिश कर रही थीं।

उनके तेजस्वी चेहरे, सुगठित गौर वदन, मँभले कद और श्राकर्षक चुम्बकीय व्यक्तित्व और उनके विद्वत्तापूर्ण सन्तुलित तथा संयत भाषण की मेरे मन पर अच्छी छाप पड़ी। मैं निराश नहीं हुआ, बल्कि उनकी तरफ खिचा और उनमें फिर मिलने की तीव अभिलाषा लेकर घर लौटा।

यह थी मेरी उनसे पहली भेंट-साक्षात्, पर मौन; या यों कहिए कि यह था उनका प्रथम दर्शन।

भीर तब से भाज तक तो मुक्ते उनसे दिल्ली, हिसार, पानीपत तथा सोनीपत मे कई बार मिलने का मौभाग्य भ्राप्त हुआ है। उनसे बाते हुई हैं, उन्हें पास से देखा भी है। उनके कई शिष्य-साधुओं से मेरा व्यक्तिगत गहरा परिचय है भीर उनका तथा उनके योग्य विद्वान् मुनियों द्वारा रचित बहुत-मा साहित्य पढ़ा है। उनके द्वारा संचालित अणुव्रत-आन्दोलन को सब रूपों में मैंने देखा है, उसकी सराहना भी सुनी है और परोक्ष में उस आन्दोलन की श्रालोचना, जैन-भाजन दोनों से सुनी है। जैसे राष्ट्रपति आदि की आचार-सीमाएं हैं, वैसे जैन साधुतथा पट्टधर आचार्य के पद के अनुसार उन्हें कुछ आचार-मर्यादाएं निभानी होती है और उन सीमाओं में रह कर वे प्रशंसनीय काम कर रहे हैं। इसलिए उनके प्रति मेरी श्रद्धा बढ़ी है। उनके महत्त्व का मैं कायल हुआ हूँ और मैं उनको जैन-समाज और देश की गीरवपूर्ण, महान् विभूति मानता हूँ।

मैं उनके जीनव को इन तीन पहलुओं से देखता हूँ — १. जैन श्वेताम्बर तेरापंथ के पट्टधर बाचार्य, २. कला-प्रेमी तथा साहित्य-सेवी भीर ३. भणुवत-भान्दोलन के प्रवर्तक तथा संचालक। किसी महात्मा के व्यक्तित्व को ग्रलग बाँटना कठिन है; क्योंकि वह तो एक ही है, पर विचार करने के लिए इस पद्धति में ब्रासानी रहती है।

भाचार्यश्री तुलसी ग्यारह वर्ष की बाल्यावस्था में दीक्षा लेकर जैन साधु हुए श्रीर ग्यारह वर्ष तपस्या, साधु जीवन तथा कठोर प्रशिक्षण के बाद श्रीर अपनी योग्यता पर अपने गुरु—श्राचार्य के द्वारा बाईस वर्ष की श्रायु में (वि०-

सं० १६६३) में भाषायं चुने गए भीर तब से भव तक, पञ्चीस वर्षों से, अपने इस पद के उत्तरदायित्व तथा कर्तथ्यों को बड़ी योग्यता से पूरा कर रहे हैं। इनके साधु तथा साध्वी शिष्य-मण्डल की संख्या सात सो के लगभग है और अनुयायी श्रावक-श्राविकाओं की संख्या भी बड़ी है। तमाम साधु-साध्वयों के धनुशासन और समस्त तेरापंथ की धार्मिक प्रवृत्तियों का संचालन आप करते हैं। आज जबिक समस्त देश में राजनैतिक दलों, मंत्री-मण्डलों, दफ्तरों और कालेजों तथा विश्वविद्यालयों में अनुशासन हीनता या अनुशासन कम होने की बात देख-सुन रहे हैं, तब क्या यह बात कम आश्रव की है कि उनके शासन के विश्व कहीं कोई भावाज सुनाई नहीं देती। इस पद को जैन-समाज में इतनी सुन्दरता से चलाने का श्रेय जैन तेरापंथी समाज को ही है। ऐसी व्यवस्था जैन-समाज के दूसरे सम्प्रदायों में है ही नहीं, मारत के दूसरे सम्प्रायों में भी नहीं है। साधुत्व के साथ-साथ प्रेमपूर्ण शासकत्व के इस सम्मिलन से आज के शासक बहुत-कुछ सीख सकते हैं। अपने आधीन साधु-साध्वयों के शिक्षण, प्रशिक्षण, जानवर्दन तथा उनकी गुप्त योग्यताओं को उभारने में वे कितने दलित्त तथा प्रयत्नशील हैं, इसका मुझे कुछ ज्ञान है। सन् १९५१ को दिन के दो बजे मैं पानीपत धर्मशाला में उनसे मिलने गया और तब मैंने देखा कि वे अपने कुछ ज्ञान है। सन् १९६५१ को दिन के दो बजे मैं पानीपत धर्मशाला में उनसे मिलने गया और तब मैंने देखा कि वे अपने कुछ शिक्षण, ज्ञानवर्त देखा है और यह दिलकर चिक्तर रह गया। मैंने उन्हें प्रातः चार बजे से रात के नौ-दस बजे तक भिन्न-भिन्न कार्यों में व्यस्त देखा है और यह दिनचर्या एक-दो दिन की नहीं, बल्कि नित्य की है। काम करने की इतनी अथाह शक्ति का कारण उनकी लगन समाज, धर्म तथा देश के लिए कुछ कर गृज रने की तीब इच्छा ही हो सकती है।

जैन-समाज श्रपने विपुल साहित्य तथा कला-प्रेम के लिए प्रसिद्ध है। पर मानना पड़ेगा कि गत दो-चार सौ वधौं में इस प्रवृत्ति में कमी ही ग्राई है। किन्तु श्राचार्य तुलसी ने राजस्थान के श्रपने गृहस्थ श्रनुयायियों तथा साधु-साध्वियों में साहित्य-पठन, साहित्य-सर्जन ग्रौर कला की श्रवृत्तियों को बढ़ावा दिया है। उनके कई शिष्य श्राशुक्रवि, श्रच्छे वक्ता, लेखक, विचारक तथा चिन्तक हैं। ग्रवधान या स्मृति के घनी भी कई साधु हैं ग्रौर ये सब काम या इन प्रवृत्तियों को श्रोत्माहन देने का कार्य वही व्यक्ति कर सकता है, जिसे इन बातों में स्वयं रचि हो, जो स्वयं इन गृणों से विभूषित हो। श्रीर ये साधु इन प्रवृत्तियों से समाज, साहित्य तथा कलाग्रों के लिए प्रशंसनीय योगदान दे रहे हैं।

ग्रीर श्रव शन्त में उनके महत्वपूर्ण श्रान्दोलन 'श्रणुरत-शान्दोलन' के संचालक के सम्बन्ध में लिखना चाहूँगा। ग्रणुवतों की कल्पना पूर्णतया जैन कल्पना है ग्रीर वह गृहस्थों के वास्ते हैं। छोटे रूप में ग्राहिंसा सत्य, चोरी न करने, ग्रपिरग्रह तथा ब्रह्मचर्य को पालन करना ही श्रणुवत है। वे विभाज्य नहीं हैं, सबको पालन करना पड़ता है। पर भाज के ग्रुग में जब मानव बतों, बन्धनों तथा नियमों से दूर मागता है, तब उमे ग्रणुवतों की बात कह कर उमे वतों में स्थिर करना है। इसलिए ग्राचार्यश्री ने इनके बहुत से भेद-प्रभेद करके उन्हें ग्राज की स्थित के श्रनुकूल बनाकर देश की करोड़ों जनता तथा विदेशों के रहने वालों के मामने नैतिन उत्थान के लिए रखा है। श्रपने-ग्रापको तथा श्रपने सैकड़ों शिष्य तथा शिष्याओं को उसकी सफलता के लिए श्रान्दोलन में लगा दिया है। इस श्रान्दोलन की तुलना श्राचार्य विनोबा के 'भूमिदान ग्रान्दोलन' तथा ग्रमरीका वालों के 'नैतिक पुनक्तथान ग्रान्दोलन' (Moral Re-armament Movement) में की जा सकती है। मुक्ते मालूम हुन्ना है कि भारत के बुद्धिवादी तथा पत्रकार और राजनीतिज्ञ इसे शंका की दृष्टि से देखते थे, कुछ को ग्राज भी श्रंका है, पर यह ग्राचार्यथी के सतत प्रयत्न का फल है कि यह ग्रान्दोलन ग्राज लोकप्रिय वन गया है। इस ग्रान्दोलन की सफलता समय नेगी और इससे देश का लाभ ही होगा। पर इस ग्रान्दोलन को स्थायी बनाने के लिए इसके संचालकों को इसके संचालन-प्रबन्ध को किसी महान् संस्था के ग्रावीन करना होगा, जैसे कि गांधीजी ग्रपनी प्रवृत्तियों को मंस्था-ग्राधीन कर देते थे। पर यह दूसरी बात है कि इस ग्रान्दोलन के मंचालक के रूप में ग्रापने ग्रपने सिक्य तथा रचनात्मक कल्पनाशील ब्यक्ति होने का परिचय दिया है।

श्रावार्यजी सभी पचास के इघर ही हैं। स्रौर यह प्राशा या कामना करना ठीक ही है कि स्रागामी पचास वर्षों में उनसे समाज, देश तथा धर्म को ऋत्यधिक लाभ होगा।



## अवतारी पुरुष

### श्री परिपूर्णानन्द वर्मा

भारत संतों का देश है। हमारे यहां एक से एक बढ़कर संत पैदा हुए हैं। उन्हीं की कुपा तथा प्रसादी से यह देश नैतिक, सामाजिक, तथा धार्मिक दृष्टि से सब देशों से महान् है। यह गवं की बात है। यह मिथ्या श्रहंकार नहीं है। मैंने दो बार संसार का भ्रमण किया है। मैं उसी भ्राधार पर यह बात दावे के साथ लिख रहा हूँ। पुलिस तथा जेल के महकमे से मेरा घना सम्बन्ध है। मैं भपराध शास्त्र का बिन अ सेवक हूँ। इसी नाते मैं कह सकता है कि धनी-से-धनी, उग्र समाजवादी तथा वर्गवादी, प्रजातन्त्रीय तथा पूँजीवादी देशों में ग्राज जितनी अनैतिकता तथा भ्रष्टाचार है, उतना भारत में नहीं है। किन्तु संसार के दृषित वातावरण से हुम कब तक बचे रह सकते हैं। हमको भी उसी गर्त में जाने की ग्राशंका है। हम भ्रभी तक सम्हले हुए हैं इसलिए कि भ्रव भी बड़े-बड़े साधु संत जन्म लेकर हमको उँगली पकड़ कर सही रास्ते पर चला देते हैं।

सुमन्तमद्राचार्य हमें एक बड़ी सीख दे गए थे। वह थी मानवता की। मानवता के सेवक साधु के चरणों में सिर नवाते समय एक चीज घ्यान में रखते हैं। वह यह कि उनके चरण वहाँ नहीं हैं, जहाँ दिखाई पड़ते हैं, वहाँ नहीं हैं, जहाँ हमारा सिर टिकता है। उनके चरण उन दीन दु:खी ब्रात्माओं की टोलियों और बस्तियों में हैं, पीड़ित तथा पितन कहे जाने वालों की गोद में हैं, ब्रतएव बड़े-बड़े धनी मानी लोग जो संतों की सेवा को ही सब कुछ समभते हैं, वे एक बड़ी भारी भूल करते हैं। संतों के कथन का पालन करने से उनकी ब्रसली मेवा होती है।

मैं ऊपर लिख माया हूँ कि हमारे देश में बड़े-बड़े संत सदैव आते रहे हैं—भवतार लेते रहे हैं। ऐसे भवतारी, पुरुष माचार्यश्री तुलसी भी हैं। मैंने जब कभी इनसे भेंट की, इनसे बातें की, इनका उपदेश सुना, मुक्ते बड़ी प्रेरणा मिली। मुक्ते ऐसा लगा कि उनके उपदेशों का भनुकरण कर हम भ्रपने देश तथा समाज को बहुत ऊँचा उठा सकते हैं।

भाचार्यश्री तुलसी जैसे संत भाग्य से पैदा होते हैं। जितना हो सके हम इनसे ले लें—उपदेश श्रीर इनकी विकट तपस्या का वरदान श्रीर उसी के सहारे श्रपनी नैया चलाएं।



# आचार्यश्री के शिष्य परिवार में आशुकवि

#### मुनिथी मानमलजी

शताब्दी के इस पाद में सारा विश्व ही नव-नव उन्मेषमूलक रहा। सभ्यता, संस्कृति और समाज-ध्यवस्था की दृष्टि से मौलिक उन्मेष इस अविध में हुए। घटनाकम की इस दुन गित के साथ तेरापंथ साधु-संघ में आचार्यश्री तुलसी के शासनकाल के पच्चीस वर्ष भी अप्रत्याशित उन्मेषक बने। अनेकों अभिनव उन्मेषों में एक उन्मेष प्राशुक्रवित्व का बना। किवता यों ही कठिन होती है और संस्कृत भाषा का माध्यम पाकर तो वह नितान्त कठोरतम ही बन जाती है। प्राचीन काल में भी कुछ एक मेधावी लाग ही संस्कृत के आधुक्रवि हुआ करते थे। तेरापंथ के इतिहास में मुनिश्री नयमलजी, मुनिश्री नगराजजी आध आशुक्रवि हैं। इस नवीन धारा के प्रवाहित होने में आशुक्रवित्तन पं० रघुनन्दन धर्मा प्रेरक स्रोत बने हैं। उनका सहज और मधुरिम आशुक्रवित्व मेधावी मुनिजनों के कर्ण कोटर पर गुन-गुनाता-सा ही रहता था। मुनिजनों की स्फटिकोपम मेधा में उसका प्रतिबिम्बत होना स्वाभाविक ही था। प्रकृतिलब्ध माने जाने वाली आशुक्रविता अनेक मुनियों की उपलब्धि हो गई। सर्वसाधारण और विद्वन्-समाज में इस अनौकिक देन का अद्भुत समादर होने लगा। आचार्यथी तुलसी के शिष्यों की यह एक अनुपम ऋदि समक्षी जाने लगी। हर विशेष प्रसंग पर, राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद की और आचार्यश्री के वार्तालाप पर, विनोबा भावे और आचार्यश्री के वार्तालाप प्रमंग पर मुनिश्री नथमलजी और मुनिश्री बुद्धमल्लजी की प्रभावात्पादक आशुक्रविता के लिए विषय मिला— स्वाध्याक्तमालाक घटो यन्त्र विविध्य विश्व मन्त्र मुग्वभी के अभिनन्दन में एक सभा हुई। मुनिश्री नथमलजी को आशुक्रविता के लिए विषय मिला—साधराकृत्व वार्य चित्र में सर्व वार्य विवष्य पर वार स्वयंदा खन्द बोले। सारी परिषद मन्त्र-मुग्ध-सी हो गई।

श्राचार्यश्री पंजाब पधारे। ग्रम्बाला छावनी के कॉलेज में ग्राचार्यश्री के प्रवचन का कार्यक्रम रहा। मुनिश्री बुद्धमल्लजी ने ग्राधुनिक शिक्षा विषय पर घारा प्रवाह श्राधु कविता की। श्रोनाश्रों को ऐसा लगने लगा कि मुनिजी पूर्व रिचत क्लोक ही तो नहीं बोल रहे हैं। चालू विषय के बीच में ही प्रिंसिपल महोदय ने एक जटिल से राजनैतिक पहलू पर भाषण दिया और कहा — इस भाषण को ग्राप संस्कृत क्लोकों में कहें। मुनिश्री ने तत्काल उस क्लिष्टतर भाषण को मंस्कृत में ज्यों का त्यों दुहराया और सारा भवन ग्राक्चर्य-मगन हो उठा।

मृतिश्री नगराजजी संस्कृत भाषा की राजधानी वाराणसी में पधारे। रात्रिकालीन प्रवचन में आशुकिवत्व का आयोजन रहा। श्रनेकानेक संस्कृत के विद्वान् व प्रतिष्ठित नागरिक उपस्थित थे। प्रवत्त विषय पर आशुकिवित्व हुगा। पं० महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य ने आशुकिवित्व पर अपने विचारप्रकट करते हुए उपस्थितलोगों ने कहा—संस्कृत पद्य रचना को कितना सहज रूप मिल सकता है, यह मैंने जीवन में पहली कार जाना।

बम्बई में बंगाल विधान परिषद् के अध्यक्ष और देश के शीर्षस्थ माषाशास्त्री डा॰ सुनीतिकुमार चटर्जी ने मुनिश्री नगराजजी से भेंट की। आधुकवित्व का परिचय पाकर उन्होंने मुनिश्री से निवेदन किया, आप एक ही श्लोक में जैन-दर्शन का हार्द बतलाएं। मुनिश्री ने जीवन और मृत्यु आत्मा की पर्याय है, मोक्ष आत्म-स्वभाव का अन्तिम विकास है, अतः उसकी उपलब्धि के लिए प्रत्येक व्यक्ति को सतत अयत्नशील रहना चाहिए, इस भाव का एक सुन्दर श्लोक तत्काल उन्हें सुनाया। डा॰ सुनीतिकुमार गद्गद् हो उठे और बोले, इस श्लोक में अपूर्व भाव-गरिमा मरी है। संस्कृत में ऐसा ही एक श्लोक प्रचलित है, जिसमें सारे वेदान्त का सार आ गया है।

यह प्रसंग पाँच वर्ष से भी अधिक पुराना हो चला है। बिद्धानेच हि आनाति विद्वज्जनपरिव्यमम् की उनित इस प्रसंग पर एक अपूर्व उंग से विरतार्थ हुई है। कलकता से प्रकाशित 'जैन भारती' के ता० २७ अगस्त,१६६१ के एक अंक में एक संवाद प्रकाशित हुआ है, जिसमें बताया है—दिनांक १६ अगस्त, ६१ शनिवार को इण्डियन मिरर स्ट्रीट स्थित कुमार-सिंह हॉल में श्रीपूर्ण वन्दजी श्याममुखा अभिनन्दन समिति की ओर से श्याममुखाजी की अस्सीवीं वर्षगाँठ के उपलक्ष में माननीय डा० सुनीतिकुमार बटर्जी की अध्यक्षता में एक अभिनन्दन समारोह आयोजित किया गया, जिसमें श्री श्याममुखाजी को एक अभिनन्दन अन्य मेंट किया गया। समिति के मन्त्री श्री विजयसिंह नाहर व अध्यक्ष श्री नरेन्द्रसिंहजी सिंधी अमृति सक्जनों ने श्याममुखाजी के जीवन-प्रसंग प्रस्तुत किये। अध्यक्ष श्री चटर्जी ने श्री श्यामसुखाजी के बंगाल में जैनधमं के प्रचार-कार्य की सराहना करते हुए कहा कि जैन दर्शन हमेशा संसार को एक नया आलोक देता ही है। गत कुछ वर्ष पूर्व बम्बई में जैन मुनिश्री नगराजजी से मेरा साक्षात्कार हुआ, जो संस्कृत के आशुक्रिव थे। उनके द्वारा तत्काल रचित संस्कृत के शे पद्यों का उच्चारण करते हुए श्री चटर्जी ने कहा कि इन दो पद्यों में जैनधमं क्या है? इसका एक सुन्दर चित्र अस्तुत किया गया है। अन्त में जैनधमं और जैन बिद्धानों के प्रति निष्ठा व्यक्त करते हुए अध्यक्ष महोदय ने श्री श्रीमनन्दन ग्रन्थ मेंट कर सम्मानित किया।

मुनिश्री का श्राश्किवत्व बहुत ही सरल भीर मार्मिक होता है। श्राचार्यश्री तुलसी जब राजगृही के वैभारगिरि की सप्तपर्णी गृहा के द्वार पर साधु-साध्वियों की परिषद् में विराजमान थे, उस प्रसंग पर मुनिश्री नगराजजी के श्राशु-कवित्व रिवत क्लोकों का एक क्लोक था:

#### ब्राचार्याणामागमात् साधुवृत्वैः, साध्वीवृत्वैः साधमत्र प्रपूर्तैः । विश्वक्याता सप्तपणीं गृहेयम्, संजाताद्य श्वेतवर्णी गृहेयम् ।।

मृतिश्री महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम' के भी झाशुकवित्व सम्बन्धी रोजक संस्मरण बने हैं। कुछ वर्ष पूर्व उनका एक अवधान प्रयोग कान्स्टीट्यूबन क्लब, नई दिल्ली में हुआ। उसमें बहु संख्यक संसद संदस्य, राजींव टण्डन, लोकसभा के अध्यक्ष श्री अनन्तश्यनम् आयंगर आदि अनेकों गणमान्य व्यक्ति तथा गृहमंत्री पं॰ पत्त आदि अनेक केन्द्रीयमंत्री उपस्थित थे। संस्कृतज्ञ श्री अनन्तश्यनम् आयंगर ने आशुकविता का विषय दिया—ससक गल रन्ध्रों हस्तियूयं अविष्टम् अर्थात् मच्छर के गले में हाथियों का भुण्ड चला गया। इस विचित्र विषय पर भुनिश्री महेन्द्रकुमारजी ने बहुत सुन्दर श्लोक प्रस्तुत किए, जिसका साराश या—आज बड़े-बड़े वैज्ञानिकों ने परमाणुओं की शोध में अपने-आपको इस तरह खपा दिया है कि मानो मच्छरों के गले में हाथियों का भुण्ड समा गया हो। सारी सभा बहुत ही चमत्कृत हुई। यह रोचक सस्मरण अगले दिन प्राय: सभी दैनिक पत्रों में प्रमुख रूप से प्रकाशित हुआ।

राष्ट्रपति भवन में जब उनका एक विशेष भवधान-प्रयोग हुआ तो प्रधानमंत्री पं० जवाहरलाल नेहरू ने आशु कविता के लिए उन्हें विषय दिया—'स्पूर्तानक' ग्रर्थात् कृत्रिम चाँद। रूस ने उन्हीं दिनों ग्रन्तिरक्ष कक्षा में रपूर्तानक छोड़ा था। मुनिश्री ने तत्काल कतिपय श्लोक इस बद्भुत विषय पर वोले, जिन्हें सुन कर सारे लोग विस्मित रहे।

धाचार्यश्री के शिष्य परिवार में आज तो इने-गिने ही नहीं, किन्तु अनेकानेक आधुकवि हैं। श्राचार्यवर की पुनीत प्रेरणाओं ने अपने संघ को एक उर्वर क्षेत्र बना दिया है।



## श्रमा में प्रकाश किरण

#### महासती श्री लाडांजी

बाजार्यश्री तुलसी ग्रमा के सथन निशीय में प्रकाश किरण लेकर थाये। तब जनता जड़ता की नींद में डूबी हुई थी। ग्रापने तिमिर की गोद में सोये हुए एक-एक व्यक्ति को सहलाया, जागे हुए को पथ बतलाया। पथिक को प्रकाश दिखाया, प्रकाशित पथ वालों को मंजिल की निकटता का धाभास दिया। इसीलिए जन-मानस भ्रापको भ्रमा में प्रकाश किरण मानता है। भ्रापने ग्रात्म-भ्रालोंक में स्वयं को पहचाना, तत्पश्चात् श्रपनी ही अनुभूतियों को जनता तक पहुँचाया, जिसे जनता भ्रमी ही अनुभूति मान लीन हो रही है। पथ-दर्शन पा रही है। ग्रापका दिव्य भ्रालोक भ्रनेक रूपों में निखरा। भ्रजानियों के लिए ज्ञान का भ्रक्षय कोष बन कर श्राया। संघीय विद्या-विकास ग्राज ग्रापको सरस्वती पुत्र के रूप में देख रहा है। ग्रनीतिक जीवन जीने वालों को सुगम साधना का पथ दिखाया। साधना में कतराने वालों का साहम बढ़ाया। संयम को ग्रनावश्यक समक्षने वालों की मान्यता का परिष्कार किया, दानवीय वृत्तियों से लोहा लिया। सदाचार ग्रीर सहनीति की नई व्याख्या दी ग्रीर एक ही वाक्य में कहें तो श्रापने दिग्मुढ मानव को राजपथ दिखलाया।

स्राज कृतज्ञ मानव समाज स्रापके प्रति श्रद्धांजलि स्रपित कर रहा है । स्रापकोपाकर जगत गौरवान्वित है । स्राप जैसे जगत बन्धु को बन्धु रूप में प्राप्त कर मैं विशेष रूप से गौरवान्वित हूँ ।



#### वात बार नमस्कार

#### श्री विद्यावती मिश्र

करता है आज युग तुम्हें शत बार नमस्कार! शत बार नमस्कार!!

भूले हुए पथी को तुमने राह दिखायी, फिर ध्येय-प्राप्ति की पुनीत चाह जगायी, ऐसा लगा कि लक्ष्य धाम ही रहा पुकार!

तुमने न बहुत ही बड़े म्रादर्श सजाये, पारस से छू के लौह भी हैं स्वर्ण बनाये, भय-शोक-प्रस्त विश्व की तुमने लिया उबार! शत बार नमस्कार!!

चाहे जो श्राये इसमें कोई रोक नहीं है, ऐसा सुरम्य भ्रन्य कोई लोक नहीं है, तम तोम कहाँ ज्योति राशि का हुश्रा प्रसार!

# आधुनिक युग के ऋषि

#### श्री सुगनचन्द सदस्य, उत्तरप्रदेश विधान परिचद

ग्राधुनिक युग के ऋषि ग्राचार्य तुलसी ग्राज वही कार्य कर रहे है जिसे प्राचीन ऋषियों ने उठाया था। ग्रात्म-वत् सर्वभूतेषु ग्रीर वसुधेव कुटुम्बकम् की भावना को स्वयं जीवन में उतार कर वे सारे समाज को उसी तरफ ले जाने का प्रयत्न कर रहे हैं।

भारतीय समाज ने राम, कृष्ण, बुढ़, महावीर स्वामी, स्वामी दयानन्द, गांधी, विनोवा ब्रादि महाप्रूषों को पैदा कर जिस ऊँचाई का परिचय दिया है, आप उसी परम्परा को श्रक्षुण्ण कर रहे हैं। हमारा दर्शन सत्यं, शिवं, सुन्दरं श्रीर सत्य, प्रेम तथा करुणा की जिस सुदृढ़ नींव पर श्राधारित है, उस नीव को आपने बल मिलेगा, ऐसी श्राशा है।

श्चाप सादा जीवन श्रीर उच्च विचार तथा तप, त्याग, संयम की भारतीय परम्परा को समाज में उतारने के प्रयम्म में निरन्तर लगे हुए हैं।

ग्रणुवत-ग्रान्दोलन यह सिद्ध करता है कि जब तक व्यक्ति ऊँचा नहीं उठेगा, तब तक समाज ऊँचा नहीं उठ सकता ग्रीर व्यक्ति का निर्माण छोटी-छोटी बातों को जीवन में उतारने में ही होता है। जिनको हम छोटी बात ग्रीर छोटा काम कहते हैं, उन्हीं कामों ने गंसार के महान् पृश्वों को महान् बनाया है। राम ने शबरी के बेर खाये, कृष्ण ने भूठी पत्तलें उठाई, गांधीजी कानने ग्रीर बुनने वाले बने, विनोबा ने भंगी का काम विया। इन्हीं छोटे कामों ने इन्हें महान् बनाया। यही नहीं, इस देश में जितने भी ऊँचे साधु-संत हुए हैं वे भी ऐसा ही छोटा-मोटा काम करते रहे। कबीरदाम जुलाहे का काम करते थे। वे कपड़े का ही ताना-बाना नहीं बुनने रहे, बल्कि जीवन का ताना-बाना भी उसी के साथ बनने रहे। उनका प्रसिद्ध भजन भीनी भीनी बीनी वबरिया में पंच तत्त्व ग्रीर गरीर-तत्त्व का किनता सुन्दर विश्लेषण किया गया है, जिसे कोई योगी ही कर सकता है। पर कबीर ने सीधी-सादी भाषा में बहुत ही सुन्दर हंग से इसे व्यक्त किया है। इसी तरह रैदास ने मोची का काम किया, दादूदयाल ने धोवी का ग्रीर नामदेव ने दर्जी का। ये सभी संत भारत के ग्रमल्य रत्नों में है।

साधु-संतों का श्राविभीव समाज-संचालन के लिए सदैव होता रहा है और आगे भी होता रहेगा। सरकार समाज को अनुशासित कर सकती हैं, पर उसे बदल नहीं सकती। श्राज तक दुनिया की किसी सरकार ने समाज को या सामाजिक मूल्य को नहीं बदला, न उनमें बदलने की क्षमता ही है। यह काम तो साधु-संत ही कर सकते हैं और अब तक करते श्राए हैं तथा श्रामें भी करने रहेंगे। कानून द्वारा किसी को रोका नहीं जा सकता है, उराया जा सकता है; किसी का हृदय नहीं बदला जा सकता। श्राज के युग में भी विज्ञान ने श्रकृति पर बहुत-कुछ विजय पा ली है, मनुष्य चन्द्रमा तक पहुँचने की तैयारी में है, पर विज्ञान स्वयं मनुष्य को बदलने में असफल रहा है। यही कारण है कि आज विज्ञान का उपयोग निर्माण के बजाय संहारक श्रस्त्रों में किया जा रहा है।

श्राज दुनिया के सामने दो ही मार्ग है, सर्वोदय या सर्वनाश । इनमें से ही किसी एक को चुनना होगा। यदि विज्ञान का सम्बन्ध श्रहिसा से हुआ तो इस धरा पर ऐसा स्वर्गोपम सुख श्रायेगा जो श्राज तक कभी श्राया भी नहीं, पर श्रगर विज्ञान का सम्बन्ध हिंसा से हुआ तो जैंसा कि श्राज हो रहा है, इतना बड़ा विनाश भी इसी पृथ्वी पर होगा, जितना कभी हुआ नहीं, बिल्क मृष्टि ही समाप्त न हो जाये, यह खतरा भी पैदा हो गया है। विज्ञान अपने-आप में प्रशस्त है, पर प्रश्न है उसके प्रयोग का। प्रयोग करने वाला मनुष्य है, इसलिए सबसे आवश्यक अब यही है कि मनुष्य को कैसे बदला जाये और कौन बदले ? कैसे बदला जाये, इसका उत्तर है, मनुष्य के संस्कार बदले जाये; और कौन बदलेगा, इसका उत्तर है, ऋषि-महर्षि, साधु-संत। इसलिए आज विज्ञान के युग में, जहाँ सर्वनाश खड़ा है, साधु-संतों का मूल्य और भी बढ़ जाता है। आज मानव-सृष्टि का कल्याण इन्हों के हाथों सुरक्षित है।

ग्राज लोगों के मन में यह शंका होने लगी है कि नैतिकता का कोई मूल्य है भी या नहीं ग्रीर समाज को उससे कुछ लाभ भी होगा या नहीं? क्योंकि ग्राज चारों ग्रीर विकास के साथ-साथ अष्टाचार ग्रीर ग्रनैतिकता का भी फैलाव होता जा रहा है। मानवीय मूल्यों का ह्रास होता जा रहा है। जनता को यह सोचने को मजबूर कर दिया गया है कि नैतिकता हमारा संरक्षण ग्रीर ग्रनैतिकता का मुकाबला कर भी सकेगी या नहीं या समाज में जीने के लिए ग्रनैतिकता का ग्राथ्य ही लेना पड़ेगा। पर जरा गंभीरतापूर्वक सोचने पर लगता है कि नैतिकता के बिना एक क्षण भी समाज चल नहीं सकता। यही बन्धन समाज को एक तत्त्व में पिरोये हुए है। यदि यह बन्धन टूट गया तो न तो समाज रहेगा, न अष्टाचार रहेगा।

नैतिकता का प्रभाव समाज में क्या है और कितना है, यह नापा नहीं जा सकता । बिल्क इसका प्रवाह लोगों के दिलों में निरन्तर बहता रहता है। कभी धारा वेगवती हो जाती है, कभी मन्द पड़ जाती है। साधु-संतो के, महापुरुषों के प्रभाव में यह बढ़ती-घटती रहती है। प्राज विनोंबा के प्रभाव ने लोगों में कई हजार ग्रामदान दिलवा दिगा, जो इतिहास की सर्वथा श्रभूतपूर्व घटना है। इसी तरह श्राचार्यश्री तुलसी जो कार्य कर रहे हैं. उसका प्रभाव समाज पर पड़ रहा है। हजारों लोगों का जीवन उन्होंने बदला है। पैदल ही नंगे पौव सारे देश का भ्रमण कर रहे हैं।



## वे हैं, पर नहीं हैं

#### मुनिश्री चम्पालालजी (सरदारशहर)

वे शासक है, उन्होंने ग्रनुशासन किया है, पर तलवार से नहीं, प्यार से। वे ग्रालोचन हैं, उन्होंने कड़ी श्रालोचनाएं की हैं, पर धर्म की नहीं, धर्म के दम्भ की। वे वैज्ञानिक हैं, उन्होंने अनेक श्राविष्कार किये हैं, पर हिंसक शस्त्रों के नहीं, शान्ति के शस्त्रों के। वे कान्तिकारी हैं, उन्होंने अगवत की है, पर पापियों के विरुद्ध नहीं, पापों के विरुद्ध । वे चिकित्सक हैं, उन्होंने सफल चिकित्सा की है, पर मानय के तन की नहीं, मन की। वे द्रष्टा हैं, उन्होंने सब के सुख-दुःख को देखा है, पर तुला से तोलकर नहीं, स्वयं से तोलकर। वे युगपुरुष हैं, उन्होंने युग को नई मोड़ दी है, पर श्रीरों को मोड़कर नहीं, पहले स्वयं मुडकर।

## त्राचार्यश्री के जीवन-निर्माता

#### मुनिश्री श्रीचन्दजी 'कमल'

जो एक को जानता है, वह सबको जानना है और जो सबको जानता है, वही एक को जानता है। एक स्रौर सब में इतना सम्बन्ध है कि उन्हें सर्वथा पृथक् कर, जाना ही नहीं जा सकता। इस जाय्वत सत्य की भाषा में कहा जा सकता है, जो भ्राचार्यथी तुलसी को जानना है, वह पूज्य कालृगणी को जानना है और जो पूज्य कालृगणी को जानता है, वही भ्राचार्यथी तुलसी को जानता है। इन दोनों में इतना तारतम्य है कि उन्हें पृथक् कर, जाना ही नहीं जा सकता। श्राचार्यथी तुलसी को जानता है। इन दोनों में इतना तारतम्य है कि उन्हें पृथक् कर, जाना ही नहीं जा सकता। श्राचार्यथी तुलसी बाईस वर्ष में महान् संघ के सर्वाधिकार सम्पन्न भ्राचार्य बने, यह उतना भ्राव्ययं नहीं, जितना श्राद्ययं यह है कि उस भ्रत्य भ्रवस्था में इतना बड़ा दायित्व एक महान् भ्राचार्य ने एक युवक को सौंपा। भ्राचार्यश्री तुलसी पूज्य कालृगणी पर इतने निर्भर थे कि उनकी वाणी श्रापके लिए सर्वोपरि प्रमाण था। श्राज भी इतने निर्भर हैं कि भ्रपनी सफलता का बहुत कुछ श्रेय उन्हीं को देते हैं। प्रमोद भ्रौर विरोध दोनों स्थितियों में उन्हीं का भ्रालम्बन लेकर चलते हैं। भ्रपने कर्तृत्व पर विश्वास करते हुए भी उस नाम से महान् भ्रालोक भ्रौर श्रपूर्व श्रद्धा का संवल पाते हैं। कोई विचित्र ही परस्परना है। ऐसा तादात्स्य मैंने भ्रपने जीवन में श्रन्यत्र नहीं देखा।

कालूगणी करुणा श्रीर वात्सल्य के पारावार थे। तेरापंथ के साध-साध्वियों श्रीर श्रावक-श्राविकाए श्राज भी उनके वात्सल्य की मधुर स्मृतियों से श्रोत-श्रोत हैं। उनका वात्सल्य सर्व सुलभ था। विद्या की श्रभिवृद्धि में उन्होंने श्रमित प्यार विद्यारा। इतने पुरस्कार बाँटे कि विद्या स्वयं पुरस्कृत हो गई। छोटे साधुश्रों की पढ़ने में कि कम होती। संस्कृत व्याकरण के श्रध्ययन को वे स्वयं 'श्रलूणी' शिला चाटना कहते थे। चटाने वाले कुशल हों तो चाटने वालों की कमी नहीं है। उन्होंने ग्रपना ग्रमृत सींच-सींच उसे इतना स्वाद बना दिया कि उसे चाटना श्रिय हो गया।

#### कठोर भी मृदु भो

श्राचार्य बनते-बनते उन्होंने एक स्वप्न देखा। उसमें सफेद चमकीले छोटे-छोटे बछड़े देखे। शिष्यों की बहुत वृद्धि हुई। केवल वृद्धि का महत्त्व नहीं होता। कसौटी भंरधण में होती है। उनका हृदय मस्तिष्क पर सदा मधिकार किये रहा, इसलिए उनके सामने तर्क उठा ही नहीं। दर्पण में सबका प्रतिबिम्ब होता है, पर उसका प्रतिबिम्ब सबमें नहीं होता। वे कोई विचित्र ही थे। स्फटिक से कमें उज्ज्वल और पारदर्शी नहीं थे, फिर भी उनका प्रतिबिम्ब उन सबने लिया, जो उनके सामने आये। उन्होंने चाहा नो किसी का प्रतिबिम्ब लिया, नहीं तो नहीं। उनकी आत्मा में सतत प्रतिबिम्बत थे मघवागणी, जो अपने दैहिक सौन्दर्य के लिए ही नहीं, किन्तु अपने आत्मिक सौन्दर्य के लिए भी विश्वत थे। गंगाजल-मा निर्मल था उनका जीवन। स्फटिक-सा स्वच्छ था उनका मानसा वे नहीं जानते थे गाली क्या होती है और गया होता है कोध ? विषयों से इतने विरत कि उन्हें इन्द्रिय-कामनाओं की पूरी जानकारी भी नहीं थी। जिन्हें आत्मलीन कहा जाता है, उन्हीं की पंक्ति के थे वे महान् योगी। उनका मानस प्रतिबिम्बत हुआ काल्गणी में। जब कभी उनके मुँह से मघवागणी का नाम निकल पड़ता तो उनकी आँखों में मघवागणी का चित्र भी दीखता। जिसे जीवन में एक बार भी वासना न छू पाए, जो केवल अपने यन्तर में ही रम जाए, वह कितना पवित्र होता है, इसकी कल्पना वे लोग नहीं कर सकते, जो वासना की दृष्टि से ही देखते है और वासना के मस्तिष्क से ही सोचते है। जितने पवित्र मघवागणी थे, उतने ही पवित्र कालूगणी थे और जिनने मृद्द मघवगणी थे, उतने ही पवित्र कालूगणी थे। पर मघवागणी कहीं भी कठोर नहीं थे। उनके अनुशासन में

मृदुता बोलती भौर शासन मीन रहता। पर कालूगणी के व्यक्तित्व के एक कोने में कठोरता भी छिपी थी। उनका मानस मृदु था, पर अनुशासन मृदु नहीं था। वे तेरापंथ को व्यक्ति देना चाहते थे। व्यक्ति-निर्माण अनुशासन के बिना नहीं होता। इसिलए उनकी कठोरता मृदुता से अधिक फलवती थी। वे कोरे स्नेहिल ही होते तो दूसरों को केवल खींच पात, बना नहीं पाते। वे कोरे कठोर होते तो न खींच पाते और न बना पाते। उनकी मृदुता कठोरता का चींचर पहने हुए थी और उनकी कठोरता मृदुता को समेटे हुए थी। इसीलिए वे बहुत रूबे होकर भी बहुत चिकने थे और बहुत चिकने होकर भी बहुत रूखे थे। जिन व्यक्तियों ने उनका स्निष्ध रूप देखा है, उन्होंने उनका रूखा रूप भी देखा है। ऐसे बिरले ही होंग जिन्होंने उनका एक ही रूप देखा हो।

वे कर्तव्य को व्यक्ति से ऊँचा मानते थे। उनकी दृष्टि में व्यक्ति की ऊँचाई कर्तव्य के समाचरण से ही फिलित होती थी। मन्त्री मुिन मगनलालजी स्वामी उनके ऋिमन हृदय थे। बचपन के साथी थे। मुख-दुःख के समयोगी थे। फिर भी जहाँ कर्तव्य का प्रश्न था, यहाँ कर्तव्य ही प्रधान था, साथी नहीं। प्रतिक्रमण की वेला थी। मन्त्री मुिन गृहस्थों से बात करने लगे। कालूगणी ने उलाहने की भाषा में कहा—"अभी प्रतिक्रमण का समय है, बातों का नहीं।" जो व्यक्ति कर्तव्य के सामने अपने अभिनन हृदय की अपेक्षा नहीं रखता, वह दूसरों के लिए कितना कठोर हो सकता है, यह स्वयं कल्पनागम्य है। वे यदि धर्मप्राण नहीं होने तो उनकी कठोरता निर्मता में बदल जाती। पर वे महान् धर्मी थे। विस्मृति का वरदान उन्हें लब्ध था। भूल परिमार्जन पर वे इतने मृदु थे कि उनके साथ शत्रु-भाव रखने वाला भी उनका अपूर्व प्यार पाना था। कठोरता ग्रीर कोमलता का विचित्र संगम उस महान् व्यक्तिस्व मे था।

वट के बीज को देखकर उसके विस्तार की कल्पना नहीं की जा सकती है, पर वह बीज से बाह्य नहीं होता। तरापथ के विद्या-विस्तार के बीज कालुगणी थे। विद्यार्जन के लिए काल की कोई मर्यादा नहीं होती। समूचा जोवन उसके लिए क्षेत्र है। कालूगणी ने इसे प्रमाणित कर दिखाया। आचार्य बने, तब आपकी अवस्था तेतीस वर्ष की थी। उस समय आपने हाई महीनों में समग्र सिद्धान्त चिन्द्रका कण्ठस्थ की। आचार्य हेमचन्द्रकृत अभिधान चिन्तामणि शब्दकोप आप पहले ही कण्ठस्थ कर चुके थे। आपने संकल्प किया—मैं और मेरा साधु-साध्वीगण संस्कृत व प्राकृत के पारगामी बनें। आपने अपने जीवनकाल में ही उसे फलित होते देखा था। तेरापंथ की अधिकांश प्रतिभाएं उन्हीं के चरणों में पहल-वित हुई है।

उनमें स्पृहा और निस्पृहता का विचित्र योग था। विद्या के प्रति उनकी जितनी स्पृहा थी, उतनी ही बाह्य सम्बन्धों के प्रति उनकी निस्पृहता थी। दिए से दिया जलता है—इसमें बहुत बड़ी सच्चाई है। कालूगणों के ब्रालोकित पथ से ब्रालायंथी तुलसी अपना पथ ब्रालोकित करते है। उन्हीं की भाषा में—"मैं जब सुनता हूं कि कुछ लोगों की श्रद्धा हिल उठी, तब मुफे वह वृत्त स्मरण हो ब्राता है, जब कालूगणी ने कुछ संतों के सामने ब्रपने भाव व्यक्त किये थे। उस समय थली (बीकानेर राज्य) में देशी विलायतीं का संघर्ष चलता था। तब वहाँ दूसरी सम्प्रदाय के साधु ब्राए। कुछ लोग उनके पास जाने लगे, उनकी ब्रोर भुके। तब कुछ सतों ने काल्गणी के सामने निराधाजनक बातें की। उनके उत्तर में ब्राचायंवर ने कहा, 'काई किघर ही चला जाये, मुभे इस बात की कोई चिन्ता नहीं। हमने दीक्षा किसी के उत्तर नहीं ली है, ब्रपनी ब्रात्मा का मुधार करने के लिए ली है। मेरे तो स्वप्त में भी यह नहीं ब्राता कि ब्रमुक श्रावक चला जायेगा तो हम क्या करेंगे? ब्राह्मिक श्रावकों में हमें चहर के पैस तो नहीं लेने है। श्रावक हमारे ब्रनुयायी हैं, हम श्रावकों के नहीं। साधुब्री! तुम्हें निश्चित रहना चाहिए। मन में कोई भय नहीं लाना चाहिए। न जाने कितनी वार ये बात मुभे स्मरण हो ब्राती है ब्रीर इससे ब्रपार ब्रात्मवल बढ़ता है।"

स्वावलम्बन उनके जीवन का बन था। वे झादि से ही सपनी धुन में रहे। न पद की लालमा थी। श्रीर न कोई वस्तुक्रों के प्रति श्राकर्षण था। छठे श्राचायं माणकगणी दिवंगत हो गए। वे श्रपना उत्तराधिकारी चुन नही पाये थे। तेरापंथ के सामने एक बहुत बड़ी समस्पा खड़ी हो गई। प्रत्येक साधु इस स्थिति से चिन्तित था। जयचन्दजी नामक एक

१. वि० सं० २००७ पौष सुदी ६

साधु ने कालूगणी से पूछा, "ब्राचार्य कीन होगा ?" ब्रापने उत्तर दिया, "तू और मैं तो नहीं होंगे। और कोई भी हो। उसमें ब्रापने को क्या ?" उस समय ब्राप बाईस वर्ष के थे। ढाई मास तक तेरापथ में ब्राचार्य की अनुपस्थित रही। उस समय सारा कार्य-संचालन पूज्य कालूगणी और मन्त्री मुनिश्री मगनलालजी स्वामी ने किया, फिर साधु-परिपद् ने डालगणी को अपना ब्राचार्य चुना। उन्होंने इस युगल की कार्यकुशलता की भूरि-भूरि प्रशंमा की।

डालगणी मनुष्य के बहुत वड़े पारखी थे। उन्होंने मन्त्री मुनि से पूछा—'यदि मैं श्राचार्य पद का दायित्व नहीं संभालता तो तुम लोग किसे साँपत ?' मन्त्री मुनि ने कहा, 'यह कैसे हो सकता है ? जो दायित्व श्राये उससे कोई भी गणित चाहने वाला कैसे दूर भाग सकता है ?' डालगणी ने कहा, 'फिर भी कल्पना करों, यदि मैं इस दायित्व को लेना स्वीकार नहीं करता तो तुम लोग वया करते ?' वे इस प्रश्न को दोहरात हो गए, तब मन्त्री मुनि ने कहा, 'कालूजी को सोंपते।' डालगणी आश्चर्यचिकत रह गए। उन्होंने कहा, 'मैं सब ग्रोर घूम गया, पर मगनर्जा! यहाँ नहीं पहुँच पाया, जहाँ पहुँचना था, वहाँ नहीं पहुँच पाया।'

कालूगणी की ग्रान्तरिक सम्पदा जितनी समृद्ध थी, उतनी बाह्य सम्पदा नहीं थी। उनकी ग्रात्मा में जितना था उतना वाणी में नहीं था। वे जितने गण के थे उतने व्यक्ति के नहीं। उन्होंने एक प्रमंग मे डालगणी से कहा था, 'मैं कोहनी तक हाथ ओड़ना नहीं जानता। फिर भी गण और गणी के प्रति मेरा अन्तरंग उनसे कहीं ग्राधिक निष्ठावान है, जो कोहनी तक हाथ जोड़ते है ।' उनका 'स्व' बड़ा प्रबल था । वह यदि ग्रभिमानजनक होता तो परिणाम काल में निश्चित ही त्रिकार उत्पन्न करता । किन्तु वह निरपेक्ष भाव से प्रमुत था । इसीलिए उसने दायित्व भाव को सजग रखा और कृतिम व्यवहार को स्पूप्त । आचार्यश्री ने ठीक ही कहा है, "जो आत्मभाव में जागृत होता है, वह व्यवहार से सुप्त होता है और जो व्यवहार में जागृत होता है, वह आत्मभाव में सुप्त होता है।" कालुगणी की सतर्कता इतनी थी कि डालगणी जैसे कठोर अनुशासन से कभी इन्हें उलाहना नहीं मिला। उनकी निरपेक्षता इतनी थी कि उन्हें कभी कोई विशेष अनुप्रह प्राप्त नहीं हुन्ना । डालगणी ने श्रपने उत्तराधिकारी का पत्र लिख दिया ; फिर भी यह प्रश्न था कि स्नाचार्य कौन होगा ? उनका स्वर्गवास हो गया । फिर भी लोग इससे भनजान थे कि हमारा भावी भाचार्य कौन है ? काल अब भी अपने स्वावलम्बन में थे । अपना काम, अपने हाथ-पैर, अपनी धुन और अपना जगन्। व्यक्तित्व छिपा नहीं था। कल्पना दौड़ती ही थी। कुछ व्यक्तियों ने कहा, 'गुरुदेव का स्वयंवास हो गया है। अब आप पाट पर विराजें।' आपने निर्-पेक्ष भाव से कहा, 'पहले देखो, स्राचार्यवर ने स्रपना उत्तराधिकारी किसे चुना है ? फिर बात करना ।' मन्त्री मृति ने डालगणी का पुठा खोला। पत्र निकाला। परिषद् के बीच उमं पढ़ा, तब जनता ने भारचयं के साथ मुना कि हमारे श्राचार्य श्री कालुगणी है। अब ग्राप पाट पर बैठे। यह निरपेक्षता श्रन्तिम साँस तक बनी रही। रुचि का खाना बही था जो ग्रामीण लोग खाते है । ठाट-बाट का कोई श्राकर्षण नहीं था । बाहरी उपकरण उन्हें कभी नहीं लुभा पाये । एक ही धुन थी--गण का विकास, विकास भीर विकास । पहले ही वर्ष उन्होंने साध्-माध्वियों के मान सिघाडे किये । श्रपने साथ सिर्फ सोलह साध् रखे । शेष साधुत्रों से कहा—जाग्रो, विचरो, उपकार करो । संकल्प श्रवस्य फल पाता है । चतुर्दिक वृद्धि होने लगी। शिष्य-शिष्याएं बढ़ीं, विद्या बढ़ी, बल बढ़ा, गौरव बढ़ा, यश बढ़ा। जो इष्ट था, वह सब-कुछ बढ़ा। उनका प्रयत्न फल लाने लगा। 'भिक्षुशब्दानुशासन' नामक संस्कृत महाव्याघरण बना। संस्कृत काव्य रचे जाने लगे। रचना के मनेक क्षेत्र खुल गए। उन्हें डिंगल काव्य बड़े प्रिय थे। चारण लांग म्राते ही रहते। कविता-पाठ चलता ही रहता । स्वयं कवि थे । पर ऐसा ही कोई विश्वास बैठ गया, विशेष नहीं लिखते । शिष्यों को प्रेरित करते । उत्साह बढाते । उनकी वाणी में कोई अपूर्व चमत्कार था। उनकी दृष्टि में कोई अथाह अमृत था। उनका स्पर्श पा एक बार तो मृत भी जी उठता ।

विकास और विरोध दोनों साथ-साथ चलते हैं। तेरापथ का यक बढ़ा, वैसे ही विरोध बढ़ा। जैसे विरोध बढ़ा, वैसे उनका सीम्यभाव बढ़ा। आचार्यथी नुलसी को विरोध को 'विनोद' मानने का मंत्र उन्हीं से तो मिला था। आचार्य-श्री ने एक बार कहा था—बाधाओं और विरोध से मेरे दिल में घबराहट नहीं होती। मुक्ते याद आती है मालवा की वात। गरुदेव रतलाम पधारे। मैं भी उनके साथ था। वहाँ लोगों ने तीव विरोध किया। आज से दस गुना, पर गुरुदेव तो स्रपने में ही लीन थे। एक, दो, तीन दिन बीत गए। बौथा दिन स्राया। एक पंडितजी स्राये। गुरुदेव ने पूछा—'यहीं के रहने वाले है?' पंडितजी ने कहा—'यहीं रहना हूं। यह सामने ही मेरा घर है।' गुरुदेव ने फिर पूछा—'प्राज ही आये हैं?' पंडितजी ने कहा—'प्राया नहीं हूं साना पड़ा है।' 'तो कैसे?' पंडितजी बोले—'स्रापका विरोध सापके स्राने में पहले ही गुरू हो चुका था। स्राप आये उस दिन से स्राज तक स्रापकी स्रोर ने प्रतिविरोध नहीं हुस्रा। मैंने सोचा स्राज स्राये हैं, भके-मांदे होंगे, शायद कल करेंगे। दूसरा दिन बीता कोई विरोध नहीं किया गया। मैंने सोचा—तैयारी करते होंगे, विरोध करने के लिए। तीसरे दिन भी कुछ नहीं हुस्रा। मैंने सोचा—'जहाँ एक व्यक्ति को 'कै' करते देख दूसरे व्यक्ति को उबाक स्राने लगता है वहां भ्राज चौथा दिन है फिर भी कुछ नहीं हुस्रा, श्रवश्य ही इनकी पाचन-शक्ति सुदृढ़ है। इनमें मारे विरोध को पचने की क्षमता है। मैं इस इक तरफे विरोध में खिचा-खिचा श्राया हूं'।

बीकानेर का विरोध भी बड़ा प्रबल था। साधुओं को प्रतिदिन पचासों गालियाँ सुनने को मिलती थी। फिर भी मौन, सर्वथा मौन। वह दिन मुभे याद है जब गुरुदेव ने सब साधुओं को एकवित कर शिक्षा के स्वर में कहा था—'मैं जानता हूँ तुम्हों गालियाँ सुनने को मिल रही है। मैं जानता हूँ तुम्होरे पर आक्रोश किया जा रहा है, व्यंग कमे जा रहे है, फिर भी तुम साधु हो, इसलिए तुम्हों मौन ही रहना चाहिए। तुम्हारा धर्म है सब मुनो, वापस एक भी मत पूछो। यही मेरी आजा है'।'

काल्गणी विरोध को सदा बोध-पाठ मानते रहे। श्राचार्यश्री तुलगी का मानस भी उमी मे प्रतिबिम्बिन है। कुछ लोग इस विरोध को ईश्वरीय ग्रुपा बतलाते है। श्राचार्यश्री तुलसी बाड़मेर में थे। वहाँ एक रेलवे गार्ड साया। वह बोला—'कुछ लोग श्रापकी सालोचना करते है, किन्तु में समभता हूं उन्होंने सभी साधना का पथ नहीं पाया। गृक्जी! स्नाप पर ईश्वर की बड़ी कृपा है।' 'सो कैसे?' 'श्रापके साथ कोई न कोई विरोध बना रहना है। बिना कृपा के ऐसा हो नहीं सकता।' निर्मित श्रीर निर्माता में जो श्रीय होना वाहिए, वह बहुत ही प्रगाढ़ हा। इसीलए श्राचार्यश्री तुलसी को समभते के लिए पूज्य गृक्देव को समभता श्रावश्यक है। मनुष्य की यह श्रसमर्थता है कि वह जितना होता है, उतना जान नहीं पाता। जितना जान पाता है, उतना कह नहीं पाता। इसीलिए एक महान् को मैंने शब्दों की लघु सीमा में बांध दिया। इस श्रमसर्थता का भागी केवल में ही नहीं हं, स्वयं श्राचार्यश्री भी है। उन्होंने श्रपनं निर्माता को स्वत्प रेखाशों में चित्रित किया है। मेरी श्रमसर्थना को श्रवश्य ही थोड़ा श्रावश्यत मिलगा। वे इस प्रकार है—''मै कई बार सोचता हूं, मेरे जीवन पर किन-किन का प्रभाव पड़ा। इस दिशा में सबसे पहले मुभे दीखते है पुज्य काल्गणी, उन्होंने मुभे सबसे स्विक प्रभावित किया है। दीक्षा के पहले दिन जो पहला श्राम मिला, उनसे लेकर उनके श्रन्तिम श्वास तक उनका श्रविरल प्रभाव मुभ पर पड़ता रहा। उनके जीवन की श्रविरल विशेषताएं श्राज भी मुभे प्रेरित कर रही है। पूज्य गृक्देव बहाचर्य के प्रतिक थे। उनका लिलत ललाट तथा दिव्य श्रात्म-वल इसका साक्षी था। नारी मात्र के प्रति उनमे मदा भातवन' की भावना मैंने साक्षात् देखी।

वे इसलिए महामानव थे कि उन्होंने जिसके मिर पर अपना वरद हाथ रख दिया, वह तब तक नहीं हटा जब तक वह उचित पथ से नहीं हटा, फिर भले ही उसके पास धन रहा या नहीं। और कुछ रहा या नहीं रहा। पवित्रता रही तो उनैका हाथ बना का बना हो रहा।

वे विचारों के स्वतन्त्र ग्रीर महान् तटस्थ थे। मंत्री मुनि उनके ग्रनन्य थे। पर कई विचार उनसे मेल नहीं खाते सो नहीं ही खाते। जिस पर भी कभी कोई मनोभेद नहीं हुग्रा। प्रेम ग्रथाह ही रहा। सचमुच वे एक ग्रसाधारण व्यक्ति थे।

विद्यानुराग उनके जैमा विरल ही मिलेगा। उन्होंने अथक प्रयास व विभिन्न उपायों से विद्या का जो स्रोत वहाया. उससे ब्राज हमारा समूचा संघ निष्णात है। एक दिन उन्होंने कहा था—''शिष्यों! तुम नही जानते, हम विद्यार्थी थे तब

१ प्रवचन डायरी १६४३, पू० ११-१२

२ डायरी ४ पू० ३४६

हमें विद्या प्राप्त करने में बड़ी किठनाई होती थी। कुछ ग्रल्पचेता लोग 'देवानांप्रिया एते' कहकर हमारा तिरस्कार कर जाते, पर ग्राज तुम्हारे सामने ऐसा करने का कोई साहस नहीं कर सकता। उन्हें ग्रपने श्रम की फल-परिणति पर सन्तोष था। उनका जीवन कितना सादा था, यह तो प्रत्यक्षदर्शी ही जान सकता है। रात-भर दो चिलमिलियों पर लेटे रहते। महान् ग्राचार्य होने पर खान-पान इतना साधारण कि देखने वाले पर वह प्रभाव डाले बिना नहीं रहता। श्रम में बड़ी निष्टा थी: वे बहुत बार कहते थे कि श्रम के ग्रमाव में ग्राज कल नए-नए रोग बढ़ रहे हैं। कोई साधु दुवंल होता तो वे उसे कहते दूर जंगल से भोली भर रेत लाग्रो, परिश्रम करो। शरीर का पसीना निकल जायेगा। ग्राधिक चिकना भोजन मत करो। इन दवाग्रों में क्या धरा है? वे स्वयं बहुत श्रम-शील थे। उनका स्वास्थ्य बहुत ही ग्रच्छा था। ग्रीष्य पर उनकी ग्रास्था जैसे थी ही नहीं। वे साधारण काष्टादि ग्रीष्य से ही काम चला लेते। ज्वर होने पर लघन कराते। चाय से तो पटती ही नहीं थी। उनके सामने दूसरे साधु चाय का नाम लेते ही सकुवाते थे।

श्राचार्यवर की इन विशेषताओं से मैं अत्यन्त प्रभावित हूँ। वे मेरे अणु-अणु में रम रही है। उन्होंने मुक्ते सदा अपनी करुणाभरी दृष्टि से सीचा। इतना सींचा कि उसका वर्णन करने के लिए मेरे पास पर्याप्त शब्द नहीं है। मैंने कुछ भूलें भी की होंगी, पर वे उनका परिमार्जन करते गए। मुक्ते कभी दूर नहीं किया। यह कहना कठिन है कि मैं उनकी कितनी विशेषताओं का आकलन कर पाया हूं। उनकी अनेक विशेषताओं का मेरे मन पर अमिट प्रभाव है। उन्हीं के प्रसाद की खुराक पाकर मेरा जीवन बना है। यह कहते हुए मुक्ते सार्त्विक गर्व का अनुभव होता है।"

## निर्माण लिये ऋाये हो

#### मुनिश्री बच्छराजजी

कलाकार ! इस घरती पर निर्माण लिये श्राये हो। गुढ़ कला जीवन की तुम पहिचान लिये श्राये हो।

लगता ऐसा बाहर से तुम, बोध रहे जीवन की, पर भौका भीतर तो पाया, खोल रहे बन्धन की, रश्मि-बन्ध से तुम जीवन के, स्थल को बाँध रहे हो, नियम-बन्ध से जग मानस की, जल की बाँध रहे हो,

> मुक्ति-दूत ! तुम बन्धन में परित्राण लिये ग्राये हो। कलाकार ! इस घरती पर निर्माण लिये ग्राये हो।

निष्किय सुन्दरता को कृति में, स्थान दिया कव तुमने, सिक्रय-जीवन-तत्त्वो पर ही, घ्यान दिया बस तुमने, ग्रा जाता सौन्दर्य स्वयं जब, गौरव भर देते हो, वन की कली-कली में मधुमय, सौरभ भर देते हो,

> चित्रकार ! निज चित्रों में तुम प्राण लिये भागे हो। कलाकार ! इस घरती पर निर्माण लिये भागे हो।

भौतिक युग में आज मनुज, मनुजत्व गमा बैठा है, उठ पाये खुद कैसे जब निज सत्व गमा बैठा है, शक्ति-पुञ्ज ! अब युग तेरा आलम्बन माँग रहा है, धरणी का कण-कण तेरा पद-चुम्बन माँग रहा है,

> विश्व-प्राण ! तुम संयम का माह्वान लिये ग्राये हो। कलाकार ! इस धरती पर निर्माण लिये ग्राये हो।

# मानवता का नया मसीहा

### भी एन० एम० भूनभूनवाला

श्राज मानवता संकट में है। भौतिक उत्थान की इस उपग्रह-बेला में भी व्यक्ति-व्यक्ति त्रस्त है। विज्ञान के प्रखर प्रकाश में भी संसार विषथ हो गया है। शीत-युद्ध के रंगमंच पर शस्त्रीकरण का उच्छृंखल ग्राभिनय काफी विक-राल हो उठा है। समर-देवता की भयानक जीभ विश्व को निगल जाने के लिए लपलपा रही है। तीन ग्ररब कण्ठों की आसं वाणी श्राज पल-पल चिकत होती हुई-सी निकल रही है। मानवता संकटापन्न है। शान्ति को खतरा है।

यह वैज्ञानिक युग का उपग्रह-काल है। बौद्धिकता की पराकाष्ठा है, मनुष्य के चरम विकास की भी पराकाष्टा है। मानव-निर्मित उपग्रहों ने ईश्वर-निर्मित ग्रहों को विजित करने की चेष्टा की है। श्रन्तरिक्ष का विराट रहस्य भाज यन्त्रों द्वारा मनुष्य की श्रीखों में उतारा जा रहा है। श्रून्यता का महावास मनुष्य के ज्ञान से चिह्नित हो रहा है। विज्ञान की इस महावेला में भी कहीं से अनभनाहट सुनाई पड़ रही है—मानवता मर रही है, शान्ति रो रही है।

#### मानवता और शान्ति की नीलामी

मनुष्य की सर्वतोमुखी भौतिक जागृति में सद्बुद्धि की रोशनी बुभती जा रही है। ज्ञान का मार्नण्ड भी सज्ञान से घिरा जा रहा है। प्रलय मचाने वाली शिक्त से लिज्जत होकर भी मनुष्य को चैन नहीं। अपने अस्त्र-शस्त्र से अपना ही गला घोंटने को उद्धत विज्ञान-पुरुष मूढ़ता का महान् नाटक खेल रहा है। मनुष्य की दोनों मुट्टियों में मानवता और शान्ति की मासूम बुलबुल छटपटा रही हैं। हर ओर से आवाज आ रही है—मानवता को बवाओ ! शान्ति को संभालो ! और मानवता तथा शान्ति की रक्षा के लिए चेहरे पर नकाब डालकर अनेक खलनायक विश्व-मंच पर अभिनय कर गये है। शीत-युद्ध के दुपट्टे में अणु और उद्जन बम छिपाये प्राची और प्रतीची के दो अभिनेता मैंत्री के लिए हाथ मिलाते है। शान्ति और मानवता की सहमी आँखों में थोड़ी खुशी भाँकती है; किन्तु अपने-अपने घर आकर फिर मानवता और शान्ति की नीलामी शुरू हो जाती है और दुवले-पतले मानवों का महासागर चिल्ला उठता है—मानवता को मत लूटो ! शान्ति को मत मारो ! वाण्डुग से लेकर बेलग्रेड तक बेचारे टूटे हुए लोग दौड़-धृप करते है। अस्ताव पर अस्ताव रखे जाते है। किन्तु अणु-परीक्षण का एक ही विस्फोट तटस्थता के अनुयायियों की घज्जी-धज्जी उड़ा डालता है।

प्राची और प्रतीची के ये दो सूत्रधार तीन अरब पुतलों के जीवन की सट्टेबाजी खुले आम खेलते हैं। कही इस दूत-क्रीड़ा का नक़ाब फाड़ न डाला जाये, इसलिए ये चिल्ला-चिल्लाकर बोलते हैं—शान्ति "सम्पूर्ण निरस्त्रीकरण"। किन्तु, कहाँ है वह प्रयास, जो सम्मान्य शान्ति का मार्ग प्रशस्त करे, जो सम्पूर्ण निरस्त्रीकरण की भावना को जगा सके ! मानवता की इस दर्दसरी का मूल कहाँ है, कौन जाने ?

#### नये चिकित्सक का ग्रन्वेषण

राजनीति के खिलाड़ी, चिकित्सा के नाम पर, कूटनीतिक सूचिका-रस-भरण अवश्य कर सकते है, किन्तु सही रोग-निदान और तदनुकूल चिकित्सा तो कोई अनुभवी चिकित्सक ही कर सकता है। कृष्ण, बुढ, ईसा, गांधी और मार्क्स की चिकित्सा बीमार मानवता का रोग पहचान सकती है, किन्तु आज उसी पढ़ित का नवीन रूप लेकर किसी नये मसीहा की आवश्यकता है। महामारी के रूप में रोग की परिणति होने से पहले चिकित्सक का अन्वेषण आवश्यक लगता है, नये चिकित्सक का।

प्राची और प्रतीची के दो माँभियों के हाथों में मानवता की भाग्य तरी उगमगाती हुई तट की श्रोर नहीं, मॅभ-धार की श्रोर जा रही है। इन कूटनीतिक माँभियों से, बीमार मानवता की तरी, तट की श्रोर नहीं जा सकती। मान-वता की सुरक्षा भौतिक प्रगति नहीं कर सकती। तो, मानवता की श्रात्तं पुकार पर प्राची श्रौर प्रतीची के गगन में दो नक्षत्र उदित हो हो गए श्रास्त्रर। हाँ, मानवता की सही चिकित्सा के लिए दो मसीहा प्राची श्रौर प्रतीची में श्राविर्भूत हुए—श्राचार्य तुलमी श्रौर बुकर्मन।

इन दोनों चिकित्सकों ने मानवता की दुखती हुई नसों पर उंगुली रखी। इनका निदान यही हुग्रा—मानवता के विनाश का एक ही कारण है: श्रनैतिकता; ग्रौर इसकी उपयुक्त चिकित्सा है नैतिक जागृति।

नैतिकता के ये दो उद्गाता श्रपने-श्रपने क्षितिज पर चमके, खूब चमके । प्रतीची का बुकमैन आरीरिक रूप से श्रमी-श्रभी श्रस्त हो चुका है; किन्तु, संसार की श्ररबों श्रात्माश्रों में उस महापुरुष का शंखनाद प्रतिष्विनित हो रहा है श्रीर श्ररबों मस्तक श्राज भी उसकी स्मृति में श्रद्धावनत हैं।

श्रीर श्राचार्यश्री तुलसी; प्राची नभ-तटी का यह मावंभीम तरुण भास्कर श्राज भी उद्दीप्त है। मानवता का यह नया मसीहा उन्हीं नक्षत्रों में से एक हैं, जिनमें बुढ़, महावीर, कबीर, मूर, तुलसी, नानक, चैतन्य, ग्ररिवन्द, गांधी, विवेकानन्द श्रीर रवीन्द्र का श्रक्षत प्रकाश श्राज भी विश्व को परमानन्द का लक्ष्य-बिन्दु बतला रहा है। इस नये मसीहा ने निदान किया—मानवता क्यों पीड़ित है. शान्ति क्यों भयभीत है ? क्यों व्यक्ति विनाश की श्रोर वेग मे दौड़ा जा रहा है ? इन सबों का एक ही निदान बतलाया है इसने—श्रनीतिकता श्रीर इसमे उत्पन्न श्रचारित्रिकता; भौतिकता की उच्छृ खन प्रगति श्रीर इससे उत्पन्न श्रनाध्यात्मिकता, श्रमंयम श्रीर इसमे उत्पन्न महत्त्वाकांक्षा का व्यामोह तथा उद्वेग।

चिकित्सा के लिए तीन औषियाँ बतलाई, इस नैतिक भिष्ण शिरोमणि ने; नैतिकता, अध्यात्म और संयम । अहिमा, सत्य, अपरिश्रह, अस्तेय और ब्रह्मचर्य का सरल और सुपाच्य पंचामृत 'अणुव्रत' के नाम से पीड़ित विष्व के गले में डालते हुए इस मानवता के जय-घोषक ने उद्घोषणा की—अणुव्रत-आन्दोलन एक नैतिक कान्ति हैं । इसका उद्देश्य है, मनुष्य का आध्यात्मिक सिचन । आध्यात्मिक प्रगति मनुष्य की सर्वोच्च प्रगति ही नहीं, सर्वांगीण प्रगति है । इस प्रगति का मूल कार्य है—चित्र को सुदृढ़ स्थापना तथा मैत्री द्वारा शान्ति की रक्षा । सभी प्रकार के स्वास्थ्य-लाभ के लिए संयम की अत्यधिक आवश्यकता है । इतना ही नहीं, संयम को उसने जीवन-साधना बतलाया और नैतिकता को जीवन कला ।

उसने संयम से रंचमात्र भी विलगाव को जीवन के लिए श्रभिशाप कहा श्रीर <mark>श्रादशं</mark> उद्घोषित किया<del> —संयम :</del> **कल जीवनम्** ।

#### युद्ध-वेवता का तीसरा चरण

इस यान्त्रिक युग में मानवता और शान्ति का शत्रु युद्ध है। बीसवीं शताब्दी में दो दशाब्दियों का अन्तर देकर दो विश्व-युद्ध हो चुके हैं। अयंकर नर-संहार हुए हैं। सैनिक, असैनिक तथा अबोध शिशु भी युद्ध-देवता की विकराल भट्टी में भोंक दिये गए। हीरोशिमा और नागासाकी विश्व-युद्ध के द्वितीय परिच्छेद के वे अमर आकर्षण हैं, जहाँ मानवता की छाती एटम बम के प्रहारों में चाक-चाक करदी गई और जापान के ये दो सुनहने पंख पल-भर में जला कर खाक कर दिये गये।

ग्राज भी वहीं स्थिति है, वही रंग। युद्ध-देवता का तीसरा चरण उठ चुका है। मानवता की गर्दन पूर्व-पित्वम के दो 'क' की उंगलियों के बीच में दबी पड़ी है। ग्रण-परीक्षण, सामयिक चुनौतियाँ, ग्रन्तिरक्ष-प्रतियोगिता, शस्त्रीकरण ग्रादि शीत-युद्ध को पराकाष्ठा की ग्रोर ले जा रहे हैं। राष्ट्र-संघ-जैसा संघटन भी शीत-युद्ध की उष्ण-परिणति को रोक रखने में ग्रसमर्थ सिद्ध हो रहा है। संसार के सारे राजनीतिज्ञ मिलते हैं, शिखर-सम्मेलन करते हैं, गरम-गरम भाषण दे जाते हैं, किन्तु, ये दो 'क' ग्रपनी एक ही घुड़की से मानवता की रही-सही ग्राशा को धूल में मिला देते हैं।

निष्कर्षतः, यही सिद्ध होता है कि वैज्ञानिक प्रगति से अस्त्रीकरण को बल मिलता है भीर मैद्धान्तिक नेतृत्व या क्षेत्र-विस्तार की भावना मनुष्य को रण-भ्रचना के लिए उद्धत करती है। मानवता तथा शान्ति की रक्षा के लिए एक ही उपाय है—निरस्त्रीकरण श्रीर वह सम्भव है, व्यक्ति व्यक्ति के नैतिकीकरण से।

#### युद्ध का कारण

मानवता के इस नये मसीहा श्राचायं तुलसी ने युद्ध का एक ही कारण बतलाया है—प्रनैतिकता के प्रमाद में श्रानियन्त्रित दुराचारिता की महत्त्वाकांक्षा, उन्माद श्रीर व्यामोह में पड़ कर, एक-दूसरे की मीमा से टकरा जाना चाहती है तथा मसार में ज्ञान के साथ-साथ मूदता भी विकसित हुई है। यदि जान्ति की सुरक्षा करनी है, तो प्रत्येक व्यक्ति को पहले शान्ति की श्रन्तमुंखी श्रचंना करनी होगी। यदि मानवता की रक्षा करनी है तो सभी मानवों को सच्चे ग्रथं में मानव बनना होगा, श्रासुरी प्रकृतियों का परित्याग करना होगा। निरस्त्रीकरण में भी सुन्दर समस्या का समाधान हृदय-परिवर्तन द्वारा, पारस्परिक सद्भावना तथा मैत्री से हो सकता है। निरस्त्रीकरण मामयिक भावुकता द्वारा भले ही युद्ध की श्राञका को टाल दे; किन्तु युद्ध की भावना का परित्याग तो पारस्परिक मैत्री द्वारा ही हो सकता है। सद्भावना विहीन निरस्त्रीकरण हाथ-पैर से भी युद्ध करा सकता है, जबकि सद्भावना श्रणशिक्त को पकड़े हुए हाथों को भी एक-दूसरे के उत्कर्ष में सहयोगी बना कर मानवता की रक्षा कर सकती है।

दूसरी श्रोर मानवता के इस प्रहरी ने मनुष्य-जीवन की सारी अनैतिक गतिविधियों का अध्ययन किया और मानवता की सही पीड़ा पहचानी। अप्रामाणिकता, मिलावट, अकारण हिमा, मामान्य असत्य, चारित्रिक निर्वलता, मंग्रह एवं काम-पिपामा आदि को बढ़ावा देने वाली छोटी-छोटी अनैतिकताओं को भी खोज निकाला। इतना ही नहीं, इस मसीहा ने तो मनुष्य को बौन कहे, जानवरों तक की पीड़ा का भी अनुमान किया। अणुबतों के छोटे-छोटे बम हमारे जीवन में अणु-परीक्षण करती हुई अनैतिकता को बड़े ही स्नेहपूर्ण ढग से नैतिकता में परिवर्तन कर देते है। इस मसीहा के शब्द-कोष में कहीं भी 'विनाश' का शब्द नहीं है।

### श्राधुनिक बुद्ध

यह तरुण तपस्यी समूची दुःखी मानवता को पुकार-पुकार कर एकत्र कर रहा है। इसकी पुकार पर मनुष्यों का विशाल समूह दौड़ रहा है श्रीर इस श्राधुनिक बुद्ध के चारों श्रीर ललचाई दृष्टि से खड़ा हो रहा है। इसकी पुकार सागर की प्रत्येक लहर पर छहर रही है, पर्वतों की बर्फीली चोटियों पर मचल रही है।

भौतिक प्रवाह में त्रस्त मनुष्यों के बीच उनका यह नया आराष्य बड़े ही प्यार में कहता है, "मुक्ते भीख दो, भाइयों! मुक्ते अपने एक-एक दोष की भीख दो।"

तुम व्यक्ति को मिटा नहीं सकते ! तुम्हें समाज बन जाना है—एक बूँद् और बूँदों के अगणित अस्तित्वों का संग्रह-सागर। वह एक बूँद भी अमर है, किन्तु सिन्धु बन कर।

श्रण श्रीर विराट के मध्र सामंजस्य का यह महान् प्रणेता श्राज लोगों में श्रानन्द बाँट रहा है।

श्रणु-परीक्षण का काल अभी भूत नहीं हो सका । सहारा की रेत के बाद अब उसके कूर चरण वायुमण्डल और भू-गर्भ में विचरण कर रहे हैं। मानवता का परीक्ष विनाश प्रारम्भ है; चाहे युद्ध द्वारा प्रत्यक्ष विनाश अभी दूर हो। किन्तु अणुत्रतों की आध्यात्मिक ग्रणु-शक्तियों का परीक्षण अब समाप्त हो चुका है। वे जीवन के एक-एक दीप सिद्ध हो चुके हैं।

श्राज मानवता के इस मसीहा को प्रकाश फैलाते हुए पच्चीस वर्ष पूर्ण हुए। इसकी धवल-जयन्ती मनाई जा रही है। में साफ कह दूं—यह श्राचायंश्री तुलसी की धवल-जयन्ती नहीं; मानवता के भविष्य का रजत-समारोह है। गगन-मण्डल के जय-घोष, श्राचार्य तुलसी के लिए नहीं, श्राहिमा श्रीर सन्य की विजय का शंखनाद है। श्राचार्यश्री तुलसी को देख कर संसार को फिर एक बार विश्वास हो चला है—"मानवता श्रमर है, शान्ति ग्रामिट है, सत्य की विजय दोती है, श्राहिसा परम धर्म है श्रीर मैत्री तथा सद्भावना का श्राधार ही सच्चा निरस्त्रीकरण है।"

# युगधर्म-उन्नायक आचार्यश्री तुलसी

डा॰ ज्योतिप्रसाद जैन, एम॰ ए॰, एल-एल॰ बी॰, पी-एच० डी॰

श्रमण-परस्परा में साधु और श्रावक का सयोग सिण-कंचण संयोग है। साधु की शोभा श्रावक से है और श्रावक की साधु में। बिना श्रावक हुए कोई साधु नहीं बन सकता। दूसरी और श्रावक को धर्म-साधन में, प्रपने नैतिक एवं प्रात्मिक विकास में साधु में ही निरन्तर प्रेरणा एवं प्रा-प्रदर्शन मिलता है। साधु को नेकर ही श्रावक का प्रधिकांश व्यवहार श्रीर धर्म-साधन चलता है। साधुमों के समीप धर्मोपदेश श्रवण करने से ही गृहस्य की श्रावक संज्ञा सार्थक होती है। दोनों ही एक-दूसरे के पूरक हैं, एक-दूसरे के लिए श्रीनवार्य हैं तथा श्रमण-संघ के श्रविभाज्य ग्रंग हैं। भगवान महावीर ने साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका रूप जिस चतुर्विध श्रमण-मघ का संगठन किया था, उसके ये चारों ही ग्रंग परस्पर में एक-दूसरे से सर्वथा स्वतन्त्र होते हुए भी एक दूसरे के पूरक एवं धर्म-साधन में सहयोगी होते हैं। गृहस्थ (श्रावक-श्राविका) जीवन में धर्म के साध-साथ ग्रंथ ग्रीर काम पुरुषार्थों के साधन की भी मुख्यता होती है, जबिक त्यागी (माधु-साध्वी) का जीवन धर्म और मोक्ष पुरुषार्थ हय-साधन के लिए होता है। ग्रस्नु, धर्म-पुरुषार्थ ही साधु ग्रीर गृहस्थ के सम्बन्धों की प्रधान कड़ी है। साधुवर्ग की सेवा-भिक्त, करना गृहस्थ का मुख्य दैनिक कर्तव्य है; तो गृहस्थों को धर्मी पदेश देना, उनका पथ-प्रदर्शन करना, उनमें धर्मभाव की वृद्धि करना ग्रीर नैतिकता का सचार करना साधुवर्ग के धर्म का मध्य ग्रंग है।

यो तो श्रमण-परम्परा के सभी साध उपर्यक्त प्रकार से प्रवर्तन करते हैं, किन्तु वर्तमान में व्वेताम्बर तेरापधी माधु-सघ भ्रपने नवम संघाचार्य श्री तुलसी गणी के नेतृत्व में जिस संगठन, व्यवस्था, उत्साह एवं लगन के माथ, श्रमण-माचार-विचारों की प्रभावना कर रहा है, वह ब्लाघनीय है । भारत की स्वाधीनता-प्राप्ति के दो वर्ष के भीतर ही जिस मुभ-वृभ के साथ बाचार्यथी तुलमीगणी ने देश में नैतिकता की वृद्धि के लिए अपना प्रण्वत-श्रान्दोलन चलाया, उसकी प्रत्येक देश-प्रेमी एव मानवता-प्रेमी व्यक्ति प्रशंसा करेगा। गत बारह वर्षों में इस अणुवत-आन्दोलन ने कुछ-त-कुछ प्रगृति की ही है; किन्तू भ्रपने उद्देश्य में वह कितना क्या सफल हुआ, यह कहना अभी कठिन है। ऐसे नीतिक आन्दोलनो का प्रभाव धीरे-धीरे और देर से होता है। वह तो एक बानावरण का निर्माण-मात्र कर देते हैं और जीवन के मुल्यों को नैति-कता के सिद्धान्तों पर भाधारित करने में प्रेरणा देते हैं । यही ऐसे भ्रान्दोलनों की सार्थकता है । श्रमणाचार्य तुलसी के सघ के सैकडों साथ-साध्वयों द्वारा ग्रपने-ग्रपने सम्पर्क में ग्राने वाले भनगिनत गहस्य स्त्री-पुरुषों का नीतक स्तर उठाने के लिए किये जाने वाले सतत प्रयत्न भवश्य ही युग की एक वड़ी भाँग की पूर्ति करने में सहायक होंगे। भव से लगभग दो सौ वर्ष पूर्व घ्राचार्य भीखणजी ने कुछ विवेकी धावकों की प्रेरणा से ही अपने सम्प्रदाय में एक सुधार-कान्ति की, जिसके फलस्वरूप प्रस्तत क्षेताम्बर तेरापथी सम्प्रदाय का प्रादुर्भाव हुआ। यह संघ तब से शनै:-शनै विकसित हांता एव बन पकड़ता आ रहा है। किन्तु इस सम्प्रदाय की सीमित क्षमताओं का व्यापक एव लोक-हितकारी उद्देश्यों की सिद्धि के लिए जितना भरपुर एवं सुफल उपयोग इसके वर्तमान श्राचार्य ने किया है और कर रहे हैं, वैसा किसी पूर्ववर्ती ग्राचार्य ने नहीं किया। देश की नैतिकता में वृद्धि और श्रमण-संस्कृति की प्रभावना के लिए किये गए सत्प्रभत्नों के लिए यगधर्म-उन्नायक ब्राचार्य तलसी गणी को उनके ब्राचार्यस्य के अवल-समारोह के अवसर पर जितना भी साध्वाद दिया जाये, थोड़ा है।

•

# संघीय प्रावारणा की दिशा में

# मुनिश्री सुमेरमलजी 'सुदर्शन'

जिस प्रकार आजकल डायरी का स्थान साहित्य जगन में महत्त्व पूर्ण बन गया है, उसी प्रकार पत्रों ने भी साहित्य क्षेत्र में अपना एक विशिष्ट स्थान प्राप्त कर लिया है । इसीलिए झाजकल लोग वडे साहित्यकारों व महापुरुषों के पत्र बडे . चाव से पहते है।

पत्र स्वाभाविकता से भरा रहता है, अतः उसमें अपनी विशेषता होती है। वह दूर बैठे व्यक्ति को मौहार्द के धार्ग मे पिरोए रखता है। उसमें लेखक का निश्छल हृदय और उनके दूसरों के प्रति विचार बडी स्पष्टता से निकलते है, जिससे पाठक पर भ्रनायास ही भ्रसर पडे बिना नहीं रहना।

तेरापंथ के श्राचार्यों में भी पत्र देने की परम्परा रही है, परन्तु उनकी संख्या बहुत कम है। क्योंकि जैन साध गृहस्थों के साथ व डाक द्वारा पत्र व्यवहार नहीं करते । इस कारण पत्र बहुत कम दिये जाते हैं । जो ग्रत्यावश्यंक पत्र संघ के साध-साध्वियों को दिये जाते हैं, वे उसी स्थिति में दिये जाते है जबकि कोई सुघ का साध-साध्वी वहाँ तक पहुँचा सके ।

ब्राचार्य भिक्षु ने ब्रपने संघ की माध्वियों की, ब्रन्शासन के प्रश्न की लेकर पत्र दिये हैं, जिसमें हमें उस समय के संघ की स्थित का कुछ इतिहास मिलता है। तृतीय श्राचार्य श्रीमद् रायचन्दजी ने अपने भावी उत्तराधिकारी को पत्र दिया है जिसमें उनके (जयाचार्य के) प्रति बड़े मार्मिक उदगार प्रगट हुए है। इस प्रकार आचार्यों ने ग्रपने संघ के साध-माध्वियों को विभिन्न परिस्थितियों में पत्र दिये है जो आज हमारे लिए इतिहास के अंग बन गये हैं।

तरापंथ साध समाज का विस्तार जितना ग्राचार्यश्री तुलसी के नेतृत्व में हुग्रा, उतना पिछले ग्राचार्यों के समय नहीं हुन्ना। इसलिए उनके दायित्वों का विस्तार भी हो गया। त्रनेक ब्रान्तरिक कार्य उनको पत्रों द्वारा करने पडते है। इसलिए ग्रन्य ग्राचार्यों की अपेक्षा ग्राचार्यश्री के पत्रों की संख्या ग्रधिक है। उनके पत्रों में तेरापंथ की ग्रान्तरिक स्थिति का चित्रण पाठकों को मिलेगा। इसके अलावा साध-साध्वियों के प्रति उनकी वत्सलता का सजीव भाव। इसमे भी महत्त्वपूर्ण बात है उनके हृदय की मावाज कि वे किस प्रकार माज के जमाने में संघ को फला-फुला देखना चाहते हैं। जनका अदम्य उत्साह, कार्य करने की अजस्र धुन, विरोधों को सहने की अट्ट शक्ति, देशाटन करने की प्रवल भावना, कर्तव्य-परायणता आदि अनेक हृदय को छूने वाली घटनाएं हैं।

श्राचार्यश्री को पदारूढ़ हुए पच्चीस वर्ष सम्पन्न हो गये हैं। इस दीर्घ श्रवधि में उन्होंने साध-साध्वियों को श्रनेक पत्र दिये हैं। उनमें सर्व प्रथम सती छोगांजी को दिया हुआ पत्र है, जो उन्होंने पदासीन होते हुए ही लिखा था।

सती छोगांजी प्रष्टम ब्राचार्य काल्गणी की संसार पक्षीय माता थीं। उसने अपने पुत्र कालू के साथ ही दीक्षा ली थी। बढ़ावस्था के कारण उनमे चला नहीं जाता इसलिए वे कई वर्षों से वीदासर में स्थिरवास किये हुए थी। काल-गणी का स्वर्गवास सं० १९६३ भाद्रव शुक्ला ६ को हुआ। भाद्रव शुक्ला ६ को बाईस वर्ष की अवस्था में ब्राचार्यश्री तुलसी पदासीन हुए। चातुर्मास के बाद साध्वियों के एक सिंघाड़े के साथ छोगांजी को ग्राचार्यश्री ने एक पत्र लिखकर भेजा।

ॐ नमः !

छोगाँजी सुँ घणी-घणी सुखसाता बंचै । थे चित्त में घणी-घणी समाधि राखज्यो और अठै सुँ सत्याँ चार्नाजी श्रादी

१ भाचार्यश्री ने भविकांश पत्र मारवाशो में ही लिखे थे।

ठाणा ५ बठै भेज्या छै सो वह सुक्साता का समाचार सारा ही कहसी और वड़ा म्हाराज साहिब महा भाग्यवान प्रवल प्रतापी देवलोक पधार गया सो निजोरी बात है। काल आगै कोई को जोर चालै नहीं तीर्थंकर देव नै पिण काल तो छोड़े नहीं इम विचार करी नै चित्त मैं समाधि विशेष राम्वणी चाही जै। बाकी जिम कालूगणीराज के आप माता छा तिम म्हाँरे पिण माता तुन्य छो जिण सूं कोई बात को विचार करी ज्यो मती और म्हाँरा पिण दर्शन देवण रा भाव वेगा ही है। मेवाड़ देश मैं चोमामा दोय हुवा तो पिण गामाँ मैं विशेष विचरणो हुवो निहं तिण सूं अठै विचरवा की अबार जरूरत है तो पिण बठै दर्शन देणा जरूरी समक्तकर द्रव्य, क्षेत्र काल-भाव देखकर दर्शन वेगा ही देवारा भाव है। पिण दूर को काम है। आणो बैंत सूँ होसी। तिण सूँ पहली सत्याँन मेल्या छै सो जाणीज्यो। और तपस्या शरीर की शक्ति देख-देख कर करीज्यो और चित्त समाधि में घणो राखज्यो। सं० १६६३ मृगशिर विद २ सोमवार।

मेवाड़ में तथा मारवाड़ में विहरमाण साथु सितयाँ सूँ यथायोग बंचै। अवकी बार अठीनै नहीं बोलाया तिण सूँ साधु सत्यों के दिल में खासी आइ हुवेला। थारी कांड बात म्हारे भी दिल में आवे है। पर जियाँ अवसर हुवें वियाँ ही करणो पड़े। बाकी बठे रहकर भी शासन को काम करो हो आही म्हारी हो मेवा है। अवकी बार साधु-सत्याँ म्हारी दृष्टि देखकर सावंजितक प्रचार में केंड जग्याँ आछी मिहनत करी, इं बात की मने प्रसन्नता है। सारों ने ही चाहिजें कि आपणी हद में रहता हुवां धर्म को व्यापक प्रचार हुवें। धर्म एक जाति विशेष में बंध्यो नहीं रह सके है। मेवाड़ सावंजितक प्रचार को आछी क्षेत्र है सो पूरी मिहनत हुजी चाहिजें। आवका ने भी पूरी चेष्टा करनी चाहिजें। सारा ही संत सत्याँ आछी तरह मूँ आनन्द में रहीज्यो। अठे घणो आनन्द छै। शेष समाचार शिष्य मिठालाल केवेला। वि० संवत् २००५ फा० व० १० सरदारशहर।

तुलसी गणपित नवमाचार्य

सौराष्ट्र में विहरमाण चन्दनमुनि सूँ बंदना तथा सुखमाता बंचे। सौराष्ट्र में आप प्राछो उपकार कर रह्या हो, प्रसन्तता की बात है। इधर में आपको स्वास्थ्य कुछ कमजोर सुष्यो तथा रात में नींद कम आवे इसी सुणी तिण सूं कुछ विचार हुयो। देशान्तर में विचरणे वाला साधुवों को शरीर ठीक रेणे सूं म्हारे भी दिल में तसल्ती रेवे। काम भी आछो हुवे। वाकी आपके दारीर ने वो देश नहीं माने तो आप कहवा दीज्यो में विचार लेवाँगा। शिष्य पूनम. शिष्य उगम आदि सर्व संता मूं भी सुखसाता बंचे। सारा ही संत धणी चित्त समाधि मूं रहीज्यो। तन मन सूं घणे राजी हेत मूं काठियावाड़ में मिहनत करज्यो, उपकार हो तो लखावे है। सारा ही संता की मिहनत पर म्हारो चित्त प्रसन्त है। अठै मूं कानमलजी स्वामी तथा खेंपाजी, गुलाबाँजी ने भेज्या है। ग्रठै की मुखसाता का सारा ही समाचार कहसी। इधर में म्हारे त्रिवापिक देशाटन से शासन को अच्छो उद्योत हुयो है सो जाणसी। सं० २००० पो० व० = भादरा।

नुलसी गणपति नवमाचार्य

जिल्ह सहोदर चम्पालालजी स्वामी, वदनांजी तथा लाडांजी सूँ यथायोग्य बंदनां मुखसाता बंचै। ग्रपरंच म्है श्राज पौणी दस वज्यां श्रासरे घणी मुखसाता सहीत फूलासर पहुँच्या सवारे ग्राठं सूं विहार कर के ग्रागे जावण रा भाव है श्रीर वदनांजी के भवे ठीक ही हुवेला। तरतर कमजोरी मिटकर शक्ति ग्रावेला। ग्राप तीनां के इंयां लार रेहणें को सायत पहिलो ही मोको है, घणो ग्राखो संजोग मिल्यो है। माता नै संजम को स्हाज देवणो ग्रो एक पुत्र-पुत्री के वास्ते उऋण होने को मोको है। मनै पिण इंबात को घणो हर्ष है। ग्रबं वदनोंजी के जल्दी ठीक हुणे मूँ विहार करके ग्राइज्यो। घणी जल्दी करीज्यो मती, कारण रहणो तो हो हो गयो। घणी-घणी चित्त समाधि राखीज्यो। वदनोंजी के समाधि हुणें मूँ सघलों के चित्त मैं घणी समाधि हुवै। ग्रीर सर्व मंत सत्यां मूँ यथायोग्य वंदनों मुखसाता बचे। सं० २००२ फा० वदि १२ फूलासर।

तुलसी गणपति

मंत्री मुनि तेरापंथ संघ के सर्व सम्मान्य व्यक्ति थे। उन्होंने पाँच धाचायों का जीवनकाल देखा, वे सभी के कृपापात्र रहे। ग्राचार्यंश्री तुलसी ने इनको मंत्री की उपाधि से विभूषित किया। यह तेरापंथ संघ में पहला ग्रवसर था कि किसी मुनि को मंत्री की उपाधि मिली हो। वे ग्रपने जीवन में सदा ही श्राचार्यों के साथ रहे। पहली बार शारीरिक ग्रस्वस्थता के कारण उनको बीदासर में रहना पड़ा। तब लाडनूँ में ग्राचार्यंश्री ने उनको पहला पत्र संस्कृत में लिखकर दिया था, उसका हिन्दी ग्रनुवाद इस प्रकार है:

मंत्री मुने ! पुन:-पुन: बंदना और बार-बार मुख पुच्छा। इन समाचारों को सुनकर मुक्ते बड़ा खेद हुन्ना कि आपका शरीर पहले की तरह अस्वस्थ ही है। खेद! जिस प्रकार आपका शरीर जरा जीर्ण हो गया, क्या इम दुनिया की औषधियाँ भी जीर्ण हो गई? क्या सभी प्रकार की चिकित्साएं संदिग्ध हो गई? जिससे आपका शरीर अभी भी व्याधि-प्रस्त हो रहा है। मैं मानता हूँ कि आपका शरीर जितना रोग से पीड़ित नहीं है उतना मुक्तसे दूर रहने के कारण है। ऐसा मैं विश्वास करता हूँ। यह मेरी कल्पना सही है। किन्तु यह शरीर तो समय आने पर मुक्तमें मिलने पर स्वयमेव स्वस्थ हो जायेगा, ऐसा लगता है।

श्राप इस श्रन्तराय काल में शान्त चित्त होकर रहें। क्योंकि यह मैं निश्चित मानता हूँ कि "श्राप मेरे से कोई दूर नहीं हैं ग्रौर न मैं श्रापसे दूर हूँ।" इन मेरे वाक्यों को बार-बार स्मरण रखते हुए श्रपने श्रन्त करण को शान्त रखे। श्रपना मिलन शीध ही होने की सम्भावना है।

यहाँ समस्त संघ पूर्णतया कुशल है वैसे ही वहाँ होगा। सं० २००५ पीप कृष्णा ४. लाडनूँ।

तुलसी गणपति नवमाचार्य



### तुम मानव!

### म्निश्री श्रीचन्दजी 'कमल'

तुम मानव हो देवत्व तुम्हारे चरणों में लुटता है लोग तुम्हारे में देवत्व की कल्पना कर रहे हैं पर तुम मानव हो श्रौर मानव ही रहना चाहते हो

देवत्व विलासिता का कृपक है और मानव पुरुषार्थ का । पुरुषार्थ में तुम्हारा विज्वास है, इसीलिए तुम मानव रहना चाहते हो ।

# इस युग के प्रथम व्यक्ति

श्री गिल्लूमल बजाज भ्रष्यक्ष, भ्रणुवत समिति, कानपुर

यह कोई शादवत तथ्य नहीं कि भौतिकता अनैतिकता का आश्रय लेकर ही चले, किन्तु जब मानव दृष्टि-पथ में निःश्रेयस् हो ही नहीं और वह उसकी आवश्यकता भी स्वीकार न करना चाहे तो उस उपेक्षित आध्यात्मिकता में भौतिकता को अनैतिकता की भूमि पर खड़े होने से रोक देने की शक्तित ही कहाँ से आयेगी। यह एक नियम-सा है कि भौतिक उत्थान आध्यात्मिकता को उपेक्षा की दृष्टि से देखता है और इसीलिए यह स्वीकार किया जाता है कि भौतिकता अनै-तिकता की भूमि पर खड़ी होती है।

जब हम भ्रपने राष्ट्र पर दृष्टि डालते हैं भीर यह देखते हैं कि हमें भयंकर भनैतिकता के वातावरण में से होकर चलना पड़ रहा है, तब हमें आक्चर्य होता है भीर हम यह सोचने के लिए बाध्य हो जाते है कि यह सम्भव कैसे हुआ; क्योंकि हमें स्वतन्त्र करने का श्रेय सत्य, श्रहिंसा और प्रेम पर ग्राधारित हमारे नैतिक आन्दोलन को है। स्वतन्त्र हम हुए नैतिकता के बल पर और स्वतन्त्रना-जन्य सुलोपभोग के लिए हम आश्रय ने रहे हैं—अनैतिकता का; यह आश्चर्य ही तो है!

ऐसा विपरीत परिणाम क्यों ? श्रीर इस विपरीतावस्था में होने वाले राष्ट्रोत्थान का प्रयास क्या हमारी वास्त-विक मुख-समृद्धि की सृष्टि कर सकेगा; यह भी एक प्रदन है श्रीर जिसे हम राष्ट्र-निर्माण की संज्ञा दे रहे है क्या सच-मुच में इस प्रकार का राष्ट्र-निर्माण वस्तुतः हमारे लिए लाभप्रद है; इस पर भी हमें सोचना होगा।

# राष्ट्र निर्माण ग्रौर नैतिकता

राष्ट्र किसी विशेष स्थल के अन्योन्याश्रित निवासियों के उस समृह को कहते हैं जो अपने मदस्यों की सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनैतिक विचारधाराओं को एक साथ, एक ही दिया में अवाहित करता है और जो सम्बन्धित सदस्यों के वैयक्तिक स्वार्थों को सामृहिक स्वार्थ का पूरक बना देता है। इसीलिए राष्ट्र-निर्माण का वास्तविक अर्थ है, राष्ट्र के नाग-रिकों के चरित्र को उस साँचे में ढालना, जो सम्बन्धित समुदाय के स्वार्थ की पूर्ति करने वाला हो। यदि ऐसा प्रयास नहीं हो रहा तो नामपट्ट चाहे जो लगा दिया जाये, किन्तु वास्तविकता तो यह है कि उस प्रयास को राष्ट्र-निर्माण का नाम देना, राष्ट्र को धोका देना है।

निःसन्देह बड़े-बड़े कारखानों की स्थापना हो रही है, बाँध और नहरं श्रस्तित्व में भा रहे हैं, बिजली का प्रसार हो रहा है; किन्तु क्या इसीसे राष्ट्र-निर्माण हो जायेगा ? क्या इसीसे हमारे देश में भीर दूध की नदियाँ बहुने लगेंगी ? सत्य तो यह है कि राष्ट्र-निर्माण की दिशा में सबसे पहले नागरिकों के चरित्र-निर्माण की भावश्यकता है।

प्राप्य एवं संग्रह में एक अन्तर है, यह नागरिकों को मालूम होना चाहिए। अधिकार का ही ज्ञान पर्याप्त नहीं है, नागरिक को कर्तव्य का ज्ञान भी होना चाहिए। यदि ऐसा नहीं होता तो राष्ट्र की चाहे जो भी इमारत खड़ी की जाये, वह स्थायी नहीं होती। जिस राष्ट्र का नागरिक अपने कर्तव्य और अधिकार, अपने प्राप्य भौर देय के अन्तर को ईमान-दारी से स्वीकार नहीं करता, वह राष्ट्र जियेगा कैसे ?

राष्ट्रीयता का प्राण है, राष्ट्र के प्रति निष्ठा । राष्ट्र-निष्ठा का अर्थ है, उसके निवासियों के कल्याण की भावना ।

राष्ट्रहित-साधन नागरिकों की सुल-समृद्धि के लिए किये जाने वाले प्रयास का नाम है। हम वर्तमान काल को राष्ट्र-निर्माणकाल की संज्ञा देते हैं; धतः हमारे लिए यह धावक्यक है कि हम राष्ट्र-निर्माणात्मक धपने कार्यों पर एक दृष्टि डाल लें और यह देख लें कि हम कितने पानी में हैं। इस सम्बन्ध में हमें दो बातों की विवेचना करनी होगी। एक तो यह कि क्या हम सचमुच राष्ट्र-निर्माण कर रहे हैं धीर दूसरी यह कि क्या हमारा प्रयास स्थायी परिणाम का जनक होगा।

#### नैतिकता व ग्रनैतिकता का सम्बन्ध

हमारी पंचवर्षीय योजनाएं निःसन्देह देश के झार्थिक स्तर को उठाने वाली हैं; किन्तु हम यह कैसे समभें कि योजनाओं द्वारा राष्ट्र का उच्चीकृत स्तर देश में सुख-शान्ति की सृष्टि करेगा और यदि सुख-शान्ति के हमें दर्शन भी हुए तो इसका क्या भरोसा कि हम उसे पकड़ कर रख सकेंगे।

समृद्ध नागरिक का नैतिक स्तर उच्च ही होगा, यह कहना स्वयं अपने को अस में डालना है। वास्तविकता तो यह है कि नैतिकता-अनैतिकता का सम्बन्ध धन अथवा दरिद्रता से बिल्कुल नहीं। यदि अनैतिकता का प्रमार अवकड़ नहीं हुआ तो वह बढ़ेगी और उसका बढ़ना क्या होगा, कहाँ तक होगा, इसका अनुमान नहीं लगाया जा सकता। हीन चरित्र के नागरिक से राष्ट्रोत्थान की आशा करना बुद्धिमानी की बात नहीं; क्योंकि वह अपने स्वार्थ के लिए कुछ भी कर सकता है। राष्ट्र को बेच सकता है, राष्ट्र की इज्जत को गिरवी रख सकता है।

राष्ट्र-निर्माणार्थं स्रावश्यक है कि उसमें नैतिक बल उत्पन्न किया जाये । राष्ट्रोत्यान तभी सम्भव होगा, जब नागरिक का नैतिक उत्यान होगा, जब नागरिक स्रपना कर्तव्य समभता होगा श्रीर उसका पालन करता होगा । जब नागरिक प्रपने कर्तव्यों प्रौर दूसरे के स्रिविकारों की रक्षा को स्रपना वर्म मानता है, तभी राष्ट्र का वास्तविक उत्थान होता है स्रीर वह उत्थान उत्कर्षोन्मृत रहता है।

गिरती हुई नैतिकता को रकने की सुविधा मिलता कठिन हो जाता है। दूर न जाकर हमे अपने पर ही एक दृष्टि डालती होगी। यह एक तथ्य है कि स्वतन्त्र होने के पश्चात् आर्थिक दृष्टि से देश कुछ ऊपर उठा है, किन्तु साथ ही यह एक विचित्र सी बात हुई कि हमारा राष्ट्रीय चरित्र हीन ही होता चला गया है। आखिर ऐसा क्यों ?

हम ऊपर कह चुके हैं कि हम नैतिकतापूर्ण राजनैतिक झान्दोलन की सीढ़ी पर चढ़ कर स्वतन्त्रता के मन्दिर तक पहुँच सके है। तब हमारा चरित्र आज हीन क्यों है? कारण केवल इतना है कि स्वतन्त्र होने के पब्चात् स्वतन्त्रता को स्थायित्व प्रदान करने के लिए उसकी नैतिकता का सिहासन देना हम आवश्यक नहीं मान सके। हमने सुख-समृद्धि के लिए तो वारतिक प्रयास जारी रखा, किन्तु मार्ग-भूष्ट हो गये; अतः फल विपरीत हुआ। सुख-समृद्धि का युग तो चलता ही रहा, किन्तु नैतिकता का युग समाप्त हो गया। परिणाम यह हुआ कि सुख-समृद्धि में न्यूनता नहीं आई, किन्तु शक्ति नष्ट होना प्रारम्भ हो गई। हमको अपनी-अपनी पड़ गई। हमने कर्तव्य का पल्ला तो छोड़ दिया, किन्तु अधिकारो की माँग करने में एक-दूसरे को पीछे धकेल कर आगे बढ़ने के प्रयास में जुट गए। विवेक को चालाकी ने पराजित कर दिया। कर्तव्य-भावना को अवसरवादिता ने रौंद डाला।

इस वातावरण में हम राष्ट्र-निर्माण कर रहे हैं। यह हम जानते है कि राष्ट्र-निर्माताओं की कर्तव्य-भावना सन्देह से परे है; किन्तु जिन ईटो से भवन खड़ा हो रहा है, वे कच्ची है, घटिया किस्म की हैं। तब पक्का और मजबून भवन खड़ा कैंमे होगा ?

राष्ट्रिपता महात्मा गांधी नैतिकता की अपरिहार्यता को ठीक-ठीक समभते थे, अतः उसको उन्होंने अपने आन्दोलन का आधार बनाये रखा। महात्माजी के पश्चात् उनके सिद्धान्त को यथावत् समभने वाली और उनको कार्यान्त्रित करने वाली देश में केवल दो विभूतियाँ रह गईं: एक तो आचार्य विनोबा भावे और दूसरे आचार्य तृलसी। आचार्य तृलसी की विशेषता यह है कि उन्होंने देश में नैतिकता की स्थापना को ही अपने जीवन का लक्ष्य घोषत किया और अपनी घोषणा को सत्य एवं फलवती सिद्ध करने के लिए उन्होंने अणुवत-आन्दोलन का प्रवर्तन कया।

### ग्रण्वती के काम्य

श्रणुव्रत-भ्रान्दोलन चरित्र-निर्माण का भ्रान्दोलन है, राष्ट्र-निर्माण का भ्रान्दोलन है, मानव-मात्र के कल्याण-साधन का भ्रान्दोलन है। इस भ्रान्दोलन को देश, काल भ्रोर पात्र की सीमाश्रों से परिवेष्टित नहीं किया जा सकता। यह मनुष्यमात्र के कल्याण का मार्ग-निर्माण करने वाला प्रयास है भ्रोर कहा तो यह भी जा सकता है कि प्राणी-मात्र के सुख भ्रोर शान्ति श्रणुव्रती के काम्य है।

श्चाचार्य तुलसी जैन श्वेताम्बर तेरापंथ के निर्देशक, नियामक व नवम श्राचार्य हैं और उनका स्थान अपने अनु-यायियों में इतना उच्च है कि शायद ही किसी अन्य सम्प्रदाय के आचार्य का आसन उसकी समता कर सके, किन्तु फिर भी अणुबन-श्चान्दोलन पर साम्प्रदायिकता की किसी प्रकार की छाप नहीं । अणुबन-श्चान्दोलन का क्षेत्र सभी मनुष्यों का स्वागत करता है। वे चाहे किसी भी देश, समाज, जाति, वर्ण अथवा सम्प्रदाय के हों। अणुबन-श्चान्दोलन साम्प्र-दायिक मान्यनाओं पर न तो आघात करता है और न उन्हें बढ़ावा देता है। किन्तु मानव-धर्म को प्रमुखता देने का प्रयास करता है और उसको मान्यना दिलवाने का प्रयत्न करना ही अणुबन-प्रान्दोलन का एकमात्र उद्देश्य है।

श्राचार्यश्री तुलसी तेरापंथ के नवम श्राचार्य हैं; श्रतः जो तेरापंथ की मान्यताश्रों से परिचित तहीं श्रीर जिसकी श्राचार्यश्री के दर्शन नहीं मिले, वह यही समभेगा कि इतने सामान्य व्यक्ति का वैभव स्पृह्गीय होगा, उनकी मुविधाएं श्रमीम होंगी। किन्तु बात इसके सर्वथा विपरीत है। उनके परिवार नहीं, घर नहीं, सम्पत्ति नहीं, मठ नहीं, कोई स्थायी निवास नहीं, किसी सवारी पर चलते नहीं, किसी प्रकार की कोई सामग्री पास रखते नहीं; व्वेत परिधान, कुछ श्रावश्यक पुस्तकं श्रीर काष्ट्रपात्र को छोड़कर। भिक्षान्त पर जीवन-यापन श्रीर जीवन का लक्ष्य मनुष्यमात्र का कल्याण। श्रातिध्य-सरकार स्वीकार करना उनकी परम्परा के विपरीत है। श्राचार्यत्व के श्रतिरिक्त किसी पद को स्वीकार करना उनकी धार्मिक मान्यताश्रों के श्रनकुल नहीं। वे इनने निःस्पृह श्रीर इतने निष्काम हैं।

यदि ऐसे शुद्ध चरित्र का व्यक्ति हमसे शुद्ध चरित्र की आकांक्षा करता है, तो वह स्वाभाविक है और उसका प्रभाव पडना हमारे ऊपर श्रनिवायं भी है। अण्वती से अणुवत-आन्दोलन के प्रवर्तक न तो सम्मान चाहते हैं और न बदले में किसी कामना की पूर्ति की आकांक्षा ही रखते हैं। उनकी तो हमसे केवल इतनी ही माँग है कि हम अपने चरित्र को निष्कलंक रखें और वास्तविक मनुष्य बनने का प्रयास करें।

श्राचार्यश्री श्रमण-संस्कृति के वर्तमान तपोधन प्रतिनिधि हैं । उनकी प्रवृत्ति जन्मना वैराग्यमूलक है । श्राचार्यश्री का व्यक्तित्व इतना महान् सिढ हुन्ना कि वह तेरापंथ के घेरे मे न समा सका श्रीर न्नाज श्रणुवत-ग्रान्दोलन-प्रवर्तक के रूप मे हम उन्हें युग-स्रष्टा मनीषियों में प्रमुख स्थान श्रधिकृत किये पा रहे हैं ।

श्राघ्यात्मिक वातावरण की सृष्टि ऐसे ही गृहत्यागी महात्माओं के द्वारा होती आई है। भगवान् बुद्ध, महाबीर स्वामी, शंकराचार्य, ईसा इत्यादि जितने भी आघ्यात्मिकता का सन्देश देने ताले विश्व में हुए है, सब इसी श्रेणी के थे। उनकी निःस्पृहता, उनकी श्रिकचनता ही में वह शक्ति थी कि मनुष्य को उनकी बात सुनने के लिए वाध्य होना पड़ा है। भाचार्य तुलसी उसी परम्परा के हैं। इसीलिए अणुवत-आन्दोलन की सफलता असंदिग्ध है और सबसे बड़ी बात तो यह है कि मनुष्य को आज इसी सन्देश की सबसे अधिक आवश्यकता है।

स्वर्ण तभी शुद्ध होता है, जब वह ग्राग्न में तथा लिया जाता है। जितना जल जाता है, वह विकार होता है ग्रीर जो शेष रहता है, वही सोना है। गुणगान ही यथेष्ट नहीं होता, गुणों को कसौटी पर कसना भी जरूरी होता है। ग्रणुव्रत-ग्रान्दोलन पर हम जितना विश्वास करते है, कहीं ऐसा तो नही कि वह ग्रावश्यकता से ग्रधिक हो।

सबसे पहले तो हमें यह देख लेना भावश्यक है कि भ्रान्दोलन-प्रवर्तक श्रपने श्रान्दोलन के द्वारा किस उद्देश्य-प्राप्ति के इच्छुक हैं। कहीं ऐसा तो नहीं कि अपने वैयक्तिक, पारिवारिक श्रथवा भ्रन्य किसी संकुचित स्वार्थ सिद्धि के लिए ग्रान्दोलन केवल सीढ़ी का काम दे रहा हो। यदि ऐसी परिस्थिति श्रान्दोलन को जन्म देने वाली होती है तो कर्णधार कर्णधार न सिद्ध होकर श्रपने ग्रनुयायियों को बीच धार में इवाने वाला होता है। वह श्रपने ग्रनुयायियों की निष्ठा का दुरुपयोग करता है भीर जब वह देखता है कि उसकी भ्रान्तरिक लिप्सा-पूर्ति की क्षमता श्रनुयायियों की तपस्या ने उसमें उत्पन्न कर दी है तो वह उन्हें ठीक उसी तरह पीखे छोड़ जाता है, जिस तरह किसी भवन की सीढ़ियों को एक-एक कर छोड़ता हुआ कोई व्यक्ति ऊपर चढ़ता है।

धाचार्यश्री की धोर जब हमारी दृष्टि जाती है तो हम उन्हें संसार-त्यागी के रूप में पाते हैं। जब वे श्रपना स्थायी निवास-स्थान नहीं बनाते, किसी पद को स्वीकार नहीं करते, घन को छूने भी नहीं, श्रपने पास कुछ भौतिक ऐश्वयं रखते ही नहीं; तब उनकी कोई ऐसी भौतिक कामना हो ही कैंसे सकती है जिसे वे श्रान्दोलन के बल पर पूरी करना चाहते हीं। हाँ, उनकी कामना है श्रीर वह यही है कि मानव श्राध्यात्मिक बने। उसका चरित्र शुद्ध हो धौर उसका कल्याण हो। यह श्रवस्था ऐसी है जो हमें आध्वस्त करती है, विश्वास दिलाती है और भयमुक्त करती है।

इस युग में राष्ट्र के प्रत्येक झंग में अनैतिकता घर कर गई है जिसे सभी देखते हैं, अनुभव करते हैं; किन्तु झाचार्यंश्री तुलसी इस युग के प्रथम व्यक्ति हैं जिन्होंने उन बुराइयों को दूर करने का निश्चय किया है भ्रीर वह अणुव्रत-झान्दोलन के रूप में क्रियान्वित हुमा।

यह भ्रान्दोलन भ्रपने ढंग का एकाकी है; क्योंकि इसमें न तो उपासना-पढ़ित पर जोर दिया जाता है भ्रौर न किसी प्रकार का कोई बचन ही लिया जाता है। वह तो केवल भ्रात्म-शुद्धि की माँग करता है।

नारियों से, विद्यार्थियों से, सरकारी कर्मचारियों से, व्यापारियों से और सभी अन्य नागरिकों से आन्दोलन की माँग उनकी परिस्थितियों के अनुसार है। आचार्यश्री तुलसी चाहते हैं कि राष्ट्र का प्रत्येक वर्ग आदर्श हो, उच्च हो, कर्नव्यपालक हो। यदि यह हो गया तो देश का कल्याण होगा, इसमें सन्देह नही।



# नहीं भक्त भी, किन्तु विभक्त भी

मुनिश्री मानमलजी (बीदासर)

जन-जागृति के भ्रमर प्रणेता है तेरा शतशः श्रभिनन्दन, नही भक्त भी, किन्तु विभक्त भी करते हैं तेरा ग्रभिनन्दन।

भूम रहे थे जग के चेतन जिन भौतिक श्वामों को पाने, उलभे थे मूने भावों में जग की चापों को अपनाने, ध्रा तुमने तब घोर अमा में जीवन की ज्योति दे डाली, मानव डग भरता है अब तो पाने क्षितिज पार की लाली, बीहड़ पथ सुषमा से पूरित, हुआ अ।ज सब टूटे बन्धन, जन-जागृति के अमर प्रणेता है तेरा शतशः अभिनन्दन।

ग्रणु से हो ग्रारम्भ पूर्ण तक है सबको ही बढ़ते जाना, ग्रमीलिए तो ग्रणुत्रतों का सुना रहा तू गीत सुहाना, पुलकित हो नैतिकता युग-युग मानवता की हो ग्रगवानी, जीवन मधुरिम घड़ियाँ ले, गढ़ जाये ग्रपनी मधुर कहानी, तुम तो स्थितप्रज्ञ तुम्हारे लिए एक है पावक-चन्दन, जन-जागृति के ग्रमर प्रणेता है तेरा शतशः ग्रभिनन्दन।

# व्यक्तित्व-दर्शन

### श्री नथमल कठौतिया उपमन्त्री, जैन कोताम्बर तेरापंची महासभा, कलकत्ता

मूर्तिकार की कलाकृति में सजावता एवं लालित्य तभी आता है जबिक उसे उपयुक्त शिला-खण्ड प्राप्त हो। माली की कला-दक्षता का सही प्रस्फुटन तभी हो सकता है जबिक उसे उवंर भूमि उपलब्ध हो, साहित्यकार की लेखनी में रस-संचार तभी हो पाता है, जब कि उसे भावनानुकूल विषय सुलभ हो। यद्यपि मूर्ति की सद्य:सजीवता एवं सौन्दर्यन् मुघड़ता का श्रेय मूर्तिकार को, वाटिका की सुरम्य रमणीयता का श्रेय माली को एवं साहित्य की रस स्निग्ध आनन्दमयी कृति का श्रेय साहित्यकार को मिलता है; यह स्वाभाविक है। परन्तु कलाकृति के पृष्ठाधार को परिष्कृत व परिमार्जित करने वाले उस मूक सूत्रधार का एवं कलाकृति व कलाभिव्यवित के चरम-विकास में अन्य सभी सहयोगी माध्यमों का भी अपना विशेष महत्त्व है, किन्तु उनका मूल्यांकन व उनके प्रति वास्तविक आभार-प्रदर्शन तो वह कलाकार ही कर पाना है, जिसको इन गयके सहयोग एवं बल पर वांछित सफलता का श्रेय मिला हो।

सर्वसाधारण जन तो उन मूक व मुखर सभी उपादानों के प्रति श्रद्धा-प्रदर्शन का केवल प्रयास मात्र ही कर पाते हैं। प्रस्तुत तेख भी एक ऐसा ही प्रयास है। श्राचार्यश्री तुलसी वर्तमान युग की एक श्रनुपम कृति हैं और उसके कला-कार हैं महामानव श्रष्टमाचार्य श्री कालूगणीराज: जिनकी अनुपम व अनोखी सूफ्त-बूफ, कर्मठ कर्तव्य-निष्ठा व बहुमुखी विकास प्रतिभा के फलस्वरूप विश्व को एक अमून्य रत्न, एक जवलन्त प्रतिभा प्राप्त हुई। जिसके पुनीत प्रकाश में अमित विश्व अपना पथ-प्रदर्शन पाता है। गौरव एवं गरिमामयी इस भेट के लिए विश्व इस मूर्धन्य कलाकार का चिर ऋणी रहेगा, इसमें सन्देह नही। वर्चस्त्री कलाकार श्री कानूगणी के उपर्युतन अप्रतिम कर्नृत्व में उनके सेवाभावी शिष्य मुनिश्री चम्पालालजी (भाईजी महाराज) का भी उल्लेखनीय योगदान हुग्रा। वस्तुतः ऐसा सौभाग्य किसी विरल्ले जन को ही मिल पाता है। मुनिश्री श्राचार्यप्रवर के वरद हस्त हैं, इस हेतु श्राचार्यश्री के कम-विकास में उनका पूरा-पूरा योगदान रहा है, जो स्वाभाविक है।

मुनिश्री की दीक्षा स्वर्गीय आचार्यश्री कालूगणीराज के करकमलों द्वारा चूक वि० सं० १६ ६१ में सम्पत्त हुई थी। उनकी अपनी दीक्षा हो जाने के लगभग हेढ़ वर्ष पद्मान् आपका ध्यान अपने अनुज धाचार्यश्री नुलसी की विशेष-ताओं व विलक्षणताओं की और आकर्षित हुआ। अनुज के अंक-विशेषों में उन्हें महापुरुषोचित लक्षण दृष्टि-गोचर हुए। इस प्रकार आकृत-विशेष में प्रच्छान किसी महान् व्यक्तित्व का आभास पाकर मुनिश्री ने मन-ही-मन अनुज के लिए सर्वोत्तम आत्मार्थी मार्ग की कल्पना संयोजित की और इस हेतु प्रयासित हुए। समय-समय पर मुनिश्री उन्हें प्रेमपूर्वक सरल शब्दों में भिन्त-भिन्न वालकोचित उपायों एवं उपदेशात्मक चित्रों द्वारा जीवन की सही दिशा का निर्देशन करने तथा उन्हें सांसारिकता से विरक्त कर आध्यात्मकता की और प्रेरित करते रहते। इस तरह कुछ तो मुनिश्री के अविरल प्रयास से एवं कुछ अपने संयोजित संस्कारों से बालक तुलसी की निर्मल आत्मा में ग्यारह वर्ष की आयु में ही एक दिन वैराग्य का अंकुर प्रस्फुटित हुआ एवं आज के आचार्यप्रवर वालक तुलसी अपने भविष्य की ओर आकर्षित हुए। प्रयासित फल-प्राप्ति की सफलता पर मुनिश्री के हर्ष का पारावार न रहा, पर साथ-ही-साथ उन्होंने अब उसके विकास प्रकाश की आवश्यकता भी अनुभव की और उन्होंने विनम्न निवेदन के साथ यह प्रक्त अपने परमगुरु स्वर्गीय आचार्यश्री कालूगणीराज के समक्ष रखा तथा इस सहज अजित सफलता को उनके चरणों में सम्प्रित कर अनुज के लिए शुभाशीर्वाद की कामना की।

# आचार्यश्री तुलसी के जीवन-प्रसंग

### मुनिश्री पुष्पराजजी

श्राचार्यथी तुलसी के जीवन को जिस किसी कोण में देखा जाये उसमें विविधताओं का संगम मिलता है। उनका बचपन, उनका मुनिजीवन व उनका याचार्यकाल जन-जन को प्रनिवंचनीय प्रेरणा देने वाला है। प्रम्तुत उपक्रम में उनके बाल्य-जीवन व कुछ श्राचार्यकाल की घटनाओं का संकलन किया गया है, जिससे उनके जीवन का थोड़े में ही सर्वागीण श्रध्ययन किया जा सके। उनके बाल्य-जीवन की घटनाएं उनके अपने शब्दों मे—संस्मरणों के रूप में दी गई है श्रीर शाचार्यकाल की घटनाओं को एक दर्शक के शब्दों में।

### होनहार विरवान के होत चीकने पात

प्रातःकाल भाभी ने हाथ पर पैसे रखते हुए ब्राज्ञा के स्वर में कहा—सोती! लोहे के कीले ले ब्राब्रों। उस समय मेरी ब्रायु सात वर्ष के करीब होगी। मैंने नेमीचन्दजी कोठारी की दुकान से कीले ले लिए। उन्होंने पैसे नहीं लिए, चूँकि वे मेरे मामा होते थे। मैं घर की ब्रोर चला ब्राया। भाभी के हाथ में पैसे ब्रौर कीले दोनो रख दिये। भाभी ने साञ्चर्य कहा—यह कैसे ? पैसे भी ब्रौर कीले भी ? मैंने सहज भाव से कहा, मामा जो ठहरे।

"तुलसी ! पैसे यदि तू रख लेता, तो मुक्ते क्या पता लगता ?" भाभी ने कहा ।

''पता नहीं लगता, पर मेरी भ्रात्मा तो मुक्ते कचोटती ?'' मैंने बीच मे ही बात काटते हुए कहा ।

"तुम्हारे हृदय में पैसे चुराने का चिन्तन तो हुआ होगा ?" भाभी ने मुस्कराते हुए कहा ।

''मुभे अप्रामाणिकता से अन्यन्त घृणा है भाभी !'' मैने स्वर को तेज करते हुए कहा ।

भाभी के मुख से सहज निकल पड़ा, ''यह कोई होनहार बालक प्रतीत होता है।'' 'होनहार विरवान के होत चीकने पात'।

### इनके पीछे कौन ?

मेरे बचपन की एक घटना है। उस समय मैं केवल सात वर्ष का था। माताजी मुक्ते नहला रही थी। मैंने उस समय प्रका किया—माँ! मुक्ते पूजीमहाराज बहुत प्यारे लगते हैं।

मां--बेटा ! वे बड़े पुष्यवान् पुरुष हैं।

बेटा---मा ! उनके चरण फूल जैसे बड़े ही कोमल हैं और वे पैदल चलते है, तब इनके पैरों में कॉट नहीं लगते क्या ?

मां---पुण्यवानों के पग-पग निधान होते हैं, बेटा !

बेटा-मां ! इनके पीछे पूजी महाराज कौन होगे ?

मो---(लाल श्राँखे दिखाकर डाँटते हुए) मूर्ख कहीं का, हमारे पूजीमहाराज युग-युगान्तर तक श्रमर रहे । मौकी लाल श्रौंखों ने मेरे हृदय में उठते हुए प्रश्नों को मौन में परिणत कर दिया ।

### सजा तो माफ हो गई, पर

एक बार की घटना है, मैं जंगल (पंचमी) से पुन: लौटते समय बालू के टीले से नीचे उतर रहा था कि इतने में

गुरुदेव ने फरमाया, तुलसी ! नीचे हिंग्याली है। मैंने सहसा उत्तर दे दिया, मैं घ्यान रख लूँगा। पर चला उसी मार्ग पर। धीरे-धीरे व सावधानीपूर्वक चलने पर भी धूली कण हरियाली पर ग्रा गये। गुरुदेव ने मीठा उलाहना देते हुए कहा, 'देख, रेत हरियाली पर ग्रा गई न ? मैने कहा था न ? 'दो परठण दण्ड'।'' मेरा मुँह छोटा-सा हो गया। स्थान पर ग्राने के परचात् मैंने विनम्न शब्दों में बृटि की क्षमा चाही। समुद्र के समान गम्भीर गुरुदेव ने सजा माफ कर दी। सजा तो माफ हो गई, पर वह शिक्षा माफ नहीं हई। ग्राज भी स्मृति को सरस बना रही है।

#### तारे गिन के ब्राब्धे

रात्रि का समय था। तारे भिलमिल-भिलमिल कर घरती पर भाँक रहे थे। उस समय मेरी प्रवस्था सत्रह वर्ष की होगी। नींद ग्रधिक ग्राना स्वाभाविक ही था। कालूगणी शिवराजजी स्वामी को ग्रादेश देते, जाग्रो तुलसी को उठा लाग्रो। वे मुभे उठा जाते। मैं कभी-कभी नींद में ही, हाँ ग्राता हूँ, कहकर पुनः सो जाता। ग्राप फिर कहते—तुलसी ग्राया नहीं। जाग्रो, इस बार उमे पाथ लेकर ग्राग्रो। मैं साथ-साथ चला ग्राना। फिर भी स्वाध्याय, चिन्तन करते-करते मुभे नींद ग्रा ही जाती। ग्राप उम समय बड़े ही मीठे शब्दों में मनोवैज्ञानिक ढंग से नींद उड़ाने के लिए कहते—तुलसी, जाग्रो ग्राकाश के तारे गिन कर ग्राग्रो, तारे कितने हैं? सजग होने पर पुनः ज्ञानामृत पिलाते। इस प्रकार गुरुदेव ने प्रशिक्षण देकर मेरे जैसे बिन्दु को सिन्धु बना दिया। गुरु हों तो वस्तुनः ऐसे ही हों।

# टूटे हृदयों का मिलन

६ दिसम्बर, १६६१ को ऋहिसा प्रतिष्ठायां तरसन्तिषौ बैर त्यागः पातंजल योग सूत्र के इस वाक्य को प्रत्यक्ष होते हुए देखा जब कि धाचार्यश्री तुलसी के एक स्वल्प कालीन प्रयास से इक्कीस वर्ष से पिता और पुत्र के टूटे हृदय का मधुर मिलन हुग्रा। घटना इस प्रकार थी। कानोडवासी श्री देवीलालजी बाबेल ग्रीर उनके पुत्र वकील श्री राजमलजी बाबेल में कुछ लेन-देन व बटवारे को लेकर इक्कीस वर्ष से बोल-चाल,खान-पान, मेल-जोल ग्रादि पारस्परिक व्यवहार सर्वथा बन्द थे। इस बीच श्रनेकों ग्रवांच्छनीय घटनाएं न चाहते हुए भी हो गई। सहसा संयोगवण ग्राचार्य प्रवर का उनके घर पर पदार्पण हुग्रा। ग्राचार्यश्री उस परिस्थित ने परिचित थे, ग्रतः दोनों को परस्पर वैमनस्य का त्याग कर शान्ति से जीवन व्यतीत करने का सद्पदेश दिया। उस उपदेश से दोनों का हृदय बदल गया। एक-दूसरे ने परस्पर क्षमा याचना की। पुत्र ने पिता के चरण छुए और पिता ने पुत्र को हृदय से लगाया। जनता ने यह स्पष्ट देखा कि जिस समस्या को मुलक्काने के लिए पंच, सर्पंच, न्यायाधीश ग्रमफल रहे, वह समस्या क्षण में ही सुलक्क गई।

### निश्चल मन और झात्म-वर्शन

पाँच निदयों के संगम स्थल पंजाब की भूमि को नापते हुए म्राचार्यश्री तुलसी ने एक दिन भाखड़ा-नांगल से निकलने वाली नहर पर विश्वाम किया। शिष्य मंडली के साथ, जिसमें मैं भी उपस्थित था, म्राचार्यश्री तुलसी शान्त सुधारम की गीतिका का मधुर गायन करने में तल्लीन हो गए। नयन खुलते ही नहर के चलते हुए जल-प्रवाह की म्रोर ध्यान गया। चलते हुए जल मे श्रपना प्रतिविम्ब दिखाई नहीं देता था। तत्थण म्रात्म-दर्शन की गहन चर्चा में निमज्जन करते हुए ग्राचार्यप्रवर ने कहा--जिस प्रकार चलते हुए भैल जल-प्रवाह में प्रपने तन का प्रतिबिम्ब नहीं दीखता, ठीक उसी प्रकार ही चिलत मैंने मन में भी श्रात्म-दर्शन नहीं होता। स्वरूप-दर्शन तो निश्चल ग्रीर निर्मल मन से ही होता है।

### न हमारे जेब है और न मठ

म्रादिवासियों के बीच भ्राचार्यप्रवर प्रवचन कर चुके थे। प्रवचन के बाद एक पन्द्रह वर्षीय भीन बालक म्राया ग्रीर कहने लगा—दारू-मांस का परित्याग करवा दीजिए। ग्राचार्यश्री ने परित्याग करवा दिये। उसने बन्दन किया ग्रीर चुपचाप एक चवन्नी म्राचार्यश्री की पलथी पर रख कर एक कोने में बैठ गया। म्राचार्यश्री भपनी साहित्य-साधना में तल्लीन थे। थोड़ी देर बाद जब उस चवन्नी की ग्रोर ध्यान गया तो पूछा—यह किसने रख दी। पास मे बैठे भाइयों ने कहा—दर्शन करते समय किसी की जेब से गिर गई होगी।

श्राचार्यश्री—यह गिरी हुई तो नहीं लगती, किसी-न-किसी ने भेंट रूप में रखी है, ऐसा लगता है। तत्रस्थ लोगों से पूछा गया तो सकुचाता हुग्रा वह बालक जिसका, नाम था 'उदा' सामने भ्राया श्रीर कहने लगा—महाराज ! यह तो इस सेवक की तुच्छ भेंट है।

श्राचार्यश्री धरे भाई ! हम इस भेंट को कहाँ रखेगे । (ध्रपने वस्त्रों की घोर इंगित करते हुए) हमारे न तो कही जेब है घौर न कोई धलमारी और न मठ है ।

#### बरगद में नया मोड़

सङ्क के किनारे पर एक बरगद का पेड़ था। नीचे भुकी हुई जीर्ण जटाएं उसकी पुरानता की कथा स्पष्ट कह रही थीं, किन्तु उसके हरे-भरे और कोमल पत्ते इनने श्राकर्षक और नयनाभिराम थे कि श्राचार्यश्री के चरण वहीं पर रुक गये। ऊपर-नीचे देखा श्रीर पद यात्री मेवाड़ी भाइयों से कहने लगे—देखी श्रापने बरगद की चनुरता? कितना समयज्ञ है यह? वैशाख मास से पूर्व ही पुराने पत्तों को बिदाई दे दी और श्रव नया मोड लेकर नया वेष धारण किये पथिकों को मोह रहा है। इस बरगद में प्रेरणा प्राप्त कर श्राप भी श्रपने जीवन को देखिये। पुरानता के मोह में कहीं पिछड़ तो नहीं रहे हैं?

#### सुदामा की भेट

१५ जून, १६६० को साचार्यश्री अंटालिया से पुनः रिछेड पधार रहे थे। रास्ते में एक 'उदोजी' नामक वयोवृद्ध किसान नौजवान की तरह हृदय में खुशियों लिये झाचार्यश्री के पैरों में लोट गया। उसके हाथ में गुड़ की डली (हला) थी। उसने झाचार्यश्री के चरणों में उस गड़ को भेट कर दिया। उस भेट को अस्वीकार करने हुए झाचार्यश्री ने गुड़ सम्बन्धी झनेक प्रश्न उससे पूछे। परन्तु उस वृद्ध पटेल का हृदय विशुद्ध ग्रेम एवं भिक्त-विभोर था। आँखे झानन्द के आँमुओं से इबडवाई प्रतीत हो रही थीं। उस समय भगवान महावीर और चन्दन बाला की घटना रह-रहकर हमें याद द्या रही थीं। उस समय भगवान महावीर और चन्दन बाला की घटना रह-रहकर हमें याद द्या रही थीं। उदोजी बोल नहीं सके। भिक्त ने कुछ करने के लिए बाध्य कर दिया। वृद्ध ने झाचार्यश्री का जोर लगा कर हाथ पकड़ लिया। एड मुट्टी में रखा और बन्द कर दिया। उधर से एक साथ में जयघोष मुनाई दिया 'आज के झानन्द की जय हो।' मैंने पीछ में जिज्ञासा भाव से पूछा—पटेल वासा! यह क्या किया? उसने हाजिर जवाबी को लज्जित करने हुए कहा—यह तो गरीब मुदासा के चावल की कृष्ण —तुलसीराम जी महाराज की भेंट थी।

# हनुमान का मूल्य

श्राचार्यश्री प्रातः शौचार्य गाँव वाहर जा रहे थे। पाश्वं स्थित मन्दिर पर लगे लाउड स्पीकर मे श्रावाज श्राई— 'भगवान् हनुमानजी री कीमत छब्बीस रुपया।' कुछ कदम श्रागे चले कि फिर मुनाई दिया—'भगवान् हनुमानजी री कीमत मत्ताईस रुपया, तीस रुपया, श्रड्तीम रुपया बधे सो पावं।'

श्राचार्यश्री ने श्रपने प्रवचन के बीच उक्त घटना का उल्लेख करते हुए कहा—कितना श्रन्थेर है। जिन देवता श्रीर भगवान् को सर्व शिवतमान मानते हैं, उन्हें भी बोलियाँ बोल कर बेचा जाता है। विवाह श्रीर स्नान करवाया जाता है। यथा भगवान् भी मेले हो जाते हे? भगवान् की कितनी विद्यम्बना कर रहे है, उनके ही भक्त। कवीर ने ठीक ही कहा है:

कबीर कुबृद्धि सनाद की घट-घट माहि बड़ी। किस-किस को समभाइये, कुए भाग पड़ी।।

# अनुपम व्यक्तित्व

# श्री फतहचन्द शर्मा 'ग्राराधक' मंत्री, दिल्ली राज्य हिन्दी पत्रकार संध

श्राचार्यं तुलसी किसी सीमित क्षेत्र के श्राचार्यं श्रथवा साधुमात्र नहीं हैं और न वे तेरापथ के केवल विशिष्ट मुनि ही रह गये हैं। अपने पच्चीस वर्षों की श्राचार्यं काल की सतत साधना से उनका स्थान उनना व्यापक बन गया है कि श्रव उनके सामने किसी एक छोटी इकाई-मात्र का कल्याण करने की कामना ही बहुत पीछे रह गई है। उनकी साधना ने मानव सात्र का हिन-चित्तन करना अपने जीवन का पुनीत उद्देश्य बना लिया है। जीवन में अनेक वर्ग के सायु-महात्माओं को मुक्ते देखने का अवसर मिला है। किन्तु आचार्य तुलसी जैसा विलक्षण व्यक्तित्व मैं बहुत कम देख पाया। बहुत वर्ष पहले की बात है, जब आचार्य तुलसी पहलों बार दिल्ली पधारे। दिल्ली के लिए आचार्यजी बिल्कुल नये थे, किन्तु उन्होंने दिल्ली की नकाचौध के सामने अपना समर्पण न करके दिल्लीवासियों को कुछ मोचने और करने पर मजबूर किया। इसी भूमि पर उन्होंने अणुवत जैसे देशव्यापी आन्दोलन की सृष्टि की। अणुवत दिल्ली ही से अणु का रूप लेकर देश व्यापी बना। धाचार्यजी भारत की राजधानी में कई बार अपने पदार्पण से इस क्षेत्र के नागरिकों को एक विशेष प्रेरणा समय-समय पर देते रहे है। कुछ उद्बोधों से समाज के सभी वर्गों में चैतन्य आया है। अनेक बार आचार्यजी के दिल्ली और दूसरे स्थानो पर दर्शन करने का सीभाग्य प्राप्त कर चुका हूँ। जब हजारों लोगों की भीड में उन्हें घिरा देखना हूं, यह अम अपने आप हृदय में निकल जाता है कि वे किसी सम्प्रदाय विशेष के आचार्य है।

जिस देश में मेरी जन्म-भूमि है, उस प्रदेश में ब्राचार्यंजी का जब ब्रागमन हुआ तब उन्हें अणुव्रत-ब्रान्दोलन के संचालन में केवल उनके सम्प्रदाय का अथवा जैन समाज का ही महयोग नहीं मिला, श्रीपतु ईसाई और मुमलमानी का भी श्रान्दोलन को सिक्त्य सहयोग मिला और उन सबने उसमे प्रेरणा भी पाई। श्राचार्यंजी ने उत्तरप्रदेश में ऐसा जादू कर डाला कि बहुत कम व्यक्ति ऐसे रहे हैं जिन्होंने अणुव्रत-श्रान्दोलन के प्रति अपना सौहाद प्रदक्षित न किया हो। यह उनके प्रयत्न और प्रभाव का ही चमत्कार मानता हूँ कि उन्होंने उत्तरप्रदेश की नैतिक गतिविधयों को प्रोत्साहन देने जानी सस्थाओं में अणुव्रत समिति को एक विदाय्ट स्थान प्राप्त करा दिया। अभी तक बड़ी-से-बड़ी दूसरी सस्थाओं के नैतिक श्रान्दोलन उत्तरप्रदेश में चले और पनये, किन्तु उन्हें जनता और सरकार दोनों का सहयोग समान रूप से नहीं मिला। अणुव्रत समिति के सम्बन्ध में यह बात बिल्कुल अन्ताद मात्र है। इनना गहरा प्रभाव दूसरे व्यक्ति कम कर पाये है। इस सारी सफलता के पीछे जहाँ उनके सहयोगी कमंठ कार्यकर्ताओं का योग है, वहाँ ब्राचार्यंजी की साधना, उनके द्वारा किया गया निर्णय और उसे कियान्वित करने की तीक्षण बुद्धि है। इन सबका योग मिलाकर ब्राचार्य तुलसी ने अपनी शान्तिप्रय साधना से केवल राजस्थान ही में नहीं, सारे देश को बाध लिया है।

### समान शुभ चिन्तक

श्चनेक विशिष्ट व्यक्ति जब अपने पास बड़ी-से-बड़ी शक्तियों को आते देखते हैं, तब उनके द्वार जनसाधारण के लिए बन्द हो जाते हैं। किन्तु आचार्यश्री तुलसी के सम्बन्ध में ऐसा नहीं कहा जा सकता। उनके यहाँ सभी को आने का अवसर मिलता है। राष्ट्रवित और प्रधान मन्त्री से अणुअत-आन्दोलन की बात करने के बाद श्राचार्यजी का क्षेत्र वहीं नहीं समाप्त हो जाता। जिस तरह की चर्चा आचार्यजी इस आन्दोलन को लोकोपयोगी बनाने के लिए राष्ट्र नायकों से करते हैं, उसी प्रकार अपने आन्दोलन के संचालन और संवर्षन करने के लिए वे सर्वसाधारण कार्यकर्ताओं से भी बातचीत करते

🖁 । उनकी यह उदार वृक्ति अपने निकट दूसरे धर्मों के लोगों को भी खींच लाने में विशेष सहायक सिद्ध हुई है। उनके श्रान्दोलन में जहाँ जैन धर्म के उपासक जूटे हैं, वहाँ सनातन धर्मी श्रीर श्रन्य मतावलम्बी बढ़े स्नेह से इस श्रान्दोलन को भ्रपना भ्रान्दोलन मानते हैं। बड़े-से-बड़े कट्टर श्रायंसमाजी जिन्होंने बहन रामय तक स्वामी दयानन्द के सिद्धान्तों के श्राधार पर जैन धर्म के सेवकों से प्रलग मार्ग रखा, वे भी बड़े चात के साथ प्राचार्यजी के अणवत-आन्दोलन के विशेष कार्यकर्ता बने हुए हैं। उनका यह सब प्रभाव देख कर धाइचर्य होता है कि राजस्थान के एक सामान्य परिवार में जन्म लेने वाला यह मन्ष्य कितने विलक्षण व्यक्तित्व का स्वामी है जिसने वामन की तरह से अपने चरणों से भारत के कई राज्यों की भूमि नापी है। इस समय देश में एक-दो व्यक्तियों को छोड़ कर ब्राचार्य तुलसी पहले व्यक्ति हैं, जिन्होंने ब्राचार्य विनोबा से भी भ्रधिक पदयात्रा करके देश की स्थिति को जाना है और उसकी नब्ज देख कर यह चेष्टा की है कि किस प्रकार के प्रयत्न करने पर शान्ति प्राप्ति की जा सकती है। उनके जीवन-दर्शन में कभी विराम ग्रीर विश्राम देखने का श्रवसर नहीं मिला । जब कभी भी उन्हें किसी अपसर पर अपना उपदेश करने देखा, तब उन्हें ऐसा देख पाया कि वे उस समारोह मे बैठें हुए उन हजारों व्यक्तियों की भावना को पढ़ रहे हैं । उन सबका एक व्यक्ति किस प्रकार समाधान कर सकता है,यह उनकी विलक्षणता है। समारोहों में सभी लोग पूरी नरह से सूलके हुए नहीं होते। उनमें संकीर्ण विचारघारा के व्यक्ति भी होते है। उनमें कुछ ऐसे भी व्यक्ति होते हैं जो अपने सम्प्रदाय विशेष को अन्य सभी मान्यताओं से विशेष मानते है। उन सब व्यक्तियों का इस प्रकार समाधान करना किसी साधारण व्यक्ति का काम नहीं है। ग्रामो ग्रीर कस्बों की भज्ञान परिधि में रहने वाले लोगों को, जिन्हें पगउंडी पर चलने का ही अभ्यास है, एक प्रशस्त राजमार्ग से उन्हें किसी विशेष लक्ष्य पर पहुँचा देना आचार्य तुलमी जैसे ही सामध्येवान व्यक्तियों के वश की बात है।

### विरोधियों से नम्न व्यवहार

उनके जीवन की विलक्षणता इस बात में प्रगट होती है कि वे अपने विरोधियों की शक्कों का समाधान भी बड़े ब्रादर और प्रेमपूर्ण व्यवहार से करते है। कई बार उनके उम्र और प्रचण्ड आलोबकों को मैंने देखा है कि आचार्यजी से मिलने के बाद उनका विरोध पानी की तरह से इलक गया है।

ग्रानार्यंजी के दिल्ली ग्राने पर मैं यही समक्षता था कि वे जो कुछ कार्य कर रहे हैं, वह ग्रौर साधु-महात्माग्रों की नरह में विशेष प्रभाव का कार्य नहीं होगा। जिस तरह से सभा समाप्त होने पर, उस सभा की सभी कार्यवाही प्रायः सभा-स्थल पर ही समाप्त-सी हो जाती हैं, उसी तरह की धारणा मेरे मन में श्राचार्यजी के इस ब्रान्दोलन के प्रति थी।

### कैसे निभाएंगे ?

म्राजकल जहां नगर-निगम का कार्यालय है, उसके बिल्कुल ठीक सामने भाचार्यजी की उपस्थित में हजारों लोगों ने मर्यादित जीवन बनाने के लिए तरह-तरह की प्रेरणा व प्रतिज्ञाएं ली थीं। उस समय यह मुक्ते नाटक-सा लगता था। मुक्ते ऐसी भ्रनुभूति होती थीं कि जैसे कोई कुशल भ्रमिनेता इन मानवमात्र के लोगों को कटपुतली की तरह से नचा रहा है। मेरे मन में बराबर शंका बनी रही। इसका कारण प्रमुख रूप में यह था कि भारत की राजधानी दिल्ली में हर वर्ष इस तरह की बहुत-सी संस्थाभों के निकट आने का मुक्ते भवसर मिला है। उन संस्थाभों में बहुत-सी संस्थाए असमय में ही काल-कंवितत हो गई। जो कुछ बचीं, वे आपसी दलबन्दी के कारण स्थिर नहीं रह सकीं। इसलिए मैं यह सोचना था कि भ्राज जो कुछ चल रहा है, वह सब टिकाऊ नही है। यह मान्दोलन श्रागे नहीं पनप पायेगा। तब में बराबर अब तक मैं इस म्रान्दोलन को केवल दिल्ली ही में नहीं, मारे देश में गतिशील देखता हूँ। मैं यह नहीं कह सकता कि यह मान्दोलन श्रब किसी एक व्यक्ति का रह गया है। दिल्ली के देहातों तक में और यहाँ तक कि भुगी-फोपड़ियों तक इस श्रान्दोलन में अपनी जड़ें जमा ली हैं। अब ऐसा कोई कारण नहीं दीखता कि जब यह मालूम दे कि यह भान्दोलन किसी एक व्यक्ति पर सीमित रह जाये। इस भान्दोलन ने सारे समाज में एक ऐसा वातावरण उत्पन्त कर दिया है कि सभी वर्गों के लोग एक बार यह विचारने के लिए विवश हो उठते हैं कि आखिर इस समाज में रहने के लिए हर समय उन

बातों की ग्रोर जाना ठीक नहीं होगा, जिनका कि मार्ग पतन की ग्रोर जाता है। श्रन्ततोगत्वा सभी लोग यह विचार करने पर मजबूर दिखाई देते हैं कि सबको सिल-जुलकर एक ऐसा रास्ता जरूर खोजना चाहिए, जिससे सभी का हित हो सके। समाज में इस तरह की चेतनता प्रदान करने का श्रंय ग्राचार्य नुलसी ही को दिया जा सकता है। उन्होंने बहे स्नेह के साथ उन हजारो लोगों के हृदयों पर बरबस विजय प्राप्त कर ली है। जीवन को यही विशेष रूप से सफलता है, जिसे ग्राचार्य नुलसी ग्रंपनी मतत साथना से प्राप्त कर सके हैं। ग्रंगुवत-ग्रान्दोलन श्रंव मनुष्य के जीवन की इतनी निकटता प्राप्त कर चुका है कि वह कुछ मामलों में एक सच्चे मित्र की नरह से समाज का मार्ग-दर्शन करता है। नहीं तो उसे दिल्ली ग्रीर देश के दूसरे स्थानों में कैंसे बढ़ावा मिलता ग्रीर क्यों विद्यार्थी, महिलाएं ग्रीर दूसरे श्रमिक एवं धनिक वर्ग उसे ग्रंपनाते? इस स यह प्रकट होता है कि ग्रान्दोलन में कुछ-न-कुछ प्रभाव ग्रंवस्य है। बिना प्रभाव के यह ग्रान्दोलन देशव्यापी नहीं बन सकता।

#### सतत साधना

स्रनेक बार स्थानायंजी के पास बैठने पर ऐसा जान पड़ा कि वे जीवन दर्शन के कितने बड़े पण्डित है, जो केवल किसी भी सान्दोलन को स्रपने तक ही सीमिन रहने देना नहीं चाहते। सभी पिछले दिनों की बात है कि उन्होंने सुफाव दिया कि स्रणुवत-स्थान्दोलन के वार्षिक स्थिवेशन का मेरी उपस्थित में होना या न होना कोई विशेष महत्त्व की बात नहीं है। इस तरह से समाज के लोगों को प्रपने जीवन सुधारने की दिशा में साचार्य जी ने बहुत बार प्रयत्न किया है। इस सम्बन्ध में उनका यह कहना कितना स्पष्ट है कि भविष्य में कोई व्यक्ति यह नहीं कहे कि यह कार्य स्थानार्य जी की प्ररणा स्थवन प्रभाव के कारण ही हो रहा है। वे चाहते है कि व्यक्तियों को किसी के साथ बँधकर स्थातम-स्थाप्त्रय का मार्ग नहीं खोजना चाहिए। जीवन की प्रत्येक प्रवृत्ति से प्रेरणा लेनी नाहिए। जीवन जिस पोर उन्हें प्ररणा दे, वह नाम उन्हें करना चाहिए। यह सब देख कर साचार्यजी को समभने में सहायता मिल सकती है। वे उन हजारों साधुसों की तरह अपने सिद्धान्तों को ही पालन कराने के लिए दुरायही नहीं है, जैसा कि बहुत से लोगों को देखा गया है, जो स्थने सनुयायियों को स्थने निदिष्ट मार्ग पर चलने के लिए ही विवश किया करते हैं। स्थानार्यजी के सनुयायियों में कांग्रेस, जनस्थ, कस्युनिस्ट, समाजवादी स्रीर यहाँ तक कि जो ईश्वरीय गन्ता में विश्वाम नहीं करते, ऐसे भी व्यक्ति है। स्राचार्यजी मानते हैं कि जो लोग स्रपने को नास्तिक कहते है, वे वास्तव में नास्तिक नहीं हैं। इमलिए स्राचार्यजी के निकट जाने में सभी वर्गों के व्यक्तियों नो पूरी छुट रहती है। यह मैं स्रपने सन्तव में नास्तिक नहीं हैं। इमलिए साचार्यजी के निकट जाने में सभी वर्गों के व्यक्तियों नो पूरी छुट रहती है। यह मैं स्रपने सन्तव की बात कर रहा हूं।

#### प्रोरक व्यक्तित्व

उन्होंने श्रात्म-साधना से प्रपने जीवन को इतना प्रेरणामय बना लिया है कि उनके पास जाने से यह नहीं लगना कि यहां स्राकर समय व्यर्थ ही नष्ट हुआ। जिननी देर कोई भी व्यक्ति उनके निकट बैठना है, उसे विशेष प्रेरणा मिलती है। उनकी यह एक और वहीं विशेषता है जिसे कि मैं और कम व्यक्तियों से देख पाया हूँ। वे जिस किसी व्यक्ति को भी एक बार मिल चुके हैं, दूसरी बार मिलने पर उन्हें कभी यह कहते हुए नहीं मुना गया कि भ्राप कौन हैं? अपने समय में से बुद्ध-न-कुछ समय निकाल कर वे उन सभी व्यक्तियों को अपना श्रुभ परामर्श दिया करते हैं, जो उनके निकट किसी जिज्ञासा अथवा मार्ग-दर्शन की प्रेरणा निने के लिए जाने हैं। भ्रानेक ऐसे व्यक्ति भी देखे है कि जो उनके ग्रान्दोलन में उनके साथ दिखाई दिये और बाद में वे नहीं दीख गाये। तब भी भ्राचार्यजी उनके सम्बन्ध में उनकी जीवन गतिविधि का किसी-न-किसी प्रकार से स्मरण रखने है। यह उनका विराट व्यक्तित्व है, जिसकी परिधि से बहुत कम लोग भ्रा पाने हैं। ऐसा जीवन बनाने वाले व्यक्ति भी कम होने हैं, जो संसार से विरक्त रह कर भी प्राणी-मात्र के हित-चिन्तन के लिए कुछ-न-कुछ समय इस काम पर लगाने हैं और यह सोजने है कि उनके प्रति स्नेह रखने वाले व्यक्ति अपने मार्ग से विछुइ तो नहीं गये हैं?

#### विशेषता

कभी-कभी उनके कार्य को देख कर बड़ा आक्चर्य होता है कि यह सब आचार्यजी किस तरह कर पाते है। कई वर्ष पहले की बात है कि दिल्ली के एक सार्वजनिक समारोह में जो आचार्यजी के मान्निध्य में मम्पन्न हो रहा था. देश के एक प्रसिद्ध धनिक ने भाषण दिया । उन्होंने जीवन और धन के प्रति अपनी निस्मारता दिखाई । एक युवक उस धनिक की उस बात से प्रभावित नहीं हुआ। उसने भरी सभा में उस धनिक का विरोध किया। उस समय पाम में बैठा हुआ मैं यह सोच रहा था कि यह युवक जिस तरह से उस धनिक के विरोध में भाषण कर रहा है, इसका क्या परिणाम निकलेगा, जब कि उस धनिक के ही निवास स्थान पर श्राचायंजी उन दिनों ठहरे हुए थे शौर उस धनिक की श्रीर से ही श्रायोजित सभा की श्रध्यक्षता श्राचार्यजी कर रहे थे। पहले तो मुक्ते यह लगा कि श्राचार्यजी इस व्यक्ति को श्रागे नहीं बोलने देंगे: क्योंकि सभा में कुछ ऐसा वातावरण उस धनिक के विशेष कर्मचारियों ने उत्पन्न कर दिया था, जिससे ऐसा लगता था कि भ्राचार्यजी को सभा की कार्यवाही स्थगित कर देनी पड़ेगी। किन्तू जब भ्राचार्यजी ने उस व्यक्ति की सभा में विरोध होने पर भी बोलने का अवसर दिया तो मक्ते यह आशंका बनी रही कि सभा जिस गति से जिस और जा रही है, उससे यह कम ग्राशा थी कि तनाव दूर होगा । अपने मालिक का एक भरी सभा में निरादर देख कर कई जिम्मेदार कर्मचारियों के नथ्ने फुलने लगे थे। किन्तू प्राचार्यजी ने बड़ी युक्ति के साथ उस स्थिति को सम्भाला ग्रीर जो सबसे बड़ी विशेषता मुक्ते उस समय दिखाई दी, वह यह थी कि उन्होंने उस नवयुवक को हतोत्साह नहीं किया, बल्कि उसका समर्थन कर उस नवयूवक की बात के श्रीचित्य का सभा पर प्रदर्शन किया। यदि कही उस नवयूवक की इतनी कट ग्रालोचना होती तो वह समाप्त हो गया होता और राजनैतिक जीवन में कभी आगे बढ़ने का नाम ही नही जेता। किल्तू श्राचार्यजी की कुशलता से वह व्यक्ति भी श्राचार्यजी के सेवकों में बना रहा और उस धनिक का भी महयोग श्राचार्यजी के आन्दोलन को किसी-न-किसी रूप में प्राप्त होता रहा। ऐसे बहत-से भवसर उनके पास बैठ कर देखने का मभें अवसर मिला है, जब उन्होंने अपनी तीक्षण बृद्धि के द्वारा बड़े से बड़े संघर्ष को चटकी बजा कर टाल दिया। श्राजकल श्राचार्यजी जिस सुधारक पग को उठा कर समाज में नव जागृति का सन्देश देना चाह रहे है, वह भी विरोध के बावजूद भी उनके प्रेमपूर्ण व्यवहार के कारण संकीणंता की मीमा को छिन्न-भिन्न करके आगे बढ रहा है। ग्राचायंजी की माधना के ये पच्चीस वर्ष कम महत्त्व के नहीं हैं । राजस्थान की मरुभूमि मे आचार्यजी ने ज्ञान श्रौर निर्माण की श्रन्तःमिलला सरस्वती का नये सिरे मे ब्रवतरण कराया है, जिसमे वह ज्ञान राजस्थान की सीमा को छ कर निकट के तीथों में भी ब्रपना विशेष उपकार कर रहा है।

#### विशेष प्रावश्यकता

उत्तरप्रदेश के एक गाँव में जन्म लेने वाला मुक्त-जैसा व्यक्ति आज यह अवस्य विचार करता है कि आचार्य तुलसी-जैसे अनुपम व्यक्तित्व की हजारों वर्ष तक के लिए देश को आवश्यकता है। देश के जागरण में उनके प्रयत्न से जो प्रेरणा मिलेगी, उससे देश का बहुत-कुछ हिन होगा। यह केवल मेरी अपनी ही धारणा नहीं है, हजारों व्यक्तियों का मुक्त जैसा ही विश्वास आचार्यश्री तुलसी के प्रति है। समाज के लिए यदि भगवान् महावीर की आवश्यकता थी तो बुद्ध के अवतरण में भी देश ने प्रेरणा पाई थी। उसी प्रकार समय-समय पर इस पुण्य भू पर अवतरित होने वाले महापृण्यों ने अपने प्रेरणास्पद कार्य में इस देश का हित-चिन्तन किया। उस हित-चिन्तन की आशा और सम्भावना में आचार्यश्री तुलसी हमारे यमाज की उस मीमा के प्रहरी सिद्ध हुए हैं, जिससे समाज का बहुत हित हो सकता है। मेरी दृष्टि में उनके आचार्य-काल के ये पच्चीस वर्ष कई कल्प के बराबर हैं। हजारों व्यक्ति इस भूमि पर जन्म लेने और मरते है। जीवन के सुख-दुःव और स्वार्थ में रह कर कोई यह भी नहीं जानता था कि उन्होंने स्वप्न में भी समाज पर कोई हित किया। इस प्रकार के क्षुद्र जीवन से आगे बढ़ कर जो हमारे देश में महामनस्वी बन कर प्रेरणा प्रदान कर सके हैं, ऐसे व्यक्तियों में आचार्य तुलसी हैं। इनकी देश को युगों तक आवश्यकता है।

#### प्रमुख शिष्य

श्चाचार्य तुलसी के जितने भी शिक्ष्य हैं; वे सब यथाशिक्त इस बात में लगे रहते हैं कि श्चाचार्यजी ने जो मार्ग संसार के हित के लिए खोजा है, उसे घर-घर तक पहुँचाया जाये। इस कल्पना को साकार बनाने के लिए मुनिश्री नगराजजी, मुनिश्ची बुद्धमल्लजी, मुनिश्ची महेन्द्रकुमारजी श्चादि श्चनेक उनके प्रमुख शिष्यों ने विशेष यस्न किया है। ऐसा लगता है कि जो दीप श्चाचार्यजी ने जला दिया है, वह जीवन को संयमी बनाने की प्रक्रिया में सदैव सफल सिद्ध होगा। यही मेरी इस श्वसर पर हार्दिक कामना है कि श्चाचार्य तुलसी का श्रनुपम व्यक्तित्व सारे देश का मार्ग-दर्शन करता हुशा विर स्थायी शान्ति की स्थापना में सफल हो।



#### भगवान् नया आया

#### भी उमाइंकर पाण्डेय 'उमेइा'

उर में हुलास

श्रन्तर प्रकाश ले

कौन ! यहाँ श्राया ?

मन में उमंग, ये नया रंग,

मेहमान नया श्राया !

यह गगन मगन,

मृदु मंद पवन

मश्रुतान सुनाने हैं—

हे, कीति धवल !

तव स्वागत में—

हम नयन विछाते हैं.

श्रानुभ्नि जगानी जाग-जाग,

भगवान् यहाँ श्राया, मेहमान नया श्राया।

लहरं सचलें,
सरिता बदले,
सागर न बदलता है,
मादर्श धवल,
मम्मान प्रबल,
पर्वन न मचलता है।
राुभ कर्म, अहिसा मृदुता का,
वरदान नया लाया, भगवान् यहाँ झाया।

# एक रूप में अनेक दर्शन

### मुनिश्री शुभकरणजी

गित की भिन्नता कोई भिन्नत्व पैदा नहीं करती । उसमें अपना चुनाव होता है। आखिर चलने बाले नियत चौराहे पर मिल जाते हैं। उनका जीवन आदर्शमय होता है। वे अुकना जानते भी हैं और नहीं भी। भुकाना उनका कोई साध्य नहीं होता। लोक आदर्शों पर भुक जाते हैं। वे बन्धनों से परे होते हैं और बँधे हुए भी। उनका दर्शन बन्धन-विहीन है, लेकिन फिर भी वे दूसरों को बीध देते हैं। वे बँधे हुए भी मुक्ति का अनुभव करते है। बन्धन में यह मुक्ति का दर्शन अवस्य कुछ अटपटा-सा है। अटपटा इसलिए है कि हम उसके तल में नहीं बैठ सकते हैं। किनारे पर रहने से यह बन्धन बन जाता है और तल में जाने पर बन्धन-विहीन। यहाँ आगम बोलता है—कुझले पुण मो बद्धे नो मुक्के कुझल न बद्ध है और न मुक्त, वह मुक्त भी है और बद्ध भी।

यह सब प्रतिस्नोत का दर्शन है। अनुस्नोतगामी का दर्शन भिन्न होता है। उसे मुक्ति प्रिय नहीं लगती। वह खुना हुआ भी बँधा रहता है। प्रतिस्नोत का घोष है 'श्रपने आपको कसो'। जबिक अनुस्नोत का इससे उलटा। वह दूसरों को कसने की बात कहता है। यहीं से आस्तिक, नास्तिक, आव्यात्मिक, भौतिक, लौकिक या पारलौकिक जैसे प्रतिपक्षी शब्द जन्म लेते हैं। दोनों की दो दिशाए हो जाती हैं।

त्राचार्यश्री तुलसी का दर्शन प्रतिस्रोत का है। वे प्रनुस्रोत से प्रतिस्रोत में भ्राये भ्रौर उसी ने उन्हें महान् बनाया। महानता प्रतिस्रोत के विना नहीं जन्मती। वे जन्म से महान् थे, फिर भी उनकी महानता पुरुषार्थ से चमकी। भाग्य लँगड़ा होता है पुरुषार्थ के विना भ्रौर पुरुषार्थ उसके बिना श्रन्था। श्रन्थे श्रौर लँगड़े दोनों का संगम ही एक नई सृष्टि को जन्म देता है। महानता के कमिक विकास में वे विश्वव्यापी बने।

वसुधंव कुदुस्वकम् में सकीणंता कैसे रहे । उनका जीवन सूत्र यही है । श्रात्म तुला के वे प्रतीक हैं । एक दिन उन्होंने कहा—"जब मैं प्रत्येक वर्ग और भौम के व्यक्तियों को श्रपने सामने देखता हूँ, तब मुभ्ने बड़ी प्रसन्तता होती है।" यह उदार और श्रात्मस्पर्शी वाणी किसके श्रन्त:करण को नहीं छती ।

महान् पुरुष धकृतिम होते है। वह सहजता में ही प्रानन्द मानते हैं। कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन से परे उन्हें कुछ दृष्टिगत नहीं होता। वे सहज करते हैं, सहज चलते हैं और सहज ही बोलते है। उनकी सहज वाणी स्वतः जनता को धपनी ब्रोर खींच लेती है। इसका कारण है उसमें उनकी ब्रात्मा है। ब्रात्मशून्य विचार सजं हुए और मरल भी, जनता के ब्रन्तःकरण को छू नहीं सकते। वे ब्रगर छू भी जायें, तो ब्रपना स्थायित्व प्रतिष्ठापित नहीं कर सकते। ब्रात्मानुस्यूत विचार भाषा से श्रलंकृत न होने पर भी जनता के हृत्यट पर छा जाते हैं।

श्राचार्यश्री को जिस श्रोर से देखा जाये वे महान् ही नजर श्राते हैं। एक रूप में श्रनेक रूप का दर्शन है। व्यिष्टि वाद की रेखा समिष्टिवाद में विलीन हो गई है। वे क्या हैं? श्रीर क्या नहीं? शब्दों का प्रवेश यहाँ श्रसम्भव है। वे कुछ हैं भी श्रीर नहीं भी। हैं इसलिए कि दृश्यमान हैं श्रीर नहीं इसलिए कि उनका श्रपना कुछ भी नहीं है। सब कुछ परार्पण है। परार्पण में ही उनका साध्य स्वयं सध जाता है। कुछ व्यक्ति पहले श्रपना साधते हैं श्रीर फिर दूसरों का। कुछ दूसरों को ही साधते हैं, श्रपना नहीं। कुछ श्रपना श्रीर दूसरों दोनों का साधते हैं। श्राचार्यश्री श्रपना श्रीर दूसरों दोनों का साधने वाले हैं, लेकिन विशेषता यह है कि वे दूसरों में से श्रपना साधते हैं। यह देखने में विचित्र-सा लगता है, लेकिन साधन के प्रकर्ष में महीं। ऐसा भी कहा जाये कि दूसरों के बनाने में वे खुद बने हैं तो कोई बड़ी बात नहीं। रस की श्रनुभूति से गंध कभी परे नहीं रहता है ? बनाने का यह कम बचपन से ही उनके साथ जिपटा हुआ है । वे इससे मुक्त नहीं हुए, कितने उन्होंने बनाये, बनाते हैं और बनाते रहेंगे यह आकलन से परे है ।

व्यक्ति विचार और ग्राचार दो प्रकार से बनता है। ग्राचार ग्रात्व-सापेक्ष है। विचार मन भौर विद्या से भ्रपेक्षित है। सामान्यतया विचार मानव का धर्म है। वह ग्राचार के साथ भी रहता है भौर स्वतन्त्र भी। ग्राचारवान् ग्रान्मवान् होता है। इसमें कोई दो मत नहीं। विचारवान् भाचारवान् ही हों, ऐसा नियम नहीं। भाचार में भास्मा बोलती है भौर विचारों में मन। मन और ग्रात्मा का योग हो तो विचारक भी ग्राचारक हो सकता है। विद्या विचारों को विकसित और जनभोग्य बनानी है। विकसित विचार मनुष्य की ग्रात्मा को ग्रान्दोलित कर देते हैं। वह स्फूर्तिवान् हो उठता है।

भ्राचार्यश्री को प्रिय है श्राचारवान् । विचारक उन्हें प्रिय नहीं है, ऐसी बात नहीं। लेकिन वह भ्राचारवान् होना चाहिए। भ्राचार-शून्य व्यक्ति की प्रियता ग्रस्थिर होती है। वह स्वयं एक दिन लड़लड़ा उठती है। उसमें स्वार्थ रहता है, पित्रता नहीं। वे श्राचारवान् को विचारक भौर विचारक को भ्राचारवान् बनाते हैं। सभी विचारक बनें, यह ग्रसम्भव होता है। क्योंकि वह विशिष्ट क्षयोपशम सापेक्ष है, लेकिन ग्राचारशील तो होना ही चाहिए। श्राचार: प्रथमो भनें: यह पहली मीटी है।

क्षयोपशम का बीज श्रनुकूल स्थिति में स्वतः पल्लिवित हो जाता है श्रीर कहीं-कहीं उसके लिए भूमि तैयार करनी पडती है । स्वतः पल्लिवन होने वालों के लिए कम श्रम की ग्रपेक्षा है श्रीर दूसरों के लिए ग्रधिक ।

भूमि का बीज वपन के योग्य बनाना असाध्य है, उतना फल पाना नहीं । आचार्यश्री इस कार्य में योग साधना की तरह अविरल जुटे रहे और है भी ।

उनके बनाने का अपना तरीका है। वे ताड़न और तर्जन में विश्वास नहीं रखते। उनका तर्जन, गर्जन, वर्षण और अमृत सब आँखों में रहता है। शौंखों में जहाँ समता और ममता रहती है, वहाँ विषमता भी। वे कोमल हैं, कठोर भी, मीठे भी हैं, कड़वे भी, विनम्न और स्तब्ध भी हैं। ऐसा होना उनके लिए अनावश्यक नहीं है। इनके बिना दूसरों की प्रगति नहीं सधती। ये सब परस्पर विरोधी लगने वाले धर्म अविरोध के उपासक है। वे आगम वाणी की तरह थोड़े से विद्यार्थियों को सब कुछ दे देते हैं। उनके विवेक-जागरण की अपनी पद्धति है। वे कहते हैं—'देखो, यह समय तुम्हारे समूचे जीवन निर्माण का है। अभी का दु:ल भविष्य के लिए अक्षय सुख का स्थान बनेगा। समय का प्रमाद मत करो। पढ़ने के बाद में फिर खूब बातें करना। मै तुम्हें कुछ भी नहीं कहाँगा।'' इन शब्दों में कितनी आत्मीयता है और है बनाने की तड़फ।

### काटना सहज है, पर जोड़ना नहीं

बनना सहज है, पर बनाना नहीं । काटने ग्रौर जोड़ने की किया में कितना ग्रन्तर रहता है । भ्रंकुर की उत्पत्ति इतनी दुरूह नहीं, जितनी कि उसकी वृक्ष के रूप में परिणति है ।

बच्चे को बचपन से जवानी में लाना जितना कठिन है, उससे भी श्रधिक कठिन शिष्यों को श्रपने पैरों पर खड़ा करना है। साधना का जीवन एक रूप से पुनर्जन्म है। साधक ढिजन्मा है। शिष्य को चलने, बैठने, खाने, पीने, रहने, सोने श्रादि का सारा प्रशिक्षण उन्हें देना होता है। इन कियाओं में कमी का ग्रर्थ है—साधना में कमी। साधना का पहला चरण है:

#### कहं चरे कहं चिठे, कहं मासे, कहं सए। कहं भुजतो भासंतो, पावकम्मं न बंघद्व।

मैं कैसे चलूँ, कैसे ठहरूँ, कैसे सोऊँ, कैसे भोजन करूँ और कैसे बोलूँ जिससे कि पाप-कर्म का बन्धन न हो। साधना की कुशलता इन्हीं में है।

ग्राचार्यश्री शिष्यों का सर्वस्य लेते हैं ग्रीर वे सब देते हैं। देने की उनकी किया इतने में परिसमाप्त नहीं होती। वह तो मजस्र जीवन की समाप्ति तक चलती ही रहती है। वे सर्वस्य लेकर भी हलके रहते हैं ग्रीर शिष्य सब कुछ देकर भी भारी रहता है। पहले चरण को परिपुष्ट करने के लिए ग्राचार्य शिष्यों को ज्ञान-विज्ञान की ग्रीर मोड़ते हैं। ज्ञान का क्षेत्र कितना ग्रगाथ है ? इसे समक्तने वाले ही समक्त सकते हैं। पहले-पहले उसमें कोई रस नहीं टपकता है। वह नमक बिना के भोजन जैसा है। उसका ग्रानन्द परिपक्त बक्त भारी पड़ता है। शिक्षण के ग्रन्त तक धैर्य को टिकाय रखना बहुत भारी पड़ता है। कुछ व्यक्ति ग्रांशव में हताश हो जाते हैं ग्रीर कुछ मध्य में। जिनकी घृति ग्रचल होती है, वही उसके ग्रन्तिम चरण तक पहुँच कर इसकी ग्रनुक्ति कर सकता है।

दुर्बलता मानव का स्वभाव नहीं, विभाव है। मनुष्य उसे स्वभाव मान लेता है, यह आन्ति है। इसका कारण है मोह भीर भज्ञान। भाचार्य मोह भीर भज्ञान को भिटाने के लिए सतत जागृत रहते हैं। वे मनोर्वज्ञानिक ढंग से शिष्य की भ्रभिरुचि का सध्ययन करते हैं भीर उसके धैयं को टिकाये रखने का ग्रायास भी।

सबके सब इसमें उत्तीर्ण हों, यह त्रसम्भव है, लेकिन कुछ हनाश व्यक्ति फिर से प्रोत्साहित हो जाते हैं। जो न होते हैं उनके लिए शेष प्रनुताप रहता है।

श्राचार श्रौर विचार दोनों गतिमान रहें, श्रतः विविध प्रयोग नई चेतना को जागृत करते रहते हैं। विचार श्रौर श्राचार का श्रपना क्षेत्र श्रलग है। ये श्रीभन्न भी हो सकते हैं। श्राचार्यश्री दोनों का प्रकर्ष चाहते हैं। श्राचार स्वयं के लिए है जबिक विचार दोनों के लिए। जनता पर विचारों का प्रभाव होता है। उसके लिए विचारवान् श्रौर विद्वान् होना भी श्रावश्यक है। दोनों की सह-प्रगति एक चामरकारिक योग है।

श्राचार्यश्री का उत्तरदायित्व श्रौर तपस्या दोनों सफल है। वे इससे संतुष्ट भी है श्रौर नहीं भी। संतुष्टि का कारण है—जिन सफलताश्रो के दर्शन पहले नहीं हुए, उनके दर्शन श्रापके शासनकाल में हुए, होते हैं श्रौर होते रहेंगे। श्रमंतीष श्रपूर्णना का है। पूर्णता के बिना संतुष्टि कैसे श्राये? उनकी श्रान्तरिक श्रीभलाषा पूर्णता के शिखर पर पहुँचने की है। प्रगति का द्वार पूर्णता के श्रभाव में सदा खुला रहता है। श्रपूर्ण को पूर्ण मानने का श्रथं है, प्रगति के पथ को रोक देना। 'प्रगति शिखर पर चढ़ती जाये' यह जिन का उद्घोष है। संघ श्रौर संघाति पूर्णना के लिए किटबढ़ है। दोनों का नादा-तम्य सम्बन्ध है। वे उसमें प्राण फूँकते है शौर संघ विकास के पथ में प्रतिक्षण श्रग्रसर होता रहता है। शासक की कुशलता संघ वो सकुशल बनाने में है। उसकी सिक्यता श्रौर निष्क्रयता उन पर श्रवलम्बित रहती है। श्राचार्यश्री का संघ श्राचार श्रौर विचार के क्षेत्र में श्राज प्रमुख है। यह श्रापकी कुशल शासकता का सुफल है। हम चाहते हैं कि श्राचार्यप्रवर श्रपनी श्रमाप्य शक्ति के द्वारा श्राचार श्रौर विवार की कड़ी को सर्वदा श्रक्षण बनाते रहें।



### त्र्रमरों का संसार

### मुनिश्री गुलाबचन्दजी

देव! सृष्टि के व्याधि-हलाहल की घूँटे पी। दूर क्षितिजनक श्रमरों का संसार बसादी।

छलना की संसृति व्यवहृति में पसती प्रतिदिन, स्विप्तिल कलना स्पष्ट नहीं विक्लिष्ट कहीं है, पग-पग पर है भ्रान्ति भीक्ता व्यवहित मानस, इतरेतर भाकृष्ट किन्तु संक्लिष्ट नहीं है। भ्रव व्यवधान समाहित हो सब सहज वृत्ति से, ऐसा शुभ सौहार्द भरा संसार बसा दो।

# यशस्वी परम्परा के यशस्वी आचार्य

### मुनिश्री राकेशकुमारजी

तेजसां हि न वयःसमीवयते तेज-सम्पन्न महापुरुषों का श्रंकन गणित-प्रयोगों के श्राधार पर नहीं होता। उनका तेज-प्रधान जीवन विद्य के सामान्य नियमों का अपवाद होता है। उनका अभ्युदय स्थिति-सापेक्ष नहीं होता। उनका गति-शील व्यक्तित्व बाहर की सीमाओं से मुक्त रहता है।

केवल बाईस वर्ष की अवस्था, यौवन की उदय बेला में आचार्यपद का यह गुरुतर दायित्व इति-हास के पृष्ठों की एक महान् आदवर्षकारी घटना है। श्रो कालूगणी के स्वर्गवास के समय अनेकों वृद्ध साधु विद्यमान षे, किन्तु उनके भावी उत्तराधिकारी के रूप में नाम घोषित हुआ एक नौजवान साधुका, जिसे हम आज आचार्यश्री नुलसी के रूप में पहचानते हैं।

#### प्रवहमान निर्भर

गगन में चमकते हुए चाँद और सितारे अपनी गित से सदा बढ़ते रहते हैं। पवन की गित्कीलता किसी से छिपी हुई नहीं है। विभिन्न रूपों में बहनी हुई जलवारा संसार के लिए वरदान है। निरलस प्रकृति के अणु-प्रणु में समाया हुआ गित और कर्म का सन्देश संसार के महापुन्तों का जीवन मंत्र होता है। गित जीवन है और स्थिति मृत्यु; इसी अन्तः प्रेरणा के साथ उनके चरण आगे से आगे बढ़ते जाते हैं। जब हम आचार्यश्री के व्यक्तित्व पर विचार करते हैं तो वह प्रवहमान निर्फर के रूप में हमारे सामने आता है। उनका लक्ष्य सदा विकासीन्मुख रहता है। बड़ी-से-बड़ी बाधाएं उन्हें रोक नहीं सकतीं। बढ़ें चल हम रके न क्षण भी हो यह वृढ़ संकल्प हमारा इस स्वर लहरी में उनकी आत्मा का संगीत मुखरित हो रहा है। उनके पारिणांक्विक वातावरण में अभिनव आलोक की रिष्मियां छाई हुई दिखाई देती हैं। निराझा के कुहरे में दिग्मूढ़ बना मानव वहाँ सहज रूप से नया जीवन पाता है।

#### ग्रभिनव प्रयोगों के ग्राविष्कर्ता

मंघ के सर्वतोमुखी विकास के लिए बाचार्यश्री के उर्वर मस्तिष्क से विभिन्न प्रयोगों का श्राविष्कार होता रहता है। उन्होंने समयानुकूल नया-नया कार्यक्रम दिया, प्रगति की नई-नई दिशाएं दीं। प्रतिक्षणं यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः इस परिभाषा के अनुसार साधना, शिक्षा और स्वास्थ्य के सम्बल में होने वाले उनके प्रयोग बहुत प्रेरणा-दायी हैं। तेरापंथ की वर्तमान प्रगति के पीछे छिनी हुई ब्राचार्यश्री की विभिन्न दृष्टियाँ इतिहास के पृष्ठों मे ब्रोफिल नहीं हो सकती।

सारे संघ में संस्कृत भाषा का विकास आज बहुत ही सुव्यवस्थित और सुदृढ़ रूप से देखा जाता है। जहाँ एक युग में इस सुरभारती का सितारा विल्कुल मद-मंद-सा दिखाई दे रहा था, लोग मृत भाषा कह कर उसकी घोर उपेक्षा कर रहे थे, प्रगति के कोई तथे आसार सामने नहीं थे, वहाँ तेरापंथ साधु समाज में इसका ओत अजन्य गति से प्रवाहित होता दिखाई दिया। जिसके निकट परिचय से बड़े-बड़े विद्वानों का मानस भोज युग की स्मृतियों में डूबने लगा। इसका श्रेय भाचार्यश्री द्वारा अपनाये गये नये-नये प्रयोगों और प्रणालियों को है।

साधना की दिशा में होने वाली प्रेरणाफों में लाख-संयम, स्वाध्याय व ब्यान के प्रयोग विशेष महत्त्व रकते ैं।

किसी भी प्रयोग का प्रारम्भ वे अपने-आप से करना चाहते हैं। उनका विश्वास है, अपने को अपवाद मानकर किया जाने वाला प्रयोग कभी सफल नहीं हो सकता। आगे की बिन्दयों का महत्त्व पहले के अंक के पीछे होता है।

### सत्यं, शिवं, सुन्दरम् के संगम

सत्यं, शिवं और सुन्दरम् की उपसाना का त्रिवेणी संगम भाषार्यश्री के जीवन का एक विलक्षण पहलू है। वे जितने तत्त्वद्रष्टा हैं, उससे अधिक एक साधक और कलाकार भी। उनके विचारों के अनुसार इन तीनों के समन्वय के बिना पूर्णता के दर्शन नहीं हो सकते। जीवन का समग्र रूप निखार नहीं पा सकता।

सामान्यतया साधना भौर कला में भन्तर समका जाता है। पूर्व भौर पश्चिम की तरह दोनों का समन्वय सम्भव नहीं माना जाता। किन्तु भाजार्यश्री ने कला के लक्ष्य को बहुत ऊँचा प्रतिष्ठित कर उसे साधना में बाधक नहीं, प्रत्युत महान् साधक के रूप में स्वीकार किया है। उनका मस्तिष्क चिन्तन की उवंरस्थली है, उनके हृदय में साधना की पवित्र गंगा बहती है भौर उनके हाथ भौर पैर कला के विविध रूपों की उपासना में निरन्तर संलग्न रहते हैं।

#### प्राचीनता ग्रीर नवीनता के मध्य

माज के संक्रमण काल में गुजरते हुए प्राचीनता और नवीनता का प्रश्न भी भ्राचार्यश्री के जीवन का एक विषय अन गया। यद्यपि उन्होंने इसको महत्त्व नहीं दिया। किन्तु एक संघ-विशेष का नेतृत्व करने के कारण लोगों की दृष्टि में वह महत्त्वपूर्ण ग्रवश्य बन गया। इस सम्बन्ध में अपने विचार स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा—"सत्य के प्रकाश में नवीनता भीर प्राचीनता की रेखाएं बिल्कुल गौण हैं। पुराना होने से कोई श्रेष्ठ नहीं नया होने से कोई त्याज्य नहीं। सत्य की व्यावहारिक ग्राभिव्यक्तियाँ समय-सापेक्ष होती हैं। उसका ग्रन्तरात्मा में कोई परिवर्तन नहीं होता। परम्पराएं बनती हैं भीर मिटती है। व्यक्ति का व्यक्तित्व उनसे ऊँचा होता है। किन्तु जीवन की शाश्वत रेखाएं कभी नहीं बदलतीं। उनको ग्राधार मानकर ही व्यक्ति अपने मार्ग पर भागे बढ़ सकता है।" इस चिन्तन की वृक्ष की कल्पना के ग्राधार पर ग्राचार्यश्री ने बड़े सुन्दर ढंग से रखा—"जो वृक्ष ग्रपने अस्तित्व को सुरक्षित रखना चाहता है, संसार में ग्रपने सौन्दर्य का विकास करना चाहता है उसे मौसम के ग्रनुसार सर्दी श्रीर गर्मी दोनों की हवाश्रों को समान रूप से स्वीकार करना होगा। उसका एक तरफ का ग्रायह चल नहीं सकता। किन्तु उसका मूल सुदृढ़ चाहिए। मूल के हिल जाने पर बाहर की हवाश्रों से कोई पोषण नहीं मिल सकता।"

#### साम्य योग की राह में

प्रगति की धारा समर्थन ग्रीर विरोध इन दोनों तटों के बीच से गुजरती है। प्रगतिशील व्यक्तित्व इन दोनों को ग्रपना सहचारी सूत्र मानकर चलते हैं। संसार गतिशील है, वह प्रगति का श्रमिनन्दन किए यिना नहीं रह सकता। ज्यों ज्यों पिश्क के चरण ग्रागे बढ़ते हैं, जनता उन पर स्वागत के फूल चढ़ाती है। किन्तु साथ ही लक्ष्य की रेखाग्रों को सुम्पष्ट बनाने के लिए छोटे-मोटे विरोधों के प्रवाह भी विश्व के व्यापक नियम में विल्कुल स्वाभाविक माने गए हैं।

श्राचार्यश्री तुलसी को बहुत बड़ा समर्थन मिला, साथ में विरोध श्रीर समालोचनाएं भी । किन्तु उनका समता-परायण जीवन इन दोनों स्थितियों में काफी ऊँचा रहा है । श्रनुकूल और प्रतिकूल दोनों प्रकार की स्थितियों में साम्ययोग का निर्वाह करना, उनकी कियाशील साधना को सबसे श्रिधक प्रिय है ।

# महान् धर्माचार्य

भाचार्यश्री की जीवनधारा ऊपर-ऊपर से विभिन्न रूपों में बहती हुई हमारे सामने श्राती है। इससे किसी स्प्रपरिचित व्यक्ति को कभी-कभी विरोधाभास का अनुभव हो सकता है। किन्तु गहराई में पैठने से वस्तुस्थिति का दर्शन पपने-भाप हो जाता है। भन्यारम की सुदृढ़ साधना के साथ-साथ शिक्षा, साहित्य, संस्कृति के सम्बन्ध में भी उनकी भपनी

भनूठी देन है। नैतिक भ्रान्दोलन के ज्यापक प्रसार के लिए जन-सम्पर्क भी उनकी दैनिक चर्या का मुख्य भंग रहता है। इन विविधमुखी धाराओं को एक रस बनाने में व इनमें संगति बिठाने में एकमात्र कारण उनका सन्तुलित व्यक्तित्व है।

#### यशस्वी परम्परा के यशस्वी भाषार्य

तेरापंथ की ग्राचार्य-परम्परा बहुत यशस्वी रही है। ग्राचार्यश्री ने उसमें ग्रनेकों महत्त्वपूर्ण कड़ियाँ जोड़ी हैं।
गत दो दशकों में धर्म का क्षेत्र ग्रनेकों संक्रान्तियों से भरा हुआ रहा है। एक श्रोर जहाँ विज्ञान, मनोविज्ञान व पारचात्य
नीतिशास्त्र ने धर्म की दार्शनिक व नैतिक पूर्वमान्यताओं पर प्रभाव डाला, वहाँ दूसरी ग्रोर धर्म के क्षेत्र में छाई हुई ग्रनेकों
विकृत परिस्थितियों ने उसके तेज को धूमिल बना डाला। धर्म के मौलिक ग्राधारों पर जहाँ ग्राचार्यश्री के संस्कार बड़े
दूढ़ रहे हैं, वहाँ उससे सम्बन्धित विकृतियों पर उनका प्रहार भी बड़ा कठोर रहा है। उनके स्वरों में होने वाले धर्म के
विश्लेषण ने बड़े-से-बड़े नास्तिकों को भी बहुत प्रभावित किया है। ग्रपने सुव्यवस्थित साधु-समाज को देश के नैतिक पुनरत्थान में संलग्न कर धर्माचार्यों के सम्मुख एक बहुत बड़ा उदाहरण प्रस्तुत किया है। हमें विश्वास है कि ग्राचार्यश्री के
मार्ग-दर्शन में यह धर्म-संघ ग्रपनी ग्रभीष्ट प्रगति की दिशा में ग्राधिक-से-ग्राधिक पल्लवित ग्रीर पुष्पित होगा।



### सभी विरोधों से अजेय है

मृतिश्री मनोहरलालजी

तुम ग्रविचल बन ग्रपनी धन में ही चलते हो चाहे कोई उसको भ्रांके या श्रनदेला उसे छोड दे फिर भी अपने निश्चित पथ से नहीं तनिक भी डिगते हो तम बाधाओं से सम्बल लेकर भागे बढ़ने का साहस यह सभी विरोधों से भ्रजेय है सभी दृष्टियों से मजेय है श्रीर तुम्हारा सत्य चिरन्तन जिसके इन पावन चरणों में सिर ग्रसत्य का युग युगान्त से हार-हार कर बार-बार भुकता भाषा है।

# तो क्यों ?

### भी प्रक्षयकुमार जैन सम्यादक, नवभारत टाइम्स, हिल्ली

बड़े-बड़े स्नाक्षंक नेत्र, उन्नत ललाट, श्वेत चादर से लिपटे एक स्वस्थ स्त्रीर पिवत्र मूर्ति के रूप में जिस साधु के दर्शन दिल्ली में ही दस-बारह वर्ष पहले मुसे हुए, उन्हें भूलना सहज नहीं है। उनके व्यक्तित्व में कुछ ऐसा तेज स्त्रीर प्राचीन साधुता है। भारत में साधु संन्यामी सदा से समादृत रहे हैं; बिना इस भेदमाव के कि कौन साधु किस धर्म प्रथवा सम्प्रदाय का है। हमारे देश में त्यागियों के प्रति एक विशेष श्रद्धा रही है। ऐसे बहुत कम भारतीय होंगे जो इस भाव से बचे हुए हों।

श्रद्धानन्द बाजार में श्राचार्य तुलसी के प्रथम दर्शन करने का सौभाग्य मुक्ते प्राप्त हुशा। उस समय मन में यह प्रश्न उठ रहा था कि उम्र में बहुत श्रधिक बड़े न होकर भी श्राचार्य पद प्राप्त करने वाले तुलसीगणी जहाँ जा रहे हैं, वहाँ पर एक विशेष जागृति उत्पन्न होती है तो क्यों ?

भक्तों की बड़ी भारी भीड़ थी। फिर भी मुक्ते आचार्यश्री के पास जाकर कुछ मिनट बातचीत करने का सुग्रवसर मिला। जो सुना था कि आचार्य तुलसी अन्य साधुभ्रों से कुछ भिन्न हैं, वह बात सच दिखाई दी। तेरापंथ सम्प्रदाय के छोटे-बड़े सभी लोग उनके भक्त हैं, उनसे बंधे हैं, किन्तु मेरी घारणा है कि आचार्य तुलसी सम्प्रदाय से ऊपर हैं। सच्चे साधु की तरह वे किसी धर्म विशेष से बंधे नहीं हैं। उनका अणुवत आन्दोलन शायद इसीलिए तेरापंथ अथवा जैन समाज में सीमित न रहकर भारतीय समाज तक पहुँच रहा है।

गत कुछ वर्षों में ग्राचार्यश्री तुलसी के विचार श्रीर उनका श्राशीर्वाद-प्राप्त समाजीत्थान का ग्रान्दोलन धीरे-धीरे राष्ट्रपति भवन से लेकर छोटे-छोटे गाँव तक चलता जा रहा है।

श्रभी कुछ समय पहले जब वे पूर्व भारत के दौरे से दिल्ली लौटे थे, तब दिल्ली में सभी वर्गों की श्रोर से एक अभिनन्दन समारोह हुआ था। तब मैं सोच रहा था कि अपने श्रापको श्रास्तिक समभते हुए भी धर्म निरपेक्ष देश में मुभे अपने ही समाज के एक साधु के श्रभिनन्दन में मंच पर सम्मिलित होना चाहिए या श्रधिक-से-श्रधिक मैं श्रोताश्रों में बैठने का श्रधिकारी हूँ। किन्तु तभी मेरे मन को समाधान प्राप्त हुआ कि साधु किसी समाज विशेष के नहीं होते। विशेष कर श्राचार्य तुलसी बाह्य रूप से भले ही तेरापंथ के साधु लगते हों, पर उनके उपदेश श्रीर उनकी प्रेरणा से चलाये जा रहे श्रान्दोलन में सम्प्रदाय की गन्ध नहीं है। इसलिए मैं श्रभिनन्दन के समय वक्ताश्रों में शामिल हो गया।

श्राचार्यश्री भारतीय साधुओं की भाँति यात्रा पैदल ही करते हैं। इसलिए छोटे-छोटे गाँवों तक वे जाते हैं। उन गाँवों में नयी चेतना शुरू हो जाती है। यदि इस स्थिति का लाभ बाद में कार्यकर्ता लोग उठाएँ तो बहुत बड़ा काम हो सकता है।



# तीर्थंकरों के समय का वर्तन

#### डा० होरालाल चोपड़ा, एम० ए०, डी० लिट् लेक्स्सर, जलकताविक्वविकालय

श्राज से ढाई हजार वर्ष पूर्व से, भगवान् महाबीर और भगवान् बुद्ध के समय से श्राहिसा के सिद्धान्त का निरन्तर प्रचार किया जा रहा है, किन्तु श्राचार्यश्री तुलसी ने श्राहिसा की भावना को जिस रूप में हमारे सामने रखा है, वह भ्रभूत- पूर्व ही है। श्राहिसा का श्रयं केवल इतना ही नहीं है कि हम मनुख्यों भ्रयवा पशुश्रों की भावना को श्राष्ठात न पहुँ वाएं, श्रापितु जीवन का वह एक विधायक मूल्य है। वह मन, बचन व कमें में सब प्रकार की हिंसा का निषेष करता है श्रीर समस्त चेनन श्रीर श्रचेतन प्राणियों पर लागू होता है। श्राचार्यश्री तुलसी ने भ्रपने श्राचार्यत्व काल में श्राहिसा की सच्ची भावना को, केवल उसके शब्द को ही नहीं, श्रापितु कियात्मक रूप से श्रपनाने पर बल दिया है।

अहिंसा जीवन का नकारात्मक मूल्य नहीं है। गांधीजी भीर आचार्यश्री तुलसी ने बीसबी शताब्दी में उसकी विधायक भीर नियमित रूप दिया है भीर उसमें गहरा दर्शन भर दिया है। यह आज की दुनिया की सभी बुराइयों की रामबाण भीषि है।

दुनिया श्राज विज्ञान के क्षेत्र में तीत्र प्रगति कर रही है श्रीर सम्यता की कसीटी यह है कि मनुष्य श्राकाश में श्रथवा श्रद्धाण्ड में उड़ सके, चन्द्रमा तक पहुँच सके श्रथवा समुद्र के नीचे यात्रा कर सके, किन्तु दयनीय बात यह है कि मनुष्य ने अपने वास्तविक जीवन का श्राशय भुला दिया। उसे इस पृथ्वी तल पर रहना है श्रीर श्रपने सहवासी मानवों के साथ मिल-जुलकर और समरस होकर रहना है। गांधीजी ने जीवन का यही ठोस गुण सिखाया था और श्राचार्यश्री तुलसी ने भी जीवन के प्रति श्रामिक दृष्टिकोण से इसी प्रकार कान्ति ला दी है। पुरातन जैन परम्परा में लालन होने पर भी उन्होंने जैन धर्म को श्राधुनिक, उदार और कान्तिकारी रूप दिया है जिससे कि हमारी श्राज की श्रावश्यकताओं की पूर्ति हो सके श्रयवा यों कह सकते हैं कि उन्होंने जैन धर्म के श्रसली स्वणं से सब मैल हटा दिया है और उसे श्रपने उज्ज्वल रूप में प्रस्तृत किया है जैसा कि वह तीर्थकरों के समय में था।

प्रेम, सत्य ग्रीर श्रहिसा में हमको उस समय विरोधाभास दिखाई देता है, जब हम उनके एक साथ ग्रस्तित्व की कल्पना करते हैं; किन्तु वे वास्तविक जीवन में विद्यमान हैं ग्रीर जीवन के उस दर्शन में भी हैं, जिसका प्रतिपादन ग्राचार्यश्री तुनसी ने किया है। यद्यपि यह ग्रसंगत प्रतीत होगा, किन्तु यह एक तथ्य है कि विज्ञान श्रीर सम्यता के जो भी दावे हों, मनुष्य तभी प्रगति कर सकता है, जब वह ग्राघ्यात्मिकता को ग्रपनायेगा ग्रीर ग्रपने जीवन को ग्रेम, सत्य ग्रीर ग्रहिमा की विवेणी में प्लावित करेगा।

जब इस प्रकार के जीवन को बदल डालने वाने व्यावहारिक दर्शन का न केवल प्रतिपादन किया जाता है, प्रत्युत उसे दैनिक जीवन में कार्यान्वित किया जाता है तो बाहर और भीतर से विरोध होगा ही। धणुव्रत ऐसा ही दर्शन है, किन्तु उसके सिद्धान्तों में दृढ़ निष्ठा इस पथ पर चलने वाले व्यक्ति को बदल देगी।

अणुवत आतम-सुद्धि और आत्म-उन्नित की प्रक्रिया है। उसके द्वारा व्यक्ति की समस्त विसंगतियाँ लुप्त हो जाती हैं और वह उस पार्थिव उथव-पुथल में से अधिक सुद्ध, श्रेष्ठ और शान्त बन कर निकलता है और जीवन के पथ का सच्चा यात्री बनता है।

भाचार्यश्री तुलसी अपने उद्देश्य में सफल हों जिन्होंने अणुत्रत के रूप में व्यवहारिक जीवन का मार्ग बतलाया है। उनकी धवल जयन्तियाँ बार-बार श्रायें, यही मेरी कामना है।

# इस युग के महान् अशोक

# श्री के० एस० घरणेन्द्रय्या निर्वेशक, साहित्यिक व सांस्कृतिक संस्थान, मैसुर राज्य

धाचार्यश्री तुलसी एक महान् पंडित तथा बहुमुखी प्रतिभा वाले ब्यक्ति हैं। लौकिक बुद्धि के साथ-साथ उनमें महान् ग्राध्यात्मिक गुणों का समावेश है। भ्राध्यात्मिक शक्ति से वे सम्पन्न हैं, जिसका न केवल ग्रात्म-शुद्धि के लिए, बल्कि मानव जाति की सेवा के लिए भी वह पूरा उपयोग करते है।

मानव जाति की आवश्यकताओं का उन्हें भान है। लोगों के श्रज्ञान और उनकी शिक्षा-हीनता को दूर करने में वे विश्वास करते हैं। अपने अनुयायियों में, जिनमें साधु और साध्वियाँ दोनों हैं, शिक्षा-प्रचार को वे खूब शेत्साहन देते रहे हैं। वे एक जन्मजात शिक्षक है और ज्ञान की खोज में आने वाले सभी की शिक्षा में वे बहुत रुचि लेते हैं।

उनका दृष्टिकोण स्राधुनिक है। पौर्वात्य स्रौर पारचात्य दोनों ही दर्शनों का उन्होंने स्रध्ययन किया है। यही नहीं वन्कि स्राधुनिक विज्ञान, राजनीनि तथा समाजदाास्त्र में भी उनकी बड़ी दिलचस्पी है।

लोगों में व्यापक नैतिक प्रधःपतन को देख कर उन्होंने सारे राष्ट्र में पुतीत अणुवत-आन्दोलन शुरू किया है। जीवन के आध्यात्मिक मूल्यों के प्रतिपादन में उनका उत्साह सराहनीय है। महान् अशोक में उनकी तुलना की जा सकती है, जिसने अहिंसा के सिद्धान्त की शिक्षा और उसके प्रसार के लिए अपने दूतों को मुद्दर देशों में भेजा था। सर्वोदय नेता के रूप में महात्सा गांधी से भी उनकी तुलना की जा सकती है।

उनका व्यक्तित्व धाकर्षक है भौर उससे धाष्यात्मिक प्रकाश तथा भन्तर्ज्ञान का तेज प्रस्फुटित होता है। लोग उन्हें पसन्द करते हैं और उन्हें शान्ति प्राप्त करने के लिए उसी तरह उनके पास भाते हैं जैसे ईसामसीह के पास जाते थे।

भगवान् बुद्ध की तरह उन्होंने ऐसे निःस्वार्थं और उत्साही अनुपायियों का दल तैयार किया है जो मनुष्य जाति की सेवा के लिए अपने जीवन अपित करने के लिए कटिबद्ध हैं। वे सभी विशिष्ट विद्वान् और निष्कलंक चरित्र वाले व्यक्ति है।

भाचार्यश्री तुलसी भ्रभी सँतालीस वर्ष के ही हैं, किन्तु उन्होंने सेवा भौर भात्म-त्याग के द्वारा त्याग भौर बलि-दान का भ्रमुपम उदाहरण उपस्थित कर दिया है।

भाचार्यंश्री तुलसी के प्रति मैं बड़ी विनम्नता से भपनी श्रद्धांजलि भपित करता हूँ।



# सूझ-बूझ ऋौर शक्ति के धनी

पं० फुष्णचन्द्राचार्य

श्रीभव्ठाता, भी पाइबंनाथ विद्याश्रम, हिन्दू विद्वविद्यालय, वाराणसी

प्राचार्य तुलसी में सूफ-बूफ, शक्ति और सामर्थ्य कितना है, यह किसी से खिपा नहीं रहा। श्राज से पच्चीस वर्ष पहले साधु-शिक्षण का कार्य प्रारम्भ करना और बाद में अणुद्रत-आन्दोलन उठाना, उनकी समय को पहचानने की शक्ति तथा समाज को अपने विचारों के साँचे में ढालने के सामर्थ्य की परिचायक हैं। तेरापंथ सम्प्रदाय के दो सौ वर्षों के इतिहास में इनका अपना विशिष्ट स्थान है। इन्होंने एक ऐसे कि इचुस्त सम्प्रदाय एवं समाज को समय की गति पहचानने की दृष्टि दी है, जो दूसरों के लिए सहज नहीं। आधुनिक ज्ञान-विज्ञान की दृष्टि से सर्वथा पिछड़े हुए अपने साधु-साध्वी संघ को युगानुरूप शिक्षत करने में इन्हें स्वयं कितना परिश्रम करना पड़ा, अध्यवसाय से काम लेना पड़ा, यह सब बड़ा कष्ट साध्य था। वर्षों पहले यदि वे अपने साधु-साध्वी संघ को शिक्षत करने में न जुटते तो बाद में अणुद्रत-श्रान्दोलन को भी नहीं उठा सकते थे और न युगानुरूप दूसरी प्रवृत्तियों को ही शुरू कर सकते थे। नि:सन्देह उनका शिक्षत त्यागी संघ ही आज स्वयं उनको आगे बढ़ने में बल दे रहा है और प्रेरक बना हुआ है। आचार्य नुलसी की विलक्षण कर्तृत्व शक्ति पर दूसरे जैन सम्प्रदाय वाले भी चिकत हैं।

आवार्यश्री तुलसी की शक्ति और प्रभाव इन सबको देख-सुनकर अच्छे-अच्छे विचारशीलों के मन में अब ये भाव आने लगे हैं कि आवार्यश्री तुलसी कुछ और आगे बढ़ें, तो कितना अच्छा हो। वे अपने प्रभाव और कार्यशीलता का कुछ और विस्तार कर सकें, तो इससे समूचे जैन समाज को आगे लाने व बढ़ाने में विशेष सहायता मिल सकेगी। समग्र जैन समाज की कियाशीलता और संगठन भी बढ़ सकेंगे। जो चीज अभी केवल तेरापंथ सम्प्रदाय तक सीमित है, वह सारे जैन समाज में जा सकेगी। उनका यह भी विचार है कि आवार्य तुलसीजी जैसे युगदर्शी और प्रभावशाली व्यक्तित्व के लिए अब यह काम विशेष दुरूह या दु:साध्य नहीं है। प्रश्न है, विचारों को और भी उदात्त एवं विशाल बनाने का। आवार्य तुलसी सारे जैन समाज को एक मंच पर लाने का कोई विशिष्ट कार्यक्रम रख सकेंगे, तो उनकी कान्तिकारिता सूर्य के प्रकाश की तरह चमक उठेगी। अब हम उनसे एक यह अपेका भी रख रहे हैं।



# कर्मण्येवाधिकारस्ते

#### रायसाहब गिरधारीलाल

श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने मानव को निष्काम कमं करने का बादेश दिया है। फल की इच्छा कमं को पंगु बना देती है। भौतिक सुखों की लालसा मनुष्य को मृगनृष्णा के अन्धकूप में ढकेल देती है। विधि की कंसी विडम्बना है कि ग्राज का वैज्ञानिक ग्रह-नक्षत्रों की थाह लेने के लिए तो उतावला हो रहा है, परन्तु जिस जन्म भू की गज में लोट-लोटकर बड़ा हुया है, जिसकी गोद में घुटनों के बल रेंग-रेंग कर उसने खड़ा होना सीखा है, उसके प्रति उसका कर्नध्य क्या है श्रीर कितना है; इस पर सम्भवतः वह शान्त चित्त से सोचने का प्रयास ही नहीं करना चाहता। नित नये ग्राविष्कारों के इस धूमिल वातावरण में भी विश्व-हित-चिन्तन करने वाले, वसुधा-भर को परिवार की संज्ञा देने वाले, ग्रपने को प्रणु-प्रणु गलाकर भी पर-हित-चिन्तन करने वाले जीव मात्र में प्रभु की मूर्ति के दर्शन करने वाले, सत्य, प्रहिसा के समर्थक, मानवता के पूजक भारतीय महारमाद्यों के पुष्य-प्रताप का डंका ग्राज भी पृथ्वी पर बज रहा है। ग्रणुन्नत-प्रान्दोलन के प्रवर्तक महामहिम ग्राचार्यश्री तुलसी ऐसे ही गण्यमान्य महापुरूषों में से हैं, जिन्होंने साधु-संघ को समयानुकूल राष्ट्रीय चरित्र के पुनरुत्थान में लगाकर मानव जगत् के समक्ष एक नवीन दिशा को जन्म दिया है। ग्रापने चारों दिशाग्रों में जन-मानस में जो एक नैतिक-जागरण की पताका फहराई है, वह अनुकरणीय है। महन्नों मीलो की पदयात्रा करके राष्ट्रीय जागृति का ग्रापने जनगण मन में दिव्य सन्देश पहुँचाया है।

हमारी सरकार जहाँ पंचवर्षीय योजनाओं द्वारा देश को समृद्धिशाली बनाने के लिए प्रयत्नशील है, वहाँ आचार्यश्री तुलसी का ध्यान देश के नैतिक पुनरुत्थान की और जाना और तुरन्त उस और कदम बढ़ाना, देश के आवाल वृद्ध के हृदयाकाश में नैतिकता की चिन्द्रका का प्रकाश भरना, मानव धर्म की व्याख्या करना आदि सत्कार्य ऐसे हैं जिनके कारण आचार्यजी के चरणों में हमारा मस्तक श्रद्धा से भुक जाता है। आपने भारतीय संस्कृति और दर्शन के मत्य, आहंसा आदि सिद्धान्तों के आधार पर नैतिक वतों की एक सर्वमान्य आचार-संहिता प्रस्तुत करके जनता की अपरिष्कृत मनोवृत्ति का परिष्कार करने के लिए स्तृत्य प्रयत्न किया है।

काल की सहस्रों परनों के नीचे दवे हुए नैतिकता के रत्न को जनता जनार्दन के समक्ष सही रूप में प्रस्तृत करके उसके माहात्म्य को समक्षाया है। श्रापके श्रणुवत श्रनुष्ठान में संलग्न लाखों छात्र श्रौर नागरिक श्रपने जीवन को धन्य बना रहे हैं।

श्राचार्य तुलसी की विद्वत्ता सर्वविदित है। श्राप प्रथम झाचार्य हैं जो अपने अनुगामी साधु-संघ के साथ सर्व जन हिताय अणुद्रत का प्रचार करने के लिए व्यापक क्षेत्र में उतरे है। २६ सितम्बर, १६३६ को आप बाईम वर्ष की अवस्था में ही आचार्य बने। प्रथम द्वादश वर्षों में आप तेरापंथ साधु सम्प्रदाय में शैक्षणिक और साहित्यिक क्षेत्र में प्रयत्नशील रहे। संस्कृत, हिन्दी, राजस्थानी भाषाओं की श्रीवृद्धि में आपका व्यापक योग रहा है। आपके परिश्रम के फलस्वरूप ही संघ में हिन्दी का अधिकाधिक प्रचार हुआ।

कमंबीर, स्वनामधन्य ग्राचार्यश्री तुलसी का ग्रिभिनन्दन निःसन्देह सत्य, ग्रहिसा और अणुव्रत का श्रिभिनन्दन है। श्रापके प्रभावशाली श्राचार्य काल के पच्चीस वर्ष पूरे हो रहे हैं। इसी उपलक्ष में मैं भी कुछ श्रद्धा-सुमन श्रापकी सेवा में समिप्त करना चाहता हूँ। ग्राप जैमे पथ-प्रदर्शकों की देश को महती ग्रावश्यकता है। परम पिता परमात्मा ग्रापको दीर्घायु करे, जिससे देश में फैली ग्रानैतिकता का समूलोन्मूलन होकर भारत रामराज्य का श्रानन्द ले सके।

# विद्वान् सर्वत्र पूज्यते

भी ए० वी० **माचार्य** मंत्री, पूना करनड़ संघ

भाज के स्प्रतिक युग में मनुष्य ने निसर्ग पर घपने श्रखण्ड परिश्रम द्वारा विजय प्राप्त कर ली है। मनुष्य प्रगतिशील तो है ही, लेकिन वह भाज निराशा और भय के अन्धकार में पूरा फँस गया है। उन्नित का मार्ग टटोलते हुए वह अभोगित के गढ़े में क्यों गिर रहा है? इसका कारण है—उसकी राक्षसी महत्त्वाकांक्षा। वह चाहता है कि वह इसना बलवान् बन जाये कि दुनिया की सारी शक्ति का निर्मूलन वह अकेला कर सके। लेकिन वह भून जाता है कि इस संसार में एक से दूसरा भिषक बनने का प्रयत्न हमेगा ही करता रहता है और परिणाम निकलता है—सब का ही सबंनाश।

आज मनुष्य मनुष्य का विरोधी बनने में व्यस्त हो रहा है। जाति, धर्म, भाषा, पंथ, रंग, राज्य, प्रान्त, देश आदि जो केवल भौगोलिक और व्यावसायिक उपगुक्तता पर निर्मर रहे हैं, वे ही आज एक-दूसरे को शत्रुत्व पैदा करने के साधन बन कर नानाशाही को निमंत्रण दे रहे हैं। इस अराजक स्थिति में (Chos) मनुष्य जाति, मैत्री का विकास करने में कभी सफलता नहीं पायेगी, अपिनु नष्ट जरूर हो जायेगी।

#### यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारतः ।

भगवान् श्रीकृष्ण ने उपर्युक्त शब्दावली में यही बताया है कि जब भारत में ऐसी ग्लानि, ऐसा घनघोर श्रंधकार, ऐसी जटिल समस्या पैदा हो जायेगी, तब उस ग्लानि को हटाने के लिए, उस श्रंधकारमय जीवन को उजाला देने के लिए श्रीर उस जटिल समस्या को हल करने के लिए इस महान् देश में कोई-न-कोई श्रेष्ठ विभूति जरूर पैदा हो जायेगी श्रीर वह महान् विभूति है—शावार्यश्री तुनसी।

मनुष्य जाति का विकास और उन्नित उसके सत्-चरित्र, उसकी एकता श्रादि पर निर्भर है। इन महान् तत्त्वों की उपासना के लिए श्राचार्यश्री ने जन्म लिया है। श्राचार्यश्री जो उपदेश देते हैं, वह होता है श्रणुव्रतों का श्रीर पद-यात्रा करके इस देश के कोने-कोने में सर्दी श्रीर गर्मी से संघर्ष करते हुए पालन करते हैं—महात्रतों का। मराठी भाषा में एक मुहावरा है जिसके शब्द हैं:

# किये बीण बाबालता व्यवं बाहे !

स्वतः बिना कुछ किये दूसरों को कोरा उपदेश करना विफल है। श्राचरणहीन उपदेश वास्तव मे श्रात्मवंचना है। श्रम श्राचार्यश्री के जीवन का कम है। भाग्यवाद का समर्थन करने वालों की श्रक्त वैण्यता पर श्राचार्यश्री हँसते हैं श्रीर श्रत्यन्त कठोर कष्ट उठाने वालों को श्राशा भरी दृष्टि से देखते हैं। उनकी दृष्टि से पुरुष का काम है सत्तत सदुद्योग।

कोटि-कोटि जनता को ज्ञानामृत देने के लिए जो वाणी का वैभव होना चाहिए, वह ग्रापकी वाणी में है। इसलिए ग्राप विद्वत्-सभा में तथा साधारण जनता में ग्रपना प्रभाव डालने में सदा सफल हुए हैं। राजा की महानता होती है उसके राज्य में, परन्तु विद्वानु की सारे विश्व में। इसीलिए कहा गया है—स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वानु सर्वत्र पुज्यते।



# शतायु हों

#### सेठ नेमचन्द गर्धया

उत्तरोत्तर वर्धमान एवं विकासशील तेरापंथ संघ के नव श्राचार्यों में से उत्तरवर्ती पाँच श्राचार्य एवं मन्त्री मुनि श्रादि तपोनिष्ठ चरित्रात्माओं के घनिष्ठ सम्पर्क में भाने का, यतिकचित् सेवा करने का एवं उनके शुद्ध, सात्विक स्नेह प्राप्त करने का जिस परिवार को श्रविश्विन्न श्रानन्ददायक श्रवसर प्राप्त होता श्रा रहा है, उस परिवार का एक सदस्य नवम श्रीधशास्ता के धवल समारोह के श्रवसर पर उनके प्रति श्रद्धा सुमन भेट करे, यह उसके लिए परम श्राल्हाद का विषय है। इस पच्चीस वर्ष की श्रविश्व में तेरापंथ संघ की जी सर्वतोमुखी वृद्धि हुई है, ज्ञान, दर्शन, चारित्र व तप का जो विकास हुशा है, वह किसी से श्रविदित नहीं। श्राज राजस्थान में ही नहीं, भारत के प्रत्येक प्रान्त में 'तेरापंथ' का नाम सर्वविदित हो रहा है। इसके मूल में श्राचार्यश्री तुलसी है जिनकी शुद्ध सनातन सिद्धान्तों पर वृद्ध निष्ठा है श्रीर जो श्रात्म प्रत्यय के मूर्तिमान श्रवतार हैं। यह श्राप ही की दूरदर्शिता का फल है कि श्रापने धर्म को सम्प्रदाय के घेरे से ऊँचा उठाकर उसे ब्यापक श्रीर बहुजन हिताय बनाया है; उसे जाति, वर्ण, लिंग निरपेक्ष बनाया है।

आज न केवल तेरापंथ समाज अपितु समग्र जैन समाज धन्य है कि आप जैसा एक महान् आचार्य उसे मिला है। धर्म सम्प्रदायों में एकता स्थापित करने के लिए आपके सफल प्रयास विराम्मरणीय रहेंगे। जो इसे अफीम समभते थे, वे ही अब धर्म की आवश्यकता और उपादेयता समभने लगे है। यह आप ही के कठिन प्रयास का फल है। धर्म को आप पुनः समाज व राष्ट्र के शिखर स्थान में स्थापित करने में समर्थ हुए हैं, यह कितने हुई का विषय है।

भ्राप शतायु हों, मानव को सच्चे भर्य में मानव बनाने का श्रापका अभियान सफल हो, अणुबत का विस्तार कोने-कोने में हो, देश का नैतिक धरातल शुद्ध बनाने में भ्राप सफल हों, अहिंसा और संयम को माधारण व्यक्ति भी भ्रापके मार्य-दर्शन से जीवन में उतार पार्य, यही हमारी कामना है।



गुरुता पाकर तुलसी न लसे गुरुता लसी पा तुलसी की कृपा

—गोपांलप्रसाद ध्यास

# अर्चना

### श्री जबरमल भण्डारी भ्रम्यक्ष, श्री जै० व्हे० ते० महासभा, कलकत्ता

श्रद्धा व्यक्ति के कार्यों के प्रति होती है धौर भिक्त उसके व्यक्तित्व के प्रति । जिस व्यक्ति में दोनों का समावेश होता हो, वह उसका धाराध्य बन जाता है। कोई भी धपने धाराध्य के प्रति धपने भावों को शब्दों में बाँधना चाहे तो वह महान बुष्कर कार्य होगा। जैसे कहा भी गया है:

#### भाषा क्या है भार्बों का लंगहाता सा अनुवाद

बिल्कुल सत्य है। परन्तु यह भी सत्य है कि भाषा के माध्यम से ही भाव व्यक्त किये जा सकते हैं।

"तेरा चित्र (व्यक्तित्व) भीर तेरे बादेश व विचार (कार्य) सदा मेरे हृदय में रहते हैं, जिन्हें देख अक्सर लोग पूछ बैठते हैं मैं तेरा कौन ?"

"मैं यह जानते हुए भी, मैं तेरा कौन हूँ, लोगों के समक्ष स्पष्टीकरण नही कर पाता।"

"तब क्या इस रहस्य का उद्घाटन तू ही न कर सकेगा।"

उपरोक्त पंक्तियों मैंने झाचार्यश्री तुलसी के प्रति कुछ वर्षों पूर्व लिखी थीं, परन्तु मैंने सोचा, गंभीरता पूर्वक सोचा, भ्रीर इस नतीजे पर पहुँचा कि भादेशों श्रीर विचारों को हृदय में कैवल रखने से ही काम नहीं चलेगा, उन्हें तो जीवन में लक्ष्य बना कर उतारना होगा।

तूने तेरे शक्ति-स्रोत से थोड़ी-सी सुधा पिलाई, जिसके बल में मैं निर्भय होकर ग्रबाध गति से ग्रपने नक्ष्य की भोर बढ़ने लगा।

तेरे भादेशानुसार सम्प्रदायवाद का रंगीन चश्मा हटाकर दृष्टि का शोधन किया तो यथार्थता के दर्शन होने लगे। दूसरों के दोष देखने की भादत जो मेरे में थी, तेरी प्रेरणा से छूटने लगी; भपने दोषों को देखने में प्रवृत्त होने लगा। सम्प्रग् दृष्टि बना।

जब मैंने मेरे प्रति व्यंग्य सुने, घबराया, लड़लड़ाया, तेरे चरणों में श्रा पड़ा, बात रखी, तुभसे जीवन का सम्बल मिला। तूने मुभ्ने प्रक्षरों को सूत्र में बाँघने के लिए प्रेरित किया। जीवन में नवीन प्रकाश दिया कि पत्थर के बदले कभी ईट न फेंको। लक्ष्य-च्युत होने के प्रवसर भी मेरे जीवन में आये, पर तूने शिक्षा द्वारा ऊँचा उठाया।

इस पावन बेला में मेरी श्रद्धा-कुसुमाञ्जलि जो मेरे झन्तर हृदय मे उमड़ रही है, स्वीकार करो। यही मेरी अर्चना है।

तुम दीर्घ-जीवी बनो, मेरा व तेरापंथी समाज का ही नहीं, सारे ससार का पथ प्रदर्शन करते रहो।



# का विध करहु तव रूप बखानी

भी शुभकरण बसाणी

#### तिरा जनवन नयन बिनु बानी । काविथ करहु तब कर बसानी ॥

श्री राम के ग्रनन्य भक्त किव श्रेष्ठ तुलसीदासजी का यह पद ग्राज पुनः-पुनः मुक्ते स्मरण हो रहा है, ग्रतः ग्रनेक ग्रनिवंचनीय ग्रनुभूतियों के साथ-साथ मानवता के उज्ज्वल प्रतीक ग्राचार्यश्री तुलसी के प्रति इस श्रुभ ग्रवसर पर ग्रपने हृदय की समस्त मंगल कामनाएं, विनम्न ग्रभिनन्दन ग्रीर ग्रद्ट श्रद्धा की ग्रञ्जिल समर्गित करता हुँ।



# युग प्रवर्तक ऋाचार्यश्री तुलसी

डा० रघुवीरसहाय माथुर, एम० एस-सी, पी-एच० डी० (यू० एस० ए०) बनस्पति निवान शास्त्री, उत्तरप्रदेश सरकार, कानपुर

हमारे देश में समय-समय पर ऋषि, मुनि और संतों ने चिरत्र-निर्माण श्रीर श्राध्यात्मिक विकास को प्रबल बनाने का प्रयास किया है। इस प्रयास में जितनी सफलता भारत को मिली है, उतनी सम्भवतः श्रन्य किसी देश को नहीं मिली। इसीलिए हमारे देश की कुछ विभूतियाँ समर हैं— असे राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर श्रादि, जिनको हम श्रवतार मानते हैं। इनके गुणगान से मनुष्य जाति के हजारों दुःख शताब्दियों से मिटते रहे है श्रीर धर्म-पथ पर श्रागे बढ़ने की प्रेरणा मिलती रही है। भगवद्गीता में स्वयं भगवान कृष्ण की समर वाणी है:

#### यवा यवा हि धर्मस्य ग्लानिभवति भारतः। अभ्युत्यानमधर्मस्य तदारमानं सुजाम्यहम्।।

साक्षात् भगवात् के प्रतीक इन श्रवतारों के श्रांतिरक्त संत, महात्मा तथा श्राचारों की भी हमारे देश में कोई कभी नहीं रही। जब-जब हमारी जनता चित्र श्रष्ट हुई, तब-तब कोई-न-कोई महात् सत हमारे सामन अपने विमल चित्र का दिग्दर्शन कराता रहा। परन्तु धर्म-अधर्म तथा सात्विक एवं तामस भावनाओं का समागम सदा से रहा है श्रीर रहेगा। केवल हम में यह शक्ति होनी चाहिए कि हम अधोगित के मार्ग में गिरने से बच सके श्रीर काम, कोध, मद, लोभ के माया-जाल में उतना ही उलभें, जिससे आधुनिक श्रौद्योगिक काल के सुखों से वंचित न होकर भी श्राध्यात्मिक पथ में विषय न हो सकें। इस प्रकार के भौतिक सुख-प्रधान युग में रहते हुए श्राध्यात्मिक सुख को पूर्णतः प्राप्त करने का उदा-हरण हमारे समक्ष राजा जनक का है; परन्तु श्राज के प्रजातान्त्रिक युग में राजा जनक जैसे लोगो का होना तो सम्भव नहीं है, श्रतः भौतिकबाद के मुखों को भोगते हुए भी कम-से-कम ग्राचार्यश्री तुलसी के बताये हुए श्रणुवतों का पालन तो स्रवस्य ही कुछ कर सकते हैं।

समाज के प्रति तथा सभी धर्मानुयायियों के प्रति आचार्यश्री का कठोर तपः पूत जीवन एक जीता-जागता उदा-हरण है। स्वतन्त्रता के बाद जो चरित्रहीनता आज देश में देखी जा रही है, उसके अन्धकार को मिटाने के लिए आचार्यश्री देदीप्यमान सूर्य के सदृश हैं। हम शत-शत कामना करें कि वे चिरायु हों और समाज में वह साहस भरें कि बताये हुए सदाचार के पथ पर वह चल सके।

# विशिष्ट व्यक्तियों में ऋग्रणी

भी कन्हैयालाल दूगड़ संस्थापक, गांधी विद्यामस्टिर, सरदारशहर

श्राचार्यंश्री तुलसीरामजी महाराज जैन समाज के उन इने-गिने विशिष्टि व्यक्तियों में श्रग्रणी हैं, जिन्होंने समाज को उन्नत करने में श्रथक परिश्रम किया है। श्रणुवत भीर नई मोड़ के नाम से जो साधना की नई दिशा मानव समाज को दा है, उसका सारा श्रेय श्राचार्यंश्री को ही है। धवल समारोह के उपलक्ष पर मंगल कामना के रूप में मेरी प्रभु से यही प्रार्थना है कि वह इनसे भविष्य में भी इसी प्रकार की श्राध्यात्मिक, नैतिक और सामाजिक श्रनेक सेवाएं ले।



#### उज्ज्वल सन्त

#### थी चिरंजीलाल बड़जाते

महापुरुषों का जीवन सनेक विशेषताएं लिए हुए रहता है। उनके जीवन में सलौकिक प्रतिभा श्रौर सहनशीलता की भावना पूर्णरूपेण समाई हुई रहती है।

श्राचार्य तुलसीजी ऐसे ही महापुरुषों में भनोसे हैं। उनकी तेजोमय मुखमुदा न में बहुत ही प्रभावित हुआ हूँ।

प्राज पन्द्रह वर्षों से मैं उनके सान्निध्य का लाभ उठा रहा हूँ। सबसे पहले मैंने उनके दर्शन जयपुर में कियं। नाम वैसे मुन रखा था। देखने की लालमा थी। ग्राखिर संयोग मिल ही गया। जब देखा, तब उनके तेज भौर प्रभावकारी मुखमण्डल ने मुभ्रे उनकी भ्रोर खिचने को बाध्य कर दिया और मैं निरन्तर उनकी भ्रोर खिचना गया। उनमें प्रभावित होता रहा। उनके उपदेशों को भ्रपने जीवन में उतारने की भरसक कोशिश करता रहा। फिर तो ओधपुर, कानपुर, सरदारशहर, बम्बई भ्रादि कई स्थानों पर उनके दर्शन करने गया। उनके पास जाकर अमृतदाणी मुनकर एक भ्रतिवैचनीय शान्ति का भ्राभास होता है।

भारतीय सांस्कृतिक परम्परा ऐसी ही शान्ति की इच्छुक रही है और इसी में उसके जीवन का रूप मिलता रहा है और तुलसीजी जैसे त्याग और संयमधन संतों के सान्तिष्य का लाभ जिमे मिल जाये, उस मनुष्य के तो ब्रहोभाग्य ही समक्तिये।

उन्हीं की वजह से मैंने मणुव्रत पालन किया। उनके पास जाकर मैंने परिग्रह परिमाण व्रत लिया। सच कहूं तो ऐसा मार्ग उनके पास से मुक्ते मिला है कि जिसके कारण मेरा जीवन धन्य हो गया है, सफल हो गया है। एक वड़े संघ के भाषार्य होते हुए भी श्रभिमान एवं मोह की भावना का लेश मात्र भी उस मानव देहधारी भाषार्य में नहीं और यही कारण है कि तुलसीजी विरोधियों द्वारा भी पूजित होते रहे हैं। वे भी जब उनका स्मरण करते हैं तो इस निष्कलंक व्यक्तित्व के समक्ष ग्रपना सिर भुका लेते हैं।

आज यह अभिनन्दन उनका नहीं, उनके तपःशील जीवन का है। आचार्यत्व का है और संस्कृति के उत्थापक एवं जलकमलवत् निरपेक्षी स्वयं प्रभु संत का है जिसने जीवन ज्योति जगा कर पीड़ित मानवता को प्रकाश दिया, उसे चलने का मार्ग बताया। जीवन के जीने का मन्त्र सिखाया।

उनके इस झिमनन्दन के अवसर पर मेरी हार्दिक ग्रुमकामनाएं स्वीकार करें।

•

# तुमने क्या नहीं किया ?

#### श्री मोहनलाल कठौतिया

प्रपती विशाल विचारघारा द्वारा इस धर्म-परायण भारत में अनेकों साम्प्रदायिक भेद मिटाये।

पपने ससीम प्रात्म-बल के प्रयोग से इस स्वतन्त्र राष्ट्र की जनता का हृदय-परिवर्तित कर जाति-पाति व ऊँच-नीच के बन्धन तोड़े।

अपने मिद्वितीय व्यक्तित्व की प्रभा से सामाजिक अन्ध-विश्वासों व कुरूढ़ियों की जड़ें उखाड़ीं।
अपनी अनवरत पद-यात्रा द्वारा भारत के गिरते हुए जनमानस में नैतिक और आध्यात्मिक चेतना जागृत की।
अपने गुरुओं के अटल अनुगामी रहते हुए मान व अपमान पर समद्दिर रखकर संघर्षों का सफल सामना किया;
विरोध को विनोद मानकर उसे अहिसा से जीता।

सच्चे धर्माचार्य के रूप में तथाकथित धर्म के प्रति फैलती हुई ग्लानि को मिटा, जन-जन को सत्य और ग्रहिंसा का सच्चा मार्ग दिखाया, भनेकों भ्रमिमानी व विलासी जीवन बदले।

भपने स्वाभाविक वात्सल्यपूर्ण हृदयोद्गारों से संसार को विश्व मैत्री का पाठ पढ़ाया। तेरापंथ के चलते-फिरने भाष्यात्मिक विश्वविद्यालय को विस्तृत बनाकर ज्ञान-वृद्धि का सर्वोत्तम साधन

मानव कत्याण के लिए तुमने क्या नहीं किया?



# अहिंसा व प्रेम का व्यवहार

#### रा० सा० गुरुप्रसाद कपूर

हमारे देश की धार्मिक व सांस्कृतिक परम्पराएं विश्व में सब में प्राचीन है। समय के साथ-साथ प्रनेक उतार-जहाव माये और भारतवर्ष पर भी उनका प्रभाव पड़ा। परन्तु फिर भी हमारा मूल धमं और हमारी संस्कृति इन तूफानों को सहन करती हुई भागे बढ़ती गई और समय-समय पर हमारे समाज में ऐसे संत, महात्मा, ऋषि माते रहे, जिन्होंने हमें प्रेरणा दी और भटकने से बचाया। जब कभी भी हमारे देश का नैतिक पतन हुमा है, म्रथवा धमं की ग्लानि हुई है; तब-तब ईश्वर की प्रेरणा से आचार्य तुलसी जैसे महापुरुष भौर संतों ने जन्म लेकर हमें मार्ग दिखाया है। भ्राज हमारे देश की जो हालत है, समाज में जो अनैतिकता, व्यभिचार, भ्रष्टाचार का बोलबाला हो रहा है, वह हमें कहाँ ने जायेगा और हमारा जिस कदर नैतिक पतन हो रहा है, इसका क्या परिणाम होगा, इसकी कल्पना भी भयावह है। ऐसे समय में भाचार्यश्री तुलसी ने देश के कोने-कोने में भ्रमण करके भ्रपने उपवेश के, द्वारा जो जन जागृति की है, वह हमारा सही मार्ग प्रदर्शन करती है। भाचार्यंजी ने जो रास्ता दिखाया है, उससे मानव जाति का कल्याण होगा, इसमें मुभे तिनक भी सन्देह नहीं है। मैं उनके महान् व्यक्तित्व और उपवेशों से भ्रत्यन्त प्रभावित हुमा हूँ भौर मुभे भाशा है कि उनके उपवेशों के फलस्वरूप जनता सत्य, महिसा व प्रेम के व्यवहार को भिषकाधिक भ्रपनायेगी तथा समाज का नैतिक स्तर ऊँचा उठगा। मैं भ्राचार्यंजी के चरण कमलों में भ्रपनी श्रदाजिल भ्रमित करता है।

# धरा के हे चिर गौरव

जिम्मो हजारों साल घरा के हे महामानव! मागत भीर भनागत की संकुल रेखा में तुम कब सिमटे घरती के हे नित नव उज्ज्वल! तुमने भपनी भमर सूक्ष से वर्तमान को समका पर कब समक सका गुग तुमको परिमल। जिम्मो हजारों साल घरा के हे चिर वैभव। तुमने ही प्राणों के मिष था स्वर उँडेला पीड़ित सांसों से भाहत जीवन-सरगम में भंकुर बनकर तुम ग्राये; इस नभ-घरती के उच्छ्वासों-नि:श्वासों के भिलमिल संगम में जिम्नो हजारों साल धरा के हे चिर गौरव।

# लघु महान् की खाई

सत्य साधना के बल से भ्रालोक भ्रनोखा पाया तमः पुञ्ज परिव्याप्त पंथ में उसको है फैलाया चाह तुम्हारी यह वसुधा भ्रव स्वर्ग तुल्य बन जाये नैतिकता के गान धरा का कण-कण फिर से गाये पाट नुके तुम साम्य भाव से लघू महानु की खाई।

#### तपःपूत मृनिश्री मणिसासजी

तपःपूत !
तुमने ही युग को
नव प्रकाश दे
प्रत्यकार में
भूले भटके
पड़ते-गिरते
हर राही को
मंजिल का विश्वास दिखाया
खोई-सोई मानवता को
झाला का भालोक दिखाया।

#### पाप सब हरते रहेंगे मृतिभी मोहनलालजी

विषव के इतिहास में तेरा ग्रमर ग्रमिशान होगा, विश्व के हर स्वास में तेरा चिरन्तन ज्ञान होगा। विश्व को सन्देश देगी, समन्वय की भावना शक्ति-युत श्रादेश देगी। सत्यशोधक दार्शनिकता उच्च पद श्रासीन होगी, ग्राप्रहहीन ग्रमिथ्यक्तियौं कभी नहीं प्राचीन होंगी। पदिचह्न तेरे पंथ बन दर्शन सदा करते रहेंगे, प्रस्फुटित वे शब्द तेरे पाप सब हरते रहेंगे।

#### शुभ अर्चना मुनिबी बसन्तीलालजी

क्षितिज के इस थाल विशाल में उदित स्विणिम-मूर्य सुदीप ले प्रवर-पांशु पसारित प्रक्ष में प्रकृति यों करती तव प्रचंना। लिलत घोलित लाल गुलाल से विहग-कृजित सुन्दर गीत गा पवन डोलित चामर चारु से प्रकृति यों करती शुभ श्रचंना।

#### तुम कौन ? साध्वीश्री मंजुलाजी

तुम कौन ? गगन के हसित चाँद !

श्रथवा धरती की चिनगारी !

पीकर नित विष की कड़ी घूँट

प्राणों का श्रंकुर श्रकुलाया
साँसों का पंछी नीड़ छोड़
है तड़प रहा वह घबराया
है हर मुरभा-सा प्राण तुम्हारे सुधा-सेक का श्राभारी ।

## गीत

#### साध्वीधी सुमनधीजी

नयन गवासों से मानस क्यों घीमे-घीमे भाँक रहा है?

गुभ्र प्रात की मधुर-मधुर

स्मृतियों के भाँचल में छिप-छिप कर,
विर परिचित से इस अतीत भौ'

भावी में अनुराग विद्याकर,

वर्तमान के नील गगन में, भाशा के रथ हाँक रहा है।
नयन गवासों से मानस क्यों घीमे-घीमे भाँक रहा है?

# असाधारण नेतृत्व

#### भी कृष्णवत्त, सबस्य राज्यसभा

मैं प्राचार्यश्री तुलसी के महान् व्यक्तित्व के धागे नतमस्तक होता हूँ। वचपन से धौर उसके बाद का उनका असाधारण जीवन यह सिद्ध करता है कि विधाता ने उनको मानवता के एक सच्चे नेता के रूप में गढ़ा है।

उनकी शिक्षाओं का सौन्दर्य और प्रभाव इस बात में निहित है कि वे जो कहते हैं, उस पर स्वयं भाचरण करते हैं। अपने अनुयायियों और दूसरों पर उनके असाधारण प्रभाव का यही रहस्य है। मानव जाति के इतिहास में यह नाजुक समय है और इस समय केवल भारत को ही नहीं, समस्त संसार को ऐसे नेतृत्व की भावश्यकता है।

श्राज की परिस्थितियों में आचार्यश्री द्वारा संचालित अणुद्रत-आन्दोलन बहुत ही उपयुक्त है। व्यक्तियों के जीवन को सुधारने के लिए भी वह आवश्यक है और तीसरा विश्व-युद्ध छिड़ने पर श्राणिवक अस्त्रों के कारण सम्पूर्ण विनाश के खतरे से मानव जाति को बचाने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों को नैतिक श्राधार देने के लिए भी वह आवश्यक है।

मानव-जाति की कल्याण की कामना करने वाले सभी व्यक्तियों को ग्राचार्यश्री के इस ग्रान्दोलन का समर्थन करना चाहिए।



# पूज्य आचार्य तुलसीजी

श्री तनसुखराय जैन मंत्री, भारत वेजीटेरियन सोसाइटी

शाचार्यश्री तुलसी जी महाराज के मुक्ते पहले पहल सरदार शहर में दर्शन हुए थे। उनका तेज व विशाल व्यक्तित्व देखकर मुक्ते बहुत प्रसन्तता हुई। कुछ देर बातें करने के बाद उनकी योग्यता की गहरी छाप पड़ी। मैं वहाँ दो दिन ठहरा और तमाम व्यवस्था देलकर बहुत सन्तोष हुआ। साधुओं के इतने बड़े समूह पर एक आचार्य का नियन्त्रण बड़े कमाल की बात है जोकि और सम्प्रदायों में बहुत कम देखने में आता है। साधुओं के काम करने की पाली और उनके कार्यों की रिपोर्ट आचार्यजी तक पहुँचाना और नियन्त्रण में रहना यह एक अति उत्तम व्यवस्था है। आचार्यजी महाराज जहाँ भी विराजते हैं, यहाँ की व्यवस्था भी ठीक ढंग से होती है।

उसके बाद आचार्य तुलसी जी महाराज तथा अन्य तेरापंथी सामु-मुनियों से मेरा बहुत सम्पर्क रहा और अभी भी समय-समय पर उनके दर्शन करता रहता हूँ। इस समय अणुवत-आन्दोलन जोकि पूज्य आचार्यजी ने आरम्भ किया है समय की चीज है। देश में घूसखोरी, बेईमानी, ब्लैंक मार्केट तथा अन्य ब्यसन बहुत ज्यादा जोर पकड़ गये हैं। मुभे पूरी आशा है कि अणुवत-आन्दोलन द्वारा बहुत सुधार होगा।

पूज्य भाषाये तुलसीजी महाराज ने भणुवत-भान्दोलन का भवलंन कर जैन समाज का सिर ऊँचा किया है।

# आचार्यश्री तुलसी की जन्म कुण्डली पर एक निर्णायक प्रयोग

व्यक्ति जन्म से महान् नहीं, अपने कर्तृत्व से महान् बनता है। आचार्यक्षी तुलसी के सम्बन्ध में भी यही बात है। जिस दिन आपका जन्म हुआ, यह परिवार के लोगों के लिए कोई अनहोनी बात नहीं थी। अपने भाइयों में आपका कम पाँचवाँ था। उस समय किसने पहचाना था कि कोई महान् व्यक्तित्व हमारे घर में आया है। स्यात् यही कारण हो कि घरवालों ने आपके जन्म ग्रहों का भी अंकन नहीं करवाया। आज आपका कर्तृत्व देश के कण-कण में व्याप्त हो रहा है। देश के अनेकानेक ज्योतिर्विद आपके जन्म ग्रहों की निश्चितता करने में लगे हैं। इसी बात को ध्यान में रखते हुए मैंने किसी प्रसंग पर निम्न इलोक कहा था:

#### भ्रातृषुपंचमो जन्मप्रहाः केनाऽपि नांकिताः ग्रह्म ज्योतिविहो भुयो यतन्ते लग्नशोयने।

श्राचार्यश्री तुलसी का जन्म विक्रम सं० १६७१ कार्तिक शुक्ला द्वितीया मंगलवार की रात का है। मातृश्री वदनांजी को इतना और याद है कि श्रापका जन्म पिछली रात का हुआ था। वयोंकि उस समय भाटा पीसने की चिक्कयाँ चल पड़ी थीं। इससे आपकी जन्म कुण्डली का कोई निश्चित लग्न नहीं पकड़ा जा सकता। अनेकानेक ज्योतिषियों ने कर्क लग्न से लेकर तुला लग्न तक आपकी विभिन्न कुण्डलियाँ निर्धारित की हैं। कुछेक ज्योतिषियों ने आपका जन्म लग्न कर्क माना है तो किसी ने सिंह, किसी ने कन्या, तो किसी ने तुला। भृगु संहिताओं से भी लग्न शुद्धि पर विचार किया गया, परन्तु स्थित एक निर्णायकता पर नहीं पहुँची।

श्राचार्यवर की कलकत्ता यात्रा में किसी एक भाई ने मुक्ते बताया कि यहाँ पर एक ऐसे रेखा शास्त्री हैं जो केवल हाथ की रेखाओं से यथार्थ जन्म कुण्डली बना देते हैं। उन्हीं दिनों श्रीर भी लोग मिले जो इस बात की पुष्टि करते थे। उन्होंने बताया हमारी जन्म कुण्डलियाँ जन्मकाल से ही हमारे घरों में बनी हुई थीं। प्रयोग मात्र के लिए हमने रेखानुगत कुण्डलियाँ भी बनवाई थीं। मिलाने पर वे दोनों प्रकार की कुण्डलियाँ एक प्रकार की निकलीं।

मैं बहुत दिनों से सोचता था, श्राचार्यवर के जन्म लग्न को पकड़ने में हस्तरेखा का सिद्धान्त एकमात्र श्राधार बन सकता है। ज्योतिष और हस्तरेखा इन दो विषयों में गति रखने वाले यह भली-भौति जानते हैं कि हस्त-रेखाओं और जन्म ग्रहों के पारस्परिक सम्बन्ध क्या हैं? मेरे सामने इससे पूर्व ही कुछ ऐसे प्रयोग श्रा चुके थे। मन में श्राया श्राचार्यवर के जन्म लग्न पर भी हमें यह प्रयोग श्रपनाना चाहिए।

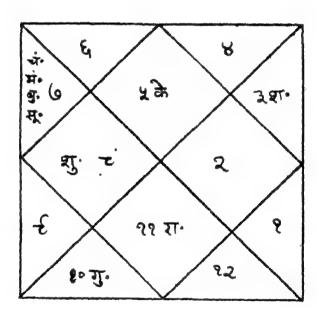
भगले दिन भाचार्यवर से आज्ञा लेकर हम देवजभूषण पं० लक्ष्मणप्रसाद त्रिपाठी रेखाशास्त्री के घर पहुँचे। उनसे इस सम्बन्ध में बातें कीं। मन में सन्तोष हुआ। उन्होंने कहा—आप भाचार्यवर के दोनों हाथों के छापे तैयार कर लीजिये। जिन्हें सामने रखकर मैं उनके संवत् व तिथि से लेकर लग्न तक विचार कर सक्रूं। इसमें भाचार्यवर को अधिक समय इस प्रयोजन के लिए नहीं देना होगा।

भगले दिन त्रिपाठीजी ने भी भाचार्यवर के दर्शन किये। मुनि महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम' ने उनके कथनानुसार मुद्रणमिस से भाचार्यवर के दोनों हाथों के छापे उतारे। उन्हें लेकर हम लोग मध्याह्न में फिर उनके यहाँ गये। छापा उनके सामने रखा। उन्होंने उसका भ्रष्ययन किया भौर हमें कुण्डली लिखने को कहा। हमें सन्तोष हुन्ना। यह सोचकर कि इन्होंने रेखा के भाधार से संवत्, तिथि बार, भादि ठीक बतलायें हैं तो लग्न के ठीक न होने का कोई कारण नहीं रह जाता । दूसरी बात लग्न भी उन्होंने वही बतलावा है जो भाषायंथी के प्रचलित लग्नों में मध्य का है। भाषायंवर की कन्या लग्न की कुण्डली विशेष रूप से प्रचलित थी। उससे केवल सबह मिनट पूर्व का लग्न इन्होंने पकड़ा है। वह लग्न मन:- किल्पत था भीर यह रेखाओं से प्रमाणित।

वे यथाकम संवत्, मास, तिथि, बार, नक्षत्र ग्रादि बोल गये। एक-एक कर भावानुगत ग्रह भी बोल दिये। लग्न के विषय में कहा—इस जातक का जन्म ग्रसंदिग्ध रूप से सिंह लग्न में हुग्रा है।

मुख दिनों बाद एक प्रत्य रेलाशास्त्री सम्पर्क में प्राये। उनके भी सामने ग्राचार्यश्री के हाथों के वही छापे रसे गये। उन्होंने भी ग्रपनी गगना से जो लग्न निकाला वह ठीक वही था जो दैवज्ञभूषण पं० लक्ष्मणप्रसाद त्रिपाठी ने निकाला था। इस प्रकार दिवंद सुबद भवति की उक्ति चरिताथं हुई। ग्राचार्यवर ने यह सब सुनकर कहा—ग्रागे ज्योतिषियों को यही लग्न बताना चाहिए। यह है ग्राचार्यश्री के जन्म ग्रहों के निर्णय का संक्षिप्त विवरण।

श्राचार्यवर की निर्धारित जन्म कुण्डली समग्र रूप में इस प्रकार है—विक्रम संवत् १६७१ मंगलवार कार्तिक जुक्ला द्वितीय इष्ट-५२/५१ लग्न सिंह ४/२४



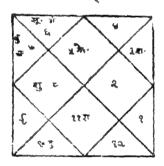
पदमभूषण श्री सूर्यनारायण व्यास ने भी उक्त कुंडली की मान्यता देकर ग्राचार्यवर के प्रहों पर भ्रपने लेख में विचार किया है।

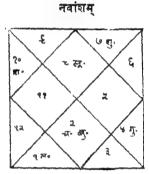
# श्री तुलसीजी की जन्म कुण्डली का विहंगावलोकन

पर्मभूषण पं० सूर्यनारायण व्यास

श्रीयुत् तुलसीजी की जन्म कुण्डली का विवरण इस प्रकार है :— श्री संवत् १९७१ श० श० ३६ कार्तिक जुक्ल १ भौमे, परं द्वितीयायाम्। विशाखा २ चरणे इष्टं ५२।५१। तदा जन्म। ल० ४।२४

सू०	खं०	मं ०	बु०	ग्र	হ্যু৹	হাত	रा०
	Ę						
ą	२४	28	२४	२१	१०	80	१०
जन्म चक्रम						च	लितम





श्री तुलसीजी के जन्म समय के यह योगों पर से खिचार करते हुए विदित होता है कि जिन परिस्थितियों श्रीर विशिष्ट यह-प्रभाव काल में उन्होंने जन्म लिया, वह वास्तव में महत्त्वपूर्ण था। श्रारम्भ ही से तुलसीजी ने विशिष्ट एवं परस्पर-विरोधी वातावरण में उत्पन्न होकर, जीवन के प्रस्तुत काल पर्यन्त ऐसे ही वातावरण में कार्य किया है। एक साधारण-सुखी व्यवस्थित परिवार में जन्म लेकर अपने परिवार की परम्परा श्रीर कार्य के विरुद्ध वैराग्य मार्ग का वरण किया है। इतना ही नहीं, अपने मार्ग की भीर परिवार को भी प्रेरित श्रीर प्रभावित करने में वे सफल हुए हैं। श्रसाधारण शिक्षा-दीक्षा लेकर वे अपने पथ में सफलतापूर्वक अग्रसर हुए श्रीर जीवन के श्रल्पावधि काल में ही वे नेतृत्व का पद प्राप्त करने में सफल हुए हैं। इसमें भी उन्हें स्पर्धा का प्रसंग श्राया है, किन्तु यह स्पर्धा उन के पथ में एवं उत्थान में सहायक हुई है। नीच राशि का होकर खष्ठ स्थान में श्रष्टमेश एवं पंचमेश गुरु है। इसलिए संघर्ष श्रीर वह भी उच्च स्थानीय बना रहे, इसमें विस्मय का कारण नहीं रहता। इस पर भी लग्नेश सूर्य भिन्न क्षेत्र में नीच राशि का होकर स्थित है। इसलिए मित्रों, स्वजनों, सहकारियों एवं श्रनुयायियों से भी सतत संघर्ष सजग रहता है। किन्तु उसी भिन्न क्षेत्र में भौम श्रीर एकादश में शिन इतना सबल है कि संघर्षों में भी इनका बल बढ़ता श्रीर बना रहता है। एक प्रकार से इनके श्रिधनायकत्व को पोषित करता रहता है।

गुरु ग्रीर सूर्य की नीच राशि के कारण सहसा इनका भावना-प्रधान मन विचलित हो जाये ग्रीर विचारों में भी विकृति का श्रवसर प्रदान करे, किन्तु गुरु ग्रीर सूर्य नीच राशि के होकर भी नीचांश में नहीं हैं। इस कारण वे विकृतियों

को नियन्त्रित करने में समर्थ बन जाते हैं भौर घपना गौरव स्थिर रख सकते हैं। विकारी-विवारों पर उनके कोमल मन की तास्कालिक प्रतिक्रिया होना स्वाभाविक है तथापि नीच राशि के गृरु के उच्चांश में नवम स्थान में स्थित होने के कारण उनकी क्यावहारिक बुद्धि उस पर प्रभुत्व पा लेती है। यही गृरु, जो सहज विरोध जागृत करता है, वही उनके क्यक्तित्व में प्रभाव प्रेरित करने वाला ग्रंश बली होकर बन गया है। उनका ज्ञान यद्यपि शिक्षा-क्षेत्र में सीमित रहे, परन्तु उच्चांश में गए हुए नवमस्थ गृरु की पंचम पूर्ण दृष्टि होने के कारण उनकी ग्रन्तः प्रज्ञा का प्रेरक बन गया है भौर क्यापक योग्यता के साथ उनमें मौलिकता को विकसित करने में सहायक बन जाता है। इसी नीच राशि (एवं उच्चांश) के गृरु ने तथा शनि ने इन्हें परिवार से विरक्त बनाया, किन्तु विरक्ति में भी परिवार की निकटता प्रदान की है। बुध-चन्द्र युति परस्पर विरोधी मिलन है। किन्तु यह मिलन जन्म में ही नहीं, ठेठ नवांश तक भपना सह-श्रस्तित्व रखती है। इसलिए अपनों से, सहविगयों से श्रीर श्रन्यजनों से भी जीवन-भर परस्पर-विरोध की स्थित में से गुजरना होगा श्रीर सतत जागरूक रहने को बाध्य बनना पड़ता है। किन्तु चन्द्र की ग्रपने उच्चांश में स्थित है। इसलिए जितना उच्च विरोध हो, उतना ही उच्च वर्ग मित्र भी बनता है। बुध-चन्द्र की ग्रांशिक युति भी पारस्परिक विरोध के सहधस्तित्व की जनक बन गई है। साथ ही विरोध में प्रभावोत्पादक बन रही है।

धुक बुध-चन्द्र की स्थित जहाँ संयमित, गम्भीर और प्रभावशाली व्यक्तित्व की निर्मात्री है, वहाँ रस-विलास, साहित्य, कला, काव्य रस में प्रावीण्य प्रदान करती है। कला और सौन्दर्य में प्रमिक्ति बढ़ाती है।

नवांश में बुध-चन्द्र योग सप्तम स्थान में हो जाने तथा सूर्य-इष्ट-प्रभावित होने के कारण गार्हस्थ्यहीन होना साहजिक होता है। परन्तु बुध-चन्द्र संयोग में उच्चांश स्थित चन्द्र क्लीब बुध के सहवास के कारण विलासी प्रवृत्ति को विकसित नहीं होने देता, संयमित, सोमित, मर्यादित बना देता है। शुक्र के कारण व्यवहार नैपुण्य, योग्य शिष्यों का व्यवस्थित सहयोग प्राप्त होता है तथा कठिन स्थितियों में से भी ऊपर उठने में सहायता मिलती है, भवश्य ही कुछ निकट-वर्तियों के व्यवहार और कार्यों से वातावरण में निष्कारण शंका का प्रसार होता हो, पतनोन्मुख परिस्थितियों में गुरु के द्वारा गौरव-रक्षा होती है। गुरु के कारण ही श्राध्यात्मिक नेतृत्व उपलब्ध होता है।

इस समय सं० २०१६ से तुलसीजी को केतु-दशा भारम्भ हुई है। केतु लग्न में है। यह दशा संवत् २०२३ तक रहेगी। इसमें भारम्भिक काल संतोषप्रद नहीं कहा जा सकता। २०१७ से २०१८ का शुक्रान्तर-काल प्रतिष्ठा, यश, क्यांति और उत्थान में सहायक बनता है। १४ जनवरी, ६२ से ७ मास का काल कला-रस-विलास भौर साहित्य-प्रवृत्तियों के साथ प्रतिष्ठा का रहेगा। मंवत् २०१९ के भाद्रपद से एक वर्ष शारीरिक चिन्ता और मानसिक चिन्ता का कारण हो सकता है तथा संवत् २०२० के माथ से ११ मास का समय संघर्ष एवं कसीटी का रहेगा, अपने ही जनों में भसंतोष व अशान्ति का श्रवसर आयेगा। आगे २०२३ तक की यह दशा उपयोगी रहेगी।

१८ फरवरी, ६२ से प्रायः उदर-विकार, प्रवास में श्रम और ग्रात्म-परिजनों के व्यवहारों से मनस्ताप एवं स्पर्धा की परिस्थिति रहेगी।

यह स्पष्ट है कि इस कुण्डली के जिन ग्रहों के तत्वों से पोषित होकर तुलसी का जन्म हुग्रा है, वह उनके व्यक्ति-विकास में बहुत सहायक हुग्रा है। सीमित क्षेत्र से उन्हें व्यापक बनाने में उनके उच्चांश भोगी—नीच राशि गत—गुरु ने बहुत सहायता की है। यह गुरु नवांश में इतना सबल न बना होता तो सम्भव है कि उनका विरोधी वातावरण चिन्तनीय बन जाता, किन्तु गुरु के सबल हो जाने से ही उनका विरोध भी उन्हें ऊपर उठाने में सहायक बनता रहा है ग्रीर उन्हें गौरव प्रदान करता रहा है।



## हस्तरेखा-अध्ययन

#### रेखाशास्त्री श्री प्रतापसिंह चौहान

महामाननीय प्राचार्यश्री तुलसी का हाथ कुछ चमसाकार मिश्रित समकोण ग्राकार का है। समकोण हाथ वाला दूरदर्शी, भादर्शवादी भौर शासक होता है। चमसाकार मिश्रित होने की भ्रवस्था में प्रादर्शवादी होने के साथ-माथ व्यक्ति कान्तिकारी, नई घारणाम्रों भौर प्रवृत्तियों का संस्थापक होता है।

माचार्यश्री के हाथ में बुध की भंगुलि टेढ़ी है भीर उसका नाखून छोटा है। यह वक्तृत्व शक्ति भीर परख शक्ति का खोतक है।

सूर्य रेखा जीवन रेखा से आरम्भ हुई है। जिससे आप प्रसिद्ध और प्रतिभा के धनी होंगे और जन-जीवन का कल्याण करते हुए आदरणीयता और रूपाति प्राप्त करते रहेंगे।

जीवन रेखा को मंगल के स्थान से ग्राने वाली रेखाएं काटती हुई मस्तिष्क रेखा तक पहुँच रही हैं, इसलिए कभी-कभी ग्रपने ही व्यक्तियों से मानसिक खिल्तता प्राप्त होती रहेगी। स्व-धर्मावलम्बी व इतर-धर्मावलम्बियों से विरोध उप-स्थित होता रहेगा।

दाहिने हाथ में भ्रपूर्ण मंगल रेखा होने से व्यवहार कुछ कठोर रहेगा, किन्तु विरोधियों के प्रति सहिष्णुता रहेगी। विरोधी कालान्तर से नतमस्तक होते रहेंगे। ग्रनुभव सिद्ध बात है, मंगल रेखा विरोधियों पर विजय दिलाती है, किन्तु समकोण ग्रीर चमसाकार मिश्रित हाथ होने की वजह से हृदय में शत्रुता के भाव शत्रुग्नों के प्रति भी नहीं रहेंगे।

हृदय रेखा बृहस्पति की उँगली को छू रही है, इसलिए प्रतिभा व जन-कल्याण की भावना उत्तरोत्तर बढ़ती रहेगी; प्रादर्शवादी चरित्र रहेगा।

दोनों हाथों में छोटी-छोटी रेखाएं हैं, इसलिए मानसिक चिन्ताएं अधिक रहेगी। बाएं हाथ में सूर्य, शनि और बृहस्पति के स्थान पर भाग्य रेखा जा रही है। यह उद्यमशील व क्यातिशील होने की सूचक है। यही रेखा संघ-संचालक भीर धनुसंधान कक्ती होने का भी संकेत करती है। प्रारम्भ में अन्तरंग विरोधों का निश्चित ही मुकाबला करना पड़ेगा। वृद्धावस्था में पूर्ण शान्ति का अनुभव करेंगे।

चन्द्र स्थान पर रेखाएं गहरी होकर शनि स्थान की भीर भुकती हैं। यात्राएं विशेष होंगी। चन्द्र विशेष यात्रा का भी कारण होगा। भँगूठे के नीचे से मंगल स्थान मे गहरी रेखा टूटती हुई मंगल नक भाई है। पदयात्रा जीवन-भर होती रहेगी।

मस्तिष्क रेखा शनि के नीचे भुकी हुई है। साथ-ही-साथ शनि के पर्वत पर छोटी रेखाएं प्रधिक हैं। ये वायु विकार की सूचक हैं।

सूर्य के नीचे हृदय रेखा में बड़ा द्वीप है, इसलिए एक आँख विशेष निबंल होगी।

जीवन रेखा दोनों हाथों में विशेष घुमावदार है भौर कटी हुई है। संघर्षमय जीवन भौर लक्ष्य सिद्धि की सूचक है।

बाएं हाथ में मस्तिष्क रेखा मंगल के पहाड़ पर गई है और दाएं हाथ में सूर्य के पहाड़ के नीचे पूर्ण हुई है। इससे विषय को समकाने की सूक्ष्म शक्ति और प्रत्युत्पत्ममित मिली है।

सूर्य रेखा सूर्य के स्थान से गहरी होकर नीचे की थोर चली है। वक्षस्थल में यदाकदा पीड़ा करेगी।

भँगूठा बृहस्पति की उँगली से अधिक दूरी पर खुलता है। दृढ़ निश्चय भीर भारमविश्वास का प्रेरक है। हृदय-रेखा और मस्तिष्क रेखा दोनों समानान्तर होकर कम दूरी पर हैं। ऐसा व्यक्ति तब तक दृढ़ रहता है। जब तक अपने निश्चय पर नहीं पहुँच जाता है। वितना ही समय लगे, अपने लक्ष्य पर पहुँचकर ही विश्राम लेता है।

हृदय रेखा में द्वीप है और वह सूर्य के पहाड़ तक मोटी है। वायु विकार हृदय को भी प्रभावित करेगा। यह स्थिति विशेषतया वृद्धावस्था में होगी।



हृदय रेखा से ३६, ३७, ४३, ४४, ५५ और ५६वें वर्ष में शाखाएं निकल कर मस्तिष्क रेखा पर ग्राई है। ये तीनों रेखाएं संघर्ष सुचक हैं। उक्त ग्रवधि में संघ-सम्बन्धी या स्वास्थ्य-सम्बन्धी चिन्ताग्रों का योग है।

बृहस्पति के स्थान पर  $\times$  का निशान है। यह प्रतिष्ठासूचक होने के साथ मस्तिष्क में भारीपन रखने वाला भी है।

मस्तिष्क रेखा बृहस्पति के स्थान से निकल कर शाखान्वित होती हुई मंगल के स्थान की ग्रोर वली है। जीवन रेखा से ग्रलग होते हुए भी कुछ सटी हुई है। साहित्य में चतुर्मुखी प्रतिभा देगी, सूक्ष्मातिसूक्ष्म कार्य के सम्पादन की क्षमता व निर्णायक बुद्धि होगी।

हृदय रेला और मस्तिष्क रेला समानान्तर हैं। मूर्य, शनि और बृहस्पति पर भाग्य रेला का होना इस बात को प्रमाणित करता है कि किसी नई शैली से ग्रहिसक कान्ति करेंगे। कुछ एक लोग ग्रपनी संकीर्ण भावनाग्रों के कारण ग्रापका विरोध करेंगे। किन्तु ग्रन्त में वे ही लोग ग्रापके उद्योधन को स्वीकार करेंगे। पहले-पहल वे लोग ग्राप पर ग्राडम्बर-प्रियता, निरंकुशता ग्रादि के ग्रारोप भी लगाएंगे। यह सब होते हुए भी ग्राप पूर्ण निष्ठा के साथ ग्रपने गन्तव्य की ग्रोर बढते रहेंगे।

भाग्य रेखा और सूर्य रेखा का विशेष उदय २२वें वर्ष से होता है। उसी समय से ग्रापका जीवन लोक-मेवा के दायित्व को उठा कर चल रहा है।

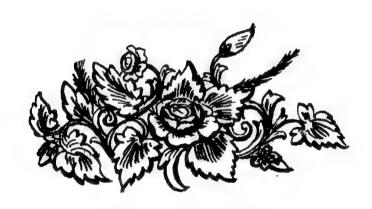
मस्तिष्क रेखा के ब्रारम्भ में द्वीप है घीर वह मोटा है। जब भी शारीरिक कष्ट होगा जोर से होगा।

बृहस्पति मुद्रिका बाएं हाथ में है। साधु संघ पर घापकी विशेष अनुकस्पा रहेगी।

श्रापका हाथ समकोण है। चन्द्रमा से भाग्य रेखा उदय होकर मस्तिष्क रेखा पर रुकी है। ग्रापके द्वारा प्रचारित धर्म इतर लोग भी स्वीकार करेंगे; सामाजिक वृद्धि होगी।

जीवन रेखा धुमावदार है। मस्तिष्क रेखा साफ ग्रौर सीधी है। हृदय रेखा वृहस्पति तक जा रही है। निश्चित ही ग्राप दीर्घ ग्राय होंगे।

सूर्य रेखा जीवन रेखा से उदित हुई है। उसी स्थान से बुध रेखा निकल कर बुध के स्थान पर गई है। भिन्न-भिन्न विषयों का साहित्य भ्राप भौर भ्रापके शिष्यों द्वारा सम्पादित होगा। शोध कार्य की तरफ विशेष ध्यान रहेगा। भ्राहिसा स्वरूप को सूक्ष्म-से-सूक्ष्म रूप में प्रतिपादित कर लोकहित करेगे। धाप भ्रपनी संघीय व्यवस्था में विकास भी करेंगे। विभिन्न विभाग विभिन्न उत्तरदायित्व युक्त करेंगे। यह व्यवस्था विषय से सम्बन्धित होगी। इसका श्रीगणेश ४६ वें वर्ष से भौर उसकी पूर्णता ५१, ५२, ५३ तक होती रहेगी।



# एक सामुद्रिक ऋध्ययन

#### भी जयसिंह मुणीत, एडवोकेट

विश्व के प्रांगण में कई सम्यताएं छाई, सिर ऊँचा किया और तष्ट हो गई। कितने ही राष्ट्र मागे माये, किन्तु टिके नहीं। कई संस्कृतियाँ चमकीं, लेकिन विस्मृति के भंचल में सिमिट गई। उन सम्यताओं राष्ट्रों एव संस्कृतियों के विकास एवं विनाश का जो इतिहास है. वह सामने है। राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं वौद्धिक तथा अन्य प्राधातों ने उनके सब्य प्रासादों को चकनाचूर किया और उनके खँडहरों पर धूल विछाई, किन्तु उन प्रहारों की सबल बोटें खाकर भी हमारी भारतीय संस्कृति अभी तक जीवित है। इसका एक महत्त्वपूर्ण कारण है—इसकी आध्यात्मिकता। सहस्रांशु की वह तेजोमयी किरण अपना पूर्ण प्रभाव इस भू-भाग पर रखती है और विशेष रखती है। आध्यात्मिकता। सहस्रांशु की वह तेजोमयी किरण अपना पूर्ण प्रभाव इस भू-भाग पर रखती है और विशेष रखती है। आध्यात्मिकता को यह अमर बेल समय-समय पर आर्ष पुरुषों द्वारा सिचित हुई, उनसे संरक्षण प्राप्त किया और जिसे संवर्द्धन एवं संवरण उनकी छत्र-छाया में मिला। आध्यात्मिकता से उत्पन्न मानवता जहाँ यत्र-तत्र-सर्वत्र दीखने में आती रही। इस रक्ष-प्रमूता वसुन्धरा ने ऐसे महामनस्वी नर पुगवों को जन्म दिया कि जिनकी वैखरी वाणी एवं अपूर्व कार्य-कलापों ने अत्यक्षल ही में वह कार्य कर दिखाया जो साधारण जनों द्वारा सम्भवत: सदियों तक अथक प्रयत्न करने पर भी सम्पन्न नहीं किया जा सकता था। जिन्होंने भपनी मानवता की चिनगारियों से इस देश की प्रसुप्त आत्मा के भन्तराल में कान्ति के वे स्फुलिंग जगा दिए कि जिनके प्रकाश में धिलल जगत की बड़ी-से-बड़ी सत्ता भी शान्ति का पथ ढूँढने को आतुर रही और है। धर्म और दर्शन की जननी भारत भूमि मानवता का मुख उजागर करने वाले पहुँचे हुए महापुरुषों से कभी भी खाली नहीं रही है। उसी आर्ष परम्परा की पुनीत माला के मनके हैं—आचार्यश्री तुलसी। इनके जीवन में निखार पाने वाले गुण अगणित हैं और जनका दिव्य चरित्र का पृष्ट हम सबके सामने खुला है, जिसका समर्यन उनके हाथ से होता है। कितना मुन्दर साध्य है।

यह हाय नहीं है पुस्तक है जिसमें जीवन का सार भरा। है उसका पूर्ण प्रतिबिम्ब गही जो वास्तव में है सही, जरा।

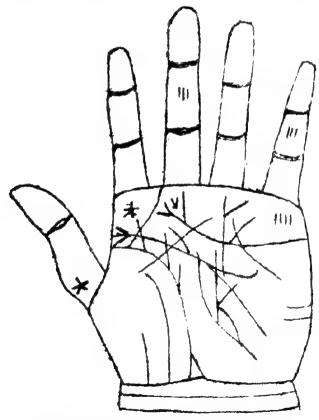
Nocl Jaquin का कथन है कि, "The hand is the symbolic of the whole". श्रीर 'हस्त-संजीवन' में लिखा है:

#### नास्ति हस्तात्परं ज्ञानं त्रैलोक्ये सत्तराचरे। यव् बाह्यं पुस्तकं हस्ते वृतं बोवाय जन्मिनाम्॥

श्राचार्यश्री तुलसी का हाथ चौकोर, लाल-गुलाबी रंग की मुलायम समुन्तत हथेली नीचे स्थित श्रंगुस्त कटिवाला लम्बा एक निराला कोण बनाता हुआ है, दूसरा पेरवा लम्बा, प्रथम पेरवा दूसरे की लम्बाई से दो तिहाई से कम नहीं भीर दूसरे पेरवे में एक तारे का निशान है। तर्जनी अवश्य कुछ छोटी है और उसका दूसरा पेरवा लम्बा है। मध्यमा लम्बी है, दूसरा पेरवा लम्बा व तीन खड़ी रेखा वाला है। श्रनामिका लम्बी है और उसका प्रथम पेरवा (नख वाला) लम्बा है। श्रनामिका से दूरी पर स्थित कनिष्ठा है जो लम्बी है, जिसका प्रथम पेरवा लम्बा है। तर्जनी के नीचे जो गुरु का स्थान है, वह समान रूप से उभरा हुआ है और उस पर कास तारे में परिणत होता दिखाई देता है। मध्यमा के नीचे जो श्रान का स्थान है, उस पर खड़ी रेखा है और ४ का चिह्न है। स्थान समान रूप से उभरा हुआ है। श्रनामिका के नीचे जो सूर्यस्थान है, वह भी उभरा हुआ है। कनिष्ठा के नीचे जो बुध स्थान है, समुन्तत है धौर उस पर तीन-चार खड़ी रेखाएं हैं। इस स्थान के नीचे जो मंगल स्थान है, अच्छा उभरा हुआ है। जन्द्र स्थान जो इस मंगल स्थान

से नीचे है, समुन्तत है और शुक्र स्थान भी खासा उभरा हुआ है। हवेली में खड्डा नहीं है।

मस्तिष्क रेखा त्रिशूलाकार से प्रारम्भ होकर गुरु स्थान के नीचे जीवन-शक्ति रेखा से ऊपर, किन्तु भलग प्रथम कुछ दूर सीधी और फिर भुकती हुई है जिसकी एक शाखा चन्द्रस्थान की ओर दूसरी मंगल स्थान की ओर गई है, जहाँ भाखिरी सिरा ऊपर बुध की ओर मुड़ा है। हुदय-रेखा शिन एकं गुरु स्थान के बीच से प्रारम्भ होती है भौर बुध स्थान के नीचे हथेली की छोर तक चली गई हैं। प्रारम्भ में इसकी एक शाखा गुरु-स्थान की भोर बढ़ती है। भाग्य रेखा चन्द्र स्थान के ऊपर से चल कर मस्तिष्क रेखा तक गई है, दूसरी कुछ ऊपर गई है। सूर्य-रेखा बढ़ी सुन्दर है और भाग्य रेखा से मंगल के मैदान में निकल कर करीब हृदय रेखा के नीचे तक गई है और जहाँ एक शाखा बुध स्थान की भोर भेजती है। दोनों मंगल स्थान से एक-एक रेखा सूर्य स्थान को भाई है जिनमें हथेली के छोर वाले मंगल स्थान वाली रेखा बहुत तीखी एवं स्पष्ट है। सूर्य स्थान के नीचे हृदय रेखा से एक रेखा बुध स्थान की भोर बढ़ी है। मस्तिष्क रेखा से एक रेखा गुरु स्थान की भार बढ़ी है। अवन-शक्ति-रेखा पुणचे तक गई है और स्थान-स्थान पर इससे भाग्य रेखाएं निकली हैं, जिनमें एक रेखा शीर बढ़ी है। जीवन शक्ति रेखा से एक रेखा शीर स्थान से गई है। जीवन शक्ति रेखा से एक रेखा शीर स्थान से गई है। जीवन शक्ति रेखा से एक रेखा शीर का शीर एक रेखा है। जीवन शक्ति रेखा से एक रेखा शीप का भाकार है। उँगलियों हथेली से छोटी नहीं हैं। हथेली की लम्बाई एवं चौड़ाई प्राय:समान-सी है। प्रारम्भ में सीप का भ्राकार है। उँगलियाँ हथेली से छोटी नहीं हैं। हथेली की लम्बाई एवं चौड़ाई प्राय:समान-सी है। प्रारम्भ में सूर्य रेखा ने कुछ ऊपर उठ कर एक शाखा बुध की भ्रीर छोड़ी है भीर भाग्य-रेखा की एक



(ऊपर खींचा गया हाथ उसी हस्त-दर्शन के ग्राधार पर है)

शाखा भी कहीं-कहीं माकर मिली दीखती है। यह ऊपर लिखा वर्णन घल्प समय में किये गये हस्त-दर्शन के स्राधार पर है। चौकोर हाथ एवं मुलायम समुन्तत लाल गुलाबी रंग की हथेली जिसकी लम्बाई एवं चौड़ाई समान-सी है भौर चंगुलियां भी हथेली के बराबर हैं, इस बात की छोतक हैं कि इनमें श्रपूर्व चरित्र-बल, बहस करने की प्रबल शक्ति है. सन्तुलित स्वभाव है, परिवर्तनशील हैं और निरन्तर कार्य में संलग्न रह कर विजयश्री प्राप्त करने के लक्षण है । छोटी तर्जनी निर-भिमान की सूचक है। मध्यमा प्रबुद्धता, चिन्तनशील, उद्योगी एवं धार्मिक पुरुष की परिचायक है। धनामिका से कला-कार, कवि एवं सामाजिक चेतनावान् मानव का परिचय मिलता है । प्रथम पेरवा लम्बा होना कवि होने की पुष्टि करता हैं। कनिष्ठा रचियता एवं व्याख्यता की प्रतीक है और इसकी दूरी ब्रनामिका से जो स्थित है, वह यह बतलाती है कि यह मानव ग्रपने कमें में पूर्णरूपेण स्वतन्त्र है। उपरोक्त श्रंगुस्त विभिन्न विचारों का समावेश, प्रखर बुद्धि, समन्वय शक्ति एवं उदारमना का द्योतक है। प्रथम पेरवा जहाँ सम्पूर्ण घात्म-बल को बतलाता है, वहाँ दूसरा पेरवा सुदृढ़ साधारण जान (Common sense) एवं प्रवल कर्म शक्ति एव तर्क शक्ति का परिचायक है। कटि वाला श्रंगुस्त कुशल राजनीतिज्ञ एवं नेता होने का संकेत करता है। गुरु स्थान पर तारा का चिह्न गुरु पद एवं विश्व-विश्वन विभूति का छोतक है। शनि स्थान पर जो रेखा खड़ी है एवं V का चिह्न है, वह माता से विशेष स्नेह होने का परिचय देता है। जीवन शक्ति रेखा सं मध्यमा के पास रेखा गई है, वह विरक्ति (Renunciation) रेखा है जो मंसार मे उवासीन कर विरक्त बनाने में सहा-यक होती है। शनि का समन्तत स्थान दार्शनिक, कुछ एकान्त प्रेमी एवं संगीत की प्रभिक्षि का होना प्रकट करता है। ऐ<mark>सा मूर्य स्थान बहुश्रुत, यशस्</mark>वी एवं विवेकी होना जाहिर करता है । मूर्य रेखा से बुध की ग्रोर जाने वाली रेखा रचयिता एवं व्याल्याता की द्योतक है। बुध स्थान एवं उस पर खड़ी रेखाएं कुशल मनीवैज्ञानिक, विज्ञानवेत्ता, विलक्षण बुद्धि वाला एवं सुन्दर वक्ता होने का परिचायक है। मंगल स्थान एवं उनसे सूर्य की ग्रोर जाने वाली रेखाए महा पराक्रमी, उत्कृष्ट साहसी, हिमालय-सा अडिंग, शत्रु पर श्रहिसक वृत्ति से सदा विजय पाने वाला एवं परम सहिष्णु होने की द्योतक है। उपरोक्त चन्द्र स्थान तीव्र कल्पना-शक्ति वाला एवं सिर्जनहार का सूचक है। शुक्र स्थान सद्भावनात्रीं का सम्मान करने वाला एवं सगीतज्ञ के गुण बतलाता है। जीवन-शक्ति रेखा से गुरु स्थान में जाने वाली रेखा प्रतिभा प्रदान करने वाली है। अंगुस्त के दूसरे पेरवे में जो तारा का चिह्न है, वह भ्रानन्दयोग का सूचक है।

ग्रधिक महत्त्वपूर्ण रेखा मस्तिष्क की है जो प्रबल ग्रात्म-विश्वास, कल्पना एवं यथार्थता के सामंजत्य, न्यायी, सुनीतिबान्, गृतिथयों को सहज सुलक्षाने की शक्ति की सूचक है। त्रिशूलाकार सुयश, सौभाग्य, प्रस्तिम सिरा गरुता उसका उपर उठना अद्भुत वाक्-शक्ति का द्योतक है। साथ-ही-साथ स्थिर बृद्धि एवं प्रवाह में नही बहने वाने मस्तिष्क की कल्पना कराता है। हृदय-रेखा कुशाग्र बृद्धि, यश एवं ग्रादर्शवादी की सूचक है। भाग्य-रेखा पूर्वजों की सम्पदा प्राप्त होने की मूचना देती है और गुप्त स्थान निहित है, ऐसा बनलाती है और मस्तिष्क के विशाल एवं व्यापक होने की परि-चायक है। सबसे महत्त्वशाली सूर्य रेखा है जो सर्वांगीण सफलता, बहुश्रुत, ग्रनेक ज्ञान, परम यश, प्रवल वाक्-शक्ति तथा विरव-विभूति की चोतक है। यह इक्कीस, बाईस वर्ष की आयु के पास भाग्य रेखा से निकलती है जो भाग्योदय का समय बतलाती है। फिर चौबीस वर्ष की प्रायु के पास इससे निकलने वाली एक रेखा जो बुध की ग्रीर बढ़ना चाहनी है, वह कानवृद्धि, राजनीति एवं विद्या विकास होना प्रकट करती है। तेतीस वर्ष की ग्रायु के पास एक सूर्य रेखा और निक-लती है जो सीघी सूर्य स्थान को गई है। नवीन जन-कान्ति द्वारा विमल यश व सफलता की सूचक है। इससे मानवता से देवत्त्र की ग्रोर प्रगति होगी, ऐसी सूचना मिलती है। लम्बा श्रंगुस्त, जो नीचे स्थित है ग्रौर निराला कोण लिये हुए है, निगुढ़तम दार्शनिक, सिद्धान्तवादी, नीतिवान्, उच्च कोटि का न्यायी होना प्रकट होता है। जीवन-शक्ति की पूरी रेखा है, दोष रहित है जिसमे सुस्वारध्य की कल्पना है ग्रीर इसके साथ दूसरी जीवन रेखा चली है जिससे जीवन को बल मिलता है। स्थान-स्थान पर जीवन-शक्ति रेख़ा से सिट्टे की नाई जो भाग्य रेख़ाएं निकली है, वे उस समय की उन्नित एवं प्रतिभा की सुचक हैं। मस्तिष्क रेखा से बृहस्पति की ग्रीर रेखा का वढ़ना सुयश की वृद्धि बतलाती है ग्रीर हृदय रेखा से बुध की भीर रेखा का जाना ज्ञान-निकास की सूचक है। पेरवी में जो खड़ी रेखाएं है, वे व्यवहार-कुशल होने की प्रतीक है भीर इनसे बुद्धि एवं चतुराई को बल मिलना कहा जाता है।

# आचार्यश्री तुलसी के दो प्रबन्ध काव्य

डा० विजयेन्द्र स्नातक एम०ए०, पी-एच०डी० रीडर, हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

#### नैतिक उत्थान का विषय सन्वेश

भाषायंश्री तुलसी धपने सभिनव सणुतत-आन्दोलन के कारण साज भारतवर्ष में एक नपस्वी साधक, मर्यादा-पालक बीतराग जैनाचायं के रूप में विरुवात हैं। ध्वंस और धिनाश के जिस उद्वेगमय बातावरण में ग्राज संसार सांस ले रहा है, उसमें नैतिक मूल्यों द्वारा शान्ति और समभाव की स्थापना का प्रयत्न करने वाले महापुरुषों में ग्राचार्य तुलसी का स्थान प्रन्यतम है। नैतिक एवं चारितिक हास के कारण वर्तमान युग में जीवन के शास्वत मूल्य का जिस दृत गिन में लोप हुया है, वह समस्त संसार के लिए चिन्ता का विषय बन गया है। एक ग्रोर देश, जाति, धर्म भौर सम्प्रदाय की संवीण दीवार खड़ी करके मानवता खंडाशों में टूट-टूट कर विभवन हो गई है तो दूसरी और दुर्धर्ष ध्वंसायुधों के ग्राविष्कार के सन्देह—शंका का भयावह वातावरण विरव में ब्याप्त हो गया है। ऐसे संकट के समय समूची मानवता के लिए सौहादं, समता, मौख्य और शान्ति का सन्देश देने वाली महान् ग्रात्माग्रों और शास्वत मूल्यों की स्थापना करने वाले उपायों की भावश्यकता स्पष्ट है। ग्राचार्यश्री तुलसी एक ऐसे ही महान् ब्यक्ति हैं जिनके पाम मानव के नैतिक उत्थान का दिव्य सन्देश है जो ग्राव्यत चर्या के रूप में धीरे-धीर इस देश में फैल रहा है। कहना होगा कि इस धान्त, स्वस्थ एवं निरुपद्रवी ग्रान्दालन को यदि विश्व के सभी देश स्वीकार कर लें तो व्यक्ति-निर्माण के मार्ग में राष्ट्र का निर्माण ग्रीर ग्रन्त में समग्र मानवता के विकास का मार्ग ग्रास्त हो सकेगा।

त्राचार्यश्री तुलसी की काव्य साधना के प्रमग में अणुव्रत विषयक दो-चार शब्द मैंने जान-बूभकर लिखे है। अणुव्रत का सन्देश श्राचार्यश्री तुलसी के प्रबन्ध काव्यों में भी निहित है, किन्तु किव ने उसे किसी श्रान्दोलन की भूमि पर प्रतिष्ठित न कर भावना की उर्वर धरा पर उसका वपन किया है। अणुव्रत की अनाविल नैतिकता का बीज स्वाभाविक रूप से उनके काव्यों में श्रंकुरित हुआ है और उसके द्वारा पाठक की परिष्कृत चेतना दीप्त होती है, ऐसी, मेरी धारणा बनी है। अणुव्रत-आन्दोलन देश, जाति, धर्म— सम्प्रदाय-निरपेक्ष एकान्त व्यक्ति-साधना होने के कारण सभी विचारशील व्यक्तियों द्वारा समादृत हुआ है, फलतः उसके प्रयत्क श्राचार्यश्री तुलसी के विषय में साधारण जनता का परिचय इसी के माध्यम से हुआ है। श्राचार्यश्री की नैसर्गिक काव्य प्रतिभा से बहुत कम व्यक्तियों का परिचय है, श्रतः मैं काव्य-प्रतिभा के सम्बन्ध में संक्षेप में परिचय प्रस्तृत करने का प्रयत्न करूँगा।

#### ज्ञान-क्रिया की समवेत शक्ति

ग्राचार्यश्री तुलसी के काफी काव्य-ग्रन्थों को पढ़ कर मैं इस परिणाम पर पहुँचा हूं कि इन ग्रन्थों के निर्माण में जिस ग्रेरक शक्ति का सबल हाथ रहा है, वह इच्छा, ज्ञान-किया की समवेत शक्ति है। इन ग्रन्थों की रचना का उद्देश्य 'यशसे' और 'श्रथंकृते' न होकर 'दिव्योपदेश' और 'शिवेनर क्षति' ही है। लौकिक एवं पारलौकिक विषयों का व्यवहार ज्ञान भी उपदेश की प्रक्रिया में समाया हुआ है। जिस सरल अभिव्यंजना और सहज ग्रनुभूति से वर्ष्य का विस्तार इन काव्य ग्रन्थों में हुगा है, वह इस तथ्य का निदर्शन है कि भोग्य जगत् के प्रति ग्रनासक्त भाव रखने वाले मंत की वाणी में वस्तु-

सत्य के प्रति उतना भाग्रह नहीं रहता, जितना भाव-सत्य के प्रति होता है। भाव-सत्य को केन्द्र बिन्दु बनाकर बस्तु-सत्य (घटना) का चित्रण करते समय संत किव की वाणी जितनी तत्वाभिनिवेशी बनी रहती है, कदानित् पदार्थ के प्रति भाग्रह रखने वाले सामान्य किव की वाणी नहीं रहती। 'शिवेतर क्षति' जिस काव्य का मूल स्वर हो उसमें यश भीर भयं की लिप्सा को स्थान नहीं रहता। भाचायंश्री तुलसी का निसर्ग किव स्वयं तटस्थ भाव से इन सबको ग्रहण करके काव्य रखना में प्रवृत्त हुआ है, यह सभी काव्य ग्रन्थों के अनुशीलन से स्थप्ट होता है।

ग्राचार्यथी की लेखनी से ग्रह्माविष्य तीन हिन्दी काव्य-प्रनथ प्रकाश में ग्रा चुके हैं। यों तो संस्कृत श्रीर मारवाड़ी में भी ग्रापने काव्य-रचना की है, किन्तु इस लेख में मैं उनके दो प्रमुख हिन्दी प्रबन्ध काव्यों की ही चर्चा करूँगा। स्थानाभाव से हिन्दी के सभी ग्रन्थों की समीक्षा करना भी मेरे लिए सम्भव नहीं है। प्रमुख कृतियों में 'ग्रावाढ़भूति' श्रीर 'ग्रन्नि-परीक्षा' हैं।

## ऋाषाद्रभूति

'आषादभूति' एक प्रबन्ध काव्य है। प्रबन्ध काव्य की पुरातन शास्त्रीय मर्यादा को कित ने रूढ़ि के रूप में स्वी-कारन कर स्वतन्त्र रूप से कथा को विस्तार दिया है। सर्ग या अध्याय भादि का परम्परागत विभाजन भी इसमें नहीं है। वर्णन की दृष्टि से भी इस काव्य में शास्त्र का अनुगमन प्रायः नहीं हुआ है। वस्तुतः कित की दृष्टि वर्ण्य वस्तु को जन-मानस तक पहुँचाने की भ्रोर ही अधिक रही है। कित का अभिभेत है 'जनकाव्य' की शैली पर गेय रागों में कथा को श्रुति मधुर बना कर व्यापकता प्रदान करना। शास्त्र-मर्यादा के कठोर पाश में श्राबद्ध होकर उसे विद्वन्मण्डली तक सीमित बनाने की कित की तिनक भी इच्छा नहीं है। जैन-साहित्य परम्परा में यह शैली सुदीर्घ काल से विकसित होती रही है। भ्राचार्यश्री ने उसी को प्रमाण माना है और उसके विकास में नई कड़ी जोड़ी है।

यह काव्य प्रास्तिक भाषना का प्रतिष्ठापक होने के साथ जीवन की दुर्षम प्रवृत्तियों का यथार्थ बोध कराने में भी सहायक है। मानव की दुर्ललित वासना वृत्ति किस प्रकार मानव को पाप-पंक में चकेल देती है और किस प्रकार वह इन्द्रियासित के जान में पड़ कर सन्मार्ग से च्युत हो जाता है, यह बड़ी रोचक शैंनी से व्यक्त किया गया है। 'प्रापाद्रभृति' का कथा-प्रसंग निशीध सूत्र की चूणि व उत्तराध्ययन की घर्थ कथाओं से लिया गया है। भाषायं तुलसी ने प्रपत्ती उपज्ञात प्रतिभा और कल्पना के योग से सामान्य कथा को दीप्त कर दिया है। कथा के विवरण केवल घटनाश्रित न होकर दर्शन, प्रध्यात्म, लोक-व्यवहाराश्रित भनेक उपयोगी प्रसंगों से गुंधे हुए है। कथा के नायक ग्रावार्य भाषाद्रभृति को प्रारम्भ में दृद्ध धास्तिक के रूप में वित्रित किया गया है, किन्तु अपने सी शिष्यों को महामारी द्वारा धकाल कवित्त देख कर भीर देवयोनि से बापस आकर गृह से न मिलने पर गृह के मन का दृद्ध भास्तिक भाव संशय के भ्रंधड़ भाव से हिल उठा। शिष्यों ने वचन दिया था कि देवयोनि से भाकर गृह की खैर-खबर लेंगे, किन्तु एक भी शिष्य वापस न भ्राया। उन्हें लगा कि शास्त्र मिथ्या है, परलोक मिथ्या है, तत्त्वज्ञान की चिन्ता व्यर्थ है। इहलोक के सुख को तिलांजित देना मूर्खता है। भोग की सामग्री की धवहेलना करके मैंने क्या पाया। भोग्य वस्तुओं से परिपूर्ण इस संसार में रमना ही मानव का इष्ट है, ऐसी भ्रम बुद्धि उत्त्यन होने पर भ्रावार्य भ्रावाद्रभृति पथाभ्रष्ट होकर लोभ के पंक-जाल में फँस गये। उन्होंने छः भ्रवोध बालकों की हत्या की, उनके भ्रामुष्ण छीने, चोरी की भौर पतन का मार्ग पकड़ा। ऐसी दशा मे बचनबद्ध उनका प्रिय शिष्य विनोद देवयोनि से भ्राया भौर उसने भ्रावाद्रभृति का इस पाप-योनि से उद्धार किया। भ्रावाद्रभृति पुनः श्रास्तिक मुमुक्ष बनकर सत्प्य पर भ्राकृत्र हुए। यही संक्षिप्त-सी कथा है।

भावार्यश्री तुलसी ने भपने काव्य को जनकाव्य बनाने के लिए लोक प्रचलित विभिन्न गेय रागों का भाश्रय लिया है। राघेश्याम कथावाचक की रामायणी शैली का ग्रहण इस बात का प्रमाण है कि किव इस काव्य का उसी शैली से प्रचार चाहता है। जैन दर्शन के गूढ़ सिद्धान्तों को सरल भौर सुबोध शैली से बीच-बीच में गुम्फित कर भाचार्यश्री ने इसे प्रारम्भ में जिन्तनप्रधान काव्य का लय दिया है, किन्तु बाद में घटनाओं के वर्णन के कारण चिन्तन की गूढ़ता कम होती जाती है। दार्शनिक चिन्तन की क्रक नीचे के पदों में स्पष्ट देखी जा सकती है: यि भूतवाद ही सब कुछ है, चेतन का पूचणितत्व नहीं? चेतनता वर्ने, कहो किसका, गुण धनमूक्य होता न कहीं? चेतनता अर्ने, कहो किसका, गुण धनमूक्य होता न कहीं? चेतना कुन्य क्यों मृत शरीर, अर्मों से धर्म भिन्न कैसे? यह जीव स्वतन्त्र ब्रब्ध इसकी, सत्ता है स्वयं सिद्ध ऐसे? चार्वाक नहीं विन्तन देता, साम्प्रतिक सुलों का यह केवल। धादवासन मात्र प्रलोभन है, इसमें न दार्केनिक, तात्विक बल। सैद्धान्तिक सबस प्रजागों से जाती है जड़ जिसकी खितकी। धीदार्य भारती संस्कृति का, बर्शन में गणना की इसकी।

देवयोनि से शिष्यों के वापस लौट कर न म्राने पर माचार्य माषाढ़भूति की म्रास्था डिग गई। उनके मन में सन्देह-शंका के बादल मँडराने लगे। उन्हें लगा कि यह जप-तप, धर्म-पुण्य, सब मिष्या हैं। स्वर्ग सुनिश्चित नहीं है, साम्प्रतिक दृष्टि ही सत्य है।

> लोकस्थिति सारी करियत, क्या यह वट् ब्रध्याश्वत, कोई भी ब्रस्था का ब्राधार है नहीं। भूठो धर्माधर्मास्ति, क्या पर्गल ब्राकाशस्ति, इस उलक्षत का कोई भी प्रतिकार है नहीं।

इस प्रकार एक बार घोर पतनगामी होकर भाषाङ्भूति की जीवनयात्रा गहनाधंकार में भटक जाती है। किन्तु सौभाग्य से उनका शिष्य विनोद प्राता है और उनके उद्धार का आयोजन करता है। शिष्य के लिए गुरु के ऋण का शोध केवल यही है कि वह अपने अजित ज्ञान की गुरु-प्रबोध के लिए काम में लेने का अधिकारी बने। संयोग की बात, विनोद के सौभाग्य से वह दिन उसे देखने को मिला और उसने गुरु को प्रबोध देकर सत्यथ पर पुनः आरूढ़ किया। विनोद ने गृरु को प्रबोध दिया:

स्रवितय हैं सारे सागम, संयम का सकल परिश्रम, तत्काण ही झात्म-शक्ति यह कल साकार है। आश्रम है बन्ध निबन्धन, संवर से कर्म, निवन्धन, तप संवित कर्मों का सीचा प्रतिकार है। बेता झाकाश आश्रम, पूर्गल है गलन-मिलनमय, पूर्गल के सिवा न कोई का झाकार है।

भाषादभूति काव्य का श्रन्त जैन दर्शन के सिद्धान्तों को सरल भाषा में प्रतिपादन करने में हुआ है। कुछ पारि-भाषिक शब्दाविल इन पृष्ठों में प्रयुक्त हुई है जिसको सम्पादक महोदय ने परिशिष्ट में स्पष्ट कर पाठकों का कल्याण किया है।

काव्य सौष्ठव के घरातल पर इस प्रबन्ध काव्य में एक ही उल्लेख्य तत्त्व मैं पा सका; वह है—मनोरंजक शैली से गूढ़ार्य-प्रतिपादन । श्रीभव्यंजना का मार्दव या व्यंजना का चमत्कार इसमें नहीं है। मूलतः यह श्रीभघा काव्य है, जिसे साधारण पाठक के लिए सुबोध शैली में लिखा गया है। कहीं कहीं गेय रागों के साधारण या श्रीत प्रचलित रूपों ने इसमें हल्कापन भी ला दिया है, किन्तु लेखक का उद्देश्य भिन्न होने से वह दुर्बलता श्राक्षेप योग्य नहीं रहती। प्रचार की दृष्टि से मैं इस काव्य को सफल समभता हूँ। इसका घरातल भी व्यापक बनाया गया है ताकि सभी वर्गों या सम्प्रदायों के धार्मिक वृत्ति के पाठक इसमें रस ग्रहण कर सकें।

#### ऋगिन-परीक्षा

'मिन-परीक्षा' भाचार्यश्री तुलसी की त्रौढ़ काव्य कृति है। इस कृति का सम्बन्ध रामायण की सुविश्रुत कथा

से है। रामकथा का क्षेत्र देश, काल, जाति, धर्म और भाषा की दृष्टि से जितना व्यापक है, उतना सम्भवतः संसार की किसी ग्रन्य कथा का नहीं है। राम और सीता को भारतवर्ष के विभिन्न धर्म और सम्प्रदाय ही नहीं, बाहर के देश भी ग्रयना उपास्य देव मान कर ग्रहण करते हैं। रामकथा का विस्तार होने से इसमें रूपान्तर होना तो स्वामाविक है ही, किन्तु कहीं-कहीं श्राग्यन्त परिवर्तन भी दृष्टिगत होता है। जैन ग्रंथों में रामकथा का प्रारम्भ सातवीं शती से देखा जा सकता है। 'ग्राग्न-परीक्षा' की रचना ग्राचार्यश्री नुलसी ने रामकथा के विभिन्न रूपों को पढ़ कर अपनी नूतन शैली से की है। किन्तु इसका कथा-प्रसंग मूलतः विमल सूरि इत 'पउम चरिउ' की परम्परा से जुड़ा हुग्रा है। इस कथा में कुछ नवीन पात्र ग्रवश्य हैं जो वाल्मीकि और तुलसी की रामायण के पाठकों को नये प्रतीत होंगे, किन्तु समग्र कथा-प्रवाह में उनकों बिना जाने भी पाठक श्रव्यवधान से रसानुभृति कर सकता है।

'श्रम्नि-परीक्षा' ब्राठ समों में विभक्त प्रबन्ध काव्य है। इस काव्य की कथा रावण-वध के उपरान्त लंका में जुड़ी राम की विराट सभा से प्रारम्भ होती है। इशक्षर के दिव्य प्रासाद में राम-लक्ष्मण सिहासन पर विराजमान हैं और सुप्रीव, विभीषण, हनुमान ब्रादि उनके वारों तरफ मंडलाकार बैठे हैं। नारद उस समय सभा में आते हैं और वे साकत नगरी में दुःखी होती हुई वृद्धा माताओं का वात्सल्य भरा करुण सन्देश राम-लक्ष्मण को देते हैं। इस प्रमंग में किय की वाणी माता की ममता और उसके अतुल उपकारों का वर्णन करने में लीन हुई है और बड़ी भावनाओं के साथ मातृत्व का प्यार इन पंक्तियों में उल्लिखत हुया है। ब्रान-परीक्षा का दूसरा ब्रध्याय 'षड्यन्त्र' शीर्षक प्रसिद्ध रामचरित कथा से कुछ नया है। सम्भवतः यह प्रसग जैन कथाओं में हो, किन्तु वाल्मीकि और तुलमी में यह कथा-प्रसंग नहीं है। रामराज्य के सुख और ब्रानन्दपूर्ण वातावरण के चित्रण करने के ठीक बाद ही यह दिखाया गया है कि राम की अन्य रमणियाँ सीता के प्रति ईष्यां सुशीर बैमनस्य की भावना से सीता के विषय में मिथ्या प्रवाद प्रमारित करने का पड्यन्त्र करती है। राम की ये रमणियाँ कीन हैं और इनको राम के प्रति किस प्रकार का ममत्त्व है, यह इस कथा-प्रसंग में ध्रघटित-सा प्रतीत होता है:

रमणियां राम की सब मिल सोच रही हैं, सीता रहते किंचित सुख हमें नहीं है। उससे ही रंजित नाथ! राप्त दिन रहते, हमसे हैं सकर वो बात कभी ना कहते।

> जलता रहता मन भीतर ही भीतर में। यह कैसा घोर शंधेर राम के घर में। आलोक जहां से फैला भारत भर में। यह कैसा घोर श्रंथेर राम के घर में।

राम की रमणियों ने षड्यन्त्र कर सीता से रावण के पैरों का चित्र बनवा कर उसे लांछित किया भीर राम की विवश कर दिया कि वह सीता को विसर्जित करें।

सुन अकल्पित कल्पना यह, राम बुःखित हो गये, जिन्न मन विश्राम गृह में, क्लान्त होकर सो गये। ज्वार विविध विचार के हृदयाब्धि में झाने लगे, लहर बन कर झोण्ड तट से शब्द टकराने लगे।

राम का श्रन्तस्तल नगर में व्याप्त किंवदन्तियों और प्रवादों से खिन्न हो गया । वे निर्णय न कर सके कि सीता के उज्ज्वल घवल चरित्र पर यह कलंक-कालिमा क्यों थोपी जा रही है । किन्तु लोकापवाद को बलवान् मानकर सीता-परित्याग का कठोर निर्णय कर ही लिया । कवि ने राम के उद्घान्त मन को बड़े सशक्त शब्दों में वर्णन किया है :

> ग्राभ्र, ग्राथनी, सर, सरोवह, जान्त-ज्ञान्त नितान्त थे, सरित्, सागर-शब्द रह-रह हो रहे उद्यक्षास्त थे।

#### विहण, परनण, द्वय-चतुष्यद, सर्वतः निस्तब्ध थे, हुई परिणति गति स्थिति में, झब्द भी निःशब्द थे।

सीता-परित्याग का यह सारा वर्णन बहुत ही प्रवाह पूर्ण शैली में लिखा गया है। सहृदय पाठक का इस प्रसंग में अनेक प्रकार की कोमल अनुभूतियों से आप्लाबित हो जाना स्वभाविक है। लक्ष्मण की दशा का यथार्थ अंकन करने में किब की वाणी इतनी मंवेद्य हो गई है कि उसके साथ तादात्म्य करने में कोई बाधा नहीं आती। राम के कठोर आदेश का पालन करने की विवशता और महासती के प्रति अगाध श्रद्धा से भरा कृत्तान्तमुख मेनापित का मन दिवधा में डूब जाता है। उसे मीता को छोड़ने वन में जाना ही होगा—कैसी परवशता है।

स्वलित जरण, कम्पित वदन, ब्राकृति ग्रथिक उदास । पहुँचा सेनानी सपदि महासती के वास।

परित्यक्त होकर सीता वन में चली आई, किन्तु उसका मन घोर अनुताप से भरगया। सती-साध्वी निर्दोष नारी को इतना भीषण कव्ट उठाना पड़ा, यह नारी जीवन का अभिशाप नहीं तो क्या है ? नारी के अभिगन्त जीवन का वर्णन किव के शब्दों में मुनने योग्य है :

> घपमानों से भरा हुआ है नारी-जीवन, घरमानों से भरा हुआ है नारी-जीवन, ग्रिभियानों से डरा हुआ है नारी-जीवन, बलिवानों से घिरा हुआ है नारी-जीवन।

पुरुष-हृदय पाषाण भले ही हो सकता है, नारी-हृदय न कोमलता को को सकता है। पिघल-पिघल उसके ग्रम्तर को घो सकता है, रो सकता है, किन्तु नहीं वह सो सकता है।

श्रनुताप की भट्टी में जलकर सीता ने श्रपनी विचारधारा को कंचन बनाया। उसे साहस का सम्बल मिला श्रपने ही श्रन्तर के भीतर। श्रासन्त प्रसवा होकर वह वन में श्राई थी। उसने दो पुत्रों को जन्म देकर श्रनुभव किया कि वह पित पिरत्यक्ता होकर भी पुत्रवती है। उसके पुत्र मर्यादा पुरुषोत्तम की सन्तान हैं। सीता के उदर में पल कर उन्होंने सत्य, धर्म श्रीर ब्रत-पालन की दीक्षा ली है, क्या वे मातृ-श्रपमान का बोध होने पर शान्त रह सकते थे। सीता के पुत्रों की वाणी में प्रतिशोध की श्रीन भभक उठी श्रीर वीरोचित दर्प से वे हुंकार उठे:

> जिस मां का हमने दूध पिया उसका भ्रपमान न देखेंगे, जम-चमती इन तलवारों से हम जाकर के बदला लेंगे, रे ! दूर कौन-सा कौशल है बीरत्य स्थयं का तुम तोलो, यदि बोड़ी-सी भी क्षमता है करके दिखलाओं, कम बोलो।

सीता के पृत्र युद्ध के लिए सन्तद्ध होकर मैदान में उतरते हैं और लक्ष्मण के साथ ग्राई हुई सेना से पूरी तरह मोर्चा लेने में जुट जाते हैं। इनकी वीरता से एक बार-लक्ष्मण व राम भी श्रिभभूत हुए बिना नहीं रहते। राम श्रीर लक्ष्मण दोनों की समवेत शक्ति भी इन्हें परास्त करने में सफल नहीं होती। राम व लक्ष्मण ने भ्रनेक शस्त्रास्त्रों का प्रयोग किया, किन्तु सभी बेकार गये। एक एक कर पाँसभी अरंघ गये वेकार । श्रद्धा, कान बिना यथा किया न हरती भार । यों सक्ष्मण के भी सभी हैं निर्थ हथियार । वया-वान, संयम बिना ज्यों होते निस्सार ।

युद्ध के वर्णन में झाचार्यश्री तुलसी ने एक परम्परा—मर्यादा रखी है। उसे विकराल बनाने के लोभ से शब्दों का धाडम्बर खड़ा नहीं किया। सहज शैली से युद्ध की भूमिका में मानव-मन के प्रतिद्वन्द्वों को ही प्रमुख स्थान दिया है। इस प्रसंग के बाद इस प्रबन्ध काव्य का उत्कर्ष स्थल और उपसंहार एक साथ भाता है। फलागम की दृष्टि से यह भ्रध्याय अन्त में है, किन्तु इस पर उत्कर्ष जिस रूप में चित्रित किया गया है, वह लोक विख्यात कथा से कुछ भिन्न है। लोक-कथाओं में राम ने सीता की श्रम्त-परीक्षा लंका से आने पर साकेत नगरी में प्रवेश से पहले ली थी, किन्तु भाचार्यश्री नुलसी के काव्य में जैन-परम्परा का ग्रहण हुआ है और सीता की श्रम्त-परीक्षा राम ने भ्रम्ती झान्म-ग्लानि के उपरान्त अपने भ्रन्तर की प्रबल प्रेरणा से ली है। राम की अन्तरात्मा सीता को सर्वया श्रुद्ध, सती-साध्वी मान रही है, खतः यह भावश्यक प्रतीत हुआ कि जनापवाद के निरसन के लिए बाह्य परीक्षा भी की जाये।

नहीं, नहीं मेरे मन में तो शंका जैसा कोई तस्व, बियते! सप्रतिहत झास्या है मानों ज्यों कायक सम्यक्त । जड़जन का उन्माब मिटाने सबमुख यही सबूक बवा, सफल परीक्षण हो जाने से हो जायेगी शुद्ध हवा।

सीता ग्रग्नि-कुण्ड में प्रविष्ट होने के लिए उद्यत हुई । उसके मन में भ्रटूट विश्वास का तेज था। वह निर्भय भाव से प्रसन्त मुद्रा में ग्रग्नि में प्रविष्ट हुई :

> चीर कितिज की छाती भास्कर नम प्रांगण में चढ़ता है, मृति ज्यों बन्धन-मुक्त साधना-पथ पर छागे बढ़ता है। झरुण झरुण है, झरुण ब्योम है, झरुण सलिस है, झरुण घरा, तरुण झरुणता सिये ज्योतिमय रूप मैथिसी का निसरा।

> बिना हुताशन-स्नान किये होता सोने का तोल नहीं, नहीं शाण पर चढ़ता तब तक होरे का कुछ मोल नहीं, कड़ी कसौटी पर कस घपनी ग्राभिनव ज्योति जगाएगी, सूर्य बंश की विजय पताका भूतल पर सहराएगी।

सीता के दिव्य एवं पिवत्र चरित्र का प्रभाव ऐसा हुया कि प्रज्वलित हुनाशन की लपटें क्षण-भर में शीतल सिलिल की तरंगें बन गई ग्रीर नती सीता उसके ऊपर शान्त सुस्थिर भाव से विराजमान दृष्टिगत हुई। किसी श्रज्ञात शक्ति के प्रभाव से वह ग्रग्नि-कुण्ड मणि-मंडित सिहासन बन गया। उस पर बैठी सीता ऐसी लगी जैसे हंस वाहन पर साक्षात् सरस्वती सुशोभित हो रही हो:

मिण-मंडित स्वींणम सिहासन कर रहा सूर्य-सा उद्भासन, है समासीन उस पर सीता सुख पूर्वक साथे पद्मासन, मानो मराल पर सरस्वती उत्पल पर कमला कलावती।

#### सब्ज्ञानोपरि सम्यक् भदा, त्यों हुई सुज्ञोभित महासती।

संक्षेप में, प्रग्ति-परीक्षा भी एक प्रभिषा प्रधान सरस प्रबन्ध काव्य है जिसे प्राचार्यं श्री तुलसी ने लय प्रौर स्वरों में बाँध कर गेय बनाने का प्रयास किया है। यदि इस काव्य को प्रवलित गीन स्वरों में न बाँध कर विषयानुकूल प्रवाह में बहने दिया जाता तो निरचय ही इसका काव्य सौष्ठव अधिक उत्कृष्ट होता। ग्रंथ-सम्पादक मुनिश्री महेन्द्रकुमार ने प्रपनी सम्पादकीय भूमिका में ग्रंथ की तुलनात्मक समीक्षा करते समय मैथिलीशरण गुप्त रिवत साकेत का संकेत किया है। कुछ स्थल उद्धृत करके साम्य-वैषम्य दिखाने की भी उन्होंने चेष्टा की है, किन्तु उनका घ्यान इस तथ्य की घोर शायद नहीं गया कि साकेत के प्रणेता गाईस्थ्य जीवन की मोहक कॉकियाँ प्रस्तुत करने में बेजोड़ हैं। सद्गृहस्थ होने के कारण उनके काव्य में गाईस्थिक जीवन की मर्म छवियों के अनुभूत चित्र जिस रूप में उभर कर धाते हैं, वैसे एक वीतराग साधु की लेखनी से कैसे सम्भव हो सकते हैं। वियोग घौर करण भाव की योजना के लिए भी जिस प्रकार की घनुभूत चाहिए, वैसी एक संत के प्रास नहीं हो सकती। यह दूसरी बात है कि धार्मिकता—नैतिकता का जीवन चित्र उनके काव्य में ग्रा जाये, किन्तु गृहस्थी की भावना को साकार कैसे कर सकेंगे! यही कारण है कि 'ध्रान-परीक्षा' में पवित्रता ग्रौर धार्मिकता का वातावरण ग्राधक है, गृहस्थ जीवन का नहीं। रामायण के जिस प्रसंग का ग्राचार्यश्री तुलसी ने चयन किया है उसके लिए उपमहार में नैतिक घौर धार्मिक उपदेशों के लिए ग्रवकाश होने पर भी प्रारम्भ ग्रौर मध्य में व्यावहारिक जीवन की कड़वी-मीठी सामान्य मनुभूतियाँ ही ग्राधिक उभर कर ग्रानी चाहिए थीं।

'ग्रामि-परीक्षा' का सबसे बड़ा गुण है, उसकी सुबोध शैली ग्रीर रोचक कथा-प्रसंगों की ग्रन्वित । किव की बाग्धारा सरस-हिनग्ध होकर जिस रूप में प्रवाहित हुई है, वह सर्वत्र कथा के श्रनुकूल है। रोचकता की दृष्टि से यह काव्य व्यापक यश का भागी होगा। कहीं-कहीं गेय रागों का प्रबल ग्राग्रह पद-पोजना तथा ग्रथं-तत्त्व को इतनी साधारण कोटि तक उतार लाया है, जो ग्रंथ के विषय-गांभीयं की दृष्टि से घातक है। किन्तु प्रवारात्मक दृष्टिकोण के कारण शायद ग्राचार्यश्री को यह माध्यम ग्रत्युपयुक्त प्रतीत होता है।

मैंने दोनों काव्य ग्रन्थों का प्रवन्धास्मक दृष्टि से ही विश्लेषण किया है। रस, ध्विन, ग्रनंकार ग्रादि के गुणदोष-विवेचन में जान-बूभकर नहीं गया हूँ। मैंने इन दोनों काव्यों में प्रवन्धारमकता का गुण पूरी तरह पाया है और एक तटस्थ पाठक की भौति इन्हें पढ़ कर पर्याप्त ग्रानन्द प्राप्त किया है। इन दोनों प्रवन्ध काव्यों की एक उल्लेख्य विशेषता यह भी है कि इनका ध्येय नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा करना होने पर भी किव ने प्रतिपाद्य को इस प्रकार गठित किया है कि उसमें लोक-व्यवहार-ज्ञान की ग्रत्यधिक सामग्री एकत्र हो गई है। इन दोनों प्रवन्ध काव्यों के ग्रनुशीलन से प्रत्येक पाठक की लोक-दृष्टि व्यापक बनेगी और उसके दैनन्दिन जीवन में होने वाली घटनाओं से इन काव्यों की घटनाओं का तादारम्य हो सकेगा। ग्राचार्यश्री तुनसी का जीवन धार्मिक एवं नैतिक ग्रादशों का साकार रूप है। उन्हीं ग्रादशों को लोकभाषा में निबद्ध करना उनका ध्येय था। कथा-प्रसंग तो व्याज-मात्र है, किन्तु उनका निर्वाह जितनी सावधानी से होना चाहिए था, उतनी ही सावधानी से किया गया है। ग्राचार्यश्री तुलसी वीतराग ग्राचार्य होने पर भी लोक चेतना से सम्पृक्त रहते हैं और उसके उन्तयन ग्रीर उत्यान के लिए किये गये उनके ग्रनेक प्रयोगों में इन काव्य ग्रन्थों का भी ग्रिमट योग है।



## ऋगिन-परीक्षाः एक अध्ययन

प्रो० मूलचन्द सेठिया बिड्ला बार्टन् कॉलेज, पिलानी

प्रायः ढाई हजार वर्षों से रामचरित भारतीय साहित्य का प्रमुख उपजीव्य रहा है। रामायण की कथा भारत की सीमाग्रों का मितकमण कर बृहत्तर भारत में भी लोकप्रिय रही है, परन्तु डॉ० कामिल बुल्के की यह धारणा तो निर्विवाद है कि "विभिन्न माधुनिक भारतीय भाषाग्रों का प्रथम महाकाव्य या सबसे मधिक लोकप्रिय ग्रंथ प्रायः कोई 'रामायण' है।" राम-भिक्त का धार्मिक क्षेत्र में अवतरण भी साहित्य के माध्यम में ही हुआ है। डॉ० गोपीनाथ कविराज राम-भिक्त का विशेष विकास भाठवीं शताब्दी ई० के पश्चात् मानते हैं, परन्तु प्राचीनतम उपलब्ध रामकाव्य वाल्मीिक रामायण का रचनाकाल ईमा के छह सौ में चार सौ वर्ष पूर्व के अन्तर्गत माना जाता है। वाल्मीिक के पूर्व भी स्फुट या प्रवत्य क्ष्म में राम-काब्य की रचना होती रही होगी, लेकिन साहित्य-शोधकों के लिए अव तक वह अप्राप्य है। यह निश्चित है कि राम के अवतार रूप की प्रतिष्ठा और राम-भिक्त के शास्त्रीय प्रतिपादन की अपेक्षा राम-चरित की काव्यात्मक अभिव्यक्ति प्राचीनतर है। भारतीय लोक-मानस की सम्पूर्ण आदर्श-परिकल्पनाएं राम के चरित्र में कुछ इस परिपूर्णता के साथ मृतिमन्त हुई है कि 'लोकेश लीलाधाम' राम का पावन चरित्र किवयों के लिए चिरन्तन आवर्षण का केन्द्र रहा है। हो भी क्यों नहीं:

#### राम तुम्हारा नाम स्वयं ही काव्य है, कोई कवि बन जाय सहज सम्भाव्य है।

—गुप्तजी

'हरि अनन्त हरि कथा अनन्ता' के अनुसार विभिन्न किवयों को राम के व्यापक चरित्र में अपने मनोनुक्ल मन्तव्य प्राप्त हो गया है। राम के नाम में हो कुछ ऐसा दुनिवार आकर्षण था कि सम्पूर्ण नाम-रूप के परे अन्तर्ब्रह्म का साक्षात्कार करने वाले निर्मुणिया कबीर 'राम नाम का मरम है आना' कह कर भी अपने को 'राम की बहुरिया' घोषित करने का लोभ संवरण नहीं कर सके। वाल्मीिक और स्वयंभू, तुल्मी और केशव, कम्बन और कृतिवास, हरिश्रीध और मैथिलीशरण गुप्त द्वारा राम के पवित्र वरित्र का पूर्ण प्रशस्त अभिव्यजन हो चुकने पर भी उसके प्रति नये कृतिकारों का आकर्षण उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है।

राम का चरित्र एक ऐसे प्रभा-पुञ्ज की तरह है, जिसके प्रतिफलन के कारण उसके पाइवंवर्ती ग्रह-उपग्रहों के रूप में सीता, लक्ष्मण, भरत, कौशल्या, कैकयी, हनुमान श्रादि के चरित्र भी श्रालीकिक श्राभा से श्रीभमण्डिन प्रतीन होते हैं। ग्राधुनिक किवयों में दिवंगत निरालाजी ने 'राम की शक्ति पूजा' और 'पंचवटी-प्रसंग' में राम के नपःपूत जीवन के कुछ पावन प्रसंगों को चित्रित किया है। श्री बलदेवप्रसाद मिश्र ने 'साकेत सन्त' में भरत श्रीर माण्डवी, श्री केदारनाथ मिश्र 'प्रभात' ने कैकयी और दिवंगत पं० बालकृष्ण दार्मा 'नवीन' ने ऊर्मिला के चरित्र को ग्रपने काव्य का केन्द्र-बिन्दु बनाया है। परन्तु राम-कथा के चाहे किसी भी पाइवं को क्यों न स्पर्ध किया जाये, राम की वर्चस्विता नो उसमें बनी ही रहती है। 'साकेत' में किववर मैथिलीशरण गुप्त ऊर्मिला को नायिका बना कर भी लक्ष्मण को ग्रपने महाकाव्य का नायक नहीं बना सके। बस्तुतः, राम भारतीय जीवनादर्श के एक पावन प्रतीक वन गये हैं और उनके सर्वांगपूर्ण जीवन में प्रत्येक किव को श्रपने श्रीभन्नेत की प्राप्ति हो जाती है। राम-काव्य की बृहत् श्रु क्वाने में नवीननम कड़ी है—श्राचार्यश्री

तुलसी की भग्नि-परीक्षा, जो सन् १६६१ में प्रकाशित हुई है। राम-कथा के सम्बन्ध में भ्रपने दृष्टिकीण का प्रतिनिधित्व करते हुए भ्राचार्यश्री तुलसी ने 'प्रवास्ति' में स्पष्ट कहा है:

> रामायण के हैं विविध रूप अनुरूप कथानक प्रहण किया, निम्न्यल सन से कलना द्वारा समुचित भावों को बहन किया, बास्तव में भारत की संस्कृति है रामायण में बोल रही, अपने युग के संवादों से बह ज्ञान-पंथियों क्षोल रही।

भाचायंथी तुलसी तेरापंथ के नवमाचायं, भ्रणुवत-मान्दोलन के प्रवर्तक एवं जैन-दर्शन के एक महान् व्याख्याता के रूप में राष्ट्र-व्यापी ख्याति प्राप्त कर चुके हैं, परन्तु उनके कवित्व का परिचय भाषाढ़ भूति के प्रकाशन के साथ ही प्राप्त होता है। जन्मना राजस्थानी होने के कारण राजस्थानी भाषा में भाचायंश्री तुलसी द्वारा विरचित विपुल काव्य-सामग्री विद्यमान है, जिसमें पूर्वाचायं श्रीकालूगणी के जीवन से सम्बद्ध चरित-काव्य 'श्रीकालू यशोविलास' प्रमुख रूप से उल्लेख्य है। विगत वर्षों में उत्तरी एवं मध्य भारत में विचरण करने के पश्चात् हिन्दी काव्य-सृजन की भ्रोर भ्रापके प्राक्तगण का सूत्र-पात होता है। 'श्रीन-परीक्षा' में रामायण के उत्तरार्द्ध की कथा है, जो राम के लंका-प्रस्थान से प्रारम्भ होकर ग्रीन-परीक्षाता महासती सीता के जयनाद के साथ समाप्त होती है। स्पष्टतः भ्राचार्यश्री तुलसी का भ्रालोच्य काव्य राम-काव्य की जैन-परम्परा के अन्तर्गत ही परिगणित किया जा सकता है। भ्राचार्यश्री तुलसी के राम गोम्वामी तुलसीदास के राम की भाँति "व्यापक, भ्रकल, भ्रनीह, भ्रज निर्गृत नाम न रूप। भगत हेतु नाता विध करत चरित्र ग्रन्प।" वाले मर्यादावतार नहीं है। वे भ्राठवें बलदेव हैं भौर उनकी गणना लक्ष्मण एवं रावण के साथ त्रिष्टि महापुर्वों में की जाती है। जैन मतानुसार राम ने भ्रपने जीवन के संख्या-काल में साधु-जीवन भ्रंगीकार किया था भ्रौर कर्मक्षय कर सिद्ध पुरुप बन गए थे। जैनों के राम मोक्ष-प्रदाता नहीं है, उन्होंने स्थयं भ्रमनी जीवन-मुक्ति के लिए साधना की थी। हाँ, इसमें सन्देह नहीं कि भ्राज राम एक जीवन-मुक्त महापुरुव सिद्ध हैं। 'श्रीन-परीक्षा' के दथरथ भी राम-बनवास के बाद जैन-दीक्षा ग्रहण कर लेते हैं। भरत राम से कहते हैं 'ली पूज्य पिताजी ने दीक्षा।' राम के श्रयोध्या प्रत्यागमन के बाद भरत भी जैन साधुत्व स्वीकार करने में विलम्ब नहीं करते हैं:

#### भरत त्वरित मृति बन चले, कर जागृत सुविवेक। वासुदेव-बलवेव का हुन्ना राज्य-स्रभिषेक।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि 'ग्राग्न-परीक्षा' का प्रणयन वाल्मीकीय रामायण की परम्परा में न होकर, 'पउम चिर्य' के प्रणेता विमल सूरि की जैन रामायण-परम्परा में हुन्ना है। जैनों में भी रामायण की दो परम्पराएं मिलती हैं, परन्तु गुणभद्र ग्रौर पुष्पदन्त के 'उत्तर पुराण' में, जो दिगम्बर सम्प्रदाय में ही अधिक प्रचलित रहे हैं; सीता के परित्याग भौर अग्नि-परीक्षा की घटना का कहीं उल्लेख तक नहीं किया गया है। ग्रतः ग्राचार्यश्री तुलसी की 'ग्रग्नि-परीक्षा' का सम्बन्ध विमलसूरि के 'पउम चरिय' की परम्परा से ही स्थापित किया जा सकता है। ग्रालोच्य काव्य के कथात्मक विकास पर भी 'पउम चरिय' का सुस्पष्ट प्रभाव है। राम के द्वारा सीता का परित्याग, वष्टा जंघ द्वारा सीता का संरक्षण, नारद द्वारा लवणांकुश को माता के ग्रपमान की कथा सुनाया जाना, राम-लक्ष्मण के साथ लवणांकुश का युद्ध श्रौर अन्तनः सीता की भिग्न-परीक्षा ग्रादि घटनाश्रों का विधान 'पउम चरिय' की परम्पानुसार ही किया गया है।

'ग्रग्नि-परीक्षा' में ग्रग्नि स्नाता सीता का ग्रत्युज्ज्वल चरित्र ही प्रमुख रूप से उपस्थित किया गया है। डॉ॰ माताप्रसाद गुप्त के शब्दों में ''वैदिक साहित्य में 'सीता' शब्द का प्रयोग ग्रधिकतर हल से जोतने पर बनी हुई रेखा के लिए हुआ है। किन्तु एक सीता कृषि की ग्रधिष्ठात्री देवी भी है। एक ग्रन्य सीता सूर्य की पुत्री है। विदेहतनया सीता वैदिक साहित्य में नहीं है।" बैदिक साहित्य में सीता का उल्लेख केवस 'रामोत्तर तापनीयोपनिषद' में मिलता है, जो साहित्य-शोधकों द्वारा काल-कम की दृष्टि से अर्थाचीन ठहराया गया है। डॉ० कामिल बुल्के के मतानुसार "वैदिक सीता का व्यक्तित्व ऐतिहामिक न होकर सांगल पद्धित के मानवीकरण का परिणाम है।" प्रचलित बाल्मीिक रामायण में सीता को भूमिजा भी कहा गया है। "एक दिन राजा जनक यज-भूमि को तैयार करने के लिए हल चला रहे थे कि एक छोटी-सी कल्या मिट्टी से निकली। उन्होंने उसे पुत्री-स्वरूप ग्रहण किया तथा उसका नाम मीता रखा। सम्भव है कि भूमिजा सीता की अलौकिक जन्म-कथा सीता नामक कृषि की अधिष्ठात्री देवी के प्रभाव से उत्पन्न हुई हो।" गुणभद्रकृत 'उत्तरपुराण' के अनुमार सीता रायण की पुत्री थी और मन्दोदरी के गर्भ से उसका जन्म हुग्रा था। इसी प्रकार प्रगजा सीता, रक्तजा सीता और प्रग्निजा सीता की कल्पनाएं भी अनेक पौराणिक कथा-काव्यों में मिलती हैं।

विष्णु के ब्रवतार राम की पत्नी सीता को भी विष्णु की पत्नी लक्ष्मी का ब्रवतार माना गया है। भक्तप्रवर तुलसीदास ने सीता को प्रभु की शक्ति-योग माया के रूप में प्रस्तुत किया है, जो केवल विष्णु की पत्नी का ब्रवतार मात्र नहीं, प्रत्युत स्वयं सृष्टि का सृजन, पालन भीर संहार करने में समर्थ सर्वेशक्तिमती है:

#### जासु ग्रंश उपजींह गुन जानी। ग्रंगनित लच्छि उमा बह्मानी। भृकृष्टि विलास जास जगहोई। राम बाम दिसि सीता सोई।

'ग्रश्नि-परीक्षा' में ग्राचार्यश्री तुलसी ने सीता को महामानव राम की महीयसी महिषी के रूप में चित्रित किया है ग्रीर यह चरित्र श्रांसुओं से धुल कर श्रीर द्याग मे जल कर तथ्त कुन्दन की तरह सर्वथा निष्कलुष हो गया है। पत्नी के रूप में राम की श्रद्धांक्तिनी बन कर भी वह श्रभागिनी ही रही:

#### जबसे इस घर में भाई इसने बुःख ही बुःख देखा, पता नहीं बेचारी के कैसी कमों की रेखा?

पृथ्वी की पुत्री को भी अगर अपनी सर्वसहा माता की भाँति सबका पदाघात सहन करना पड़ा हो तो इसमें आद्यं हो क्या ? 'अग्नि-परीक्षा' में आचार्यंथी तुलमी ने उसी अश्रुमती सीता को नायिका के पद पर प्रतिष्ठित किया है जिसकी पलकों में आँसुओं की आईता के साथ सतीत्व का ज्वलन्त तेज भी है। उसमें नारीत्व के आत्म-गौरव की भावना सदैव प्रगाढ़ रूप में परिलक्षित होती है। वह राम के माध्यम से पुरुष जाति के अत्याचार को सहर्ष सहन करती हुई भी अपने अन्तर में विद्रोहिणी है। वाल्मीकि और तुलमी की सीता उमके सामने नतन्यना और मूकवचना निरीहा नारी प्रतीत होती है। युग के प्रभाव से आध्निक युग की प्रबद्ध नारी-चेतना से आचार्यश्री तुलसी भी अप्रभावित नहीं रह सके हैं। 'साकेत' की सीता और ऊमिला की आत्यन्तिक कोमलता और कातरता का प्रायच्चित्त श्री मैथिलीशरण गुप्त ने भी 'विष्णुप्रया' में किया है। 'अग्नि-परीक्षा' की सीता राम से उपालम्भ के रूप में जो कुछ कहनी है, उसमें युग-युग से पदमदित और प्रवंचित नारी जाति की वह मर्भ-वेदना भी मिली हुई है, जो विद्रोह की सीमा-रेखा को रुपर्श करने लगी है:

# हाय राम ! क्या नारी का कोई भी मूल्य नहीं है ? क्या उसका श्रीदार्य, शीर्य पृष्ठों के तुल्य नहीं है ?

श्राचार्यश्री तुलसी एक धर्म-सम्प्रदाय—तेरापंथ के श्राचार्य हैं। वचपन से ही परम्परा श्रीर मर्यादा के पालन करने श्रीर कराने का उनका चिराचरित श्रम्यास रहा है। इसलिए उनसे यह श्राशा करना तो दुराशा ही होगी कि वे किसी भाव-प्रतिक्रिया के श्रावेश में श्राकर नारी के विद्रोह का शंखनाद करने लगेंगे, परन्तु 'श्राग्न-परीक्षा' की कुछ उचलन्त पंक्तियाँ नारी के निपीड़न श्रीर पुरुषों की स्वेच्छा चारिता श्रीर स्वार्थपरायणता को इतनी प्रखरता के साथ उपस्थित करती हैं कि समाज का यह मूलभूत वैषम्य—जो श्रीर कुछ भी हो, सन्य श्रीर न्याय के श्राधार पर प्रतिष्ठित नहीं है—ग्रपनी नग्न वास्तविकता के साथ हमारे सामने श्रा जाता है।

नारी का अस्तित्व रहा नर के हाथों में, नारी का अपक्तित्व रहा नर के हाथों में,

#### है पुच्यों के लिए जुली यह बसुषा कारी, पर नारी के लिए सबन की चार बीबारी।

क्या पैरों को जूती नारी? जा सहे आपदाएं सारी।

सिंहनाद-वन में (जिसका नाम ही रोंगटे खड़े करने वाला है) घोर निराक्षा के क्षणों में भी सीता एक सन्नारी के रूप में अपने धात्म-बल को जागृत करती है भीर इस प्राणान्तक संकट के हलाहल को ग्रमृत बना कर पी जाती है। तभी तो नक्ष्मण कहते हैं:

#### सहज मुकोमल सरल, गरल को ग्रमृत करती सीता विवस परिस्थितियों में जो कभी नहीं अब भीता

सीता ने मपने मलण्ड सतीत्व के बदले क्या नहीं पाया—निर्वासन, निर्यातन, निन्दा, लांछना और मन्ततः पुरुष का विश्वासघात ! परन्तु विधि की ये विडम्बनाएं उसके प्राणों के सत्व का शोषण नही कर सकीं। सीता ने जहर के धूँट पर घूँट पीकर ही नारी के लिए जीवन का यह तत्त्व-दर्शन प्राप्त किया था:

अपने बल पर नारी तुभे आगमा होगा, कृत्रिम आवरणों को तुभे त्यागमा होगा। स्रो सन्तुलन भीत हो नहीं भागना होगा, सत्य कान्ति का अभिनव अस्त्र बागना होगा।

'श्रग्नि-परीक्षा' में सीना एक परित्यक्ता पत्नी के रूप में ही नहीं, एक महिमामयी माता के रूप में भी हमारे सम्मुख उपस्थित होती है। उसका पत्नीत्व चाहे ग्राहत हो, लेकिन उसका मातृत्व लवणांकुश जैसे पुत्र-रत्न पाकर सफल-सार्थक है। वे जब माता के ग्रपमान का प्रतिशोध लेने के लिए राम ग्रीर लक्ष्मण जैसे विश्व-विश्वत वीरों से लड़ने के लिए तैयार हो जाते हैं तो उन्हें इन नवल किशोरों में लड़ने में एक प्रकार का सहज सकीच हो ग्राता है। इस ग्रवसर पर सीना के सफूतों की ग्रोजस्विनी वाणी गूँज उठती है:

कथ्णा किसी दीन पर करना, भोली किसी हीन की भरना, दया पात्र हम नहीं तुम्हारे, क्यों फैलायें हाथ ?

लवणांकुश जैसे पुत्रों को पाकर सीता कुछ क्षणों के लिए पति की प्रबंचना के अन्तर्दाह को भी भूल गर्ह होगी। माता के रूप में ही नारी पुरुष की प्रवंचना और प्रताड़ना के ऊपर उठ पाती है। सम्भवतः नारी भ्रपने पुत्र के रूप में ही पुरुष को अपने सर्वान्तःकरण से क्षमा कर जाती है। पाता के अपमान का शोध सत्पुत्रों के द्वारा ही होता है:

सत्युत्र कभी यों माता का अपमान नहीं सह सकते हैं, पाते ही सचमुख गुभ अवसर वे मौन नहीं रह सकते हैं।

श्राचार्यश्री तुलसी ने कौशल्या श्रीर सीता के रूप में मातृ-हृदय की नवनीत कोमलता श्रीर मर्म-मथुरता को सजीब रूप में उपस्थित कर दिया है। लक्ष्मण के बन से लौट श्राने पर माता सुमित्रा पूछती है, "तुम्हारे घाव कहाँ लगा था? जरा मुभे वह जगह तो दिखलाश्रो।" कौतुक प्रिय नारदजी भी माता की महिमा गाते हुए सुनाई पड़ते हैं:

वासस्य भरा मां के मन में, भाषुर्व भरा मां के तन में, उस स्नेह-सुवा को सरिता का रस तुम्हें विसाने झाया हैं।

#### सुनती जब सुत का किन्चित् दुःख, पीला पड़ जाता उस का मुख, उसकी उद्वेलित शान्मा को में तुम्हें दिखाने ग्राया हूँ।

'ग्रग्नि-परीक्षा' के ग्रनेक पृष्ठ परित्यक्ता सीता के श्रांसुभों से गील है। सीता के विरह-वर्णन में केवल पति-वियोग जन्य वेदना की ही ग्रिभिव्यंजना नहीं है, अपने सतीत्व पर किए गए सन्देह की चुभन, नारीत्व के अपमान की कसक श्रीर पति के द्वारा दी गई प्रवंचना की प्राणान्तक पीड़ा का भी समावेश है। गर्भवती ग्रवस्था में सिहनाद-वन में नितान्त निराश्य छोड़े जाने पर उसके सम्मुख सबसे पहले तो कहाँ जाऊँ? क्या करूँ? की समस्या श्रा उपस्थित हुई होगी:

झम्बर से में गिरी हाय ! श्रव नहीं फेलती घरती, दुकड़े-दुकड़े हृदय हो रहा, रो-रो आहें भरती।

सीता के करण ऋन्दन में जीवन के कुछ ऐसे करण और कठोर सत्य प्रकट हुए हैं, जो मर्यादा पुरुषोत्तम के इस कमें को अमर्यादित सिद्ध करते हुए प्रतीत होते हैं:

यि कुछ ममत्व मन में होता करते न कभी विश्वासघात, क्यों हाण पकड़ कर लाए थे, को निभा न सकते नाथ ! साथ ।

सीता के बेदनामय उद्गारों में एक प्रकार की विदग्धता है, जो केवल हमें भावोद्वेलित ही नहीं करती, विचारो-तेजित भी करती है। राम की संकटापन्न एवं द्विधाग्रस्त मनःस्थिति को भी कवि ने लक्ष्य किया है। बड़े गम्भीर अन्तद्वेन्द्व भीर विचार-मन्थन के परचान् (यद्यपि 'श्रग्नि-परीक्षा' में उसका साङ्केतिक वर्णन ही हुआ है) राम सीता का परित्याग करने के लिए प्रस्तुत होते हैं।

> किन्तु राघव का हृदय ग्रान्दोलनों से या भरा, गूमता भाकाश अपर, गूमती नीचे घरा।

सीता प्रगर सिंहनाद-बन को अपने कुहरी के से करुण अन्दन से विद्वल कर रही थी, तो राम के लिए भी अयोध्या का सुल-शयनागार कण्टक-बन बन गया था। तुलसी के राम अपहृता सीता का पना लग, मृग और मधुकर-श्रेणी से पूछ सकते थे, परन्तु अपनी ही आजा से सीता को निष्कासित करने वाले राम उसका पता किससे पूछते? राम सीता को अयोध्या के राजमहलों से निकाल कर भी उसे अपने हृदय में नहीं निकाल सके। सीता के वियोग में राम को:

नगते फीके सरस स्वादु पकवान भी, कुसुन सुकोमल शम्या तीले तीर-सी, नहीं सुहाते सुलकर मृदु परिधान मी, मलवानिल भी दुःसद प्रतय-समीर-सी।

अन्ततः राम और सीता का मिलन होता है—उनके अंगजात लवणांकुश के प्रवस्त पराक्रम से ! सीता माता के ये पुत्र अपने बाहु-बल के दीप्त प्रकाश में राम के संशयाच्छन्न नेत्रों को निमीलित करते हैं। राम और लक्ष्मण की सेना के रक्त-प्रवाह द्वारा वे अपनी माता पर अकारण लगाई गई कलंक-कालिमा को धो डालते हैं। नारद के मुख से अपनी माता के अपमान की कथा के अवण मात्र से उनका खून खौलने लगता है। है कहाँ अयोध्या? राम कहाँ? माता के आपना बार-बार समकाए जाने पर भी उनके आकौश का उत्ताल वेग शान्त नहीं होता। अपनी माता के अपमान का प्रतिकार करने के लिए वे अयोध्या पर आक्रमण कर ही देते हैं। प्रारम्भ में राम और लक्ष्मण इस युद्ध को बाल-लीला समक्ष कर गम्भी-रता से नहीं लेते। परन्तु लवणांकृश की भयंकर मार-काट को देख कर उनको भी लड़ने के लिए प्रस्तुत होना पड़ता है। युद्ध-वर्णन में भी आचार्यश्री तुलसी ने अपनी काव्य-प्रतिभा का प्रशस्त परिचय दिया है। रणोद्यत राम का रौद्र रूप द्रष्टब्य है:

श्रारण नेत्र निष्करण हुबय, त्यों निष्प्रकम्प निःस्नेह, थर-थर ग्रापर बशन से उसते, शस्त्र-सुसिष्कित देह, सोख रहे जन ग्रारे! हो गया है किसका विधु बाम! मृकुदि खढ़ी है, बड़ी व्यग्नता, फड़क रहे भुज-वण्ड, कड़क रहे बिजसी ज्यों रिपु को कर देंगे शत-खण्ड, है प्रचण्ड कोदण्ड हाथ में मूर्त रूप ज्यों स्थाम।

परन्तु रोषारुण होने से ही युद्ध नहीं होता। राम-लक्ष्मण भले ही लवणांकुश को नहीं पहचानते हों,पर रक्त तो रक्त को पहचानता था। उनके ग्रस्त्र ही जैसे आज उनको छल रहे थे, वे फैंके किघर ही जाते थे ग्रीर जाकर लगते किघर ही थे। रथ जर्जर हो गए, ग्रश्व ग्राहत हो गए, सेना णिथिल हो गई। नारदजी फिर रहस्योद्घाटन करने पहुँच जाते हैं। लवणांकुश का परिचय पाकर राम-लक्ष्मण ग्रस्त्रों को छोड़ कर भीर रथ से उतर कर उनमे मिलने के लिए दौड़ पड़ते हैं:

> पुत्र पिता से, पिता पुत्र से, परम सुदित मन मिलते हैं। इक्ति को देख सिम्धु, रिब-वर्शम से पंकज ज्यों खिलते हैं। विनय और वात्सस्य बरसता है भीगी पलकों के द्वारा। स्नेह-सुधा से सिञ्चित कण-कण झाज श्रयोध्या का सारा।

युद्ध के ग्राँगन में जहाँ पहले तलवारों से तलवारें मिल रही थीं, वहाँ बाहु में बाहु ग्रौर वक्ष से वक्ष मिलते हैं। ग्राचार्यश्री तुलसी ने इस ग्राकस्मिक भाव-परिवर्तन का वड़ा हृदयग्राही वर्णन किया है:

पल भर में ही बीर रौद्र रस अवल गया हर्षोत्सव में, क्षोझ उग्न प्रतिक्षोध-भावना परिवर्तित प्रेमोव्भव में। क्षण भर पहले जो लड़ते ये वे बापस में गले मिले, पलट गया पासा ही सारा, फूल भीर के बीर खिले।

युद्ध-प्रकरण के पश्चात् सीता की श्रम्ति-परीक्षा का प्रसंग उपस्थित होता है। कपिपति सुग्रीव पुण्डरीकपुर में मीता की सेवा में उपस्थित होते हैं और उनका श्रीसनन्दन करते हुए कहते हैं:

> कुल कमले ! कमनीय कले ! झमले ! झचले ! सन्तारी, सहज सुत्रते ! सौम्य सुक्षीले ! अनुनुष्ठेय अविकारी ।

सुपीव के द्वारा राम की श्रोर में श्रामन्त्रण की बात मुनकर सीना का दबा हुश्रा विक्षोभ फूट पड़ता है। मीता के भावोदगारों में नारी की बेदना ही नहीं, उसका विद्रोह भी मुखरित हो उठा है:

कपिपति ! में भूली नहीं वह भीषण कान्तार, नहीं भीर श्रव चाहिए स्वामी का सरकार ।

सीता कहती है—"राम की धरोहर लवणांकुश—मै उन्हें सौंप चुकी हूँ। राम इस कुलटा को अयोध्या जैसी पुण्य नगरी में बुलाकर उस नगरी को कलंकित क्यों करना चाहते हैं? हाँ, अगर वे मेरी परीक्षा लेकर मेरा कलंक उता-रना चाहें, तो मैं सहर्ष अयोध्या जाने के लिए प्रस्तुत हूं।" राम सीता के दृढ सतीत्व के प्रति अपने मन में अप्रतिहत आस्था होते हुए भी जड़ जनता को शिक्षा देने के लिए सीता की अग्नि-परीक्षा करने को प्रस्तुत हो जाने हैं। महेन्द्रोद्यान के निभृत क्षणों में जब राम सीता के सामने अपनी सफाई का क्यान देने लगते हैं तो उन्हें सीता दो टुक जवाब देती है:

जीवन भर में साय रही, फिर भी पाये पहिचान नहीं, कहलाते हो बन्तर्याभी, किस भ्रम में भूले हो स्वामी! "सीता प्रपने सतीत्व का प्रमाण देने के लिए प्रान्त-कुण्ड में प्रदेश करती है, इस पर श्रान्त-कुण्ड तालाब में बदल जाता है भीर उसका जल चारों श्रोर बढ़ने लगता है। जब पानी लोगों के कानों तक पहुँचता है, वे सीता से प्रार्थना करने लगते हैं श्रीर पानी कम हो जाता है।" इन चरम क्षणों में सती सीता के जय-जयकार के साथ श्राचायंश्री तुलसी ने श्रपने का्य्य का चरम समापन किया है। एक भव्य, प्रशस्त श्रीर उदात्त वातावरण में काव्य की परिसमाप्ति होती है। सीता हेम की तरह शुद्ध होने पर भी इस श्रान-परीक्षा में से श्रीर भी उज्जवलतर होकर निकलती है:

बिना हुताशन-स्नान किये होता सोने का तोल नहीं, महीं शाण पर चढ़ता तब तक हीरे का कुछ मोल नहीं।

प्रत्येक प्रबन्धकार को भपने आधारभूत कथानक में से प्रबन्धीचित्य के अनुरूप ग्रहण और त्याग करने का भिक्षकार होता है। भ्राचार्यप्रवर ने अधिकांशतः जैन-परम्परा में प्रचित्त कथानक को ही स्वीकार किया है, परन्तु कितप्य प्रसंगों में नवोद्भावना का चमत्कार भी देखने को मिलता है। जब राम अयोध्या में लीट कर आते हैं तो भरत का यह उपालम्भ कितनी अभिन्न भ्रात्मीयता से भरा हुआ प्रतीत होता है:

हरण हुआ भाभी का फिर भी मुक्के स्मरण तक नहीं किया, भीर कुशल सन्देश हमें लक्ष्मणजी का भी नहीं दिया, रण मं सबको बुला लिया, पर मेरी याद नहीं भाई उसी पिता का पुत्र कहो, क्या था न आपका हो भाई?

राम का उत्तर केवल भरत का निरुत्तर ही नहीं करता, उसे गुरुतर गौरव-गरिमा से भूषित भी कर देता है :

कर प्रजाजनों का संरक्षण तूने भारी गौरव पाया, में एक सिया को पूर्णतया वन में न सुरक्षित रख पाया।

इसी प्रकार-सीता त्याग के प्रसंग में राम केवल सुनी-सुनाई बातों पर ही निर्भर न रह कर, स्वयं छम्रवेश बना कर ग्रयोध्या के जन-समाज में घूमते हैं। सीना-त्याग के मूल में स्थित लोकापवाद के ग्रातंक को घटनात्मक ग्राधार देने के लिए विभिन्न कृतिकारों ने घोबी के वृत्तान्त, रावण के चित्र, भृग्-शाप, शुक-शाप ग्रादि की कल्पनाएं कर डाली है। घोबी के वृत्तान्त का प्राचीनतम उल्लेख सोमदेवकृत 'कथा सरित्सागर' में मिलता है और सम्भवतः मूल ग्रन्थ गृणाद्य की 'बहुद कहा' में भी रहा होगा। सीता के पास रावण का चित्र मिलने की घटना का वर्णन सर्वप्रथम हेमचन्द्राचार्य के 'जैन रामायण' में मिलता है। ग्राचार्यंथी तुलसी ने प्रसंगतः रावण के चित्र ग्रीर घोबी के वृत्तान्त का भी उल्लेख किया है। वास्तविकता तो यह है कि सीता-त्याग का मूल कारण लोकापवाद का ग्रातंक ही रहा है, जिसे प्रसिद्ध राजनीति-शास्त्री जॉन स्टुग्रटं मिल ने जन-मत का ग्रत्याचार (Tyranny of the Public opinion) कहा है। श्राचार्यंथी तुलसी ने जड़जनता की मूढ़ मतवादिता का मर्गग्राही चित्रण इन पंक्तियों में किया है:

है प्रवाह गडरी जनता का, अस्पर ज्यों शिक्षरस्थ पताका। क्षण में इधर-उधर हो बाती, नहीं सही चिन्तन कर पाती।

'ग्रम्नि-परीक्षा' के कला-पक्ष का मूल्यांकन करते हुए हमें यह स्मरण रखना होगा कि एक धर्माचायं होने के नाते प्राचार्यश्री तुलसी कला-पक्ष को ऐकान्तिक महत्त्व नहीं दे सकते थे। इसमें जो कलात्मक उत्कर्ष है, वह तो सहज सिद्ध है। ग्राचार्यप्रवर को दृष्टि से काव्य का श्रानन्द चाहे गौण न हो, परन्तु उसका नैतिक मूल्य सर्वोपिर है। परन्तु काव्य धार्मिक होने पर भी काव्य ही रहता है, उसमें नैतिक प्रबोधन भी होता है तो कलात्मकता के माध्यम से ही होता है। 'ग्रग्नि-परीक्षा' की सफलता इसीमें है कि इसमें एक धर्म-भावना से अनुप्राणित कथा का निर्वाह भी विद्युद्ध मानवीय भाव-भूमिका

पर हुआ है। धर्म-भावना काव्य के नीर में ही क्षीर की तरह सम्मिश्वत हो गई है। वह उत्पर से आरोपित अनुभव नहीं होती। हौ, अलंकार-विधान के अन्तर्गत जैन धर्म के सिद्धान्तों एवं दार्शनिक तथ्यों का स्थान-स्थान पर उस्लेख हुआ है। महाकवि तुलसीदास ने भी नैतिक एवं दार्शनिक तथ्यों का निरूपण इसी प्रकार उपमानों के रूप में यथाप्रसङ्ग किया है। यथा—"वृंद अधात सहे गिरि कैसे, खल के बचन सन्त सह जैसे।" 'अग्नि-परीक्षा' में आचार्यश्री तुलसी ने परम्परागत एवं रूढ़ उपमानों का परित्याग कर अपने अलंकार-विधान को कहीं-कहीं जैन-दर्शन की तास्त्रिक मान्यताओं पर आधारित किया है। इससे जहाँ अलंकार-विधान में एक प्रकार की नवीनता और विलक्षणता का समावेश हुआ है, वहाँ एकाध स्थान पर दुवेंधिता भी आ गई है। कुछ पंक्तियों तो वास्त्रव में बड़ी ही चामत्कारिक एवं अनुरञ्जनकारी बन पड़ी हैं। लक्ष्मण राम से कहते हैं:

श्रमबी मुक्त बने, श्रलोक में चाहे पृद्गल दोड़े। तो भी कभी न जैंबता भाभी सदल पतिवत तोड़े।

शोभित माँ की गोद में दोनों पुष्य-निषान। होते ज्यों बारिज्य में सम्यम् दर्शन-सान।

कहीं-कहीं गूढ़ दार्शनिक सिद्धान्त पर श्राधारित होने के कारण उपमान दुर्बोध हो गए है, परन्तु जैन-दर्शन की सामान्य मान्यताओं से परिचित पाठकों के लिए ये रसपूर्ण ही सिद्ध होंगे। यथा:

स्वल्प-सी भी वृष्टि होती, सिद्ध ग्रत्यूपयोगिनी, सद्यग मृनि की किया, संवर-निर्वरा संयोगिनी।

भारतीय साहित्य में तो वैद्यक, गणित भौर ज्योतिष-शास्त्र से भी उपमानों का चयन करने की प्रवृत्ति रही है, भ्रतः भाचार्यश्री तुलसी का यह भलंकार-विधान कुछ नवीनता और विलक्षणता लिए हुए होने पर भी श्रप्रतीत्व दोष का द्योतक नहीं है।

लोक-जीवन के निकट सम्पर्क में रहने के कारण श्राचार्यश्री तुलसी ने श्रश्नि-परीक्षा में मुहावरों भौर लोकोक्तियों का भी प्रचुरता से प्रयोग किया है। मुहावरेदानी की दृष्टि से 'श्रश्नि-परीक्षा' खड़ी बोली के किसी भी काव्य से टक्कर ले सकती है। 'कामायनी' में तो जैसे मुहावरों का श्रकाल ही है। कुछ मुहावरे श्रीर लोकोवितयाँ सहज ही हमारा ध्यान श्राकृष्ट करती हैं.

- १. पूर्ण भर कर घड़ा जैसे फूटता है पाप का।
- २. चढ़े ग्रीर पैदल दोनों की लोक मजाक उड़ाते।
- ३. एक गुफा में दो-दो मृगपति, एक म्यान में दो तलवार।
- ८. भर बूंद-बूंद से घड़ा, बड़ा वह देश-राष्ट्र निर्माता है।

कहीं-कहीं भाषा का सहज सरल प्रवाह ही बड़ा प्रभावकारी बन गया है। यथा :

#### सेना है या लाए हो, भाड़े के पकड़-पकड़ रँगरूट, केवल भगना ही सीखे, ये मानो रेगिस्तामी ऊँट।

प्रकृति-वर्णन को 'प्रिम्न-परीक्षा' में प्रमुखता तो प्राप्त नहीं हो सकी है, परन्तु जहाँ कहीं घाचायंश्री तुलसी ने प्रकृति की ग्रोर दृष्टिपात किया है, उन्होंने कुछ बिम्बग्नाही चित्र उपस्थित करने में सफलना प्राप्त की है। कुछ स्थल तो निराला की 'रास की शक्ति पूजा' के 'उगलता गगन घन अन्धकार' का स्मरण कराते है। प्रकृति वर्णन प्रायः सर्वत्र कथा-प्रवाह को पूर्व-पीटिका देने के लिए ही उपयुक्त हुआ है। परन्तु मधी हुई कलम से दो-चार रेखाओं में ही जो चित्र अकित किए गए हैं, वे हमारे सम्मुख पूर्ण विम्ब उपस्थित करने में समर्थ हैं:

अभ्र, अवली, सर-सरोबह, आन्त-शान्त नितान्त थे, सरित, सागर-शब्द रह-रह हो रहे उद्भान्त थे। विह्नग, प्रभ्नय, द्वय-श्वतुब्यव, सर्वतः निस्तब्ध थे, हुई परिणत गति स्थिति में, शब्द भी निःशब्द थे।

ग्रन्तिम पंक्ति में शब्द भी निःशब्द थे कह कर नीरवता की पराकाष्ठा को सूचित किया गया है। प्रकृति-वर्णन श्रिषकतर पात्रगत भावनाओं के अनुरूप ही हुआ है। सिंहनाद-वन की दुर्गमता, निर्जनता ग्रौर भयंकरता का प्रस्तुत वर्णन वातावरण के भयकारी प्रभाव को ग्रौर भी गहरा कर देता है:

> वन-विद्याल, भूगाल जूकर हैं परस्पर सड़ रहे, द्विरद मद ऋरते कहीं दन्त्रज्ञालों से भिड़ रहे। प्रवल पुच्छाछोट करते कहीं मृगपति घूमते, भेड़िये, भाल, अयंकर, धोर दवापद भूमते।

'पुच्छाछोट' ग्रादि व्यंजक शब्दों का चयन भी ऐसा किया गया है कि जो एक भयकारी वातावरण का बोलता हुमा चित्र उपस्थित कर देता है। ग्रागि-परीक्षा के प्रसंग में श्रागि-कुण्ड के वर्णन मे भी लेखनी से तूलिका और शब्दों से रेखाओं का काम लिया गया है:

> सम्बर से सम्बर मणि की, नव किरणें भूपर उतर रहीं, सम्बर को ज्वालायें, सम्बर छुने को उभर रहीं।

मालो ज्य काज्य में सर्ग बढ़ता तो झवश्य है, परन्तु परम्परागत शास्त्रीय विधान के मनुसार एक सर्ग में एक ही छन्द का प्रयोग नहीं किया गया है। छन्दोभेद सर्गान्त में न होकर स्थान-स्थान पर स्वच्छन्दतापूर्वक होता गया है। हाँ, छन्दोभेद के पीछे भाव-भेद की प्रकृत प्रेरणा झवश्य विद्यमान है। सम्भवतः 'ग्रग्नि-परीक्षा' के सुधी सम्पादक ने इसमें गीतों का बाहुल्य देखकर ही इसे प्रगीत काब्य कहा है। ग्रन्थथा, यह प्रगीत काब्य न होकर एक कथा-काब्य ही है, जिसमें यथास्थान भाव-प्रकाशन के लिए लोक-लयाश्रित गीतों का माश्रय लिया गया है। ग्रन्थथा, वास्तविकता यह है कि 'श्रग्नि-परीक्षा' को उस रूप में प्रगीत-काब्य (Lyrical Poetry) नहीं कहा जा सकता, जिस ग्रथं में कालिदास के मेघदूत, प्रसाद के भाँनू और साकेत के नवम सर्ग को कहा जा सकता है। इसमें भावना की प्रगीतात्मक तरलता, सूक्ष्मता एवं कोमलता के स्थान पर घटनाश्रित कथात्मकता का प्राधान्य है। कथानुबन्ध की दृष्टि से भी यह प्रगीतात्मक (Lyrical) की ग्रपेक्षा महाकाब्यात्मक (Epic) ही ग्रधिक है।

'म्रान-परीक्षा' हिन्दी की राम-काव्य-परम्परा में एक अद्यतन कृति के रूप में साहित्य-समीक्षकां का व्यान प्रवश्य ही म्राकृष्ट करेगी। संभवतः आधुनिक भारतीय भाषाभ्रों में जैन परम्परानुवर्ती राम-काव्य का यह प्रथम प्रयोग है। परन्तु यह सर्वथा परम्परानुवर्तिनी कृति नहीं है, इसमें आधुनिक युग की प्रबुद्ध नारी-चेतना का साक्षात्कार होता है भीर जीवन के बदलते हुए मूल्यों का इस पर स्पष्ट प्रभाव है। एक धर्माचार्य की कृति होने के नाते इसके साहित्यिक एवं कलात्मक मूल्य में कोई मन्तर नहीं पड़ता। हिन्दी-संसार श्रव श्राचार्यथी तुलसी को एक प्रबन्धकार के रूप में पहचानने लगा है श्रीर उनकी आगामी कृतियों की भी उत्साहपूर्वक प्रतीक्षा की जाएगी। हिन्दी के भग्नतन काव्य-रूपों एवं काव्य-प्रवृत्तियों के निकट सम्पर्क में धाने के लिए यथेष्ट समय का श्रभाव रहते हुए भी ग्राचार्यप्रवर ने साहित्य-साधना को श्रपने जीवन में एक प्रमुख स्थान प्रदान किया है। उनके तेरापंथ सम्प्रदाय के साधुओं एवं साब्वियों में काव्याराधना की प्रवृत्ति बहुत दिनों से चल रही है।

'ग्रग्नि-परीक्षा' में सती मीता के श्रमल धवत चरित्र को उसकी श्रग्नि-स्नात पवित्रता में प्रस्तुत किया गया है। उसमें नारीत्व की चिरन्तन महिमा श्रीर उसके ज्वलन्त तेज का श्राख्यान है। इस पाषाणमय संसार में निरन्तर प्रहार महन करते हुए भी नारी ने श्रपने हृदय की नवनीत कोमलता को श्रक्षण्ण बनाये रखा है।

> पुरुष-हृदय पाचाण भले ही हो सकता है, मारी-हृदय म कोमलता को स्रो सकता है।

#### पिघल-पिघल उनके झन्तर को थो सकता है, रो सकता है, किन्तु नहीं यह सो सकता है।

परन्तु नारी के लिए उसकी ममता और मधुरिमा, उसकी सेवा और समर्पण युग-युग में प्रभिद्याप ही सिद्ध हुए हैं। स्वयं शक्ति की प्रतीक होते हुए भी जैसे वह अपने आत्म-बल को भूली हुई है। इस जागृत आत्म-बेतना के अभाव में ही उसका बिलदान आज बकरी का बिलदान बनता जा रहा है। स्वयं बिल होने में नारी का गौरव रहा होगा, परन्तु पुरुष के द्वारा बिल किए जाने में तो उसके भाग्य की विडम्बना ही है। 'अग्नि-परीक्षा' की सीता अपने प्रकृत धर्म का पालन करते हुए अपने आपको मिटाने में कहीं पीछे नहीं हटती है, परन्तु वह बकरी की तरह मिमियाती नही है, उसकी बाणी में बजा का गर्जन है और अग्नि-कुण्ड की लपलपाती हुई लपटों के सामने वह नारी-जीवन के एक महान मत्य का प्रत्यक्षीकरण करती है:

जागृत महिला का महस्व, इस महि-मंडल पर प्रमल रहा, जिसने प्राण-प्रहारी संकट, प्रण को रखने सदा सहा, उसके प्रश्न का उज्ज्वल ग्रविरल ग्रविकल प्रविचल स्रोत बहा, विखलाया है हुवय खोलकर, समय-समय वीरत्व प्रहा, कड़ी जुड़ेगी उसमें मेरे इस उन्नत ग्रभियान की। बलिबानों से रक्षा होगी नारी के सम्मान की।

श्रात्म-बलिदान के द्वारा श्रात्म-सम्मान की रक्षा करने वाली जागृत महिला सती सीता के उज्ज्वल यश का यह काव्य-स्रोत प्रवाहित करने के लिए हिन्दी-जगत् श्राचार्यश्री तुलसी का चिर श्राभारी रहेगा। श्राशा है, जीवन के शाश्वत सत्यों के प्रकाश में सम-सामयिक समस्याओं के समाधान की श्रोर इिक्नित करने वाले और कई महाकाव्य श्रापकी पुण्य-प्रमृ लेखनी से प्रमृत होंगे।



# श्रीकालू यशोविलास

#### डा० बदारथ दार्मा एम० ए०, पी-एच० डी० रीडर, दिल्ली विद्यविद्यालय

चरित-लेखन की परम्परा झत्यन्त प्राचीन है। भारत ने जिस किसी वस्तु या व्यक्ति को बादर्श रूप में देखा, उसे जनता के समक्ष प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया। एक बादर्श वीर, एक बादर्श राजा, एक बादर्श पुरुष विशेष कर चरित चित्रित करने के लिए महर्षि वाल्मीकि ने रामायण की रचना की। जैन सम्प्रदाय ने भी उसी परम्परा को प्रक्षुण्ण रखते हुए केवल तीर्थंकरों के ही नहीं, बनेक शलाका-पुरुषों के चरित भी हमारे सामने प्रस्तुत किये। चाहे तो हम यह भी कह सकते हैं कि हमारा इतिवृत्त लिखनेका ढंग प्रायशः ब्रादर्शानुप्राणित रहा है। प्राचीन काल में बनेक बन्य श्रूरवीर, योद्धा और राजा भी हुए हैं। किन्तु भारत ने उन्हें भुला दिया है। उमके लिए यही पर्याप्त नहीं है कि किसी व्यक्ति ने जन्म लिया, राज्य किया या युद्ध किया हो, वह उसमें कुछ और विशिष्टता ढूंढ़ता है उसमें वह विशिष्टना न हो तो उसके लिए ऐसे व्यक्तियों का होना या न होना एक बराबर है।

स्थाति-प्रिय राजाभों ने इस प्रवृत्ति के परिहार-रूप में अनेक प्रशस्तियों, ताम्रपत्रों और दरवारी कियों के काव्यों द्वारा अपने को अमर करने का प्रयत्न किया है। हर्षचिरत, नव साहसांक चिरत, विक्रमांक देव चिरत, द्वान्ध्रय-काव्य, पृथ्वीराज विजय काव्य आदि कुछ ऐसे अन्य है, जिनमें राजाओं का यशोगान पर्याप्त मात्रा में वर्तमान है। किन्तु ये अन्य भी विणत राजाओं की महत्ता से नहीं, अपितु बाण, बिह्मणादि कियों के किवत्व के कारण जीवित है। आदर्शानुप्राणित भारत के जीवन में अमरत्व उसी कृति को मिलता है, जो हमारे सामने किसी आदर्श को उपस्थित करे। विशेषतः जैन सम्प्रदाय में तो देवाधिदेव वही है जो अज्ञान, कोध, मद, मान, लोभादि अटारह दोषों से मुक्त हो। उसी के गुणगान मे आनन्द है। उसमे ही जरामरणादि दृःखों से मन्तप्त लोगों को कुछ लाभ हो सकता है, उमी के प्रभाव में प्रभावित होकर जनता केवत्य मार्ग की और उन्मुख हो सकती है। सम्भवतः इसी बात को ध्यान में रखते हुए आचार्यश्री तुलसी ने अपने दिवंगत गृह आचार्यप्रवर श्री कालूरामजी का चरित 'श्रीकालू यशोविलास' में प्रस्तुत किया है। भागा भी मुख्यतः राजस्थानी ही रखी गई है, जिससे संस्कृत और प्राकृत ने अनिक्त आवित भी आचार्यवर के उपदेश और जीवन से पूर्ण लाभ उठा सकों। शास्त्रों के अवतरण मूल अर्थमागधी आदि में है। किन्तु उनके साथ ही उनका राजस्थानी अनुवाद भी प्रस्तुत है।

#### काव्य का संक्षिप्त वृत्त

काव्य छः उल्लासों में विभक्त है। पहले उल्लास का प्रारम्भ तीर्थंकर नाभेय, शान्तिनाथ ग्रीर महावीर एवं स्वगुरु श्री कालूगणी को नमस्कार करके किया गया है। इसके बाद मरुस्थल, मरुस्थल के नागरिक ग्रीर श्री कालूगणी की जन्मभूमि छापर (बीकानेर, राजस्थान) का वर्णन है। इसी नगर में ग्रोसवंशीय चोपड़ा जाति के बुधिंमह कोठारी थे। इनके दितीय पुत्र मूलचन्द ग्रीर कोटासर के नरसिंहदास ल्णिया की पुत्री छोंगा बाई के सुपुत्र हमारे चरित नायक श्री कालूगणी ने वि० सं० १६३३ फाल्गुन शुक्ला दितीया गुरुवार के दिन ग्रत्यन्त शुभग्रहादि युक्त समय में जन्म लिया। इनका जन्म नाम शोभाचन्द था, किन्तु माता-पिता प्रेम से इन्हें कालू कहते। १६३४ में मूलचन्दजी के दिवंगत होने पर माँ इन्हें ग्राने पीहर ले गई। वहीं बाल्यकाल से ही उनमें वैराग्य की भावना बढ़ने लगी।

इसी समय तेरायंथ के पंचम धाचायंथी मचवाग़णी का सरदार शहर में चातुर्मास हुआ और माँ, मासी आदि के साथ जाकर कालूगणी ने उनके दर्शन किये। श्री कालूगणी की आकृति आदि से श्री मचवागणी इतने प्रभावित हुए कि वे तदनन्तर उन्हें न मूले। संदत् १९४४ की आधिवन शुक्ल तृतीया के दिन स्वाति नक्षत्र में खूब बाजे गाजे के साथ बीदा-सर में उनकी दीक्षा हुई। गुरु के साथ उन्होंने अनेक स्थानों में विहार किया। संवत् १९४६ में मचवागणी का शरीर अस्वस्थ हुआ। कालूरामजी की आयु उस समय छोटी थी। इसलिए मचवागणी ने चैत्र कृष्ण दितीया के दिन श्री माणिक-गणी को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया। पंचमी के दिन श्री मघवागणी का स्वगंवास हुआ। श्री कालूगणी को इममे महान् दु:ख हुआ।

संवत् १९४६ की चैत्र कृष्णा अष्टमी के दिन माणिकगणी पट्टाधिकारी बने। श्री कालूगणी ने उनकी समुचित सेवा की। संवत् १९५३ के आधिवन सास में श्री माणिकगणी का शरीर रुग्ण हुआ, किन्तु कर्तव्यनिष्ठ गणीजी ने इस पर कुछ ध्यान न दिया और कार्तिक कृष्णा तृतीया के दिन असार संसार का त्याग कर दिया। चतुर्विध संघ ने सिलजुल , करश्री डालिमगणी को संध्यति बनाया।

श्री डालिमगणीजी की सेवा में रहते हुए श्री कालूगणी ने अनेक स्थानों पर अपने प्रभावी व्याख्यानों से लोगों को रंजित किया। इस समय इन्होंने बगड़ के पं० घनश्यामजी से संस्कृत व्याकरण का अध्ययन किया और हैम कोष—अभिधान विन्तामणि, उत्तराध्ययन एवं नन्दी (सूत्र) आदि को कण्ठस्थ किया। बारह वर्ष तक कालूगणी ने श्री डालगणी की सेवा की। १६६४ में डालगणी बन्देरी पहुँचे। वहीं वे अध्वस्थ हो गये। सं० १६६६ की माद्रपद शुक्ला द्वादशी के दिन स्वर्गत हुए। संघ ने श्री कालूगणी को सिंहासन पर बैठाया। श्री डालगणी के सम्बन् १६६६ प्रथम श्रावण वदी १ के पत्र में भी उन्हें यही सम्मति मिली।

भाद्रपद शुक्ला पूर्णिमा के दिन कालूगणी जी का पाटोत्सव चन्देरी नगर में हुआ। इन्होंने प्रथम याम मे उत्तराध्ययन का ग्रीर रात्रि के समय रामचरित का व्याख्यान किया। चन्देरी के बाद ग्रनेक स्थानों में विहार कर कालूजी ने लोगों को उपदेश दिया ग्रीर दीक्षित किया।

द्वितीय उल्लास का आरम्भ श्री महावीर स्वामी के स्मरण से है। सम्वत् १६६८ में कालूगणी ने बीदासर में चातुर्मास किया और अनेक योग्य साधु और साध्वियों को दीक्षित किया। १६६६ का चातुर्माम चूरू में और १६७० का चन्देरीमें हुआ। यहीं से ये बीकानेर में धर्म की प्रभावना के लिए पहुँचे। राज्य के बड़े-बड़े सरदारों और उच्च राज्य कर्म-चारियों ने इनके दर्शन किये और अनेक दीक्षाएं हुई।

इन्हीं दिनों जर्मनी के प्रसिद्ध विद्वान्, जैन शास्त्र के महान् पण्डित और अनेक जैन धर्म-प्रन्थों के अनुवादक डा० हमेन याकोबी भारत पहुँचे और लाडनूँ में श्री कालूगणी के दर्शनार्थ आये। श्री कालूगणी ने याकोबी महोदय के अनेक सन्देह स्थलों की इतनी विशद क्यास्या की कि उस विद्वान् का हृदय कृतकता से पूर्ण हो गया और उसे यह भी निरुचय हो गया कि तेरापंथ ही जैन धर्म का सक्या स्वरूप है। जूनागढ़ में जाकर भरी सभा में याकोबी महोदय ने यह भी घोषित किया कि आचारांग के अन्तर्गत मस्य और मांस का अर्थ उसने सम्यक् रूप से कालुगणीजी से ही समभा है।

इसी भवसर पर जोधपुर राज्य ने नाबालिगों की दीक्षा पर प्रतिबन्ध लगाया और २१ मार्च सन् १६१४ के गजट में ऐसी दीक्षा के विरुद्ध भ्रपनी आजा प्रसारित की। तेरापंथ के युक्ति युक्त विरोध के कारण यह आजा कैन्सिल (रह्) की गई। यू० पी० काउंसिल ने भी नाबालिगों की दीक्षा को रोकने के लिए प्रस्ताव पास किया और कानून तैयार करने के लिए आठ सदस्यों की एक कमेटी नियुक्त की। श्री कालूगणी से आशीर्वाद प्राप्त कर तेरापंथ के गणमान्य सज्जन इलाहाबाद पहुँचे और अपनी युक्तियाँ दीं। इतने में यूरोप का प्रथम महायुद्ध छिड़ गया और प्रस्ताव बीच में ही लटक गया। यू० पी० में कानून के प्रस्तावक ला० सुखवीर्रासह जब दिल्ली काउंसिल के मेम्बर बने तो वहाँ भी यह प्रश्न उठा। तेरापंथी धर्मवीरों के प्रयास से यह बिल पास न हुआ।

वित्तौड़ में श्री कालूगणी मे श्रमल के काँटे के श्रफसर को प्रवोधित किया। भगवती सूत्र के श्राधार पर वहां यह भी सिद्ध किया कि जीव के नाम तेईस हैं। इसी प्रकार रायपुर में भाषारांग से उद्धरण देकर उन्होंने दया का ठीक स्वरूप समक्राया । जिसने भिक्षुक वेष धारण किया है उसे किसी के सुख और दुःख से कोई लगाव नहीं है । कहीं लड़ाई हो या माग लगे —ये दोनों ही उसके लिए उपेक्षा के विषय हैं ।

उदयपुर में विपक्षियों ने तेरापंथ के विषय में अनेक अफवाहें फैलाई, किन्तु वास्तविक सत्य के सामने वे ठहर न सकीं। वहाँ से विहार कर श्री कालूगणी ने एक सौ अड़तीस गाँवों को अपनी चरण-रज से पवित्र किया। आउवे में सूत्रकृतांग के द्वितीय श्रुतस्कन्ध छठे अध्ययन के निर्विष्ट पाठ को पढ़ कर उन्होंने सिद्ध किया कि उसमें कहीं प्रतिमा का उस्लेख नहीं है।

सं० १६७३ में चातुर्मास जोधपुर में और १६७४ में सरदारशहर में हुआ। यहीं इटली के विद्वान् डा० टेसीटरी ने आपके दर्शन किये। अगला चातुर्मास चूरू में हुआ। यहीं आयुर्वेदाचार्य आशुक्रविरत्न पं० रचुनन्दन जी भापकी सेवा में आये। रतनगढ़ में गणेश्वर ने पंडित हरिदेव के न्याकरण-जान का सद दूर किया। १६७६ में बीदासर में चातुर्मास हुआ। इसके बाद सरदार शहर, चूरू आदि शहरों में होते हुए आपने हरियाण के अनेक नगरों और ग्रामों में विहार किया। १६७७ के भिवानी के चातुर्मास में कार्तिक कृष्णाष्टमी के दिन कई दीक्षाओं का मुहून निश्चित हुआ। विरोधियों ने दीक्षाओं के विरोध में सभा की, किन्तु दैववा उसी समय ग्राकाश से एक गोला गिरा। लोगों में भगदड़ पड़ गई। दीक्षाणं नियत समय पर हुई। १६७८ का चातुर्मास रतनगढ़ में हुआ। दूसरे स्थानों की तरह यहाँ भी अनेक दीक्षाणं हुई। इसके बाद बीदासर, डूँगरगढ़, गंगाशहर आदि में इन्होंने संवत् १६७६ में विहार किया। भीनासर में स्थानकवासी कनीरामजी बाँठियाँ से चर्चा हुई। कर चौमासे के लिए बीकानेर पहुँच।

तीसरे उल्लास का धारम्म जिनेन्द्र की मुखभारती को प्रणाम कर हुधा है। बीकानेर में विरोधियों ने यत्र तत्र उनके विरुद्ध खूब पत्र बँटवाए धौर निपकाए। फिर भी दीक्षामहोत्सव बड़े धानन्द से सम्पन्न हुधा। ज्येष्ठ मे जयपुर वाटी में ध्रापने विहार किया। चातुर्मास जयपुर मे हुधा धौर माघोत्मव मुजानगढ़ में। इक्यासी की साल में फिर चूरू में चासुर्मास हुधा। जब धाप राजगढ़ पहुँचे तो ध्रमेरिकन प्रोफेसर गिल्की ने ध्रापके दर्शन किये धौर तैरापंथ के बारे में जानकारी प्राप्त की। माघ मास मे गुरुवर सरदार शहर पहुँचे।

मार्गशीर्ष में श्री कालूगणी लाडनूँ पहुँचे श्रीर धन लग्न में काव्य-कर्ता तुलसी श्रीर उनकी बहन एक साथ दीक्षित हुए। इसके बाद के विहार में तुलसी सदा गुरु सेवा मे रहे। इन्हीं दिनों थली देश में एक महान् ढ़ंद्व मच गया। गुरुवर ने एक मास तक लगातार प्रयास किया। जिससे श्राद्ध समाज में श्रच्छी जागृति हुई। माध-महोत्सव चूरू में हुया। स्थानक वासी साधु-साध्वी संभोग सम्बन्धी शास्त्रार्थ में परास्त हुए। इस चर्चा में भगवानदास मध्यस्थ थे। चूरू से श्रीकालूगणी रतनगढ़ और राजलदेसर पहुँचे। श्रगला चातुर्मास छापर में हुग्रा। १६८६ का चातुर्मास सरदारशहर में हुग्रा।

चतुर्थं उल्लास का आरम्भ मूलमूत्र श्री कालूगणी के नमस्कार से है। १६६० में मुजानगढ़ में चातुर्मास करने के बाद आचार्यजी ने जोधपुर राज्य में विहार किया। छापर, बोदासर, लाडनूँ, सुजानगढ़, डीडवाणा, खाटू, हेगाणा, बलून्दा पीपांड़, पचपदरादि होते हुए अपने वैंदुष्य और संयमपूर्ण साधु परिवार के साथ गणिवर आगे बढ़े और टलोकरों द्वारा विस्तारित मिथ्या प्रचार का उद्भेदन कर जोधपुर पहुँचे। १६६१ का चातुर्मास वहीं हुआ। चारों ओर से लोग दर्शनार्थ एकतित हुए। बाईस दीक्षाओं का निश्चय हुआ। इसके विश्व प्रतिपक्षियों ने लूब आन्दोलन किया। गणीजी ने जैन सिद्धान्त के अनुसार ऐसी दीक्षाओं का समर्थन किया और लोगों को बताया कि आठ वर्ष से अधिक बालक-बालिकाओं की दीक्षा सर्वथा विहित है। स्मृतियों में भी ऐसी दीक्षाओं का विधान है। नव वार्षिक बालक कच्चे भाण्ड की नरह हैं जिसे उचित रूप से संस्कृत किया जा सकता है। वह काली कम्बल नहीं है जिसे रंगा न जा सके। बड़ी आयु में दीक्षित होने पर मार्गभ्रष्ट होने की सम्भावना अत्यधिक है। महाबीर स्वामी से दीक्षित होने पर भी उनका जामाता जमाली मार्गभ्रष्ट हो गया। लोग इन युक्तियों से प्रभावित हुए बिना न रह सके। कार्तिक कृष्णा अष्टमी के दिन ये बाईस दीक्षाएं सोत्सव सम्पन्न हुई। फिर काण्डा देश के सुधरीपुर में मर्यादोत्सव पूर्ण कर और दुरारोह मेवाड़ की पर्वतमाला को पार कर सब भिक्षुगण सहित श्री कालूगणी संवत् १६६१ के चातुर्यास के लिए उदयपुर पहुँच। महाराणा भूपालसिंह अपने लवाजमे सिहत आवाढ़ शुक्ना चतुर्थों के दिन आपके दर्शनाय आये और आपका उपदेश सुन कर इताथं हुए।

पाँचवाँ उल्लास मी धर्माचार्यं कालूजी को नमस्कार करके आरम्भ किया गया है। कार्तिक कृष्णा पंचमी के दिन महोत्सवपूर्वक पन्दह दीक्षाएं सम्पन्न हुईं। इनमें तीन पुरुष और बारह स्त्रियाँ थीं। उदयपुर से विहार कर श्री कालूगणी मार्गशीर्ष शुक्ल पक्ष में राजनगर पहुँचे और साधु-साध्वियों के वार्षिक व्यतिकर के बारे में पूछकर उनके उत्साह की वृद्धि की। इसके बाद मालव संघ की अभ्यर्थना से गणीजी ने मालव देश में प्रवेश किया। सादही, नीमच खावनी, मह खावनी, मन्दसौर आदि होते हुए आप माध कृष्णा चतुर्थी के दिन जावर पहुँचे। वहाँ सबके सामने आपने तेरापंथ के सिद्धान्तों का सयुक्तिक व्याख्यान किया। इससे बिना उत्तर और प्रत्युत्तर के लोगों का संशय दूर हुमा। वहाँ में माध शुक्ला सप्तमी के दिन आप रतलाम पहुँचे। विद्वेषियों ने बहुसंख्यक लेख आपके विरुद्ध निकाले। प्रश्नकारियों का उचित समाधान कर गणेश्वर बड़नगर पहुँचे। यहाँ महान् मर्यादामहोत्सव सम्पन्न हुआ। माध पूर्णिमा के दिन आपने उज्जैन के लिए विहार किया। फिर इन्दौर आदि नगरों में देशना देते हुए १२१ गाँवों का चक्कर लगाकर आप फिर रतलाम पहुँचे। वहाँ रतलाम के दीवान आदि आपके दर्शनार्थ आये। चार मास नक इस प्रकार आपने मालव भूमि को अपने उपदेशासृत का पान करवाया। वैशाख शुक्ला षण्ठी के दिन आपने मेवाड़ की और विहार किया। संवन् १६६३ का चातुर्यास गंगापुर के लिए निश्चत हुआ।

इसी समय गणीजी के वाएं हाथ की तर्जनी श्रंगुली में फुन्सी होकर पीड़ा हो गई। यह पीड़ा बढ़ती गई। श्रापरे-शन करना श्रावहयक हो गया। किन्तु इसी कार्य के लिए लाए हुए श्रौजारों को प्रयुक्त करना विधानान्कूल न था। श्रनः कलम बनाने के चाकू से मगन मुनिजी ने डाक्टर के कथनानुसार चीरा दिया। गृहजी भीलवाड़ पहुँचे। श्रनेश डाक्टर श्रौर श्रद्धालु भी वहाँ श्राए। डाक्टर श्रविचनीकुमार ने मधुमेह का निदानकर व्रणविरोपण के लिए एक श्रौषधि विशेष का विधान किया। किन्तु जैन ब्रतव्रती कालूजी ने उसका मेवन स्वीकार न किया। न वे उस स्थान पर ठहरे। गंगापुर में चातुर्मास करना उन्होंने स्वीकृत किया था। इसलिए बहीं जाना उन्होंने निश्चित किया।

छठे उल्लाम का आरम्भ गुकवन्दना से है। गुक् कण्टमय मार्ग को पार कर गंगापुर पहुँचे। संवत् १६६३ का चातुर्मास वहीं हुआ। वर्षाकाल में बण का और विस्तार हुआ। और अस्वास्थ्य बढ़ने लगा। किन्तु इतना होने पर भी उपदेश का कार्य सतत् रूप से चलता रहा। ग्रन्थकर्ता तुलसीजी ने भी उनके आदेश मे श्रावण शुक्ला दशमी के दिन रामचरित का व्याख्यान आरम्भ किया। इसी समय आशु कि वर्त आयुर्वेदाचार्य पं० रघुनन्दनजी वहाँ आये। नाड़ी परीक्षा के वाद उन्होंने नीव औषधों के प्रयोग से चिकित्सा आरम्भ की। फिर उन्होंने जयपुर निवासी दाइपंथी लक्ष्मीरामजी राजवैद्य को सम्भित के लिए इक्कीस क्लोकों में एक पत्र लिखा। इसका उत्तर लक्ष्मीरामजी ने छः क्लोकों में दिया। श्रीषध की श्रदल-बदल से कुछ लाभ हुआ। किन्तु फिर श्रीषध कार्यकर न होने लगी। डाक्टर श्रविनीकुमार भी कलकत्ते से आये। उन्होंने और पं० रघुनन्दनजी ने भी रोग की असाध्यता का श्रनुभव किया। भादपद की श्रमावस्था के दिन श्री कालूगणी ने तुलसीजी को भिक्षगण का भार सँभालने की आज्ञा दी। फिर गुक्तर ने श्रमण वर्ग को श्रन्तिम शिक्षा दी। एकान्त में काव्यकार को भी बहुत तरह से उपदेश दिया। तृतीया के प्रातःकाल में गणेश्वर ने अपने हाथ से युवराज पद-पत्र में तुलसी राम को श्रपना पट्टाधिकारी लिखकर युवराज बनाया। इस पत्र की पूरी नकल ग्रन्थ में वर्तमान है। मगन मुनि ने यह लेख सबको मुनाया। देह-त्याग से पूर्व गणरक्षा के विषय में श्री कालूगणी ने तुलसीजी को फिर शिक्षा दी। नाडी डगमगा रही थी तो भी गणाधिप ने यह सब व्यवस्था की।

सब प्रदेशों के लोग ग्रब गंगापुर में श्राकर एकत्रित हो गए थे। सभी उनकी दृढ़ता देखकर चिकत थे। तीज की रात्रि में सांवत्सरिक उपवास को धारण कर छठ की प्रातःकाल में श्रापने पारण किया। सार्यकाल के समय भगवान् श्रिरहन्त की शरण ग्रहण कर सचेत ग्रवस्था में श्री काल्गणीजी ने शरीर-त्याग किया। श्रन्येष्टि, के समय लगभग ३६ हजार व्यक्ति उपस्थित थे।

ढाल १६वीं श्रौर १७वीं में फिर कालूगणी का संक्षिप्त जीवनवृत श्रौर उनके समय की तपश्चर्यादि का वर्णन है।

#### समालोचनात्मक कुछ शब्द

पिछली पंक्तियों में हमने संक्षिप्त रूप में 'श्री कालूयशोविलास' का वृत्त दिया है। इसके समालोकन के लिए उपर्युक्त व्यक्ति तेरापंथ दर्शन का कोई श्रच्छा शाता ही हो सकता है। किन्तु मध्यस्य माव से श्रपनी शक्ति के अनुरूप मैं भी कुछ शब्द कहना उचित समभता है और कुछ नहीं तो उसमे श्रादेश का पालन तो हो सकेगा।

कोई काव्य अच्छा बना है या नहीं इसे देखने के लिए हमें उसके प्रयोजन के विषय में विचार करना चाहिए। सभी काव्यों के लिए एक मापदण्ड नहीं होता है। यह अवश्य है कि काव्य जितना अधिक विश्वजनीत हो, उतनी ही उसकी महत्ता अधिक बढ़ती है। उसमें वह विश्वहित की दृष्टि रहती है जो स्वतः उसे उच्चासन पर स्थापित करती है। इसके अतिरिक्त काव्य-शब्दाभिषय कृतियों में सच्चा काव्यत्व भी होना चाहिए। केवल पद्यों में प्रन्थित होने से कोई कृति काव्य नहीं बनती।

कई कवि यश के लिए काब्य-रचना करने हैं, कई धन के लिए, कई अमंगल की हानि के लिए, कई कान्ता-सम्मत-शब्दों में उपदेश प्रदान के लिए और कोई स्वान्तः सुख के लिए। श्रीकालू यशोविलास के रचयिता न यशः प्रार्थी हैं और न धनाभिलाधी। किन्तु चतुर्थोल्लास के अन्त में आपने यह दलोक दिया है—

> सौभाग्याय शिवाय विचन वितत भेंवाय पङ्काश्छिदे । ब्रानन्दाय हिताय विश्वमञ्जत व्यंसाय सौख्याय च ॥ श्री श्रीकालू यञोविलास विमलोल्लास स्तुरीयोयकं । सम्पन्नः सततं सतां गुण भृतां भूयाच्चिरं भूतये ॥१॥

इसमे प्रतीत होता है कि काव्य के अन्य लक्ष्य भी उनकी दृष्टि से दूर नहीं रहे हैं। इनके कि हृदय ने स्वान्तः मुख की अनुभूति तो की ही होगी, किन्तु गणनायक के रूप में सैकड़ों भ्रान्तियों का उन्मूलन भी उनका अभीष्ट रहा है। गुरुयकोगान और गुरूपदेश को जनता के समक्ष मुस्पष्ट एवं सुग्राह्म शब्दों में रखना इसका एकमात्र ही नहीं तो कम-से-कम बहुत मुन्दर उपाय तो है। मुललित एवं रसात्मक शब्दों में इनको प्रस्तुत करना मानों सोने में सुगन्ध भरना है। हमें निश्चय है कि 'श्रीकालू यशोविलास' का समाधान पारायण किसी भी व्यक्ति को तेरापंथ के मुख्य सिद्धान्त समभाने के लिए पर्याप्त है। इसके मूलग्रन्थों और टीनाओं के उदाहरण विद्वानों के लिए भी पठनीय और मननीय हैं। ब्राह्मण ग्रंथों में जिस प्रकार रामायण और महाभारत काव्य होते हुए भी धर्मग्रन्थ हैं, उसी तरह 'श्रीकालू यशोविलास' काव्य के रूप में ही नहीं, तेरापंथी समाज के धर्मग्रन्थ के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त करेगा। इसमें युक्तियुक्त रूप से जैन धर्म के तत्त्वों का निरूपण और ग्रंपने सिद्धान्तों का मण्डन है। मोक्षमार्ग में स्त्री का अधिकार, साधु के लिए दया का सच्चा स्वरूप, मुविहित दान, ग्रल्यवय में भी दीक्षाधिकार और उसकी युक्तियुक्तता आदि स्थल तेरापंथी समाज को सदैव उसके सिद्धान्त समभने और विरोधी युक्तियों का शास्त्र श्रीर तर्क-सम्मत उत्तर देने का सामर्थ्य प्रदान कर उसकी रक्षा करेंगे। समाज के लिए उससे यदकर 'सौभाग्य शिव (मंगल) आतन्द भीर हित' का विषय क्या हो सकता है ?

शुद्ध काव्य के रूप में भी 'श्रीकालू यशोविलास' सहृदय जनों के हृदय में स्थान प्राप्त करेगा। इसमें अनेक उत्कृष्ट छन्दों और बन्धों का प्रयोग है। भाषा गभीरार्थमयी होते हुए भी प्रसादगुणयुक्त है। सुन्दर राग और रागनियों से विभूषित, यह धर्म प्राण जनता का सुमधुर गेय काव्य है। अनेक कण्ठों की स्वरलहरी से नमो मार्ग को प्रतिष्विनित करती हुई इसकी पवित्र ष्विनि एक विचित्र स्फूर्ति उत्पन्न करती होगी।

काव्य अधिकतर ग्रतिशयोक्ति-प्रधान होते हैं, किन्तु यह काव्य श्रनेक अलंकारों ग्रौर काव्य-वृत्तियों का समुचित प्रयोग करता हुआ भी ग्रसत्य से दूर रहा है। महस्थल के लिए कवि ने लिखा है:

रयणीय रेणु कथा शक्ति किरणां, चलके आणक बान्दी रे।

रात्री के समय घूलि के कण चांदनी में ऐसे चमकते हैं, मानी चांदी हो। किन्तु साथ ही में कवि ने ग्रह भी कहा है: सनहरणी घरणी गरिव न हुने, भ्रति आतप श्रव शांधी रें। बह पृथ्वी बत्यन्त मनोहारी होती, यदि यहाँ बहुत जोर की भूप भीर खांधी न होती। कोई भ्रन्य कवि होता तो कवित्व के बहाव में बह कर मरुस्थल की प्रशंसा ही प्रशंसा कर बैठता।

स्वाति नक्षत्र में दीक्षित श्रीकालूगणी के गुरुदेव के कर की शुक्ति से और स्वयं श्रीकालूगणी की इस स्वाति नक्षत्र में उत्पन्न उस मोती से उपमा दी है जो लाखों मनुष्यों के सिर पर चढ़ेगा और जिसकी चमक दिन-दिन बढ़ेगी। ऐसी ही दूसरी उपमा में किव ने श्रीकालूगणी की माता के उदर को खान से, गुरु के हाथ को साण, जैन शासन को मुकट और श्रीकालूगणी को हीरे से उपमित किया है। गुरु के प्रति तुलसीजी का इतना अनुराग है कि काव्य में एक के बाद श्रनेक उपमाओं की मड़ी-सी लग गई है।

पहले उल्लास की सातवीं ढाल में विपक्षियों के मनोमोदकों का भी ग्रच्छा वर्णन है। दूसरे उल्लास की बारहवीं ढाल में भाजकल की स्थित का निदर्शन किव ने गुरुमुख से इन शब्दों में किया है—

कोई खयबै आना काण टाण तोहि रुपियो दरसावै। घर में लांचा ताण बाहर जई मूंछा बल लावै।। कोई है कंगाल हाल तोहि मगकरी में नहि मावै। सन्धि घर घट लिंग लिंग अनजाने कवि चावै।। कोई भूठमूठ इक सूंठ प्रहि जु पसारी बन जावै। देखे सुने धनेक छेक कोई विरसो ही पावै।।

भिवानी में गोले की वर्षा का वर्णन श्रांखों के सामने पूरा दृश्य खड़ा कर देना है। सोलहवीं ढाल का म्रात्मशुद्धि विषयक उपदेश भी मपनी निजी छटा रखना है। तृतीय उल्लास में भाचार्य तुलसी ने अपनी दीक्षा से पूर्व का हास्याद्भृत रसभार युक्त श्रच्छा वर्णन दिया है। गुरु-विषयक ये उपमाएं भी भपनी उक्ति विशेष के कारण हृदयहारिणी हैं—

सभा सभ्यजन संभृता, यथा चित्र शालेख।
सयल श्रोतृगण श्रवण हिंत, श्ररवण प्रवण विशेष।।
सुधा भरे मुख निर्भरे, श्रवि खकोर श्रानिमेष।
वासर में हिमकर रमें, वा छोगांगज एष।।
निरख विपक्षी नयन में, प्रमिला तणों प्रवेश।
धासर में हिमकर रमें, वा छोगांगज एष।
धास्य कमल मुकुलित समल, श्रसहन जनां श्रशेष।
वासर में हिमकर रमें, वा छोगांगज एष।।
उच्वेत्वर गणिवर यदा, याठ पढ्यो मुख जोर।
भविक मोर प्रमुदित भया, निख सावन घन घोर।।

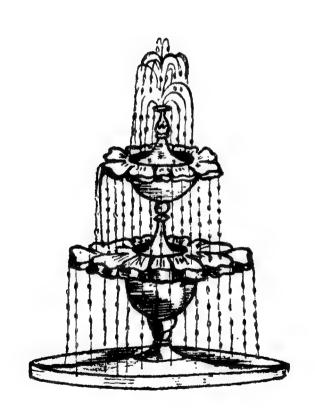
चतुर्थ उल्लास में १६६१ को जोधपुर के चातुर्मास का निम्नलिखित वर्णन भी पठनीय है —

गत विरहा मरुथरथरा, पूज्य पदार्पण पेखा। नवनवांकुरोग्दम विषय, रोमोग्दम सम लेखा। पृहु पतती करती नती, माती भई प्रतीव। मधुकर गुंजारव मिषे, मंगल गीत व तीव।।

इसके अतिरिक्त काव्य अनेक मार्मिक स्थलों से परिपूर्ण है। श्रीकालूगणी की बीमारी, अस्वास्थ्य में भी उनका धैयं और जैन धर्मानुसार कार्य-कलाप एवं अन्तिम शिक्षादि का वर्णन काव्य और धर्म कथा दोनों ही के रूप में प्रशस्य और भ्रव्येय है। समय के अभाव से इतना ही लिखकर विराम करना पड़ रहा है। सहृदय पाठकगण 'श्रीकालू यशोविलास' रूपी रत्नाकर से अनेक अन्य अनुध काव्य मुक्ताओं और मणियों की प्राप्ति कर सकते हैं।

'श्रीकालू यशोविलास' को इतिहास-ग्रन्थ रूप में प्रस्तुत किया है। श्राचार्य तुलसी ने गुरु के गुगों का अवश्य

गान किया है, किन्तु ये गुण भी महापुरुषोचित सीमा से बहिर्मूत नहीं हैं। श्रीकाल्गणी के सभी कार्य एक महान् पुरुष के हैं। घपनी तपरुचर्या, घपने ज्ञान, घपनी घर्य-श्रद्धा और घपने चारित्र्य द्वारा उन्होंने वह स्थान प्राप्त किया है, जिनका अनुसरण सबके लिए श्रेयस्कर है। ग्राचार्य तुलसी ने उनका यशोवर्णन कर द्वितीय उल्लास के अन्त में निर्विष्ट अपने लक्ष्य की सुचारू रूप से सिद्धि की है। तेरापंच समाज के विषय में जो ग्रानेक श्रान्तियाँ जनमानस में रूढ़ हो चुकी हैं, उनके समूल उच्छेद के लिए कुठारवत् और मञ्चलनों के हृदय कमलों को विकसित करने के लिए खदा चराचर स्फूर्तिवायी सिवता के रूप में वर्तमान रहते हुए यह काव्य यशोनिःस्पृह ग्राचार्य तुलसी के यश का भी स्वमावतः सर्वत्र प्रसार करेगा।



## भरत-मुक्ति-समीक्षा

#### डा० विमलकुमार जैन, एम० ए०, पी-एच० डी० प्राप्यापक, दिल्ली कालेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

महामान्य भाषायंप्रवर तुलसीजी कृत 'भरत मृक्ति' एक महाकाव्य है, जिसमें ग्रादीश्वर भगवान् ऋषभदेव की दीक्षा, तपस्या एवं केवलज्ञान की प्राप्ति के भनन्तर भरत चक्रवर्ती की दिग्विजय का उत्सव, उनके म्रहानवें भाइयों का संसार-त्याग, तत्पश्चात् बाहुबली से युद्ध और पुनः देवों द्वारा प्रतिबोधित होकर बाहुबली का संन्यास-ग्रहण और प्रन्त में भरत का राज्य-व्यवस्था के उपरान्त इन घटनाओं से विषण्ण होकर प्रवज्या ग्रहण करके धोर तपश्चरण के पश्चात् मुक्ति का वरण करना विणत है।

इसमें महाकाव्य के प्रायः सभी लक्षण उपलब्ध हैं। भरत इसके नायक हैं, जो धीरोदात्त एवं इक्ष्वाकु क्षत्रिय-कुलोत्पन्न हैं। यह काव्य अप्टाधिक सर्गों में समाप्त हुआ है तथा भरत के दीर्घकालिक जीवन की अनेक घटनाओं से व्याप्त है। इसमें नायिका का चित्रण नहीं है। केवल एक स्थान पर उनकी अनेक पत्नियाँ होने का उल्लेख है। इसमें अनेक छन्दों का प्रयोग हुआ है तथा अंगीरस शान्त के अतिरिक्त वीरादि अंगभूत रसा का भी चित्रण है। इसमें प्रकृति-चित्रण भी है तथा युद्धादि का वर्णन भी है। इसका अन्त इसकी संज्ञानुसार आदर्शपूर्ण उद्देव्य से युक्त है।

इस प्रकार लक्षण-निकष पर कसा हुआ यह एक बृहत्काय काव्य है, जो भ्रपने सौष्ठव से भ्रोत-प्रोत होकर जीवन के बाह्य और प्रन्तः सौन्दर्य पर प्रकाश डालता हुआ उसके वास्तविक स्वरूप को उद्घाटित करता है।

इसमें काव्य के दोनों ही पक्ष भाव एवं कला श्रपने चरमोत्कर्ष पर हैं। भारतीय संस्कृति एवं विचार-परस्परा के श्रनुसार जीवन का लक्ष्य जगज्जंजाल से मुक्त होना है। संसार में सदसत् सभी प्रकार के कर्म प्राणी को सुज-दुःखात्मक स्थितियों में डालते हुए उसके जन्म-भरण के निमित्त बनते हैं। देही काम, कोध, मद, लोभादि के वशीभूत हुआ कर्म करता है। कभी वह पाप करता है तो कभी पुष्प परन्तु ये सभी सन्ताप के कारण होते हैं, क्योंकि क्रियानुसार फल-मुक्ति श्रतिवार्य है। यथा शूल के बदले फूल नहीं मिलते उसी प्रकार पाप करके शुभ परिणाम की कामना निष्फल है। श्रतः शादवत सुख की प्राप्ति के लिए कर्म-बन्धन से विमुक्ति श्रावश्यक है और वह साधना एवं तपस्या से ही सम्भव है।

भगवान् म्रादीक्वर के इस तात्विक चिन्तन पर, जो म्राघ्यात्मिक दृष्टि से एक ध्रुव सत्य है, इस काव्य की म्राधार-शिला स्थापित है इसीलिए प्रारम्भ से मन्त तक ऋषभदेव, उनके म्रद्वानचें पुत्रों तदनन्तर उनके पुत्र बाहुबली म्रौर मन्त में भरत का संसार-त्याग विणत है, जिसका पर्यवसान निर्वाण में हुमा है, जो मानव-जीवन का चरम लक्ष्य है। सभी महानु-भावों की दीक्षा एवं प्रत्रज्या के प्रेरक कारण उपर्युक्त कषाय ही हैं, जो कर्म-प्रवृत्ति का मूल हेतु हैं। भगवान् ऋषभदेव के इन शब्दों में संसार की निस्सारता स्पष्ट ही प्रत्यक्ष हो जाती है—

> झाकर के कितने चले गये, यह घरती किसके साथ रही,

१ 'सभी भाभियां तेरी देंगी भाई! मुर्भे उलाहने'—भरत-मुक्ति, पृष्ठ १६१

२ भरत-मुक्ति, पूच्छ १५

मेरी मेरी कर घरे सभी, कोई भी ध्रयमा सका गहीं। वैभव-साम्राज्य ध्रव्याके में, सोको तो कितने ही उतरे, जो हारे वे तो हारे ही, जीते उनकी भी हार घरे!

इस प्रकार संसार एक निस्सार स्थान है जहाँ निवास करना तथा जिसमें संनग्न मन होना बुद्धिमत्ता नहीं है, इसीलिए ऋषियों ने संसार को हेय बता कर कम-से-कम जीवन की अन्तिम स्थिति में संन्यास लेना परमावश्यक कहा है। चोर युद्ध के पश्चात् देवों द्वारा प्रतिबोधित होकर स्वयं बाहुबली भी संसार की निस्सारता को इस प्रकार उद्घोषित करते हैं—

> कोई सार नहीं संसार में, पग-पग पर बुविषा की है तलवार बुषारी रे। क्षण में सरस-विरस होता, यहां नडवर घन-खाया सो सला विभृता सारी रे।

इसी प्रकार धन्त में भरत ने भी संसार की नश्वरता को जाना, जिसके परिणामस्वरूप वे संसार से विरक्त होकर मुक्ति के अधिकारी बने----

प्रत्येक बस्तु में नदवरता की भत्तक प्रतिक्षण भीक रहे, इस जीवन की क्षण-मंगुरता संजलि-अस सी वे सांक रहे।

 $\times$   $\times$   $\times$  यों चिन्तन करते विविध, जागृत हुआ विराग । जीत लिया 'महबर जगत, ज्यों पानी के भाग  $\mathbb{N}^2$ 

इसी उद्देश्य को लक्ष्य में रखकर इस काव्य का निर्माण हुआ है। इस तथ्य के ज्ञान-प्रकाश में हृदय जिस माव-भूमि पर श्रवस्थित होता है, उसी का चित्रण श्रन्तनोगन्वा इस काव्य में हुआ है। श्रतः इसका भावपक्ष बड़ा ही समुज्ज्वल है। यदि यों कहें कि इसमें मानत्र के मन-मानस में विद्यमान विविध भावावली में से केवल सदमाय-मुक्तामों का ही प्राधान्य है तो श्रत्युक्तिन होगी।

इसमें कलापक्ष भी प्रायः मनोहारी है। रस काव्य की आत्मा होती है। इसके अनुसार यह काव्य भी रसाप्जुत है। इसमें ज्ञान्त रस ही अंगीरस है, क्योंकि संसार विरिवत हो इमका उद्देश्य है। अतएव अगवान् ऋषभदेव तथा उनके पुत्र इस संसार को असार समक्ष कर इससे विमुख हो गये। उपर्युक्त अवतरण इसके ज्वलन्त प्रमाण हैं। ज्ञान्त का चित्रण करते हुए सभी पद्यों में तदपेक्षित माधुर्य गुण का अंकन भी दर्शनीय है। तदनुकूल वर्ण-चयन एवं शब्द-योजना मिण-काञ्चन के तुल्य ही मनोरम है। ज्ञान्त के अतिरिक्त बीर रस का चित्रण भी भरत एवं बाहुबली के युद्ध में पर्याप्त मात्रा में हुआ है। निम्न पंक्तियों में वीरता का सजीव चित्रण कितना ओजपूर्ण है—

१ भरत-मुक्ति, पूब्ठ ४७

२ बही, पुष्ठ १४ द

३ वही, पुष्ठ १६०

४ बही, पुष्ठ १६२

रणभेरी गूंज उठी नभ में, बीरों के मानस फड़क उठे, वे कड़क उठे हैं सड़ने को, कायर जन के मन बड़क उठे।

× × 
प्यानों से निकसी तलवारें,
मानो धन में बिजली दमकी,
बरिष्ठयाँ, कटारें, तेज जूस,
बे भालों की श्रणियाँ खमकों।

पं० स्यामनारायण पांडे द्वारा रचित 'हल्दीघाटी' काक्य में जो श्रोजपूर्ण वर्णन हमें दृष्टिगोचर होता है, वैसा ही प्रखर प्रवाह हमें यहाँ भी लक्षित होता है। यहाँ हमें रणभेरी की गूँज, वीर-हृदय की कड़क श्रीर कायर-जन की धड़क स्पष्ट सुनाई देती है तथा विद्युत्तल्य तलवारों की दमक श्रीर बरदी, कटार एवं भालों की चमक प्रत्यक्ष-सी दिखाई देती है। काब्य को पढ़ते-पढ़ते समरांगण की ठेल-पेल एवं श्ररत-व्यस्तता, मार-काट एवं हाहाकार तथा घर्षण-कर्षण सभी कुछ चलचित्र की भांति श्रनुभूत होता है। इस वर्णन में वीर के श्रनुकूल श्रोजगृण से ब्यंजक वर्णों की योजना दर्शनीय है। यह कुशल कलाकार की सफल एवं सबल लेखनी का ही परिचायक है।

युद्ध का चित्रण करते हुए बीभास रस का श्रंकन भी प्रसंगवश श्रा ही गया है, यथा---ग्रंथं अत-विक्षत सभी शब दूर फंके जा रहे, मांस-लोलुप श्वान, जम्बुक, गीघ उनको खा रहे।

> जिस हुदय-स्थल में कितनों का रनेह भाव या रहता। ग्राज का रहे कीए, कुले, रह-रह कोणित बहता।। जिन ग्रांकों में तेज तक्षण या, श्रदण ग्रोज की रेखा। श्रोंकों मार रही हैं जीलें बाव्ण वह बृदय न जाता बेखा।। हुष्ट-पुष्ट सुन्दर वपु जिस पर ये मन स्वतः लुभाते। काट-काट पैने बांतों से जसको जम्बुक खाते।।

इस चित्रण में भी घोज धपनी पराकाष्ठा पर है। इसके अतिरिक्त रोड का आभास हमे भरत-दूत एवं बाहुबली के बार्तीलाप धादि में उपलब्ध होता है। भथानक का चित्रण भी भ्रत्प मात्रा में हुआ है यथा बाहुबली के बन में जाते

१ अरत-मुक्ति, पृष्ठ ८४

२ बही, पुष्ठ ६३

३ बही, पुष्ठ ६६

४ बही, पृष्ठ १००

५ वही, पुष्ठ १००-१०१

समय ग्ररण्य की भयानकता इस प्रकार ग्रंकित हुई है-

गहरी गहरी पड़ी बरारें, चारों स्रोर आड़-संलाड़, द्विरव यूथ चिंचाड़ रहें हैं, तोर रहे हैं कहीं वहाड़, चीते, व्याद्म, भेड़िये भालू, वनबिलाव, सूग्रर खूंलार, पूम रहें हैं गेंडे, रोभे, श्वरव्य-महिव, सारंग, सियार।

इस प्रकार रसों का चित्रण तदनुकूल गुणों के साथ बड़ी ही उपयुक्तता के साथ हुआ है।

इस काव्य में प्रसंकार योजना भी स्तुत्य है। शब्दालंकारों में प्रनुप्रास का व्यवहार तो पर्याप्त मात्रा में हुन्रा है, परन्तु यमकादि का प्रयोग बहुत ही कम है। इसी प्रकार ग्रथिलंकारों में विशेषतः उपमा, रूपक एवं उत्प्रेक्षा का प्रयोग प्रस्पिषक है। नीचे कुछ सुन्दर उदाहरण दिये जाते हैं—

भनुप्रास---

धनल, बविकल, बतुल, बिंदल प्राप्त कर तुलसी उजारा।

मांसें साल कराल काल-सा बढ़ने लगा सरीय।

यमक---

सम समय परीवह मुनि को श्राधिक नहीं है।

पुनरुक्तिवदाभास---

नषु मधु बरसाकर सबको मुदित बनाता।

उपमा---

उवा समय प्राची यथा उभय फोघ से लाल ।

विकसित वसम्त ज्यों सन्त हृदय सरसाता ।

रूपक---

भाज हमारे मन उपवन की फूली क्यारी क्यारी, वित चातक है उत्फुल्स वेसकर ह्यामल मेघ-वितान रे।

उत्प्रेक्षा—

स्वर्णिम सूर्य उदित है प्रमृदित नयनाम्बुव विकसाने, भानो भीर सिन्धु लहराता भाया प्यास बुभाने।

> जल-सीकर जिन पर चमक रहे, मानो मुक्ताफल वमक रहे।

इसी प्रकार भीर भी अनेक अलंकारों की छटा यत्र-तत्र छिटकी हुई है, जिसने काव्य के सौन्दर्य पर चार चाँद लगा दिये हैं।

खन्द योजना भी दृष्टव्य है। इसमें गीतक, दोहा, सोरठा, मुक्तक एवं हरिगीतिका ग्रादि छन्दों का चारु प्रयोग हुआ है। कहीं-कहीं कुछ दोष भी दृष्टिगोचर होते हैं, यथा---

भौर महामाता विराजित हस्ती पर सानन्व हैं।

यह गीतक छन्द का भंश है, जिसमें २६ मात्राएं होनी चाहिएं, परन्तु इसमें २८ मात्राएं हैं अतः अधिक पदस्य दोष

१ भरत-मुक्ति, पृष्ठ १६३

है। इसी प्रकार---

#### लड़ने का एक बहाना है, दिसलाना चाहता हूँ भुजबल।

इसकी दूसरी पंक्ति में भी अधिक पदत्व दोय है। परन्तु इस प्रकार के दोष यत्र-यत्र अल्पमात्रा में ही हैं, जो सम्भवतः शीक्षता में प्रकाशित कराने के कारण पुनरावृत्ति न होने से छुट गये हैं।

इसमें भाषा शुद्ध सड़ी बोली है, परन्तु कुछ उर्दू एवं अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग भी कहीं-कहीं पर उपलब्ध होता है, जैसे---

उर्द् शब्द—मौक़ा, हजारों, ग्राजिजी, सजीश, खामीश ग्रीर फरमाते ग्रादि। श्रंग्रेजी शब्द—सीन, फिट ग्रीर नम्बर ग्रादि।

इस काव्य में लोकोक्ति श्रौर मुहावरों का प्रयोग बड़ा ही रुचिकर एवं श्रधिकता से हुशा है। इस विषय में निम्न पंक्तियाँ दर्शनीय हैं—

जैसी करनी वैसी भरणों वह पुरानी है प्रथा।

उच्च राज-प्रासाव शिकार को नभ से करते ये बातें।

सगता ऐसा मुक्ते सभी तक वीये तस्ते ग्रंभेरा है।

नहीं नहीं कहते जो मंत्री सोलह ग्रामा बात सही।

बाहुबली को शासित करना सचमुच ही है टेढ़ी सीर।

है दिन बूना रात चौगुना जिससे वृद्धिगत उद्योग।

कितनों को उसने नृशंस बन दिए मौत के बाट उतार।

इसी प्रकार लोहा लेना, दाल न गलना, होश उड़ना, मुँह पर थूकना, प्राणों से हाथ धोना, नौ दो ग्यारह होना, गले पर छुरी चलाना भ्रादि भीर भी भनेक लोकोक्ति-मुहावरों का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

कहीं-कहीं खाण्डे (खाँडे), बान्धे (बाँधे), फूफ (जूफ) ग्रादि अशुद्ध शब्दों का प्रयोग ग्रखरता है। सम्भवतः ये ग्रायुद्धियाँ शीझता-वश पुनः पाठ के मभाव में रह गई हैं।

इस काव्य में नानाविध वर्णन भी पठनीय हैं। अनेक स्थलों पर प्रकृति-वित्रण बड़ा ही मनोहारी है। विनता नगरी के पाइवें में सरयू तट पर तथा वाह्नीक देश में प्रकृति का अत्यन्त सुन्दर चित्रण हुन्ना है, उदाहरणतः कमशः दो पद्य प्रस्तुत हैं—

मसूच सृणराजि विराज रही, दूर्वा की यह छवि छाज रही, जल-सीकर जिन पर चमक रहे, मानो मुक्ताफल बमक रहे।

१ भरत-मुक्ति, पुष्ठ २४

२ वहीं, पुष्ठ ६=

भरत का राज्य-वर्णन करते हुए षड्ऋतुओं का वर्णन भी अत्यन्त मनोहर है। यह वर्णन परम्परानुसार ही हुआ है। रात्रि एवं प्रभात का संक्षिप्त वर्णन केवल भरत की चिन्ता के प्रसंग में हुआ है। इस समस्त प्रकृति-चित्रण में प्रसाद गुण पूर्णतः परिज्याप्त है। इन स्थलों पर निर्माता की प्रकृति-प्रियता का पर्याप्त प्रकाशन हुन्ना है।

नगरी एवं जनपद-वर्णन में विनता (साकेत, श्रयोध्या) एवं तक्षशिला का वर्णन तथा बाह्मीक देश का वर्णन श्रीर इनके साथ ही साथ भरत एवं बाहुवली के राज्य का वर्णन भी श्रत्यन्त रोचक है। युद्ध-वर्णन में भरत एवं बाहुवली का सैन्य युद्ध श्रीर श्रन्त में उनका दृष्टि, नाद, भुज एवं दण्ड का चतुर्विच युद्ध बड़ा ही कुतूहलवर्धक एवं प्राण-प्रेरक है। इन वर्णनों में परम्परा को कहीं भी परित्यक्त नहीं किया गया है, परन्तु सन्त किव की श्रपनी शैली कहीं भी मन्द एवं लुप्त नहीं होने पाई है।

इस प्रकार इस काव्य का भाव एवं कलापक्ष झत्यन्त उज्ज्वल एवं उदात्त है। इसका सन्देश है जगत्प्रपंच से विमुख होकर तपस्या एवं साधना द्वारा मुक्ति प्राप्त करना, जैसा कि पहले कहा जा चुका है। वास्तव में यह काव्य जहाँ ज्ञान-पिपासुओं के लिए उपादेय है वहाँ साहित्य-मर्मजों के लिए भी ग्राह्म है। श्राचार्य तुलसी ने दोनों ही वर्ग के व्यक्तियों के लिए एक श्रमुत्य देन दी है। निश्चय ही यह ग्रन्थ अध्येताओं के लिए एक श्रमुत्य देन दी है। निश्चय ही यह ग्रन्थ अध्येताओं के लिए एक ग्रमुत्य देन दी है। निश्चय ही यह ग्रन्थ अध्येताओं के लिए एक ग्रमुत्य देन दी है। निश्चय ही यह ग्रन्थ सम्



# आचार्यश्री तुलसी की ग्रमर कृति— श्रीकालू उपदेश वाटिका

#### श्रीमती विद्याविभा, एम० ए०, जे० टी० सम्पादिका----नारी समाज, नई दिल्ली

भादि काल से संतों के वचनामृत से मानवता के साथ-साथ साहित्य भीर संस्कृति भी समृद्ध होती चली भाई है। सूर, तुलसी भीर कवीर की भाँति झाचार्य तुलसी ने भी संत-परम्परा की माला में जो अनमोल मोती पिरोये हैं 'श्री-कालू उपदेश वाटिका' उनमें से एक है। ग्यारह वर्ष की आयु से ही आचार्य तुलसी ने अपने गुरु श्रीकालूगणी के चरणों में बैठ-बैठकर उनकी 'हीरां तोली बोली' में जो सीख ग्रहण की, उसी धरोहर को उन्होंने 'श्रीकालू उपदेश वाटिका' के रूप में जनता-जनादेन को सौंप दिया है। वसे तो आचार्य तुलसी भारत की प्राग्-ऐतिहासिक जैन-परम्परा के अनुयायी संत हैं, परन्तु इस वाटिका में जिन उपदेश सुमनों का चयन हुआ है, उनकी सुगन्ध सर्वव्यापी है। इस प्रकार श्राचार्य तुलसी केवल जैन-परम्परा के ही संत नहीं, भारत की संत-परम्परा के कीर्ति स्तम्भ हैं। जहाँ उन्होंने भक्ति के गीत गाए हैं और जन-हित के लिए उपदेश दिये हैं, वहाँ उनमें साहित्य-सुजन की भी विलक्षण प्रतिभा है।

श्राचार्य तुलसी की कृतियों में भाषा भावों के साथ बही है। श्रावश्यकतानुसार उन्होंने विभिन्न भाषाश्रों के शब्दों को तोड़ा-मरोड़ा भी है तो भाषा में एकरूपता लाने के लिए। उन्होंने संस्कृत, हिन्दी और राजस्थानी; इन तीन भाषाश्रों में रचना की है। 'श्रीकालू उपदेश वाटिका' की भाषा राजस्थानी है। ग्राचार्य तुलसी को संस्कृत, हिन्दी और राजस्थानी में से किस भाषा पर विशेष अधिकार है, यह कहना किठन है। प्रस्तुत पुस्तक की भूमिका में मुनिश्री महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम' ने उचित ही लिखा है कि 'ग्राचार्यश्री तुलसी के लिए संस्कृत श्राधीत ग्रीर श्रीवकृत भाषा है। राजस्थानी उनकी मातृभाषा है ग्रीर हिन्दी मातृभाषावत् है'। संभवतः इसी समानाधिकार के कारण' श्रीकालू उपदेश वाटिका' में इन तीनों भाषाश्रों का कहीं-कहीं जो मिश्रण हुभा है, वह स्वाभाविक बन पड़ा है। ग्राचार्यश्री ने उसकी प्रशस्ति में निम्न पंक्तियाँ लिखकर उस मिश्रण को ग्रीर भी स्पष्ट कर दिया है:

सम्बत एक लाडनूं फागण मास जो, सारा पहली परमेष्ठी पंचक रच्यो। समै समै फिर चलतो चस्यो प्रयास जो, सो 'उपदेश बाहिका' रो दांचो जच्यो। पर प्राचीन पद्धति रै समुसार जो, भावा वणी मूंग चावल रो कोचड़ी। बापिस देख्या एक-एक कर द्वार जो, तो सक्तरी बोली निश्चित बैठी-कादी।

भाषार्य तुलसी को भपनी भाषा जहाँ 'मूँग चावल री सीचड़ी' के रूप में ग्रखरी है, वहाँ उसने ऐसे पाठकों का कार्य सुगम बना दिया है जो राजस्थानी नहीं समऋते। आषा की ऐसी खिचड़ी मीराबाई के राजस्थानी भक्ति-पदों में भी

मिलती है। इससे रसोत्पत्ति में कोई बाधा नहीं पहुँचती है भीर यह संतों की वाणी की विशेषता भी है। माचार्य तुलसी संत-परम्परा में होने के कारण भाषा के अलावा भावाभिव्यंजना में भी तुलसी, सूर. कवीर और मीरां के निकट हैं, जिन्होंने अपने आराध्य के गीत गाये हैं। आचार्यश्री तुलसी जैन-परम्परा में दीक्षित होने के कारण अपने आराध्य भरिहन्त प्रभृ का यश-गान करते हैं। वे कहते हैं:

प्रभुम्हारे मन- मन्दिर में पथारो, कर्डे स्वागत-गान गुणा रो। कर्डे पल-पल पुजन प्यारो।।

विश्मय ने पाषाण बणाऊँ ? नहि में जड़ पूजारो । धगर, तगर, बन्दन कर्यू करचूं ? कण-कण सुरिभत यारो ॥ नहि कल, कुसुम की भेंट चढ़ाऊँ, में भाव भेंट करणारो । धाप धमल धविकार प्रभुजी, तो स्नान कराऊँ क्यारो । महि तत, ताल, कंसाल बजाऊँ, नहि टोकर टणकारो । केवल जस भालर भणाऊं घूप ध्यान घरणारो ॥

भ्रन्त में जब वे कहते हैं:

श्रशरण-शरण, पतित-पावन, प्रभु 'तुलसी' श्रव तो तारी।

तब ऐसा प्रतीत होता है जैसे तुलसी ने घ्रपने राम को, सूर ने घ्रपने कृष्ण को, कवीर ने घ्रपने 'साहिब' को ग्रीर मीरा ने घ्रपने गिरधर-गोपाल को पुकारा है।

जैन-दर्शन के अनुसार आत्मा का शुद्ध अथवा अशुद्ध होना उसी के उपक्रमों पर निर्भर है। साधक को यह जानते हुए भी सन्तोष नहीं होता। उसकी अन्तः-शुद्धि के लिए जैन धर्म में चार शरण और पाँच परम इष्ट हैं। शरण की अवस्था में जैन धर्म और बौद्ध धर्म एक दूसरे के निकट आ जाते हैं। बौद्ध धर्म में शरणागत केवल तीन की शरण ग्रहण करना है। वह कहता है—

बुद्धं दारणं गण्छामि, धम्मं दारणं गण्छामि, संघं दारणं गण्डामि।

जैन धर्म का साधक धरिहन्तों, सिद्धों, साधुओं भीर धर्म की शरण ग्रहण करता है। वह ग्रारिहन्तों, सिद्धों, भाचार्य, उपाध्याय एवं समस्त साधुओं को नमस्कार करता है। जैन मत के भरिहन्त भीर सिद्ध यही दो मुख्य भाधार हैं। धर्म भीर साधु शरण हैं। भाचार्य, उपाध्याय और मुनि इष्ट हैं। अरिहन्त इसलिए पूज्य है कि वे देह सिहत हैं भीर भपने अष्ट कर्म आवरणों से चार कर्म भावरणों को दूर कर चुके है, इसीलिए वे जिन हैं। धर्म भीर तीर्थ के प्रवतंक भरिहन्त परीपकारी हैं। भाचार्य तुलसी ने अपनी उपदेश वाटिका का आरम्भ अरिहन्त की स्तुति से ही किया है। वे कहते हैं:

> परमेव्टी पंचक ध्याऊँ, में सुमर-सुमर सुस वाऊँ, मिन जीवन सफल बणाऊँ। झरिहन्त सिद्ध श्रविनाशी, धर्माचारच गुण-राशी, हं उपाध्याय अभ्यासी, मुनि-चरण शरण में बाऊँ।

इन्हीं पंक्तियों से उन्होंने अपनी यात्रा आरम्भ की और 'मंगल द्वार' में पैर रखा। धीरे-धीरे एक-एक करके जिन चार प्रकोष्ठों में प्रवेश किया, उनका रहस्य समभाने का भी पूरा प्रयास किया है। एक 'मंगल द्वार' और चार प्रवेश के इस प्रम्थ में अनेक सरस गीत हैं। उन गीतों में कितनी ही अन्तर कथाएं खिपी हैं। यदि वे प्रन्थ के साथ अलग से नहीं दी जातीं तो उनका पाठकों के सामने आना एक प्रकार से कठिन ही था। प्रन्थ के कुशल सम्पादन ने 'श्रीकालू उपदेश वाटिका' को एक नया निखार दिया है। इसके लिए सम्पादक श्रमण श्री सागरमलजी व मुनिश्री महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम' तथा मार्ग-दर्शक मुनिश्री नगराजजी पाठकों की श्रद्धा के पात्र हैं। पुस्तक हर प्रकार से सुन्दर एवं मनन के योग्य है।

संगल द्वार में आराध्य की स्तुति सम्बन्धी बीस गीत हैं। कबीर की भाँति आचार्य तुलसी ने भी गृह की महिमा गाई है। तेरापंथ के आठवे आचार्य श्रद्धेय श्रीकालूगणी उनके दीक्षा गृह थे। आचार्य तुलसी उनकी महिमा से इतने प्रभा-वित हुए कि उन्होंने प्रस्तुत ग्रन्थ की रचना उन्हीं के नाम से की। वे गृह को पुकार कर कहते हैं:

> बी म्हारा गुरुवेव ! भव-सागर पार पुगाशोजी, म्हारे कॅ-कॅ में रम साशोजी। सतान सम्बेर मिटासी सी।।

भ्रत्य भक्ति मार्गी संतों की भौति वे भी गुरु को परमात्मा से मिलाने का माध्यम मानते हैं। सद्गुरु के बिना मुक्ति नहीं मिल सकती, ऐसा उनका विश्वास है। तभी वे कहते भी हैं:

> है गुरु दिव्य देव घर-घर का, पावन प्रतिनिधि परमेश्वर का, गुरु गोबिन्य सङ्घालक गुरु ने, पहली शीश नमाबै।

भीर भी कहा है--

#### एडी चिसे खिसे वहैं बोटी, गुरु बिन गोता सावें।

यही कारण है कि वे गुरु और गोविन्द दोनों के सामने खड़े रहने पर कबीर की भाँति पहले गुरु के आगे ही शीश नमन करना चाहते हैं, क्योंकि गुरु ही गोविन्द से मिलाने वाली कड़ी हैं।

बीतराग का वर्णन करते समय भाचार्य तुलसी निर्गुण उपासकों की पंक्ति में प्रकट होते हैं। मंगलद्वार में ही उन्होंने कहा है:

> बीतराग नित्य सुमरिए, नम स्थिरता ठाण, बीतराग अनुराग स्यूं, भजो भविक सुजाण, बीतराग पर पावणो, जो बारम गुणठाण।।

इसके पदचात् वे सती की संसार में सुखी मानकर कहते हैं:

समता रा सागर सन्त सुकी संसार में। निका भारम उजागर सन्त सुकी संसार में।।

यहीं से वे प्रथम प्रवेदा की स्रोर अग्रसर हुए हैं। इसमें उन्होंने मनुष्य को स्रपने दुर्लभ जीवन को संवार कर रखने स्रोर बुराइयों का त्याग करने की बात कही है:

> बेतन श्रव तो चेत, बेत-चेत बौरासी मॅं तूं भमतो आयो रे। भयंकर व्यक्तर सायो रे।।

भौर भी:

श्रव मानव जन्म मिल्यो जागी, श्रो यौवन, धम, तन, तरुणाई। ऐस्वर्यं, सलौकिक शरणाई, इक जिल में दूटे ज्यूं लागे॥

इन सब कस्तुओं की नदवरता की भीर व्यान दिलाते हुए भाषार्यश्री प्राणियों से एक बार फिर कहते हैं : नर-वेही क्यथं गमाई नां ।

वे व्यसनी लोगों को भी चेतावनी देते हुए कहते हैं:

भूली मत पीको रे भवियां भांग तमालु।

गांबी, सुलकी, तिम साथ, जरवो मत भालो हाथ। बीड़ी, सिगरेट संघात, त्यागो बाहो जो सुल सात। भागो बागां विष घोटै सोटै सिलाड़े, छोटा-मोटा मिल संग। पीवै अप पाये हो मन की गोठ पुरावे, होवै कॉह रंग में भंग।।

भंगड़ी कहिवार्व पार्व बुद्धि-विकलता, भाव चोहट्टे दौड़। 'कूलां मालण-सो करणो' स्वमुख सराहर्व, पार्व कल जेसी कोड़।।

यहाँ 'फूलां मालण' की अन्तरकथा से दुराचारी और उसका समर्थन करने वाले को एक ही कोटि में रखने का संकेत मिलता है। कथा इस प्रकार है कि एक युवा रानी अपने भरोले में बैठी राजमार्ग की शोभा देख रही थी। उसकी आंख उधर से निकलते एक सुन्दर युवक पर पड़ी। रानी उसके रूप पर मुग्ध हो गई। युवक ने भी रानी को देखा तो मोहित हो गया। दोनों एक दूसरे से मिलने के लिए आतुर हुए। युवक ने फूलां मालिन को राजमहल में फूल ले जाते देखा। वह उसे समक्ता-बुक्ता कर उसकी पुत्रवधू बन कर महल में रानी के पास जा पहुँचा। रानी की कली-कली खिल गई। अब तो युवक प्रतिदिन इसी रूप में रानी के पास पहुँच जाया करता था। एक दिन यह पाप का घड़ा फूट गया और राजा को पता चल गया। राजा ने रानी और युवक के साथ फूलां मालिन को भी मृत्यु-दंड सुना कर बीच बाजार में बैठा दिया। उसने अपने गुप्तचरों से कह दिया कि जो कोई व्यक्ति इनकी प्रशंसा कर उसे भी इनके साथ बैठा दिया जाये और अन्त में मौत के घाट उतार दिया जाये। उस रास्ते से कई लोग निकले, सबने बुराई की। एक ऐसा भी भाया जो बोला 'मरना तो एक दिन था ही, अच्छा किया जो रानी के साथ रह कर जीवन का आनन्द लूट लिया।' जब गुप्तचरों ने उसे पकड़ लिया तो आगन्तुक ने पूछा— 'क्यों?' उत्तर मिला 'दुराचार का समर्थन करने के लिए।'इसीलिए प्रथम प्रवेश के अन्त में भाचार्यश्री तुलसी ने अन्तरोध पूर्वक कहा है:

प्राणी करणी निसंस की है।
'तुससी' कामचेनु सम पाइ, मंजुल मानव काय,
मुरख सब बिन्सामणि स्यूं, सूं मत नां काग उड़ाय।

द्वितीय प्रवेश में पहुँच कर भी याचार्यश्री का ध्यान प्राणियों की पाप-मुक्ति की मोर ही विशेष रहा है। पाप भौर पुण्य का मन्तर मापने बड़ी सुन्दरता से चित्रित किया है। कहा है:

> पुष्य पाप रा कल है परगट, को कोई स्रोत्त उचारे। एक मनोगत मोकां मार्ग, इक नर नगर बुहारे॥

पाप-मुक्ति का उपाय बताते हुए कहा है:

नर क्षमा भर्म भारो । धाम्यास्मिक मुक-साथन हृदय रोव वारो ॥ श्रमण-भर्म को वत्तविष जैनागम गावै। संति भर्म तिण नोही, प्रथम स्थान पावै॥ वे सायक से कहते हैं:

राय री रैंस पिक्षाको ।
हो जातिर पड़सी कार्त झालर झाल जगाणी ।
हेव, राग दो बीच करन रा,
बायक दोन्यूं झाल्य-घरम रा,
हो जायक ने झावज्यक यारी मूल मिटाणो ।

भाचार्य तुलसी ने द्वेष, कलह मिटाकर, भूठ बोलना छोड़ कर, लोभ और माया-मोह तजकर मुक्ति का सुख लेने का भाग्रह किया है।

तीसरे प्रवेश में पहुँच कर वे साधक को सुखी होने का मार्ग बताते हैं कि :

श्ररिहस्त-शरण में श्रा का, शिव-सुक्त री फ्रांकी पाजा।

क्योंकि :

तीन तत्त्व हैं रत्य समोलक, जीव जड़ी कर मानोजी। स्रहंन् देव, सहावतधारी सुगुरु विद्याणीजी।

इस प्रवेश में उन्होंने अनित्य, अशरण आदि सोलह भावनाओं का वर्णन किया है और जैन धर्म की महिमा स्थापित की है।

चौथे प्रवेश का ग्रारम्भ उन्होंने समिति ग्रीर गुप्ति से किया है कि:

प्रवश्वन माता बाठ कहावै। समिति गुप्तिमय सदा सुहावै।

पूरे प्रवेश में धाचार्यश्री ने पाँच समिति, तीन गुप्ति और पर्व के सम्बन्ध में बताया है। धन्त में प्रशस्ति में उन्होंने प्रस्तूत ग्रंथ के विषय में कहा है:

> भी काल्-गृठ वचनामृत उपवेश को, में पद्यांकित करघो स्मरघो जुग-पाछलो। 'श्रीकाल् उपवेश बाटिका' वेष को, प्रस्तुत चाहै सुणो, सुणाधो, बांचल्यो।

वास्तव में यह ग्रंथ सुनने, सुनाने और पढ़ने योग्य है। इसमें शिक्षा, सिद्धान्त ग्रौर ग्रनुभूति का त्रिवेणी संगम है। निस्सन्देह यह ग्राचार्यश्री तुलसी की एक ग्रमर कृति है, जो ग्राने वाले वर्षों में उनकी बहुमुखी प्रतिभा का प्रकाश फैलाती रहेगी।



## आषाद्भूति : एक अध्ययन

### श्री फरजनकुमार जैन, बी० ए०, साहित्यरत्न

'श्राषाढ़ भूति' श्राचार्यश्री तुलसी की एक साहिस्यिक कृति है। श्रणुदत-धान्दोलन द्वारा नैतिक जागृति का उद्घोष करने वाले महापुरुष ने श्राषाढ़ भूति में साहिस्य के माध्यम से श्रारमवाद का दिव्य सन्देश दिया है। हिन्दी-साहिस्य की काव्य-परम्परा में यह एक खण्ड काव्य है। काव्य की प्रबन्धात्मकता के साथ-साथ प्रगीत के सिम्मश्रण ने कृति को चार चाँद लगा दिए हैं। साथ ही धौपन्यासिक पात्र संवादों ने तो काव्य की कथावस्तु में जान ही फूँक दी है। इस प्रकार किन ने प्रबन्ध काव्य में प्रगीत की विशेषताश्रों तथा उपन्यास के तत्त्वों का प्रयोग कर हिन्दी साहित्य उपवन को श्रीमनव-धारा से सिचित किया है, जो कि वास्तव में उनका साहित्य को एक श्लाधनीय वरदान कहा जा सकता है। उपर्युक्त काव्य 'श्राषाढ़ भूति' में एक जैनाचार्य का जीवनवृत्त चित्रित किया गया है। 'श्राषाढ भूति' के गणनायक श्रीर एक श्र कुछ व्याख्याता होने के कारण उनके चरित्र का समुज्ज्वल रूप पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत होता है। परन्तु बाद में उनकी विचार-शिथिलता ने उनकी संयम वीणा की भंकारों को तोड़कर भोगवाद का बेसुरा राग श्रनापना श्रारम्भ कर दिया था। स्वगं-प्रवासी शिष्य द्वारा वे पुनः उद्बोधित हुए। इन सबका प्रस्तुत काव्य में बहुत ही सुन्दर वर्णन किया गया है। यह हिन्दी साहित्य की एक श्रमुल्य निधि बन गई है। वास्तव में यह रचना श्रास्तिकता की नास्तिकता पर विजय की प्रतीक है।

'श्रावाढ़भूति' की भाषा समासयुक्त हिन्दी है। संस्कृत के तत्सम शब्दों का इसमें बाहुल्य है। 'ह्रिग्नीष' जी ने ग्रापने 'प्रियप्रवास' में संस्कृत के मूल शब्दों का स्वतन्त्रतापूर्वक प्रयोग करते हुए भी कहीं उसमें दुक्हता तथा सौन्दर्य-विघ्नता नहीं ग्राने दी है। उसी प्रकार श्राचार्यश्री ने भी श्रपने काव्य में संस्कृत तथा प्राकृत के मूल पदों का खुलकर प्रयोग किया है, पर पाठक को उसमें भटकने का मौका नहीं मिलता, श्रपितु वह उनमें भूमता हुआ काव्य का रसास्वादन करता चलता है। जहाँ पर मूल शब्दों का प्रयोग ही कविता में किया गया है, वहाँ काव्य की भावना को श्रिषक प्रस्फुटन मिला है। जैसे—शरणं बत्तारि। यहाँ ऐसा लगता है मानो चार श्रीर चत्तारि में कोई श्रन्तर ही नहीं। यहाँ पर चतारि शब्द हिन्दी का ही बन गया प्रतीत होता है। इसी प्रकार संस्कृत के शब्दों का भी बहुत प्रयोग हुआ है। एक-दो शब्द ऐसे भी श्राये हैं जो कि हिन्दी में प्रचलित नहीं हैं, जैसे 'बाढ़' शब्द। फिर भी इसका प्रयोग उपयुक्त स्थान पर होने के कारण श्रयं समफने में कठिनाई श्रनुभव नहीं होती, प्रत्युत काव्य प्रवाह को आगे बढ़ाने में ही सहायक होता है। परन्तु जहाँ प्राकृत के वाक्यों का प्रयोग उपयो-का-त्यों हुआ है, वहाँ श्रवस्य थोड़ा खटकता है। जैन दर्शन के मूल सद्धान्तिक शब्दों का प्रयोग भी श्रिषक मात्रा में हुआ है। उन शब्दों का पारिभाषिक ज्ञान रखने वाले पाठक के लिए तो सोने में सुहागा है ही। जैनेतर या जैन दर्शन से श्रनभज पाठक भी इसका समुचित श्रानन्द ले सके, इसके लिए सम्पादक ने परिशिष्ट में इनका श्रयं श्रीर व्याख्या कर दी है।

कित ने विविध स्थानों पर मुहावरों और लोकोक्तियों का भी प्रयोग किया है। जो न केवल भावाभिव्यंजक हैं, ग्रिपितु पाठक के मर्मस्थल को भी छूती हैं। संस्कृत की उक्ति यावत् जीवेत् सुखं जीवेत्, ऋणं कृत्वा घृतं पिवेत्, का हिन्दी रूप वन कर्जदार भी घी पीना स्वार्थी वनकर प्रत्याय करने वालों और दूसरों का सब-कुछ छीनने वालों के उत्तर कितना तीव्र ग्राधात करती है। मधु से प्राप्तावित तीक्ष्ण छरी, मोठों में पीसे जाते घुन ये लोकोक्तियाँ शब्दों का परिधान पाकर कितनी सहज व हृदयस्पर्शिनी बन गई हैं। जिस प्रकार 'हरिद्यीध' जी ने 'बोले चौपदे' तथा 'बुभते चौपदे' में मुहावरों का उपयोग कर समाज पर तीका प्रहार किया है, उसी प्रकार श्राचार्यक्षी ने 'ग्राषादभूति' में प्रचित्तित उक्तियों का ग्रन्थन

कर मानव को प्रावशांभिमुख करने का सफल प्रयास किया है। कहीं-कहीं तो भ्राचार्यश्री की स्वयं की पंक्ति भी एक लोकोक्ति बन गई है। भोज्य को पहचानने से पेट बोलो कब भरा।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि माचार्यश्री ने 'माषाढ़भूति' की माषा को बहुरंगी बनाया है। म्राचार्यश्री भाषा के मनुगत न होकर भाषा उनकी मनुगामी है। 'माषाढ़भूति' प्रसाद की तरह तत्सम शब्दों की प्रधानता तथा गुप्त जी की भौति श्रमचलित संस्कृत शब्दों का मभिनव प्रयोगों का समवायी रूप है।

'भाषाद्भृति' में मुख्यतः दोहा, सोरठा तथा गीतिक छन्दों का प्रयोग प्रधिक हुआ है, परन्तु काव्य का सबसे भाकर्षक रूप प्रवन्ध काव्य में प्रगीत का प्रभिनव प्रयोग है। किव ने विभिन्न राग-रागिनियों में किवता कामिनी को सँवारा है। प्राचीन एवं धर्वाचीन हिन्दी तथा राजस्थानी लोक गीतों के संगीत तथा भाषुनिक प्रसिद्ध लयों को काव्य में गुंजित किया है। प्रगीत काव्य की अभिव्यक्ति प्रस्तुत रचना में विभिन्न स्थलों पर प्रस्कुटित हुई है। विविध घटनाओं तथा भावनाओं को व्यक्त करते हुए लेखक ने छन्द परिवर्तित किये हैं, जिससे विभिन्नताओं की सुकुमारता दृष्टिगत होती है। जहाँ संगीत मानव की हुत्तन्त्री को भंकृत करता है, वहाँ वह काव्यमय होकर मानव की भावनाओं को प्रांजिल करने में अपना सानी नहीं रखता। लेखक ने संगीत को काव्यमय तथा काव्य को संगीतमय बनाकर प्रनात्मवाद के गहनतम में सोये हुए स्वार्थी मानव को उद्वोधित करने का सफल प्रयास किया है।

सरसता, रमणीयता तथा शब्दों और अथों में अदोषता आदि काव्य के मुख्य गुण माने जाते है। रसयुक्त तथा दोषमुक्त काव्य ही रमणीयता अथवा सुन्दरता की कोटि में आ सकता है और किवता में रमणीयता अथवा सुन्दरता लाना अलंकारों का विशेष काम है। मानव सौन्दर्य प्रेमी होता है, यही कारण है कि वह प्रागैतिहासिक काल के जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में भी सुन्दरता लाने का प्रयास करता है। काव्य क्षेत्र में भी सुन्दरता के लिए ही अलंकारों का आविभिव हुआ है। प्रस्तुत काव्य में अनुप्रास, पुनरुक्ति प्रकाश, उपमा, रूपक, उदाहरण आदि अलंकारों का मुख्यतः प्रयोग हुआ है। अन्य अलंकार भी यत्र-तत्र दिखाई देते हैं।

ब्रालंकारों में किस प्रकार पाठक की ग्राँखों के ग्रागे वर्ण्य विषय का चित्र-सा खिच जाता है, यह निम्न पंक्तियों में देखिए—

> चाध्यात्मिक मार्मिक वार्मिक उनके भाषण का प्रव्भुत घोज, व्यक्ति व्यक्ति करने लग जाते प्रयने झन्तर मन की खोज, जीवन वर्शन मुख्य विषय घा जिनके पावन प्रवचन का, पूंगी पर ज्यों नाग डोसने, लगता था मन जन-जन का।

उपर्युक्त पंक्तियों में अलंकारों की कैसी छटा विद्यमान है। अन्त्यानुप्रास, पुनक्षितप्रकाश तथा उपमा अलंकारों का प्रयोग किस सुन्दर ढंग से किया गया है। जिस प्रकार पूँगी पर सर्प मन्त्रमुग्ध होकर भूमने लगत है, उसी प्रकार सभास्थल में बैठा हुआ जनसमुदाय भी धर्माचार्य आषाढ़ भूति का पावन उपदेशामृत मग्न होकर पान कर रहा है। इस प्रकार प्रलंकारों का प्रयोग कर काव्य को द्विगुणित सौन्दर्य प्रदान करना आचार्यश्री की अद्भुत सूभ का परिचायक है। इसी प्रकार रूपक का भी एक उदाहरण देखिए—

होंगे श्री झाचार्यदेव ही, तालों पतितों के पावक। होगा यही विनोद पूज्य-पादाम्बुज का नन्हा सावक।

'साहित्य दर्पण' के लेखक ने लिखा है—बाक्यं रसात्मकं काश्यम् प्रयात् रस युक्त वाक्य ही काव्य होता है। रस हीन रचना काव्य की अधम कोटि में प्राती है। रस वह प्रपायिव पदार्थ होता है, जिसका पान कर पाठक इस लौकिक संसार से दूर वसुर्थव कुदुस्वकम् की भावना से भ्रोत-प्रोत होता है तथा पात्र के सुख-दुख से स्वयं को तादात्म्य कर उसके मुख-दुख को प्रपना मानने लगता है।

'म्राषाढ़भूति' में शान्त रस का सुन्दर परिपाक हुआ है। यही इसमें प्रमुख रस है। वियोग, करण, वात्सल्य एवं बीभत्स रस मादि भी सहायक रस के रूप में माये हैं। कौन ऐसा सहूदय पाठक होगा जो धर्माचार्य झाषाड़भूति

के दुख में प्रपनी सहानुभूति न रखता होगा, वे करुणार्त पुकार रहे हैं---

क्या करूँ ? कहाँ प्रव काऊँ रे ? दुःस किसे सुनाऊँ रे ! मन की कैसे समभाऊँ रे ! दुःस किसे सुनाऊँ रे ! एक रहा था जो छोटा-सा, बालक नथन सितारा । घन्ध-यिट-सा मेरे आगे-पीछे एक सहारा । निवंत का बल, निवंत का घन, यदि वह मी बच जाता । सो उसके भाषार बुदापा, सुलपूर्वक कट जाता । भव रो-रो नयन गमाऊँ रे ।

जिस समय भाचार्य भाषाङ्भूति पदच्युत हो निर्दय बन सुकुमार छः बालकों की हत्या करते हैं। उस समय तो ऐसा लगता है मानो करुणा स्वयं ही मूर्नरूप धारण करके ग्रा गई है।

वियोग शृंगार रस का प्रबल रूप है। जितना वियोग में रस का परिपाक हो पाता है, उतना संयोग में नहीं। चिन्ता, स्मृति, गुण कथन, प्रलाप और उन्माद भादि वियोग की भनेक दशाएं मानी जाती हैं। शिष्यों के काल कवितत हो जाने पर उनके उपकरण आदि को देखकर उनका स्मरण, उनके बिना भविष्य की चिन्ता, विनोद के गुणकथन, विनोद की पुकारना और उन्माद की दशा में द्वार तक दौड़े जाना आदि वियोग में ही होते हैं। एक उदाहरण देखिए—

हा ! बत्स ! विनोद कहाँ तू मेरी आशा के तारे । कदणातं पुकार रहे हैं, आ बस्स ! शीझ तू आ रे । आहट सुन बौड़े-बौड़े, वे द्वारोपरि जाते हैं । कोई न बृष्टिगत होता (तो) मूच्छित से हो जाते हैं ।

बच्चों के वियोग में उनके माता-पिता की दशा का वर्णन तो बहुत मार्मिक बन पाया है। उनके प्रति माता-पिता तथा गुरु की शिष्य के प्रति वात्सत्य भावना का भी समुचित चित्रण भली-मौति किया गया है। बीभत्स रस भी एक जगह भाया है। इसका एक उदाहरण पढिए---

गोध-वृष्टि से दूर-दूर तक, पैनी नजर निहार रहे। बन करके लोभान्य झाज वे कुछ भी नहीं विचार रहे। नहीं वृष्टिगत पशु-पक्षी भी क्या मानव का नाम निशान। चारों स्रोर रेत के टिस्बे नीरव पष सरण्य सुनसान।

इस प्रकार 'आषाढ़भूति' एक रस युक्त काव्य रचना है तथा इसमें विभिन्न रसों का सुन्दर समावेश है।

भाषाद भूति की कथा जैन समाज में अत्यन्त प्रचलित है। समय-समय पर प्राकृत, संस्कृत, गुजराती व राजस्थानी भाषाओं में इस पर प्रवन्ध रचे जाते रहे हैं। प्रस्थात कथावस्तु कल्पना का सामंजस्य पाकर भिक्क मुखरित हो
उठी है। स्थान-स्थान पर प्रासंगिक लोक कथाएं तथा प्रचलित शिक्षा कहानियाँ भी संकेत रूप में प्राई हैं, जिन्हें पाठकों
की सुविधा के लिए परिशिष्ट में सम्पादक ने सिवस्तार हिन्दी गद्ध में लिख दिया है। यह मात्र प्राचीन भाषाओं से अन्दित ही नहीं है, भितु इसमें यथा प्रसंग दर्शन, अध्यात्म लोक व्यवहार के नाना उपयोग प्रसंग बहुत ही रोचक शैली से
संयोजित किये गए हैं। हिन्दी काव्य रचना में जितना दर्शन का दिग्दर्शन हो पाया है, उतना अन्य भाषाओं में उपलब्ध
नहीं है। कबीर, जायसी, सूर, तुलसी, प्रसाद आदि का किसी-न-किसी दार्शनिक वाद से सम्बन्ध रहा है। यही कारण है
कि भद्दीतवाद, वैतावत्तवाद, शैव दर्शन, जैन दर्शन, बौद्ध दर्शन आदि दर्शनों की मीमांसा हिन्दी किता में प्रचुर
मात्रा में मिलती है और भाष्ययं यह है कि दर्शन जैसे शुष्क और दुष्ट विषय को भी हिन्दी कियों ने सरस बना दिया है।
साथ ही हम कह सकते हैं कि हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ निधि भी वे ही कृतियाँ है; जिनमें किसी न किसी दर्शन का पुट पाया
जाता है। 'भाषादभूति' आस्तिकता की नास्तिकता पर विजय का प्रतीक है। भारतीय संस्कृति में आस्तिकवाद का
विशेष महत्त्व है। नास्तिकवाद के प्रवर्त्तक वृहस्पित ने जन्म-मृत्यु, नरक-स्वर्ग, आत्मा-परमात्मा सभी इस भौतिक संसार

में ही माना हैं। नास्तिकों के मत में प्रकृति ही सब कुछ है। उनके धनुसार जड़-चेतन एक ही हैं। परन्तु प्रत्यकों कि प्रमाणम् यदि जड़ और चेतन एक ही वस्तु के नाम हैं और उनका पृथक् श्रस्तित्व नहीं है तो मृत शरीर कर्मशील क्यों नहीं होता ? किव ने निम्न पंक्तियों में नास्तिकों के तर्क का खण्डन तार्किक ढंग से प्रस्तुत किया है:

यवि भूतवाद ही सब कुछ है, चेतन का पृथ्यस्तित्व नहीं, चेतनता वर्म, कहो किसका, गुण ग्रननुरूप होता न कहीं? चेतना शून्य क्यों मृत शरीर? वर्मी से धर्म भिन्न कैसे? वह जीव स्वतन्त्र प्रस्प इसकी सत्ता है स्वयं सिद्ध ऐसे।

भारतीय विद्वानों व कवियों ने गुरु महिमा का बहुत वर्णन किया है। कबीर तो गुरु को भगवान् में भी बढ़कर मानते थे। वे कहते थे:

#### हरि रूठं गुरु ठोर है, गुरु रूठं नहीं ठोर।

श्राचार्यश्री ने भी गुरु-गुण महिमा को स्रपनी कृति में दर्शाया है। स्थानागसूत्र में भगवान् श्री महाबीर ने कहा है कि पिता से पुत्र का, लालन-पालन कर अपने ही समान बना देने वाले महाजन से श्रनाथ बालक का तथा गुरु से शिष्य का उक्राण होना बहुत कठिन है।

माता-पिता का पुत्र पर उपकार ग्रपरम्पार है, निस्य- सेवक पर महिधिक का ग्रथक ग्राभार है। क्षित्य पर गृह का ततोधिक महा उपकृति भाद है, करो सेवा क्यों न कितनो, किन्तु बुष्प्रतिकार है।

यही कारण है कि स्वर्गप्रवासी शिष्य विनोद भी श्रपने गुरु के गुणों का गान करता है :

शिष्यों पर रहता सद्गुरुका है उपकार ग्रनन्त रे। कण-कण ले सागर के जल का कीन पासके ग्रन्त रे। पड़ा कोयलों की खानों से कंकर जौहरी लाता।

चढ़ा सान पर चमका कर करोड़ों का मूल्य बढ़ाता। वंसे ही चमकाते शिष्यों को गुरुषर गरिमावन्त रे।

देव, गुरु, धमं का महत्त्व भारतीय सम्कृति ने श्रांका है, इसीलिए भारतवर्ष में प्राचीन काल से किसी भी कार्य के प्रारम्भ में इनकी श्राराधना की जाती है। साहित्यिक कला कृतियों में भी प्रारम्भ में मगलावरण की रीति चली श्रा रही है। कवि ने कृति के प्रारम्भ में इनकी स्तुति की है।

जहाँ हम रचना में भाव पक्ष समुन्नत पाते हैं, वहाँ कला पक्ष और कल्पना पक्ष भी कम नहीं है। किव की कल्पना तो अपनी चरम सीमा पर ही पहुँच गई है। एक ओर किव की लेखनी से महामारी की विभीषिका चित्रित हुई है तो दूसरी ओर बालकों की सुकुमारता। दोनों ही दृश्य चित्रपट की भौति आँखों के सम्मुख धूमते में नजर आते है। महामारी का चित्रण कितना सजीव है:

एक चिता पर, एक बीच में, एक पड़ा है भरती। बगं-भेद के बिना शहर में घूम रहा समवर्तीजी।

छहों बालक ब्राचार्य ब्राषादभूति को वन्दन करने ब्राते हैं, जहाँ बालकों के कान्त वपु का वर्णन ब्राता है वहाँ के स्थिति चित्रण में तो कवित्व परमाकर्षक बन गया है । चित्रण र्याती तथा वस्तु रौली का एक नमृना देखिए :

तप्त स्वर्ण से उनके चेहरे, कोमल प्यारे-प्यारे।
भलक रही थी सहज सरलता, हस्ति वदन थे सारे रे।
बीप्तिमान कानों में कुण्डल, लोल-कपोल स्पर्शी।
मक्ता, मणि, हीरों, पन्नों के हार हृदय प्राकर्षी रे।